एम.ई.सी.-08

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. अर्थशास्त्र (उत्तरार्द्ध)

क्षेत्रीय आर्थिक विकास एवं नियोजन

एम.ई.सी.-08

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. अर्थशास्त्र (उत्तरार्द्ध)

क्षेत्रीय आर्थिक विकास एवं नियोजन 1

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा
कुलपति
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रोफेसर एस.एस. आचार्य
निदेशक,
विकास अध्ययन संस्थान, जयपुर

प्रोफेसर डी.डी. नरूला
मानद वरिष्ठ अध्येता
विकास अध्ययन संस्थान जयपुर

डॉ. श्याम नाथ
फ़ेलो,एन.आई.पी.एफ़., नई दिल्ली

प्रो. अमिताभ कुन्डु
सी.एस.आर.डी.
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रोफेसर ए.के. सिंह
गिरि इंस्टीट्यूट ऑफ डवलपमेंट स्टडीज
लखनऊ

डॉ. प्रमोद वर्मा
,इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट
अहमदाबाद

डॉ. एम.के. घड़ोलिया (संयोजक)
सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. रामेश्वर प्रसाद शर्मा
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. जे.जे. शर्मा
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम संशोधन अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. एल.आर. गुर्जर
निदेशक अकादमिक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक

प्रो. जे. के. शर्मा
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.फरीदा शाह आचार्य ,अर्थशास्त्र विभाग , मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय उदयपुर ,	**डॉ. एन.के. दशौरा** अर्थशास्त्र विभाग राजीव गाँधी जनजाति , उदयपुर ,विश्वविद्यालय
डॉ धीरेश कुलश्रेष्ठ . सह आचार्य - हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय महेंद्रगढ़ ,	**डॉ हेमा मंगलानी.,** सहायक आचार्य, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर
डॉ सुरेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ . सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	

पाठों के लेखक

प्रो. ओ.एस. श्रीवास्तव (1,14,15,17)

डॉ. जी.के. मिश्रा (7)

भोपाल

डॉ. के.सी. गुप्ता (2,4)
जयपुर

डॉ. एस. अग्रवाल (3)
ग्वालियर

प्रो. एम. हुसैन (5,6,12)
जयपुर

प्रो. एस. मूर्ति (18)
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. सीतेश भाटिया (19, 21, 25)
नई दिल्ली

डॉ. श्यामला भाटिया (20)
नई दिल्ली

प्रो. के. नागेश्वरा राव (22, 29)
एस. के. विश्वविद्यालय, अन्नतपुर

प्रो. के.आर.जी. नायर (23)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान
नई दिल्ली

डॉ. नारायण सिन्हा (8,9,10,13)
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रो. (श्रीमती) अतीया हबीब (1)
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय , नई दिल्ली

प्रो. ए.के. तिवारी (16)
जोधपुर (राज.)

मंजू श्री (24)
राजकीय महाविद्यालय, कोटा

डॉ. एम.पी. गोस्वामी (26, 28)
बरेली (उ.प्र.)

प्रो. ओ.एस. श्रीवास्तव (27, 30)
भोपाल

प्रो. एन.एम. लाल (31)
ग्वालियर

अनुवाद

श्री टी.सी. पाठक (5,6)
अजमेर

डॉ. जी.एल. गुप्ता (7,11)
बूँदी

श्री के.आर. लोहार
सिरोही

सम्पादक

प्रो .एस.ओ .श्रीवास्तव

सेक्टर 88,8

कस्तूरबा नगर, भोपाल (.प्र.म)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो अशोक शर्मा.
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो गुर्जर .आर.एल (.डॉ).
निदेशक, अकादमिक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ अरविंद पारीक
निदेशक, सामग्री उत्पादन और वितरण
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम उत्पादन

पुनः उत्पादन -जून, 2016

इस सामग्री के किसी भी अंश को व कोटा .वि.खु.म.की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी द्वारा या अन्यत्र (चक्रमुद्रण) पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है |

व .वि.खु.म.कोटा के लिये कुलसचिव व .वि.खु.म.कोटा द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित (.राज)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

खण्ड 1 - **स्थानिक सिद्धान्त**		
इकाई 1	अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र : महत्व तथा आर्थिक विश्लेषण में स्थान क्षेत्रीय महत्व	10–21
इकाई 2	एकाधिकृत बाजार एवं मूल्य निर्धारण	22–35
इकाई 3	स्थानीयकरण के सिद्धान्त	36–51
इकाई 4	बाजार के आकार एवं स्वरूप के सिद्धान्त	52–60
इकाई 5	साम्यावस्था और असाम्यावस्था सिद्धान्त : लौश मॉडल व उसकी आलोचना	61–73
इकाई 6	केन्द्रीयकरण की मितव्यवताएं व अमितव्यवताएं : विकास ध्रुव का विचार	74–91
खण्ड 2 अंतराल का समष्टि अर्थशास्त्र		
इकाई 7	क्षेत्र : अवधारणा प्रकार व पहचान	92–100
इकाई 8	प्रदेशिक आय लेखा : प्रदेशिक आदा- प्रदा विश्लेषण	101–109
इकाई 9	वस्तुएं एवं पूंजी का अन्तर्प्रादेशिक प्रवाह/ चालू एवं पूंजी खातों का संतुलन	110–113
इकाई 10	प्रादेशिक विकास का सिद्धान्त	114–119
इकाई 11	क्षेत्रीय संवृद्धि के सिद्धान्त-मिर्डल और हर्ष मैन के सिद्धान्तों का समीक्षात्मक मूल्यांकन	120–126
इकाई 12	केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त	127–145
खण्ड 3 क्षेत्रीय नियोजन मॉडल एवं अनुप्रयोग		
इकाई 13	प्रादेशिक आगत-निर्गत विश्लेषण	146–153
इकाई 14	अन्तर अंचल क्षेत्रीय व्यापार एवं अंचल क्षेत्रीय गुणक	154–163
इकाई 15	औद्योगिक काम्प्लेक्स विश्लेषण	164–176
इकाई 16	बहु स्तरीय नियोजन : इंटरेटिव प्रक्रम का उपयोग लांगे के मॉडल का परिचय	177–184
इकाई 17	गुरुत्वाकर्षण मॉडल तथा अन्तर अंचल क्षेत्रीय प्रवाह का निर्धारण	185–194

खण्ड - 4 **भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना**		
इकाई 18	क्षेत्रीय विकास के सूचक : आंकड़ों के स्त्रोत एवं बाधाएं	198-236
इकाई 19	भारत के प्रमुख प्राकृतिक संसाधन एवं उनका प्रादेशिक वितरण	237-253
इकाई 20	औपनिवेशिक काल में भारतीय प्रादेशिक संरचना का उद्भव	254-264
इकाई 21	कृषि विकास : परिवर्तनशील क्षेत्रीय संरचना	265-284
इकाई 22	औद्योगिक विकास : परिवर्तनशील क्षेत्रीय संरचना	285-297
इकाई 23	सामाजिक आर्थिक आधारभूत ढ़ाँचे के विकास में क्षेत्रीय असंतुलन	298-309
इकाई 24	राज्यों के अन्तर्गत अंत: क्षेत्रीय विषमताएं (राजस्थान के विशेष संदर्भ में)	310-333
खण्ड - 5 **भारत में क्षेत्रीय नियोजन**		
इकाई 25	भारत में नियोजन प्रक्रिया के क्षेत्रीय आयाम	334-349
इकाई 26	भारत में बहुस्तरीय नियोजन (राज्य स्तर तथा जिला स्तर नियोजन के विशेष संदर्भ में)	350-369
इकाई 27	नगर एवं महानगर नियोजन	370-386
इकाई 28	ग्रामीण शहरी समन्वय के लिए नियोजन	387-401
इकाई 29	अंचल क्षेत्रीय साधन विकास की योजनाएं	402-412
इकाई 30	जिला एवं नीचे के स्तर पर विकेन्द्रित नियोजन	413-423
इकाई 31	भारत में क्षेत्रीय विकास योजनाएं	424-449

खण्ड परिचय

प्रथम इकाई में अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र की व्याख्या की गयी है । इस इकाई में अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र की परिभाषा की विस्तृत चर्चा की गई है । अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र की विषय वस्तु के साथ-साथ आर्थिक क्रियाओं के आकार-प्रकार व संरचना को निर्धारित करने वाले तत्वों के बारे में बताया गया है ।

द्वितीय इकाई में एकाधिकृत बाजार एवं मूल्य निर्धारण की विस्तृत विवेचना की गयी है। बाजार की विभिन्न प्रतियोगिताओं का अर्थ, उद्देश्य एवं विशेषताएं बतायी गयी है। इस इकाई में एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण के साथ-साथ यह भी समझाया गया है कि अल्पकाल एवं दीर्घकाल में एक फर्म का संतुलन तथा कीमत निर्धारण कैसे होता है?

इकाई संख्या 3 में विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित स्थानीयकरण के सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना की गयी है इस इकाई में स्थानीयकरण के प्राकृतिक आर्थिक एवं राजनैतिक घटकों के साथ-साथ इसके लाभ एवं हानियां भी बतायी गयी है ।

चतुर्थ इकाई में बाजार के आकार एवं स्वरूप की व्याख्या की गयी है । इस इकाई में बाजार का अर्थ, एवं इसके निर्धारक तत्व बताये गये है । इसमें विभिन्न परिस्थितियों के आधार पर बाजार के आकार एवं प्रारूप के निर्धारण की विवेचना की गयी है । इसमें यह भी समझाया गया है कि किसी वस्तु के बाजार का संकीर्ण होना यों विस्तृत होना किन बातो पर निर्भर करता है।

इकाई संख्या 5 में क्षेत्रीय नियोजन एवं साम्यावस्था के क्षेत्र में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री आगस्ट लौश द्रारा प्रतिपादित मॉडल की विस्तृत विवेचना की गयी है । इस इकाई में एक स्थान से दूसरे स्थान पर वस्तुओं की मांग व पूर्ति की साम्यावस्था और असाम्यावस्था की स्थिति समझाने के साथ-साथ यह भी बताया गया है कि सरल परिस्थितियों में मांग व पूर्ति का व्यवहार किस प्रकार कार्य करता है ।

इकाई सुंख्या 6 में फर्मो के एक स्थान पर केन्द्रित होने की प्रवृति पर विस्तृत चर्चा की गयी है । इसमें भौगोलिक विकेन्द्रीयकरण की प्रक्रिया को जन्म देने वाले तत्वों को भी समझाया गया है । इस इकाई में विकास ध्रुव और आइसोडापेन के साथ-साथ फर्मो की मितव्ययताओं और अमितव्ययताओं के बारे में भी समझाया गया है । इसमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार अमितव्ययताओं के उत्पन्न होने पर केन्द्रीकरण का स्थान विकेन्द्रीयकरण लेता है ।

इकाई 7 में क्षेत्र की अवधारणा को परिभाषित करते हुए क्षेत्र के प्रकारों का वर्णन किया गया है और इन्हें चिन्हित करने की विधियों की व्याख्या की गयी है । क्षेत्री की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि "क्षेत्र" को तीन श्रेणियों के आधार पर स्थिरीकृत किया जा सकता है व हँ सजातीयता, केन्द्रीयता और प्रोग्रामिंग । इस इकाई में बताया गया है कि योजना क्षेत्र में चार प्रणालियाँ हो सकती हैं- आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय और प्रशासनिक। इसमें यह

भी समझाया गया है कि कार्यात्मक क्षेत्रों के वास्तविक चित्रण के लिए जो तकनीकें प्रयुक्त की जाती है वे हैं-प्रवाह विश्लेषण और गुरुत्वाकर्षण विश्लेषण।

इकाई संख्या 8 में प्रादेशिक आय लेखा ओर प्रादेशिक आदा-प्रदा विश्लेषण की विस्तृत व्याख्या की गयी है । प्रादेशिक आय लेखा में इसके तीन भागों-उत्पादन, उपभोग एवं संचयन की विस्तृत विवेचना की गयी है । प्रसिद्ध अर्थशास्त्री लियोन्टीफ द्रारा प्रदत्त इत्युट-आउटपुट विश्लेषण की विस्तृत व्याख्या करके समझाया गया है और इसकी सीमाएं भी बतायी गयी है ।

इकाई संख्या 9 में प्रदेशों के मध्य वस्तुओं एवं सेवाओं के लेन-देन को दो प्रकार के लेखों-चालू खाता एवं पूँजी खाता के द्रारा समझाया गया है ।

इकाई संख्या 10 में प्रादेशिक विकास के तीन सिद्धान्तों प्रतिष्ठित सिद्धांत नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त एवं निर्यात आधारित सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना की गयी है ।

इकाई संख्या 11 में गुन्नार मिर्डल और हर्षमेन द्वारा प्रतिपादित क्षेत्रीय संवृद्धि के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या की गयी है । इस इकाई में मिर्डल के स्प्रेन्द्र और बैकवाश प्रभावों के सिद्धांत को समझाया गया है और हर्षमेन के ध्रुवीकरण एवं नीचे रिसाव प्रभाव सिद्धान्त की विवेचना की सी है। इनके साथ-साथ इस इकाई में मिर्डल और हर्षमैन के सिद्धान्तों की समानताएं और असमानताएं भी बतायी गयी है ।

इकाई संख्या 12 में केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना की गयी । इसमें यह समझाया गया है कि केन्द्रीय स्थली सिद्धान्त क्या है? क्षेत्रीय आयोजन में इसका क्या महत्व है? व्यापारिक संस्थानों के प्रबन्धक कुशल निर्णय लेने में इसका उपयोग कैसे करते हैं और मांग एवं पूर्ति के नियमों में इसका क्या महत्च है? इस इकाई में निम्न श्रेणी श्रखला में कार्य समझाने के साथ-साथ केन्द्रीय स्थलों के भौगोलिक मॉडल की भी व्याख्या की गयी है।

इकाई संख्या 13 में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हर्षमैन द्रारा प्रतिपादित प्रादेशिक, इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण की विस्तृत व्याख्या की गयी है । इस इकाई में अर्न्तउद्योगों एवं अन्तर्प्रदेशीय वस्तुओं के प्रवाहों को अंकित करके इन्पुट-आउटपुट सारणी का निर्माण कैसे किया जाता है, इन प्रवाहों की सहायता से इन्पुट-आउटपुट गुणांक कैसे तैयार किये जाते हैं यह समझाया गया है और प्रादेशिक स्तर की इन्पुट-आउटपुट सारिणीयाँ भी बतायी गयी है।

इकाई संख्या 14 में अंचल क्षेत्रीय गुणक सिद्धान्त की व्याख्या की गयी । इस इकाई में यह बताया गया है कि अंचल क्षेत्रीय व्यापार क्यों होता है और इसका क्या महत्व है । 'क्षेत्रीय व्यापार चक्र के बारे में समझाते हुए इसके प्रभाव बताए गये हैं । इसमें निर्यात आधार सिद्धान्त बताया गया है तथा आधारभूत उद्योगों के बारे में सूत्र सहित समझाया गया है ।

इकाई संख्या 15 में औद्योगिक काम्पलेक्स का अर्थ समझाते हुए इनकी विस्तार से व्याख्या की गयी है और इनके फैलाव की नीतियाँ बतायी है । इसमें औद्योगिक काम्पलेक्स और ग्रोथपोल के सम्बन्धों की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि औद्योगिक ग्रोथपोल के कारण होते है । इस इकाई में यह समझाया गया है कि अंचल क्षेत्रीय उत्पादन काम्पलेक्स के स्थानों की पहचान कैसे की है और उत्पादन काम्पलेक्स की स्थापना कैसे की जाती है ।

इकाई संख्या 16 में नियोजन की विस्तृत व्याख्या की गयी है । इसमें बहुस्तरीय नियोजन के तीन स्तर बताये गये हैं इस इकाई में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री आस्कर लागे द्वारा अपनी पुस्तक इकोनोमिक्स ऑफ सोशलाईजेशन में प्रतिपादित सामाजिक- आर्थिक सिद्धान्त (लांगे का मॉडल) की व्याख्या की गयी है।

इकाई संख्या 17 में ग्रेविटी मॉडल की विस्तृत विवेचना की गयी हैं । इसमें आकर्षण व अवरोध दोंनों ही तरह के कारकों की व्याख्या भी की जाती है । इस इकाई में उन पहलुओं की भी विस्तृत विवेचना की है जिनसे अन्तर-अंचलक्षेत्रीय वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रवाह प्रभावित होते हैं ।

इकाई संख्या 18 में उन उद्देश्यों को विस्तृत रूप से समझाया गया है जिनकी प्राप्ति के लिए क्षेत्रीय विकास के अध्ययन का महत्व है । इसमें अविकसित क्षेत्र, अल्पविकसित क्षेत्र और विकसित क्षेत्रों के अर्थ एवं विशेषताओं की विस्तृत व्याख्या की गयी है । इसमें अल्प विकास की विशेषताओं की विस्तृत विवेचना करने के साथ-साथ आर्थिक विकास और उसके कारकों की भी विस्तृत व्याख्या की गयी है । इस इकाई में क्षेत्रीय विकास के सूचक बताने के साथ-साथ औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों की पहचान के लिए नियुक्त पाण्डे समिति एवं चक्रवर्ती समिति द्वारा दी गई रिपोर्टो की भी विस्तृत व्याख्या की गयी है । इसमें अन्तर्राज्यीय असमानताओं के बारे में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. राजकृष्ण द्वारा प्रस्तुत लेख "केन्द्र एवं परिधी" की चर्चा भी की गयी है । इस इकाई में विकास के सूचकों को बनाने की क्रिया विधि भी समझायी गयी है ।

इकाई संख्या 19 में भारत के प्रमुख प्राकृतिक संसाधन एवं उनके प्रादेशिक वितरण की विस्तृत विवेचना की गयी है । इसमें यह बताया गया है कि वर्तमान में किसी भी आर्थिक गतिविधि का अध्ययन करने के लिए प्रादेशिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है । क्योंकि आर्थिक गतिविधियाँ प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं इसलिए प्राकृतिक संसाधनों का भी प्रादेशिक या क्षेत्रीय अध्ययन आवश्यक हो जाता है । इस इकाई में प्राकृतिक संसाधन जैसे भूमि, वन, शक्ति, खनिज एवं जल इत्यादि भारत में कहां-कहां उपलब्ध हैं, इसकी विस्तृत व्याख्या की गयी है ।

इकाई संख्या 20 में औपनिवेशिक काल में भारतीय प्रादेशिक संरचना के विकास की विस्तार से व्याख्या की गयी है । इस इकाई में अठारहवीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है और उपनिवेशवाद के चरणों की व्याख्या की गयी है । अंग्रेजों द्वारा अपनायी गयी राजस्व प्रणालियों की व्याख्या करने के साथ-साथ अंग्रेजों द्वारा किये गये कृषि के व्यवसायीकरण एवं पनपते हुए शहरीकरण पर भी प्रकाश डाला गया है ।

इकाई संख्या 21 में कृषि विकास के बदलते हुए प्रादेशिक स्वरूप की व्याख्या की गयी है । इसमें यह बताया गया है कि देश की कृषि उत्पादन क्षमता में क्या परिवर्तन आये हैं, और देश में कृषि उत्पादन का प्रादेशिक स्वरूप क्या है । इस इकाई में तालिकाओं के माध्यम से सम्पूर्ण देश की एवं राज्यों की प्रतिहैक्टर मूल्य उत्पादकता भी विस्तार से समझायी गयी है । इसके साथ-साथ देश में प्रादेशिक स्तर पर फसलों के ढाँचे में जो परिवर्तन आये है उनके बारे में

भी बताया गया है । नयी कृषि नीति की चर्चा भी की गयी है । और सिंचाई के साधनों के विकास की व्याख्या भी की गयी है ।

इकाई संख्या 22 में औद्योगिक विकास की क्षेत्रीय संरचना के परिवर्तनशील स्वरूप की विस्तार से व्याख्या की गयी है । इस इकाई में भारत की औद्योगिक सरचना पर प्रकाश डाला गया है । इसमें यह बताया गया है कि संतुलित क्षेत्रीय विकास की क्या आवश्यकता है, और क्षेत्रीय औद्योगिक विकास के क्या उद्देश्य है? इस इकाई में क्षेत्रीय औद्योगिक विकास के स्वरूप की चर्चा करने के साथ उद्योगों के क्षेत्रीयकरण एवं क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की व्यूह रचना पर भी प्रकाश डाला गया है । इसके साथ ही क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की दिशा, संरचना एवं संरचना में आए परिवर्तनों पर भी चर्चा की गयी है ।

इकाई संख्या 23 में सामाजिक व आर्थिक आधार ढाँचे के विकास में क्षेत्रीय असंतुलन की व्याख्या की गई है । इसमें आधार ढाँचे का अर्थ, इसकी भूमिका एवं इसके माप की विवेचना की गयी है । इसमें क्षेत्रीय असमानताओं को समझाने के लिए आर्थिक आधार ढाँचे के सूचकांक सामाजिक आधार ढाँचे के सूचकांक एव मिले-जुले आधार ढाँचे के सूचकांकों को तैयार कैसे किया जाता है इस पर चर्चा की गयी है ।

इकाई संख्या 24 में राजस्थान में अंत: क्षेत्रीय विषमताओं के बारे में बताया गया है । इस इकाई में राजस्थान में अन्त: क्षेत्रीय विषमताओं के सूचक जैसे- जनसंख्या, औद्योगिक विकास, खनिज संसाधन, शक्ति संसाधन, सड़कों के विकास एवं कृषि पर विस्तृत रूप से चर्चा की गयी है । इसमें क्षेत्रीय असमानताओं के कारण एवं इन्हें कम करने के सुझाव भी बताये गये हैं ।

इकाई संख्या 25 में भारत नियोजन प्रक्रिया आयाम की विस्तृत विवेचना की गयी है । इसमें क्षेत्रीय असंतुलन के कारणों जैसे-ऐतिहासिक कारण, प्राकृतिक कारण एवं आयोजन में संतुलित विकास के अभाव के कारण की चर्चा की गयी है । इस इकाई में क्षेत्रीय असन्तुलन के सूचकों पर प्रकाश डाला गया है, और कृषि क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र एवं सेवा क्षेत्र में पाये जाने वाले क्षेत्रीय असन्तुलन के बारे में जानकारी देते हुए संतुलित विकास एवं असमानताओं को कम करने के उपाय भी बताये गये है ।

इकाई संख्या 26 में भारत बहु-स्तरीय नियोजन पर चर्चा की गयी है । इसमें विश्व-अर्थव्यवस्थाओं में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की नियोजन प्रणालियों पर प्रकाश डाला गया है और पिछड़े क्षेत्रों और अर्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए नियोजन तकनीक की व्याख्या करने के साथ-साथ भारत में नियोजन की विधियों एवं संगठन की भी विवेचना की गयी है ।

इकाई संख्या 27 में नगर एवं महानगर नियोजन की विस्तृत विवेचना की गयी है । इस इकाई में नगरों एव महानगरों की प्रमुख समस्यायें बताते हुए इनके नियोजन पर भी चर्चा की गयी है साथ ही समन्वित अंचल क्षेत्रीय नियोजन की भी व्याख्या की गयी है ।

इकाई संख्या 28 में ग्रामीण-शहरी सम-वय के लिये नियोजन की व्याख्या की गई है । इस इकाई में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रवास की प्रवृत्ति के कारण, इस प्रवृत्ति के गुण, इसके दोष व कमियाँ एवं इस अन्तर्गमन के प्रभावों पर विस्तृत विवेचना की गयी है ।

इकाई संख्या 29 में साधन विकास की योजनाओं की व्याख्या की गयी है । इसमें साधन विकास की योजनाओं पर प्रकाश डालते हुए क्षेत्रीय नियोजन की भी व्याख्या की गयी है। इसमें आयोजना क्षेत्रों की विभाजन पर चर्चा करते हुए नदी घाटी परियोजनाओं एवं वाटरशैड प्रबंधन की भी विवेचना की गयी है ।

इकाई संख्या 30 में जिला स्तर के विकेन्द्रित नियोजन की विवेचना की गयी है । इस इकाई में जिला नियोजन का अर्थ उसका राष्ट्रीय, राज्यीय, अंचल क्षेत्रीय व बहुस्तरीय नियोजन से समन्वय पर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है ।

इकाई संख्या 31 में भारत में क्षेत्रीय विकास योजनाओं पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इसमें सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम मरूस्थल विकास कार्यक्रम पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाओं एवं जनजाति क्षेत्रीय विकास योजनाओं पर विस्तृत रूप से विवेचना की गयी है ।

इकाई 1

अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र : महत्व तथा आर्थिक विश्लेषण में स्थान क्षेत्रीय महत्व

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र की परिभाषा

1.3 अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र एवं अंचल क्षेत्रीय समस्याएं

1.4 आर्थिक विकास में स्थान क्षेत्रीय तत्वों का महत्व व उनसे सहसम्बन्ध

1.5 अंचल क्षेत्रीय क्रियाओं को निर्धारित करने वाले घटक व तत्व

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

यह इस विषय की सामग्री का पहली इकाई है। Area, Space, Sector, Region, आदि शब्दों के लिए बहुधा "क्षेत्र" शब्द का प्रयोग करते है परन्तु जब ये शब्द एक साथ प्रयोग करना हो तो कठिनाई आती है। अत: region के लिए यहाँ अंचलक्षेत्र शब्द का प्रयोग किया गया है, केवल अंचल शब्द का प्रयोग zone के लिए किया जाता है। अलग-अलग लेखक अलग-अलग शब्दों का प्रयोग करते है। इस इकाई के लेखक की स्थिति उपरोक्त है। अगर region के लिए 'प्रदेश' शब्द का प्रयोग करते है तो मध्य प्रदेश का छत्तीसगढ़ प्रदेश कहने से कुछ भ्रम होगा। मध्य प्रदेश "राज्य" कहने पर दुहरे शब्द प्रयोग होंगे।

इस इकाई का मुख्य लक्ष्य अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र (Regional Economics) की परिभाषा देना, उसका क्षेत्र (Scope) अध्ययन करना, उसकी विषय वस्तु जानना तथा अंचल क्षेत्रीय आर्थिक क्रियाओं के आकार-प्रकार व संरचना को निर्धारित करने वाले तत्वों का अध्ययन करना है।

1.1 प्रस्तावना (Introduction, Prolegomena)

अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र, अंचलक्षेत्रीय शास्त्र व विज्ञान का एक अंग है, उसी तरह यह अर्थशास्त्र का एक उप विशिष्टीकरण है। कुछ लेखक उसे व्यापक शास्त्र मानते हैं, जो सही नहीं है। अंचल, राष्ट्र का एक अंग है। अंचलक्षेत्रीय विकास की समस्यायें देश के विकास की व्यूह रचना के अन्तर्गत ही हल हो सकती हैं। अंचल क्षेत्र, राष्ट्र के अन्दर एक राष्ट्र नहीं होता है। परंतु यह शास्त्र अंचलक्षेत्रीय विषमताओं को कम करने के शास्त्र के रूप में महत्वपूर्ण होता जा

रहा है। आर्थिक क्रियाओं का स्थानीयकरण, यातायात व प्रवास की समस्यायें, क्षेत्रीय विषमतायें, अंचलक्षेत्रीय आदान व प्रदान सम्बन्ध, समरूपतायें या असमरूपतायें तथा आर्थिक निर्भरतायें, विकास बिन्दुओं व स्तम्भों का विकास आदि इस शास्त्र के मुख्य अध्ययन विषय हैं।

1.2 अंचलक्षेत्रीय (Regional) अर्थशास्त्र की परिभाषा :

अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र में हम अंच ल क्षेत्रों के सन्दर्भ में आर्थिक स्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन करते है परन्तु इसके अपने सिद्धान्त (Theories) तथा नीतियाँ (Policies) है। इस के सिद्धान्तों में स्थानीयकरण (Location) यातायात (Transportation) तथा प्रवास (Migration) के सिद्धान्तों ने विशेष स्थान पाया है। अगर हम अंचलक्षेत्रीय विज्ञान (regional science) का अध्ययन करते है तो भौगौलिक, आर्थिक, सामाजिक, जननांकीय व क्षेत्रीय तकनीक विषयों का भी समावेश करते है। परन्तु अगर हम अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र (Regional Economics) का अध्ययन करते हैं तो यह विषय अर्थशास्त्र का एक विशिष्ट व्यवहारिक विषय है। हैलेट (Hallet) रेन्डाल (Rendall) तथा वेस्ट (West) के अनुसार -

"अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र में वृहद् अर्थशास्त्र, सूक्ष्म अर्थशास्त्र, कल्याणकारी अर्थशास्त्र, सार्वजनिक वित्त के अर्थशास्त्र, श्रम अर्थशास्त्र, उद्योग व कृषि अर्थशास्त्र तथा आदा व प्रदा विश्लेषण (Input-output Analysis) का संकर (Hybrid) मिश्रण है। इसमें कुछ अपने विशिष्ट उपविषय भी उत्रत हो गये हैं जैसे स्थानीयकरण-पिंड (Agglomeration) अर्थशास्त्र विकास-केन्द्र बिन्दु (growth-point) अर्थशास्त्र विकास-ध्रुव (Polarisation) अर्थशास्त्र या औद्योगिक समूह (Industrial Complex). अभी अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र में मिश्रण का कार्य ठीक से सम्पादित नहीं हो पाया है।''

अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक दोनों प्रकार का शास्त्र है। इसमें इस बात पर महत्व दिया जाता है कि जब क्षेत्रीय (sectoral) विकास हो तो उसका पर्याप्त व उचित अंचलक्षेत्रीय (Spatial and regional) वितरण भी हों ताकि विषमतायें कम हो सकें। यह ग्रामीण-शहरी तथा विकसित व पिछड़े अंचलों में संतुलित विकास लाने का अर्थशास्त्र है। विभिन्न अंचलों के विकास में जो कृषि प्रगति व विकास, उद्योग प्रगति व विकास, सेवा क्षेत्र प्रगति व विकास में जो अन्तर होते है उन्हें अध्ययन किया जाता है।

अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र का अंग है और यह ध्यान में रखने की बात है कि अंचल क्षेत्र, राष्ट्र के अन्दर राष्ट्र नहीं है (A region is not a nation within a nation)

आइजार्ड (Isard) अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र को एक सीमित शास्त्र मानते है जिसमें कि हम उन सब बातों को अंचलक्षेत्र के सम्बन्ध में अध्ययन करते है जिन्हें हम समग्र अर्थशास्त्र में राष्ट्र के सम्बन्ध में अध्ययन करते हैं। लेफेवर (Lafeber) व मेयर (Meyer) भी अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र को संकुचित शास्त्र के रूप में मानते है जिसमें हम (a) स्थानीयकरण (b) साधन अगतिशीलता और सीमित गतिशीलतायें (c) आवास व प्रवास (d) पिंडीकरण (e) यातायात व अंचलक्षेत्र के विशिष्ट प्रश्नों का अध्ययन करते है।

वृहद दृष्टिकोण परलॉफ (Perloff) अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र के स्थान पर अंचलक्षेत्रीय शास्त्र (Regional Science) को ही परिपूर्ण मानते हैं। इसमें अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र, भूगोल, जनांकिकी शास्त्र, समाजशास्त्र, साधन, तथा संस्कृति का भी अध्ययन करना चाहते हैं। जाहिर है कि यह बहुत अधिक होगा और इस मत के समर्थक कम हैं।

वर्तमान लेखक के मत में अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र में :-

(a) क्षेत्रीय विकास (sectorial development) को अंचलों के सम्बन्ध में (Inter Regional) या अन्तर्राज्यीय (Inter-State) सम्बन्ध में अध्ययन करते हैं;

(b) हम आर्थिक सम्बन्धों की कड़ियों (Linkages) को विकेन्द्रीकरण करके (disaggregation) अध्ययन करते हैं;

(c) हम यह अध्ययन करते है कि किस प्रकार से यातायात की मितव्ययिता से स्थानीयकरण की अमित्व्ययिताओं को कम करते हैं तथा स्थानीयकरण की अमित्वयिताओं को कैसे स्थानीयकरण की मित्व्ययिताओं से कम करते हैं;

(d) हम यह अध्ययन करते है कि किस प्रकार से अगतिशीलतायें विशिष्टिकरण व्यापार को जन्म देती है तथा किस प्रकार से व्यापार पर प्रतिबन्ध गतिशीलताओं को जन्म देते हैं तथा किस प्रकार से अंचलक्षेत्रों में साधन, मानवशक्ति, वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी व मुद्रा आदि का प्रवाह होता है व इनसे कैसे अन्तर-क्षेत्रीय विकास पर प्रभाव पड़ता है;

(e) हम यह अध्ययन करते है कि मूल्य निर्धारण में स्थान तत्वों का क्या प्रभाव होता है तथा

(f) अन्तर-आंचलिक विषमतायें कितनी है, क्यों है, व कैसे दूर की जायें।

अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र विशेषरूपेण उन्नत (tailor-made) अर्थशास्त्र है सामान्य बना बनाया (ready-made) अर्थशास्त्र नहीं है। अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र आंचलिक समस्याओं के निराकरण का अर्थशास्त्र है। अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र से लेकिन सभी क्षेत्रों, स्थानों कार्यो व व्यक्तियों की असमानतायें दूर नहीं हो जाती हैं।

अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र में हम यह अध्ययन करते हैं कि किस प्रकार से स्थानीय साधनों व जनशक्ति का अनुकूलतम प्रयोग करके एक अंचलक्षेत्र में अधिकतम सम्भव आत्मनिर्भरता लायी जा सकती है व उस अंचलक्षेत्र के निर्यात बढ़ाये जा सकते हैं। बढ़ते निर्यात पर ही क्षेत्रीय व अंचल क्षेत्रीय गुणक मे (regional multiplier) वृद्धि होती है। अंचलक्षेत्रीय में हम इस प्रकार से अध्ययन नहीं करते हैं कि एक अंचल का विकास करने में दूसरे का ध्यान न रखें। यह संकुचित क्षेत्रीयता का शास्त्र नहीं है। इस शास्त्र में यह अध्ययन किया जाता है कि किस प्रकार से Value adding process यानी मूल्य सृजन प्रक्रिया से अंचलक्षेत्र में "जीवन की गुणात्मक वृद्धि" हो। अंचल क्षेत्र अर्थशास्त्र में हम निवेश, रोजगार निर्यात-आयात, उपभोग, पूंजी निर्माण, आय सृजन, क्षेत्रीय (sectoral) मिश्रण, आदि विषयों को अंचल क्षेत्र के सम्बन्ध में अध्ययन करते हैं। इस विषय की अब अपनी गणितीय रीतियाँ हैं (जिन पर अगले यूनिट्स कोर्स के हैं) अंत में हम कह सकते हैं कि Regional Economics is what regional economists do or write, जो अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्री कहते या करते हैं वह ही अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र है।

1.3 अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र व अंचलक्षेत्रीय समस्यायें Regional Economics and Regional Problems.

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है "Regional Economics is regional grievances redressal economics, अर्थात अंचल अर्थशास्त्र, अंचलक्षेत्र की समस्याओं के निराकरण का अर्थशास्त्र है। न केवल विकास के प्रश्न वरन ये सभी समस्यायें जैसे क्षेत्रीय आवास या पर्यावरण सुधार भी इस विषय के अध्ययन विषय हो सकते हैं। एक प्रमुख विषय वस्तु "देश व अंचलक्षेत्र या राज्य" तथा "अन्तरराज्यीय व अन्तर-अंचलक्षेत्रिय" निराकरणों में समन्वय व सहयोग बनाना भी है।

इस विषय में homogeneity (एकरूपता) nodality (केन्द्र बिन्दु) तथा Programming (नियोजन) मुख्य अध्ययन बिन्दु हैं।

एकरूपता homogenity : अधिकतर अंचलक्षेत्रों को प्रशासनिक आधार पर पृथक किया जाता है जैसे कि ब्लाक, जिला, कमिश्नरी या राज्य। अनेक क्षेत्रीय-अर्थशास्त्री तो यह चाहेंगे कि इसका आधार कुछ और हो। उदाहरणतय: एक खननक्षेत्र, वनक्षेत्र, फसल व समरूप मौसम क्षेत्र, नदी घाटी योजना क्षेत्र को पृथक अंचल क्षेत्र माना जा सकता है। भारत में तो राज्यों की राजनैतिक या प्रशासनिक सीमायें ही अंचलक्षेत्र निर्धारित करती हैं।

केन्द्रबिन्दु Nodality : अलग-अलग अंचलक्षेत्र एक दूसरे से भिन्न होते हैं (heterogeneous) एकरूपता तो अंचलक्षेत्र के अन्दर होती है । अलग-अलग अंचल क्षेत्रों में कतिपय नोड्स विकसित हो जाते हैं। ये प्रभावशाली शहर या बड़े कस्बे होते हैं । यहाँ पर उत्पादन, वितरण व व्यापार की क्रियायें केन्द्रित होती है। ये बिन्दु (Nucleus or Nuclei) वस्तुओं, सेवाओं, जनशक्ति, पूंजी, आदि को आकर्षित करके प्राप्त करते हैं तथा अन्दरूनी क्षेत्रों (hinter land) में भेजते भी हैं। हर नोड्स का अपने प्रभाव क्षेत्र का एक गोल दायरा होता है।

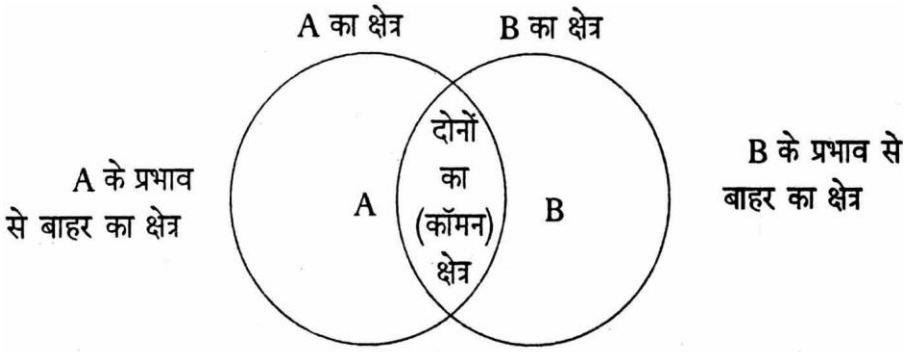

रेखाचित्र 1.1

"कामन" क्षेत्र के व्यक्ति दोनों बिन्दुओं के प्रति तटस्थ होते हैं। जितना बड़ा व प्रभावशाली नोड होगा उतना ही उसके प्रवाह (Flows) दोनों तरफ से (आने वाले व जाने वाले) गहन व महत्वपूर्ण होगें। इसके बारे में दो बाते ध्यान देने योग्य हैं

1. अगर नोड से किसी छोटी आबादी के केन्द्र की तरफ प्रवाह गहन हैं तो नोड "स्वतन्त्र" Independent है।

2. अगर प्रवाह किसी बड़ी आबादी की तरफ ज्यादा हैं तो नोड परतन्त्र या मातहत है (Subordinate) (I)

नोड्स के बीच में सहसम्बन्ध होते हैं तथा इन्हीं के आधार पर अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र में Gravity Models या आकर्षण मॉडल बनाये गये जिनके अन्दर गतिशीलता तथा प्रवास के प्रश्न अध्ययन किये जाते हैं। अलग-अलग नोड्स की (hierarchy or Transitivity) दर्जा शृंखला होती है, अर्थात् उच्चतम, उच्च, मध्य, निम्न, निम्नतम आबादियों के व आर्थिक महत्व के केन्द्र होते हैं।

1.4 आर्थिक विकास मे स्थानक्षेत्रीय (Spacial) तत्वों का महत्व : सहसम्बन्ध

अर्थशास्त्र सीमित साधनों से असीमित आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का शास्त्र है जो यह अध्ययन करता है कि किस प्रकार से विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं की सापेक्षिक न्यूनतायें मूल्य निर्धारित करती हैं। उत्पादन, विनिमय, वितरण व उपयोग की क्रियायें, जो जाहिर है स्थान-विशेष (Location specific) होती हैं सामान्य अर्थशास्त्र व अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र की विषय सामग्री हैं। उपभोक्ता जो अधिक चाहते हैं उसे ही उत्पादनकर्ता प्राथमिक आधार पर उत्पादित करते हैं। (The 'strong order' choice of consumers are translated in the 'first' preference allocations by the producers).

आर्थिक गतिविधियाँ अन्तरिक्ष में तो नहीं होती हैं सभी धरातल पर होती हैं (Economics activities do not take place in ethereal region but on the space) परन्तु इसके लिए संकीर्ण क्षेत्रवाद को नहीं पनपाया जा सकता है। समाजवादी अर्थशास्त्री ज्यादातर यहीं मानते रहे कि क्षेत्रीय व अंचल-क्षेत्रीय असमानतायें मात्र नियोजन से ही दूर हो सकती हैं परन्तु समाजवाद के धाराशायी होने पर अब इन्हें स्वतन्त्र बाजार पद्धति तथा सुझावात्मक नियोजन से ही ठीक करना होगा। राज्य यह कार्य सार्वजनिक क्षेत्र की मदद से भी कर सकता है। सभी क्षेत्र व अंचल क्षेत्रों में उपभोक्ता अपने संतुष्टि (use-value) तथा उपभोक्ता अपने मूल्य (exchange-value) बढ़ाना चाहते हैं। सभी के बीच में कड़ी प्रतियोगिता होती है जिसमें यद्यपि कतिपय अपव्यय हानियाँ (Wastes) हैं तो सक्षमतायें भी बढ़ती हैं।

अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र की सर्वाधिक महत्व की बात यह है कि उद्योगों व आर्थिक क्रियाओं के स्थानीयकरण, यातायात व प्रवास से सक्षमतायें बढ़ें। इसके लिए यह भी जरूरी है कि भू-प्रयोग संरचना (Land-use pattern) भी अनुकूलतम हो तथा राज्य इसे अपने अधिकार में रख कर दिशा निर्देशों का पालन करायें।

बहुधा ऐसा होता है कि कुछ अंचल क्षेत्र उतने साधन सम्पन्न नहीं होते, उनमें सिरोपरी सुविधायें (overhead facilities in socio-economic infra-structure) या आर्थिक-सामाजिक सेवायें नहीं होती हैं, व उनमें निवेश नहीं आता। इसलिए वहाँ के व्यक्ति भी कम आय अर्जित करते हैं तथा उनकी क्रय शक्ति भी कम रहती है। पिछड़े अंचल क्षेत्रों में आर्थिक रूप से पिछड़े व्यक्ति (जैसे भारत में जनजाति के लोग) भी रहते हैं (Vestigial region). इन

सबके विकास के लिए क्षेत्रीय (sectoral) तथा अंचलक्षेत्रीय (regional) नियोजन जरूरी हो जाता है।

राज्य अनेक रियायतें व सहायतायें (Concessions, remissions and subsidies) देता है। करो में कमी की जाती हैं तथा सार्वजनिक व्यय यहाँ अधिक कर दिया जाता है।

जब तक कि यह असंभव न हो, यह जरूरी होता है कि अंचलक्षेत्र मूलभूत आवश्यकताओं की वस्तुओं में यथा-संभव आत्मनिर्भर हो। परंतु यह याद रखना होगा कि व्यापार का आधार विशिष्टीकरण (specialisation) होता है न कि पूर्ण आत्मनिर्भरता (autarky) जो कि असंभव है। अनाज, पानी व कई अन्य चीजें है जिन्हें दूर-दूर से मंगाना अमितव्ययी होता है।

उत्पादनकर्ता अपने-अपने उद्योग या आर्थिक क्रियाओं को स्थानों के बीच इस तरह से बाँटते है कि उन्हें अंचल क्षेत्रीय एकाधिकार या अल्पाधिकार या आर्थिक प्रभुत्व प्राप्त हो। वे यह भी चाहते हैं कि मितव्ययितायें, अमितव्ययिताओं से अधिक हों। हर स्थान व क्षेत्र के अनुसार आर्थिक इकाइयों के न्यूनतम लाभदायक (Critical minimum size or minimum threshold size) व अनुकूलतम आकार (Optimum size) होते हैं। अंचलक्षेत्रीय नियोजन में इन बातों का नियोजकों को विशेष ध्यान रखना पड़ता है। नियोजक चाहते है कि अंचलक्षेत्रीय निवेशों की वास्तविक (real costs), अवसर (opportunity costs), तथा मौद्रिक (monetary) लागतें न्यूनतम व सभी प्रकार के लाभ अधिकतम हों, और अन्ततः सभी क्षेत्रों (sectors) अंचलों (regions and zones) व वर्गो (groups of people) में संतुलित तथा सामाजिक-आर्थिक रूप से स्वीकार्य विकास हो।

अंचलक्षेत्रीय विकास में कई तत्व अवश्यम्भावी प्रकृति के (deterministic) होते हैं जैसे कोयला व लोहा खनन क्षेत्र में ही इन्हें निकाला जा सकता है अन्य स्थानों पर नहीं निकाला जा सकता है। सम्भाव प्रकृति की स्थिति में (probabilistic) मनुष्य अपनी युक्तियों व मेहनत से अनेक आर्थिक क्रियायें शुरू कर सकता है। साधन, संसाधन व तकनीक से अंचलक्षेत्र व देश एक साथ विकसित हो सकते हैं बशर्ते कि संकीर्ण क्षेत्रीयता न अपनायी गयी हो। (space development sliategy can be a drag or a boon, depending entirely whether It is collusive and parochial or cooperative and complementary) इन्हीं विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आज कल बहुस्तरीय (Multi-level) विकेन्द्रीकृत (decentralised) स्तर पर जिला व ब्लाक स्तर पर नियोजन होने लगा है। हम अब समग्र व निचले स्तर क्षेत्रों (Systems and Sub-systems) का विकास करते हैं। जब अर्थव्यवस्था पिछड़ी अवस्था में होती है तब क्षेत्रों व प्रदेशों के विकास में (deteministic) तत्वों का अधिक प्रभाव रहता है। कृषि व प्राथमिक क्षेत्रों के उत्पाद भूख मिटाते हैं तथा आधारभूत होते हैं परन्तु उनसे बहुत उच्च आय सृजित नहीं हो पाती जैसे कि उद्योगों से होती है।

किसी भी अंचल क्षेत्र में विकास इस बात पर भी निर्भर रहता है कि वहाँ कितने विकास केन्द्र (growth centres) तथा विकास स्तम्भ (growth poles) हैं तथा अंचलक्षेत्रीय

आर्थिक क्रियाओं की मात्रा व संरचना से ही विकास का स्तर निर्धारित होता है। सार्वजनिक निवेश उन क्षेत्रों में होता है जहाँ "सामाजिक सीमान्त उपादेयता" (social marginal productivity) निजी सीमान्त लाभ (Private marginal returns) से अधिक होती है। निजी निवेश में निजी लाभ की अधिकता महत्वपूर्ण होती है। निवेश ऐसे होना चाहिए कि हर अंचल क्षेत्र में साधनों का समुचित उपयोग हो तथा अधिकतम मूल्य सृजन तथा जोड़ने का कार्य (Value-adding) हो।

ह्यूज तथा बूथ का कथन है कि अंचल क्षेत्रीय क्रियायें तुलनात्मक लाभ के सिद्धान्त पर आधारित रहती हैं और वे इस प्रकार की होती है कि क्षेत्रीय अन्तर बढ़ते ही जाते हैं (Centripetal tendencies). इसके विपरीत मन्ना, परलॉफ, मिर्डाल, हिर्षमेन, विलियमसन, अलोन्जो ओर अनेक अन्य अर्थशास्त्री कहते हैं कि दीर्घकाल में अन्तर कम होगें (divergences will be reduced; convergence in incomes will be promoted; there will be promoted; there will be centrifugal tendencies)

एक अंचल क्षेत्र जितना अधिक उत्पादन करेगा तथा उसमें लागत सक्षमता प्राप्त करेगा उतना ही वह निर्यात कर पायेगा, और निर्यात की क्षमता पर ही आयात क्षमता निर्भर है। उत्पादन व निर्यात से ही कमाई होती है व क्रय शक्ति हाथ आती है तथा उसी से ही तो अन्य वस्तुओं व सेवायें अन्य अंचल क्षेत्रों से मंगाई जाती हैं। इसीलिए गरीब पिछड़े क्षेत्रों के लोगों को क्रय शक्ति प्रदान कराने के लिए अनुदान, ऋण व सहायतायें दी जाती है। साधारणत: देश व अंचल क्षेत्रों का विकास एक ही दिशा में होता है या होना चाहिए परन्तु अनेक अन्य स्थितियाँ भी हो सकती हैं।

देश	**प्रदेश/अंचलक्षेत्र**
1. विकास	1. अवनति
2. विकास	2. स्थैगिकता
3. विकास	3. विकास
4. स्थैगिकता	4. विकास
5. स्थैगिकता	5. स्थैगिकता
6. स्थैगिकता	6. अवनति
7. अवनति	7. अवनति
8. अवनति	8. स्थैगिकता
9. अवनति	9. विकास

अलग-अलग आर्थिक चल-घटकों (Variables) के मामले में अलग-अलग राज्यों का अलग-अलग पदक्रम (rank order) रहता है। किन्हीं मामलों में कोई एक राज्य प्रथम स्थान पर होता है तो अन्य मामलों में कोई और। अन्तत: उन्नत राज्यों के rank order या पदक्रम ऊँचे इतने अधिक मामलों में रहते है कि अन्तर-राज्यीय तालिका में उन्नत राज्य ऊपर व पिछड़े राज्य नीचे आ जाते हैं। इन्हीं विश्लेषणों के आधार पर हम यह निर्णय ले पाते है कि पिछड़े राज्यों में क्या और कितना करना है। एक राज्य के उपप्रदेशों या अंचल क्षेत्रों के बारे में भी इसी

तरह किया जा सकता है ताकि अंचलक्षेत्रीय अन्तर (regional disparities) कम हों। आर्थिक जगत की यह प्रमुख बात कि "साम्य लाने वाले" तथा "असाम्य पैदा करने वाले" तत्व एक साथ काम करते हैं, अंचल क्षेत्रीय नियोजन को अत्यन्त प्रावैगिक व कठिन बनाते हैं।

1.5 अंचलक्षेत्रीय क्रियाओं को निर्धारित करने वाले घटक व तत्व

प्राकृतिक साधन : प्राकृतिक साधन (खनन योग्य धातुयें, वन सम्पदा, 'कृषि योग्य भूमि, जल उपलब्धि, जलवायु) किसी भी अंचलक्षेत्र की आर्थिक क्रियाओं की प्रकृति निर्धारित करते हैं। प्राकृतिक साधन अनेक अर्थों में आर्थिक विकास प्रक्रिया को deterministic बना देते हैं। आर्थिक साधन अगर अधिक तथा अनेक प्रकार के हों तो विकास की सम्भावनायें प्रबल होती हैं तथा विकास भी चहुंमुखी होता है। परन्तु प्राकृतिक साधन "जरूरी तो है लेकिन पर्याप्त" नहीं है। (Rich natural resources are a necessary condition for economic development but are not sufficient) जर्मनी ने आर्थिक विकास संसाधन सम्पन्नता के कारण किया है जबकि जापान व कोरिया में प्राकृतिक साधनों की कमी के बावजूद भी आर्थिक विकास हुआ। अफ्रीका के अनेक देश तथा भारत के (या किसी भी देश के) अनेक साधन सम्पन्न अंचल क्षेत्र साधनों की प्रचुरता के बगैर भी पिछड़े रहते हैं। और "हरे रेगिस्तानों" में भी गरीब लोग रहते हैं। साधनों के संकुचित प्रयोग से विशिष्टीकरण पनपता है और व्यापक प्रयोग से बहु-उत्पाद प्रणाली पनपती है। अलग-अलग अंचल क्षेत्र अपने साधनों, मेहनती व कुशल श्रम की किस्म, उन्नत व प्रचुर पूंजी व तकनीक के अनुसार क्रियायें पनपाते हैं और साधन क्षय होने पर अवनति की ओर चले जाते हैं।

जनशक्ति : जब अन्य बातें समान हों तो अंचलक्षेत्रीय क्रियाओं में अन्तरों को जनशक्ति की गुणात्मक किस्म से जोड़ा जा सकता है। यह स्वीकार करने की बात है कि किन्हीं प्रदेशों व जातियों के लोग अधिक मेहनती, नवप्रवर्तक, कुशाग्र, प्रवास करने में न हिचकिचाने वाले, तथा महत्वाकांक्षी होते हैं। भारत के सन्दर्भ में यह बात सिख, पंजाबी, सिंधी या मारवाड़ियों के बारे में कही जा सकती है। यूरोप के लोगों ने अफ्रीका के लोगों की तुलना में अधिक उन्नति कीं। यहाँ पर जातीय (racial) आधार पर आर्थिक विकास की निर्भरता की बात नहीं की जा रही है परन्तु इस बात को आंशिक रूप से स्वीकार भी करना होगा। साथ ही यह भी स्वीकार करना जरूरी है कि अगर समान अवसर मिलें तो किसी भी जाति, प्रजाति, धर्म या वर्ग के व्यक्ति समान रूप से उन्नत हो सकते हैं। जिन अंचल क्षेत्रों में विकासोन्मुख व्यक्ति अधिक हैं वे अंचल क्षेत्र अधिक विकसित हो जाते हैं।

पूंजी संचय या हस्तान्तरण : पूंजी, जो कि उत्पादन का उत्पादित साधन है, विकास का 'इंजन' है, अर्थात, प्रमुख अग्रणी घटक है। बेरोजगारी व साधनों के कम उपयोग का प्रमुख कारण पूंजी की कमी ही है। देश, क्षेत्र (sector) तथा अंचल क्षेत्रों के विकास के लिए वास्तविक (real) पूंजी की उपलब्धता जरूरी है। वित्तीय पूंजी तो वास्तविक पूंजी संचय की निमित्त मात्र है। वास्तविक पूंजी, वास्तविक बचतों व आधिक्यों पर निर्भर है और यह आधिक्य वास्तविक उत्पादन में से वास्तविक उपभोग घटाने पर प्राप्त होता है। जब पूंजी का प्रयोग अधिक से

अधिक वास्तविक उत्पादक कार्यो (Positive sum activities) में किया जाता है तो देश का वास्तविक विकास होता है सेवा क्षेत्र बहुत जरूरी है और उसमें मूल्य सृजन (value added) होता है। उससे आय भी होती है। उसके उन्नत होने से उत्पादन क्षेत्र भी प्रोत्साहित होता है परंतु प्राथमिक व द्वितीयक क्षेत्र के वास्तविक उत्पादन(materialistic output) का महत्व अधिक है पिछड़े क्षेत्रों व अंचल क्षेत्रों के विकास के लिए स्व-सृजित पूंजी से विकास करना दीर्ध कालीन लक्ष्य व अनिवार्यता है परन्तु अल्प काल में बाहर से पूंजी लाना (infusion of money from outside) अधिक जरूरी है।

सिरोयरी सुविधायें : अंचल क्षेत्रों में, अधिकांशतया, आर्थिक-सामाजिक सुविधाओं की कमी के कारण ही प्रत्यक्ष रूप से उत्पादक क्रियाओं में निवेश नहीं हो पाता है। उन्नत व पर्याप्त यातायात, संचार, बैकिंग, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा ट्रेनिंग सुविधाओं के होने से "बाह्य आर्थिक व सामाजिक मित्व्ययिताओं" का सृजन होता है। पानी (सिंचाई) की उपलब्धता तो सभी आधुनिक कृषि आदाओं के प्रयोग के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है। (Water is the proxy of all modern inputs in agriculture) और बिजली की उपलब्धि से ही कृषि, उद्योग व तृतीयक क्षेत्रों का किसी अंचल क्षेत्र में विकास होता है। यातायात व स्थानीयकरण की मित्व्ययिताओं का संतुलन अंचल क्षेत्रीय क्रियायें निर्धारित करता है। (Transport discconomies are overcome through locational economies and locational diseconomies are overcome through transport economies). अगर किसी स्थान पर सामग्री ले जाना दुष्कर हो तो उत्पाद स-क्षमता प्राप्त के लिए उद्योग या आर्थिक क्रियाओं का केन्द्रीकरण जरूरी होता है। अगर किसी स्थान पर उद्योगों का स्थानीयकरण दुष्कर व अलाभप्रद है तो वहाँ यातायात विकसित करके व्यापार करना तथा किसी एक क्रिया में विशिष्टीकरण पनपाना उचित होता है।

उद्योगों की प्रकृति : कृषि क्रियायें भू-प्रभावित (Land-based) होती हैं। कृषि वस्तुओं पर आधारित या खनिजों पर आधारित उद्योग तो उन्हीं अंचलक्षेत्रों में स्थापित होते है। जहाँ कि कच्चा माल पाया जाता है। साधन विहीन या खराब मिट्टी-जलवायु क्षेत्रों में Mon-culture या किसी एक प्रकार का उत्पादन होता है। साधनों पर आधारित क्रियाओं के कारण अगली व पिछली कडियॉ (forward and backward linkages) पनपती हैं तथा अंचलक्षेत्र में आर्थिक क्रियाओं की गहनता बढ़ाती हैं। शुरू की क्रियायें 'तुलनात्मक लाभ' पर आधारित होती हैं। क्रियाओं का केन्द्रीयकरण बढ़ता है और बाद में अन्दरूनी प्रभाव क्षेत्रों (hinter land) का विकास होता है।

राज्य का हस्तक्षेप व प्रत्यक्षकार्य : राज्य चाहे तो पिछड़े क्षेत्रों को काफी विकसित कर सकता हें। सिरोयरी सुविधाओं तथा प्रत्यक्ष रूप से उत्पादक क्रियाओं में बहुत ज्यादा निवेश - करके वह किसी भी अंचल क्षेत्र का कायाकल्प कर सकता है परन्तु एक गरीब देश में तो सभी या अधिकांश अंचल क्षेत्र गरीब होते हैं और सभी को विकसित करना मुश्किल होता है। वास्तविक साधन व कड़ी मेहनत से ही देश, क्षेत्र, परिक्षेत्र व अंचलक्षेत्र विकसित होते हैं। राज्य की मदद से ही उत्पादन का पैमाना (scale of operation) तथा उत्पादन का क्षेत्र (scope

of operation) विस्तृत होते हैं। पिछड़े क्षेत्रों में "सहायता कार्य" (relief work) द्वारा विकास नहीं होता। भ्रष्ट सरकार, अफसर तथा समाज में पिछड़े वर्गो व पिछड़े अंचलक्षेत्रों के विकास के लिए निर्धारित राशियों से निहित-स्वार्थ वाले व्यक्ति ही लाभान्वित होते हैं। विकास के कार्यो के लिए उत्तम चरित्रवान समाज भी जरूरी है। अंचल क्षेत्रीय विकास के लिए शुरू में वाह्य(exogenous factor) तथा बाद में आन्तरिक घटक (endogenous) मददगार होते हैं। अंचल क्षेत्रीय विकास राज्य के हस्तक्षेप के बगैर धीमा (evolutionary) होगा और उचित मदद से तीव्र (revolutionary) हो सकता है। परन्तु सभी हालतों में अंचल क्षेत्रीय विकास के लक्ष्य राष्ट्रीय विकास की व्यूह रचना के अन्दर ही होने होगें।

1.6. सारांश

हाल के वर्षो में "अंचल क्षेत्रीय" शास्त्र का विकास हुआ और अर्थशास्त्र, भूगोल, समाजशास्त्र तथा जनांकिकीशास्त्र से मुख्य योगदान किये गये। अभी भी समन्वय की कमी है और जहाँ भूगोलवेत्ता मुख्यत: धरातलीय क्षेत्र की बात करते हैं व संसाधन ब्यौरा लेते हैं, अर्थशास्त्री "नियोजन अंचलक्षेत्र" पर अधिक जोर देते हैं तथा उपभोग, उत्पादन, बचत, पूंजीनिर्माण व निवेश के अर्थशास्त्र पर अधिक ध्यान देते हैं। समाजशास्त्री पुराने व वर्तमान (anthropological) ढांचे पर अधिक ध्यान देते हैं। जनांकिकीशास्त्री जन्मदर, मृत्युदर, स्वास्थ्य प्रश्न व प्रवास पर अधिक ध्यान देते हैं।

अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र में मुख्यत: आर्थिक क्रियाओं के स्थानीयकरण, यातायात की मित्व्ययिताओं व प्रवास के प्रश्न मुख्यत: अध्ययन किये जाते रहे हैं। आजकल स्थानीयकरण का पिंडी भू त होना (agglomeration) विकास ध्रुव (growth centres) का विकसित होना, औद्योगिक समूहों व पर्यावरण संतुलन को बनाना, तथा प्रक्षेत्रीय (sectoral) विकास के अंचलक्षेत्रीय आयामों का अध्ययन करना तथा उनके आदा-प्रदा सम्बन्धों का अध्ययन करना तथा क्षेत्रीय विषमतायें दूर कर क्षेत्रीय कल्याण बढ़ाना अंचल क्षेत्रीय (regional) अर्थशास्त्र के मुख्य विषय हैं''।

एक अंचल क्षेत्र राष्ट्र नहीं है (region is not a nation within a nation) अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र एक उपशास्त्र ही है (Regional economics is a sub-discipline of Economics). अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र प्रक्षेत्रों की सम्बन्ध कड़ियों (forward and backward linkages) का अध्ययन करता है। हर क्षेत्र के लिए अलग से विशिष्ट अध्ययन करने होते हैं तथा विकास नीतियाँ अपनानी होती हैं। अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र में मूल्य सृजन वृद्धि तथा जीवन स्तर में गुणात्मक वृद्धि इस तरह से करने का लक्ष्य होता है कि अन्य क्षेत्रों को हानि न हो।

अध्ययन विषय का महत्व : मुख्यतय अंचल क्षेत्रों में जो एकरूपता (homogenety) व विभिन्नतायें (heterogeneity) होती है वह इस शास्त्र की विषय वस्तु है। एक असमरूपी अंचल क्षेत्र में कुछ केन्द्र बिन्दु (nodes) उभर आते हैं और उनमें प्रतियोगिता व पूरकता, अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र के विषय हैं। नोड्स के बीच सभी प्रवाह व प्रभाव अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र

में अध्ययन किये जाते है, उनकी दर्जा इखला (hierarchy) अध्ययन की जाती है व उनकी सापैक्षिक "स्वतन्त्रतायें" व ''निर्भरतायें" अध्ययन की जाती हैं।

देश की उन्नति जब तक लक्ष्यहीन है जब तक कि सभी प्रक्षेत्र (sectors) व्यक्तियों के समूह (different groups of persons) तथा अंचलक्षेत्र (regions) संतोषजनक रूप से विकसित न हों। अनुकूलतम भू-प्रयोग नीति, उत्पादन व मूल्य सृजन सभी अंचल क्षेत्रों में वितरित होना चाहिए। राज्य को अनुदानों व प्रत्यक्ष निवेश द्वारा पिछड़े क्षेत्रों को विकसित करना होता है। आर्थिक सुविधाओं का अनुकूलतम क्षेत्रीय वितरण आवश्यक है, यह विषय इस पर महत्व देता है।

अनेक अंचल क्षेत्रीय क्रियायें प्रकृति द्वारा निर्धारित होती हैं परन्तु अनेक क्रियायें स्वतन्त्र (footloose) होती हैं । दोनों प्रकार की क्रियाओं को विकसित करके अंचलक्षेत्रों का विकास होता है। अधिकांश अंचलक्षेत्र तुलनात्मक लाभ के सिद्धान्त के अनुसार विकसित होते हैं परन्तु अगर दीर्घकाल में आय में समानता (convergence) लानी हो तो विकेन्द्रीकृत विकास व्यूह रचना से विषमताओं (divergences) को दूर कर सकते हैं। पिछड़े अंचल क्षेत्रों व प्रक्षेत्रों के विकास से उत्पादन, रोजगार व क्रय शक्ति में वृद्धि सभी क्षेत्रों के विकास में सहायक होती है।

अंचल क्षेत्रीय क्रियाओं का आकार, प्रकार व संरचना प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता व प्रयोग पर निर्भर हैं। परंतु मेहनती, चरित्रवान व विकासोन्मुख जनशक्ति अधिक निर्णायक होती है। अधिक वित्तीय व वास्तविक पूंजी संचय से ही अधिक निवेश संभव होते हैं। अगर राज्य पिछड़े क्षेत्रों में सिरोयरी सुविधाओं में निवेश करें तथा प्रत्यक्ष उत्पादन क्रियायें हाथ में लें या प्रोत्साहित करें जो अंचल क्षेत्रीय क्रियाओं का क्षेत्र व्यापक होता है। अगर ऐसे उद्योग स्थापित हों जो अंचल क्षेत्र के संसाधन व जनशक्ति का अधिक प्रयोग करें तथा जिनकी आर्थिक कड़ियाँ ज्यादा हों, तो अंचल क्षेत्र में आय गुणक वृद्धि से विकास होगा। यह जरूरी है कि अंचल क्षेत्र में पैमाने की मित्व्ययितायें (economies of scale) तथा उत्पादन के क्षेत्र की मित्व्ययितायें (economies of scope) बढ़ें और अन्ततः स्वजनित endogamous तत्व विकास बढ़ाये ताकि वाह्य exogenous तत्व उतने महत्वपूर्ण न रहें।

1.7 शब्दावली

Region	:	अंचल क्षेत्र
Location	:	किसी उद्योग या कार्य (function) की स्थापना करना
Agglomeration	:	स्थानीयकरण पिंड। एक ही स्थान पर स्थानीयकरण
Growth Pole	:	विकास स्तम्भ। यह उस उद्योग को कहेंगे जिसकी अगली व पिछली आर्थिक सम्बन्ध कड़ियाँ अधिक हों, जो बड़े आकार का हो, और अनेक पूरक व सहायक आर्थिक क्रियाओं को जन्म दें । Growth pole is functional in nature.

Growth centre	:	वह स्थान है, जहाँ से विकास निर्गमित होता है। It is locational in nature
Homogeneous region	:	समरूपी अंचलक्षेत्र ।
Heterogenous region	:	असमानताओं से भरा अंचल क्षेत्र
Nodal Point	:	केन्द्र बिन्दु
Vestigial region	:	पिछड़ा अंचलक्षेत्र जिसमें आदिवासी रहते हैं।
Macro major region	:	बड़ा अंचलक्षेत्र, जैसे पूर्वी भारत, दक्षिणी भारत।
Macro region	:	राज्य अंचलक्षेत्र। जैसे म० प्र० का छत्तीसगढ़ क्षेत्र या उत्तर प्रदेश का तराई क्षेत्र।
Micro region	:	छोटा क्षेत्र, जिला स्तर
Micro miner region	:	बहुत छोटे अंचलक्षेत्र जैसे ब्लाक।

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. "अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र एक उपशास्त्र है, जिसका क्षेत्र व्यापक होता जा रहा है"। {परिभाषा देकर, महत्व समझाना है।}
2. "अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र की 'संकुचित' दृष्टिकोण व 'व्यापक' दृष्टिकोण की परिभाषायें दीजिए। अंचलक्षेत्रीय आर्थिक क्रियाओं की आकार, प्रकार व संरचना किन तत्वों पर निर्भर है।

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. International Economic Association : "Regional Policy for Ever? Readings No. 11.
2. Richartion, H.W. : "Reader : Regional Economics
3. Richartion, H.W. : "Regional and Urban Economics" Pitman.
4. Brown, A.J. and Burrows, E.W. : "Regional Economic Problem" George Allen and Unuiu
5. Shrivastava, O.S. : "Regional Economics Theory and theoretical Issues". Planmol Publications, New Delhi-2

इकाई 2
एकाधिकृत बाजार एवं मूल्य निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण

2.3 अपूर्ण प्रतियोगिता के प्रकार

2.4 एकाधिकृत प्रतियोगिता का अर्थ

2.5 एकाधिकृत प्रतियोगिता की विशेषताएँ

2.6 एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

2.6.1 एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत माँग वक्र

2.6.2 एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत पूर्ति वक्र

2.7 अल्पकाल में फर्म का सन्तुलन तथा कीमत निर्धारण

2.7.1 असामान्य लाभ की स्थिति

2.7.2 सामान्य लाभ की स्थिति

2.7.3 हानि की स्थिति

2.8 दीर्घकाल में फर्म का साम्य

2.9 एकाधिकृत प्रतियोगिता का आलोचनात्मक मूल्यांकन

2.10 पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकृत प्रतियोगिता में अन्तर

2.11 एकाधिकार और एकाधिकृत प्रतियोगिता में अन्तर

2.12 सारांश

2.13 शब्दावली

2.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.15 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप जान पायेंगे :

(i) अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ एवं कारण

(ii) एकाधिकृत प्रतियोगिता का अर्थ, विशेषताएं एवं इसके अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

(iii) अल्पकाल एवं दीर्घकाल में फर्म का साम्य

(iv) पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकृत प्रतियोगिता में अन्तर

(v) एकाधिकार और एकाधिकृत प्रतियोगिता में अन्तर

2.1 प्रस्तावना

अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह दशा होती है जो कि पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार बाजार दोनों की चरम स्थितियों के मध्य स्थित रहती है। सामान्यत: वास्तविक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार बाजार दोनों ही काल्पनिक दशाएं हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. एडवर्ड चेम्बरलेन ने पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार के बीच की अवस्थाओं की "एकाधिकृत प्रतियोगिता" के नाम से व्याख्या की है। तथा श्रीमति जोन राबिन्सन द्वारा इस स्थिति को "अपूर्ण प्रतियोगिता" के रूप में परिभाषित किया गया है।

अपूर्ण प्रतियोगिता से अभिप्राय बाजार की उस दशा से है जिसमें वस्तुओं के बीच इतना विभेद पाया जाता है कि वे एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न नहीं होती हैं और प्रत्येक उत्पादक का अपनी वस्तु के उत्पादन पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। लेकिन उत्पादक को बाजार में अपूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। इसी अवस्था को ही अपूर्ण प्रतियोगिता कहते हैं। उदाहरण के लिए भारत में साबुन के कुछ उत्पादक है, जो कि अलग-अलग प्रकार के साबुनों (लक्स, हमाम, लाइफबाय, ओ के., रेक्सोना, पीयरस, कैमे आदि) का उत्पादन करते हैं। इन विभित्र प्रकार के साबुनों के बीच गुणों में ज्यादा अन्तर नही होता है, केवल इनके अलग-अलग ट्रेड मार्क हैं और बाजार में अलग-अलग नाम से ग्राहकों को बेचे जाते हैं। अर्थात विभिन्न प्रकार के साबुनों के बीच प्रतियोगिता है लेकिन पूर्ण नहीं है। क्योंकि साबुनों का उत्पादन तो बहुत है लेकिन इन साबुनों के उत्पादन के बीच भिन्नता पाई जाती है । जिससे कि वे अलग-अलग ब्रान्डों के साबुनों का उत्पादन करते हैं। एकाधिकृत प्रतियोगिता अपूर्ण प्रतियोगिता का न्यूनतम अपूर्ण रूप है। अर्थात अपूर्ण प्रतियोगिता वह होती है जिसमें एक व्यक्तिगत फर्म की वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार होती है।

(I) लर्नर के अनुसार : "अपूर्ण प्रतियोगिता तब होती है, जब फर्म अपनी वस्तु की गिरती हुई मांग रेखा का सामना करती है।"

(II) स्टोनियर तथा हेग के अनुसार : "अपूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम रेखा अपनी सम्पूर्ण लम्बाई तक नीचे की ओर गिरती है लेकिन गिरने की दरों में अंतर हो सकता है।"

2.2 अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण

(I) अपूर्ण प्रतियोगिता का प्रमुख कारण वस्तु व सेवा विभेद होता है। गेहूँ तो किसी उत्पादनकर्ता के नाम से नहीं जाना जाता है परन्तु टी. वी. अलग-अलग नाम व फर्मो के नाम से जाना जाता है।

(II) क्रेताओं एवं विक्रेताओं की संख्या बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में कम होने से क्रेता एवं विक्रेता स्वयं वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकते हैं।

(III) बाजार में, क्रेताओं एवं विक्रेताओं की संख्या अधिक होने पर भी दोनों को बाजार की पूर्ण जानकारी नहीं होने के कारण वस्तुओं की विभिन्न कीमतें हो सकती है तथा बाजार में प्रतियोगिता अपूर्ण होगी ।

(IV) फर्मों द्वारा बाजार में बेची जाने वाली वस्तुओं में यदि मांग लोच में अन्तर होता है तो उनका बाजार में अलग-अलग मूल्य होगा और बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता होगी।

(V) यातायात व्यय भी बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता को जन्म देता है।

2.3 अपूर्ण प्रतियोगिता के प्रकार

(I) अल्पाधिकार

(II) द्वियाधिकार

(III) एकाधिकृत प्रतियोगिता

(I) अल्पाधिकार (Oligopoly) जब किसी बाजार में वस्तु की पूर्ति कुछ फार्मों द्वारा की जाती है उसे अल्पाधिकार बाजार कहते है। इस बाजार में फर्मों की संख्या कम होने से वस्तुओं की कीमत के प्रति क्रेता सजग रहते हैं। फार्मो वस्तुओं की कीमत तथा उतादन की नीति के संबंध में अन्तर्सम्बन्ध रखती हैं।

(II) द्वियाधिकार (Dupology) इस बाजार में केवल दो ही फार्मों वस्तु का उत्पादन करती हैं। वस्तु में समरूपता हो सकती है परन्तु यह सोचना ठीक होगा कि दूसरी फर्म पहली के याद में जब उत्पादन बाजार में आयेगी तो वस्तु भेद के साथ आयेगी। दोनों फार्मों बाजार का बाँटने के बजाय, प्रतियोगिता करती हैं। वस्तु व मूल्य भेद से प्रतियोगिता अपूर्ण रहती है। यदि दानों फार्मों मिलकर उत्पादन करना शुरू कर देती हैं तो द्वियाधिकार समाप्त होकर एकाधिकार की स्थिति हो जाती है।

(III) एकाधिकृत प्रतियोगिता बाजार (Monopolistic Cmpetition) बाजार की वह स्थिति जहाँ बाजार में बहुत सी फर्मों द्वारा वस्तु का उत्पादन किया जाता है और फार्मों द्वारा उत्पादित वस्तु के बीच नाम मात्र का विभेदीकरण जैसे माचिसों में हो एकाधिकृत बाजार की स्थिति कहलाती है।

2.4 एकाधिकृत प्रतियोगिता बाजार का अर्थ

एकाधिकृत बाजार, बाजार की वह दशा होती है जहाँ वस्तुओं के क्रेता एवं विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है। सभी विक्रेताओं के मध्य प्रतियोगिता होती है। लेकिन प्रतियोगिता अपूर्ण होती है। अधिक वस्तु विभेद एकाधिकृत बाजार का मूल आधार होता है। उत्पादक वस्तु की किस्म, रंग, आदि में भिन्नता रखकर वस्तुओं का विक्रय करता है। एकाधिकृत बाजार में फार्मों को प्रवेश की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है, लेकिन वस्तु विभेद के कारण पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की तुलना में थोड़ा कठिन होता है। वस्तु से लगाव बढ़ने पर वृद्धि होने पर लोच अनुपात से कम होती है। वस्तु की बिक्री में विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन योजनाओं एवं नीतियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

2.5 एकाधिकृत अपूर्ण बाजार की विशेषताएं

(I) फर्मो की संख्या सामान्यत: पूर्ण प्रतियोगिता से कम परन्तु अल्पाधिकार से अधिक होती है।

(II) उद्योग में फार्मों को प्रवेश एवं बहिर्गमन की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है।

(III) उद्योग में सभी कार्यरत फर्म बाजार के सदृश किन्तु स्थानापन्न वस्तुओं का विक्रय करती हैं।

(IV) वस्तुओं की माँग की लोच इकाई से कम लोचदार होती है। क्योंकि ब्रांड लगाव होता

(V) इस बाजार में फर्म एवं उद्योग अलग-अलग होते है। लेकिन फार्मों द्वार उत्पादित अपनी वस्तु पर फर्म का एकाधिकार होता है।

(VI) फर्मो द्वारा उत्पादित वस्तुओं के बीच वस्तु विभेद किया जाता है।

(VII) विज्ञापन व्यय एवं विक्रय सम्वर्द्धन नीतियों का वस्तु की विक्रय मात्रा वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

(VIII) गैर कीमत प्रतियोगिता इस बाजार में पाई जाती है।

(IX) क्रेता एक समय विशेष में विभिन्न विक्रेताओं द्वारा उत्पादित वस्तुओं में से किसी एक ही वस्तु को पसन्द करता है एवं उसका उपभोग करता है।

(X) विभिन्न फर्मो द्वारा उत्पादित वस्तुओं में प्रतिस्पर्द्धा पाई जाती है।

2.6 एकाधिकृत अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण

2.6.1 एकाधिकृत प्रतियोगिता के अन्तर्गत माँग वक्र

(अ) माँग रेखा नीचे की ओर गिरती हुई होती है - इस बाजार के अन्तर्गत फर्म की वस्तु की माँग रेखा अर्थात औसत आगम रेखा (AR) नीचे की ओर गिरती हुई होती है क्योंकि वस्तु को अधिक बेचने के लिए मूल्य को गिराना पड़ता है। पूर्ण प्रतियोगिता में एक ही मूल्य पर यह संभव है। अत: AR रेखा सीधी या Horizontal होती है। मांग बेलोचदार होती है परन्तु जहाँ Oligopoly में AR बहुत Steep होती है वहीं एकाधिकृत अपूर्ण प्रतियोगिता में यह Flatter परन्तु नीचे गिरती हुई होती है। एकाधिकारी अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में नीचे की ओर मांग रेखा के गिरने के दो कारण हैं।

(ब) सीमान्त आगम और औसत आगम रेखाएं - इस बाजार में (MR) सीमान्त आगम, औसत आगम (AR) की तुलना में कम रहता है। अर्थात सीमान्त आगम रेखा औसत आगम रेखा के नीचे रहती है। क्योंकि फर्म की अधिक इकाईयों को बेचने के लिए वस्तु के मूल्य में कमी करनी पड़ती है या यह कहा जाये कि अधिक विक्रय के लिए फर्म को वस्तु के मूल्य को कम करना पड़ता है। इसलिए अतिरिक्त इकाई (Unit) के विक्रय से प्राप्त आय (Marginal) पहले बेची गई इकाई से प्राप्त आय से कम होगी इसी कारण से सीमान्त आगम औसत आगम की तुलना में कम होगी। उपरोक्त कथन को निम्न अंकित रेखा चित्र 2.1 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

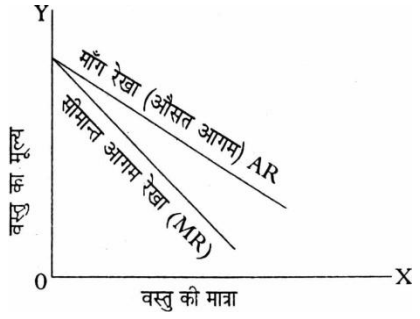

रेखाचित्र 2.1

2.6.2 एकाधिकृत प्रतियोगिता में लागत वक्र

इस बाजार के अन्तर्गत उद्योग (समूह) या सभी फर्मों की लागत रेखा को व्यक्त करना कठिन है कारण कि उपरोक्त सभी फर्मों द्वारा किया जाने वाला उत्पादन-रंग किस्म, मात्रा, डिजाइन आदि की हस्ती से भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरण कार्य में लगी हुई विभिन्न फर्मो द्वारा उत्पादित साबुन की पूर्ति जैसे- लाइफबाय, हमाम, रेक्सोना, केमे, ओके आदि अलग-अलग होगी। और इन सभी का पारस्परिक उत्पादन लागत या पूर्ति अनुपात निकालना कठिन है। व्याख्या करने के दृष्टिकोण से इस बाजार में उत्पादन कार्य में लगी सभी फर्मों की लागत को हम एक समान मान लेते है चाहे फर्मों की संख्या कुछ भी क्यों न हो। इस बाजार में लागत संबंधी धारणा की व्याख्या करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखते है।

(I) इस बाजार में सीमान्त रेखा (MT) बायें से दायें ऊपर की ओर उठती हुई होती है।

(II) फर्म के साम्य बिन्दु पर सीमान्त लागत रेखा, (MC Line) सीमान्त आगम (MR) रेखा को नीचे से काटती हुई ऊपर की ओर गुजरती है।

(III) वस्तु की अधिक इकाईयों का विक्रय करने के लिए फर्में विज्ञापन का सहारा लेती हैं। और विज्ञापन व्यय को वस्तु की उत्पादन लागत में सम्मिलित किया जाता है।

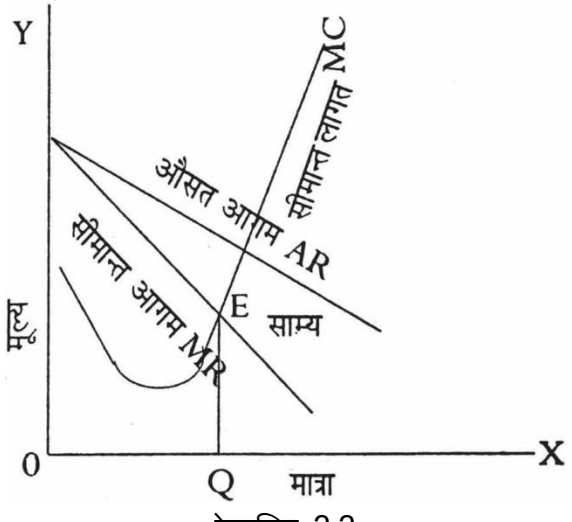

रेखाचित्र 2.2

उत्पत्ति का वृद्धि नियम शुरू में पूँजी की गहनता के कारण (Invisibilities) लागू होता है। बाद में अमितव्ययितायें, मितव्ययिताओं से अधिक होने से ह्यासमान नियम लागू होता है। अत: शुरू में सीमान्त लागतें गिरती है जिससे औसत लागत भी गिरती है। बाद में जब सीमान्त लागतें बढ़ती है तो औसत लागतें भी बढ़ती है (चित्र 2.3)। सीमान्त लागत वक्र, औसत लागत वक्र को AC के सबसे नीचे के बिन्दु Lowest Point of Inflection पर काटती है। जब AC=MC होगी, सीधी लाइन होगी।

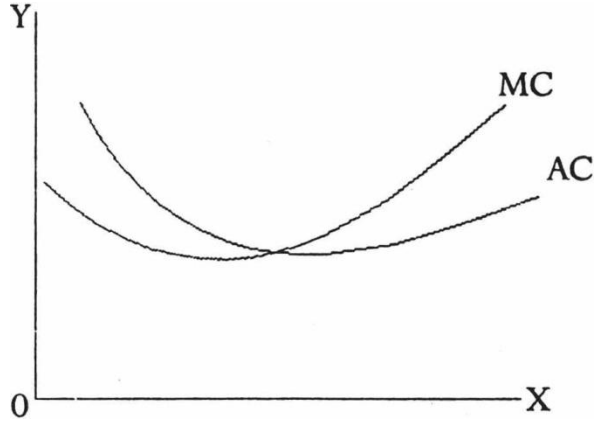

रेखा चित्र 2.3

2.7 अल्पकाल मे एकाधिकृत अपूर्ण प्रतियोगिता फर्म का सन्तुलन तथा कीमत निर्धारण

एकाधिकारी अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में प्रत्येक फर्म एकाधिकार बाजार की तरह अपने लाभों को अधिकतम करना चाहता है इसलिए इस बाजार में उत्पादन का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है, जिस बिन्दु पर वस्तु की सीमान्त लागत एवं सीमान्त आगम दोनों एक-दूसरे के बराबर होती हैं। और इस बिन्दु के पश्चात फर्म अपना उत्पादन विस्तार रोक देती है। इस बाजार में अधिक विक्रय के लिए फर्में विज्ञापन व्यय भी करती हैं। और फर्म इन विज्ञापन व्ययों को वस्तु की कीमत में से वसूल करती हैं। अत : फर्मो द्वारा प्राप्त शुद्ध आय को निम्न प्रकार ज्ञात किया जाता है-

शुद्ध आय = (वस्तु का मूल्य X उत्पादन की इकाईयाँ) - (उत्पादन लागत + विज्ञापन व्यय)

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि फर्में अल्पकाल में साम्य की स्थिति में तब होंगी जबकि वह सबसे अधिक लाभ कमाती हैं। उत्पादन लागत तथा विज्ञापन व्यय को शामिल करते हुए सीमान्त आगम = सीमान्त लागत (MR = MC) हों।

अल्पकाल वह समयावधि होती है जिसमें फर्में अपनी पूर्ति को माँग के अनुरूप समायोजित नहीं कर पाती हैं, इसलिए अल्पकाल में फर्मो की तीन अवस्थाएं पाई जाती है -

(I) असामान्य या अतिरिक्त लाभ प्राप्त करती हुई ।

(II) केवल सामान्य लाभ, लाभ प्राप्त करती हुई ।

(III)हानि की स्थिति में ।

अर्थात अल्पकाल की स्थिति में बाजार में कुछ फर्में असामान्य लाभ, कुछ फर्में सामान्य लाभ की स्थिति में तथा कुछ फर्में हानि की स्थिति में हो सकती हैं। इन तीनों स्थितियों की अलग-अलग व्याख्या रेखाचित्रों द्वारा की गई है -

2.7.1 असामान्य लाभ की स्थिति

अल्पकाल में फर्म असामान्य लाभ की स्थिति में उस समय होगी जब फर्म के साम्य बिन्दु पर फर्म की औसत आगम (AR), औसत लागत (AC), की तुलना में अधिक हो। इस स्थिति को रेखा चित्र संख्या 3 द्वारा दिखाया गया है । अर्थात (AR>AC).

रेखा चित्र 2.4 मे सीमान्त लागत रेखा (MC) सीमान्त आगम रेखा को E बिन्दु पर काटती है। E बिन्दु के स्तर पर फर्म का साम्य (सन्तुलन) बिन्दु होगा । और फर्म का इस स्तर

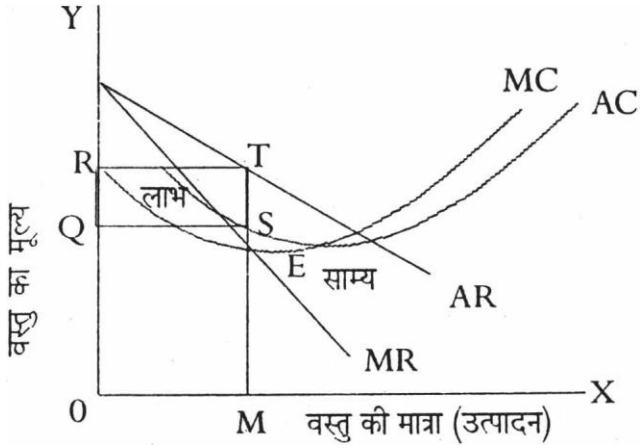

रेखाचित्र 2.4

पर OM के बराबर उत्पादन की मात्रा रहेगी । OM मात्रा के उत्पादन पर फर्म की वस्तु की कीमत MT या OR होगी क्योंकि AR ही मांग वक्र है तथा मूल्य औसत आय रेखा से प्राप्त होता है। सकल आय = O×AR बिन्दु अर्थात यह OM×MT तो Rectangle = ORMT. इस स्तर पर फर्म की औसत लागत MS या OQ के बराबर है। फर्म के साम्य बिन्दु पर औसत आगम ORTM तथा औसत लागत OQSM है। इस साम्य बिन्दु पर ORTM औसत आगम, OQMS औसत लागत की तुलना में RQST के बराबर ज्यादा है। अर्थात ST उत्पादन की प्रति इकाई पर असामान्य लाभ फर्म प्राप्त करती है। और फर्म का कुल लाभ QRST के क्षेत्रफल के बराबर है।

2.7.2 सामान्य लाभ की स्थिति

अल्पकाल में फर्म सामान्य लाभ की स्थिति में उस समय होगी जब फर्म के साम्य बिन्दु पर फर्म की औसत आगम (AR), और औसत लागत (AC) दोनों बराबर हैं। इस स्थिति में औसत लागत औसत आगम के बराबर होती है। ई = एसी = AR

इस स्थिति को रेखा चित्र संख्या 2.5 द्वारा व्यक्त किया गया है।

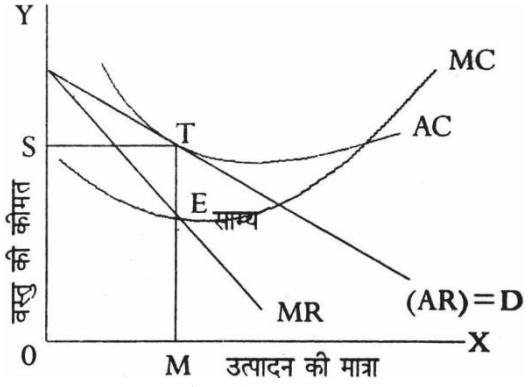

रेखाचित्र 2.5

रेखा चित्र 2.5 में सामान्य लाभ की स्थिति को व्यक्त किया गया है। फर्म के साम्य बिन्दु (E) पर उत्पादन OM है। इस बिन्दु पर फर्म की औसत आगम OS तथा औसत लागत MT है। अर्थात E बिन्दु पर फर्म की औसत आगम OS तथा औसत लागत MT दोनों बराबर हैं। (OS = MT) (AR = AC)

2.7.3 हानि की स्थिति

फर्म के साम्य बिन्दु पर यदि औसत लागत, औसत आगम की अपेक्षा अधिक है तो फर्म को हानि होगी। (AC>AR) उपरोक्त स्थिति को नीचे रेखाचित्र संख्या 5 द्वारा व्यक्त किया गया है।

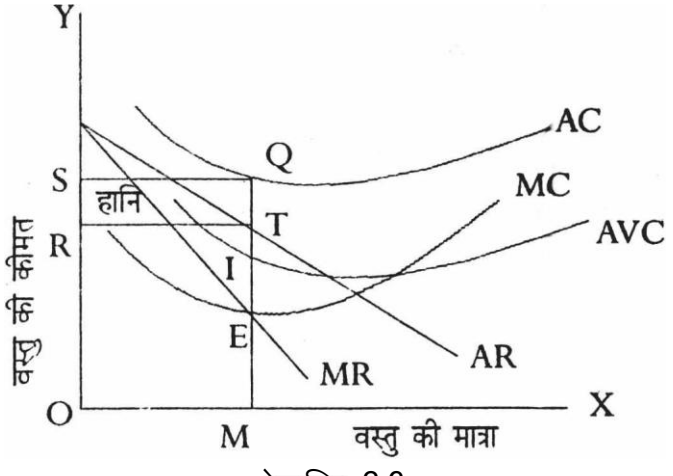

रेखाचित्र 2.6

रेखा चित्र 2.6 फर्म की हानि की दशा को दिखा रहा है। चित्र में फर्म के साम्य बिन्दु (E) पर फर्म की सीमांत लागत एवं सीमांत आगम MC = MR बराबर है इस स्थान पर MQ रेखा भी काटती है। और इस साम्य बिन्दु पर उत्पादन OM मात्रा है। उत्पादन के इस स्तर पर फर्म की औसत लागत AC(MQ) तथा औसत आगम AR या QR है। औसत आगम (AR) की तुलना में औसत लागत (AC)QT ज्यादा है। इसलिए फर्म को SRQT के बराबर हानि हो रही है। तथा हानि का कुल क्षेत्रफल SRQT के बराबर है। चूंकि वस्तु की कीमत या औसत

आगम (TM) औसत परिवर्तनशील (AVC) लागत से अधिक है इसलिए अल्पकाल में फर्म हानि होने पर भी उत्पादन जारी रखेगी ।

2.8 दीर्घकाल में फर्म का साम्य

दीर्घकाल वह समयावधि होती है जिसमें फर्म अपने उत्पादन की पूर्ति, मांग के अनुसार समायोजित कर लेती है। दीर्घकाल में फर्म आकार में परिवर्तन कर लेती है। तथा दीर्घकाल में स्थिर लागतें भी परिवर्तित की जा सकती हैं। इसलिए इस अवधि में फर्में असामान्य लाभ अर्जित नहीं कर सकती है। बाजार में नई फर्मों का प्रवेश हो जाता है माँग की आवश्यकतानुसार वस्तु की पूर्ति में कमी एवं वृद्धि करली जाती है।

दीर्घकाल में किसी भी फर्म को हानि भी नहीं हो सकती क्योंकि दीर्घकाल में लगातार हानि को फर्म वहन नहीं कर सकती और वह फर्म बाजार से बाहर हो जायेगी। जिससे वस्तु की पूर्ति और उत्पादन का स्तर कम हो जायेगा। वस्तु की पूर्ति कम होने पर वस्तु की कीमतों में वृद्धि होगी और फर्मों को पुन: सामान्य लाभ की स्थिति होगी।

दीर्घकाल में फर्में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त करता है। सामान्य लाभ उसी अवस्था में होगा जब फर्म की औसत आगम और औसत लागत दोनों बराबर होंगी। इसलिए दीर्घकाल में फर्म का साम्य उस स्थिति में होगा जबकि फर्म की निम्न स्थिति होगी।

कीमत (Price) = औसत आगम (AR) = औसत लागत (AC)

संक्षेप में -

(I) (MC = MR) सीमान्त लागत = सीमांत आगम

(II) (AC=AR) औसत लागत = औसत आगम

यदि (I) शर्त पूरी नहीं होती है तो फर्म को अधिकतम लाभ नहीं होगा और फर्म अपने उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन करेगी। तथा (II) शर्त पूरी नहीं होने पर फर्मों के प्रवेश एवं बहिर्गमन के कारण वस्तु के मूल्य एवं उत्पादन के स्तर में परिवर्तन आयेगा और फर्म का संतुलन भंग हो जायेगा। इसलिए दोनों शर्तों का पूरा होना जरूरी है। रेखा चित्र 2.7 में दीर्घकाल में फर्म के साम्य को दर्शाया गया है।

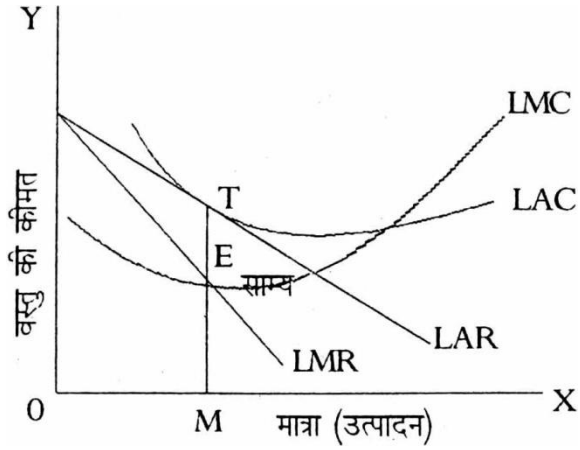

रेखाचित्र 2.7

फर्म का दीर्घकाल साम्य (D) बिन्दु पर है इस बिन्दु पर फर्म की दीर्घकालीन सीमान्त आगम दोनों बराबर हैं। इस साम्य दशा में वस्तु की कीमत (TM) पर वस्तु की लागत भी (TM) है। क्योंकि बिन्दु पर फर्म की दीर्घकालीन औसत आगम एवं औसत लागत दोनों बराबर हैं। अर्थात E = LAR = LAC है।

2.9 एकाधिकृत प्रतियोगिता का आलोचनात्मक मूल्यांकन

(I) फर्मों की लागतों में समरूपता की दोषपूर्ण मान्यता - इस बाजार में यह मानकर फर्म के साम्य की व्यवस्था की गई है कि सभी फर्मों की लागतों को समान मान लिया जाता है। प्रो. स्टिगलर ने इन मान्यताओं के विरूद्ध कहा है कि विभिन्न फर्मों की लागतों, माँगों तथा कीमतों में समरूपता और क्रेताओं को बाजार की पूर्ण जानकारी के कारण प्रत्येक फर्म, के लिए जो माँग रेखा है वह पूर्ण लोचदार बन जायेगा। और यह स्थिति बाजार की पूर्ण प्रतियोगिता की होगी न कि एकाधिकृत बाजार की जिसमें मांग रेखा नीचे को दायीं ओर गिरती हुई होती है। परन्तु प्रो. स्टिगलर की व्याख्या का अर्थ है कि विभिन्नता का जो चित्र उन्होंने अपने एकाधिकृत प्रतियोगिता सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए बनाया है उसको वे अपने सिद्धान्त में शामिल नहीं कर पाये इसका मुख्य कारण सब फर्मो की माँग और लागतों की समानता की मान्यता है।

(II) अधिक्य क्षमता संबंधी आलोचना - इस सिद्धान्त की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि इस बाजार में फर्में अधिक्य क्षमता से कार्य करती है। वे कभी-कभी कर सकती हैं।

(III) फर्मों की संख्या तथा वस्तु की मांग की लोच - जब फर्में बाजार में अधिक लाभ कमानती हैं तो इस लाभ को देखकर अन्य फर्में बाजार की ओर आकर्षित होंगी और बाजार में फर्म प्रवेश करेगी जिससे मिलती जुलती उत्पादन की मात्रा (पूर्ति) में वृद्धि होगी और वस्तुओं की कीमत में कमी आयेगी। परन्तु प्रो. काल्डोर का मानना है कि दीर्धकाल में जब नई फर्में प्रवेश करती हैं तो पुरानी वस्तुओं के मध्य नई वस्तुओं का आगमन होता है जिससे विभिन्न वस्तुएं एक-दूसरे के निकट आ जाती हैं। जिससे फर्मों की संख्या में वृद्धि होने पर वस्तुओं में प्रतिस्थापन की दर में वृद्धि हो जाती है। इससे वस्तु की मांग की लोच में भी वृद्धि होगी। लोच जितनी अधिक होगी वस्तुओं की कीमत और सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत में भी अंतर उतना ही कम होगा इसलिए बाजार में अपूर्णता की स्थिति भी उतनी ही कम होगी।

(IV) फर्मों की स्वतंत्रता की अवधारण - प्रो. चेम्बरलिन की यह मान्यता है कि इस बाजार में फर्मों का प्रवेश स्वतंत्र रूप से होता है परन्तु प्रो. काल्डोर ने इसकी आलोचना में कहा है कि फर्मों के स्वतंत्र प्रवेश की अवधारणा से तात्पर्य है कि "प्रत्येक उत्पादक यदि चाहे तो अन्य उत्पादकों के समान वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है" अर्थात इस अवधारणा में प्रो. चेम्बरलिन का कथन फर्मों का स्वतंत्र प्रवेश फर्मों की स्वतंत्रता एकाधिकृत प्रतियोगिता से मेल नहीं खाती है। क्योंकि प्रत्येक फर्म द्वारा अलग-अलग वस्तु का उत्पादन किया जाता है और वस्तु विभेद इस बाजार की प्रमुख मान्यता है।

(V) सीमान्त आगम की अवधारणा को कम महत्व - इस बाजार में प्रो. चेम्बरलिन के सिद्धान्त की आलोचना इस आधार पर भी की है कि क्योंकि प्रो चेम्बरलिन द्वारा सीमान्त आयु

को कम महत्व दिया है। यद्यपि यह सत्य है कि सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत में समानता प्रत्येक बाजार दशा में साम्य की आवश्यक शर्त है जबकि प्रतियोगिता बाजार में वस्तु की कीमत एवं सीमान्त आगम में कोई अंतर नहीं होता है तब ये दोनों एकाधिकृत बाजार की दशा में भिन्न हो जाती हैं। सीमान्त आगम सब कुछ चाहे न हो लेकिन कीमत से अलग तथा भिन्न धारणा के रूप में इसके आविष्कार ने एकाधिकृत प्रतियोगिता सिद्धान्त के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

(VI) समूह की धारणा गलत है - प्रो. चेम्बरलिन द्वारा इस बाजार में उद्योग के स्थान पर समूह शब्द का प्रयोग किया गया है जिसे प्रो. ट्रिफ्फिन द्वारा "समूह" की अवधारणा को गलत बताया है क्योंकि इन्होंने कहा है कि "एकाधिकृत बाजार का सिद्धान्त केवल फर्म के साम्य की व्याख्या कर सकता है। यह बाजार स्थानापन्नों को श्रृंखला में अन्तर की व्याख्या किये बिना समूह के साम्य की व्याख्या नहीं कर सकता।"

समूह तो होते हैं, जैसे टी वी की फर्मों का समूह। इनमें कोई एक "लीडर" के रूप में उभरता हैं। पुराने समय में डालडा वनस्पति जमा तेल इतना प्रसिद्ध था कि Hydrogenated Vegetable Oil को ही डालडा कहते थे। सभी को लीडर के उत्पाद के मूल्य को ध्यान में रखना होता है। यह टूसरी बात है कि "लीडर" बदल जाये।

उपरोक्त आलोचनाओं के उपरान्त भी प्रो. चेम्बरलिन द्वारा प्रतिपादित कीमत सिद्धान्त का अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान है। प्रो. चेम्बरलिन के आलोचकों ने भी इस सिद्धान्त के महत्व को स्वीकार किया है। क्योंकि इस सिद्धान्त में प्रतिष्ठित सिद्धान्तों के दो परस्पर पृथक वर्गों (पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार) से अलग रखकर व्याख्या की है। या दोनों वर्गों की व्याख्या में महत्वपूर्ण सुधार किया है। प्रो. चेम्बरलिन द्वारा दोनों बाजारों के मिश्रण के रूप में इस एकाधिकारात्मक बाजार के तत्वों के सम्मिश्रण के रूप में देखना और वस्तु विभेद के आधार पर बाजार सिद्धान्त की व्याख्या करना तथा विज्ञापन व्ययों (लागतों) को अपने बाजार सिद्धान्त में समायोजित करना अधिक व्यावहारिक एवं दोनों बाजारों (पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार) के सिद्धान्तों में एक महत्वपूर्ण सुधार है।

प्रो. स्टिगलर ने कहा है कि "आर्थिक जीवन का चित्र (वस्तु की विविधता तथा गैर समरूपता का चित्र) मूलभूत रूप से नया नहीं है, वस्तु नई है। प्रो. चेम्बरलिन की दृष्टि व्यवहारिक आर्थिक जीवन को देखने का एक स्पष्ट वैधानिक तरीका है। यह उपयुक्त तथा निष्पक्ष पर्यवेक्षक है और अधिक यथार्थ भी है।''

2.10 पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार प्रतियोगिता के अन्तर

(1) फर्मों की संख्या - पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्मों की संख्या बहुत अधिक होती है और फर्म कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा भाग उत्पादन करती है।

एकाधिकृत अपूर्ण बाजार में फर्मों की संख्या पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में कम होती है। फर्मों की संख्या बाजार की अपूर्णता पर निर्भर करती है। बाजार जितना अपूर्ण होगा फर्मों की संख्या उतनी ही कम होगी।

(2) मांग की लोच - पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के लिए वस्तु की मांग पूर्णत: लोचदार होती है (ep = ∞) जबकि एकाधिकृत बाजार में वस्तु की मांग कम होती है।

(3) फर्म का साम्य - पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की साम्य की स्थिति में वस्तु की कीमत = सीमान्त लागत (Price = MC) के बराबर होती है। जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में सीमान्त आगम, सीमान्त लागत (MR-MC) की तुलना में अधिक होती है।

(4) उत्पादन की मात्रा एवं मूल्य - पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन न्यूनतम औसत लागत पर होता है और अनुकूलतम मात्रा का उत्पादन किया जाता है तथा वस्तु की कीमत कम होती है। एकाधिकृत बाजार में वस्तु उत्पादन अनुकूलतम मात्रा से कम करके वस्तुओं की कीमत ऊँची रखी जाती है या जा सकती है।

(5) वस्तु की प्रकृति - पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में क्रेताओं की दृष्टि से विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित की गई वस्तु की मात्रा एवं किस्म एक-दूसरे के लिए पूर्ण स्थानापन्न होती हैं। जबकि एकाधिकृत बाजार में विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित की गई वस्तु का आकार एवं किस्म एक-दूसरे के लिए निकट स्थानापन्न होती है न कि पूर्ण स्थानापन्न।

(6) विज्ञापन लागत - पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में वस्तु की समरूपता होने से बाजार में वस्तु का एक ही मूल्य होता है। जबकि एकाधिकृत बाजार में फर्मों को विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को बेचने के कारण अपनी वस्तु के प्रति उपभोक्ता में रूचि एवं लगाव बढ़ाने कि लिए विज्ञापन लागत लगानी पड़ती है।

2.11 एकाधिकार ओर एकाधिकृत बाजार में अन्तर

(1) **फर्मों की संख्या -** एकाधिकार बाजार में फर्म एवं उत्पादक एक ही होता है। जबकि एकाधिकृत बाजार में फर्मो की संख्या दो या दो से अधिक होती है।

(2) **उद्योग एवं फर्म -** एकाधिकार में फर्मे एवं उद्योग में कोई अन्तर नहीं होता है जबकि एकाधिकृत बाजार में अनेक फर्म होती हैं और विभिन्न फर्मों का समूह उद्योग कहलाता है।

(3) **वस्तु विभेद -** एकाधिकार बाजार में एक उत्पादक द्वारा एक ही वस्तु का उत्पादन करने से वस्तु विभेद नहीं होता है। जबकि एकाधिकृत बाजार में वस्तु के आकार, रंग, पैकिंग, डिजाइन किस्म आदि के कारण वस्तुएं एक-दूसरे से अलग होती हैं। अर्थात वस्तुओं में विभेद (अन्तर) होता है जैसे मारूति व एम्बेसेडर कारों में।

(4) **विज्ञापन लागत -** एकाधिकृत बाजार में फर्मों की संख्या अधिक होने एवं आपस में प्रतियोगिता होने के कारण वस्तुओं के विक्रय के लिए विज्ञापन व्यय करने पड़ते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में विज्ञापन नहीं होता। एकाधिकारी अपनी मांग बढाने के लिए विज्ञापन कर सकता है।

(5) **प्रतिस्थापन -** एकाधिकार बाजार में उत्पादित वस्तु की निकट स्थानापन्न नहीं होती है जबकि एकाधिकृत बाजार में फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुएं एक-दूसरे की निकट स्थानापन्न होती हैं।

(6) **वस्तु की मांग की लोच -** एकाधिकार बाजार में वस्तु की मांग की लोच इकाई से कम (ep< 1) होती है जबकि एकाधिकृत बाजार में लोच तुलनात्मक रूप में अधिक होती है।

(7) **दीर्घकाल में फर्म का साम्य** - एकाधिकार बाजार में एकाधिकारी असामान्य लाभ कमाता है जबकि एकाधिकृत बाजार में फर्में सामान्य लाभ ही प्राप्त करती हैं।

(8) **फर्मों का प्रवेश एवं बहिर्गमन -** एकाधिकार बाजार में एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति एवं वस्तु के मूल्य पर पूर्ण नियंत्रण होना है जिसमे कोई भी फर्म दीर्घकाल में एकाधिकारी बाजार में प्रवेश नहीं कर सकती है। एकाधिकृत बाजार में फर्मों के मध्य प्रतियोगिता का अंश होने से दीर्घकाल में फर्में समूह में प्रवेश कर सकती हैं।

2.12 सारांश

(I) यदि फर्म की सीमान्त लागत (MC), सीमान्त आगम (MR) के बराबर है तो फर्म इस बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी। फर्म अपने उत्पादन को उस स्तर तक बढ़ायेगा जब तक कि फर्म की सीमान्त लागत एवं सीमान्त आगम दोनों बराबर नही होगी।

(II) यदि फर्म की औसत आगम, औसत लागत से अधिक है तो फर्म को असामान्य लाभ होगा।

(III) यदि फर्म की औसत आगम एवं औसत लागत दोनों बराबर हैं तो फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

(IV) यदि फर्म की औसत लागत, औसत आगम से अधिक है तब फर्म हानि की स्थिति में होगी।

(V) यदि फर्म की वस्तु की कीमत, औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) की तुलना में अधिक है तब फर्म हानि की स्थिति में होने पर भी अपना उत्पादन कार्य जारी रखेगी।

(VI) यदि फर्म की औसत आगम या वस्तु की कीमत, औसत परिवर्तनशील लागत की तुलना में कम है। या यह कहा जाये कि फर्म की औसत परिवर्तनशील लागतें, औसत आगम की तुलना में ज्यादा है। तब फर्म अपना उत्पादन कार्य बन्द कर देगी। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जब तक फर्म को उसकी औसत परिवर्तनशील लागतें प्राप्त हो रही हैं फर्म अपना उत्पादन कार्य जारी रखेगी।

(VII) एकाधिकृत बाजार में उपस्थित अनुकूलतम से कम उत्पादन की स्थिति में महत्वपूर्ण निर्णय ले सकते हैं।

(VIII) फर्म की मांग रेखा एकाधिकारी की तरह ऋणात्मक ढाल वाली होने पर भी सामान्य लाभ के संतुलन को स्थापित किया जा सकता है।

(IX) एकाधिकृत प्रतियोगिता में कीमत पूर्ण प्रतियोगिता से अधिक होती है तथा कीमत सीमान्त लागत से भी अधिक होती है।

(X) एकाधिकृत प्रतियोगिता में उद्योग की प्रवृति लगातार अतिरेक क्षमता को प्रदर्शित करने की होती है।

(XI) एकाधिकृत प्रतियोगिता में राष्ट्र के साधनों का पूर्णतम उपयोग न होने के कारण दुर्लभ साधनों का अपव्यय होता है।

2.13 शब्दावली

(i)	Equilibrium	साम्य या सन्तुलन
(ii)	AC	औसत लागत
(iii)	AR	औसत आगम
(iv)	MC	सीमान्त लागत
(v)	MR	सीमान्त आगम
(vi)	AVC	औसत परिवर्तनशील लागत
(vii)	Price-Determination	मूल्य निर्धारण
(viii)	LAC	दीर्घकाल औसत लागत
(ix)	LMC	दीर्घकाल सीमान्त लागत
(x)	LAR	दीर्घकाल औसत आगम
(xi)	LMR	दीर्घकाल सीमान्त आगम

2.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अग्रवाल, एम.डी.,	आर्थिक विश्लेषण
आहूजा, एच.एल.,	व्यष्टि अर्थशास्त्र
बरला, सी.एस.,	व्यष्टि अर्थशास्त्र
झिंगन, एम.एल.,	अर्थशास्त्र के सिद्धान्त
Allen, C.L.	The Frame Work of Price Theory
Baumol, W.I.	Economic Theory and Operations Analysis.
Chamberlin, E.H.	Theory of Monopolistic Competition
Demsetz, H.	The Welfare and Empirical implications
Ferguson, C.E.	Micro Economic Theory.

2.15 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता से क्या आशय है? इसके अन्तर्गत अल्पकाल में कीमत निर्धारण का विवेचन कीजिए।

(2) एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में दीर्घकाल में कीमत-निर्धारण समझाइये। इसके अन्तर्गत विज्ञापन का क्या महत्व होता है?

(3) एकाधिकारात्मक बाजार, पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार बाजार के बीच की स्थिति है। प्रो चेम्बरलेन के इस कथन की व्याख्या करते हुए पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार प्रतियोगिता से एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता किस प्रकार अलग है। व्याख्या कीजिए।

(4) एकाधिकृत प्रतियोगिता की स्थिति में कीमत किस प्रकार निश्चित होती है जबकि उद्योग में उत्पादकों की संख्या अधिक हो और उनके शामिल होने तथा निकलने में कोई रोक न हो?

इकाई 3
स्थानीयकरण के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 स्थानीयकरण का अर्थ

3.3 स्थानीयकरण के घटक

3.3.1 प्राकृतिक कारक

3.3.2 आर्थिक कारक

3.3.3 राजनैतिक कारक

3.3.4 अन्य कारक

3.4 स्थानीयकरण के लाभ-हानि

3.4.1 स्थानीयकरण के लाभ

3.4.2 स्थानीयकरण की हानियां

3.5 स्थानीयकरण के सिद्धान्त

3.5.1 वॉन थुनेन

3.5.2 आल्फ्रेड वेवर

3.5.3 सारजेन्ट फलोरेन्स

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त पाठक निम्नांकित तथ्यों से अवगत होगा :

* स्थानीयकरण का अर्थ
* स्थानीयकरण का कारण
* स्थानीयकरण के लाभ-हानि
* स्थानीयकरण के वैकल्पिक सिद्धांत

3.1 प्रस्तावना

आधुनिक अर्थव्यवस्था वस्तुत: औद्योगिक अर्थव्यवस्था है जिसकी सफलता औद्योगिक इकाईयों की सफलता पर निर्भर है। किसी भी औद्योगिक इकाई की सफलता अथवा विफलता का अधिकांश श्रेय उसकी स्थापना के लिए चुनें गए स्थान की उपयुक्तता को प्राप्त होता है। औद्योगिक इकाई की स्थिति उतादन लागत को प्रभावित करती है और उसके लाभ-अर्जन पर

प्रभाव डालती है। इस प्रकार उपयुक्त स्थान का निर्धारण औद्योगिक इकाई की सफलता की प्रथम शर्त होती है। उद्योगों का अनुपयुक्त स्थान निर्धारण देश के सीमित साधनों के दुरुपयोग का कारण बनता है। अतएव देश के सीमित साधनों के इष्टतम उपयोग के साथ औद्योगिक इकाईयों को लाभप्रद बनाने के लिए औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धांत का सही ज्ञान होना आवश्यक है।

3.2 स्थानीयकरण का अर्थ

स्थानीयकरण का अर्थ समझने के लिए उद्योगों का स्थान - निर्धारण (Location) स्थानीयकरण (Localization) एवं संकेन्द्रण (Centralization) इन तीन शब्दों के मध्य अन्तर समझ लेना आवश्यक है। सामान्यतया ये शब्द पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयोग किए जाते हैं परन्तु इनके अभिप्राय में मौलिक अन्तर होता है। किसी उद्योगपति द्वारा एक औद्योगिक इकाई (फर्म) की स्थापना के लिए ऐसे स्थान का चुनाव जहां उसकी उत्पादन-लागत न्यूनतम हो उद्योग का स्थान-निर्धारण कहलाता है। जैसे लोहा और इस्पात उद्योग की स्थापना हेतु टाटा द्वारा जमशेदपुर का चुनाव।

जब किसी एक ही स्थान अथवा क्षेत्र में एक उद्योग की अनेकानेक इकाइयों (फर्में) स्थापित हो जाती हैं तब वह उद्योग का स्थानीयकरण कहलाता है। जैसे बम्बई एवं अहमदाबाद में सूती वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित अनेक इकाईयों की स्थापना। इसका कारण उस स्थान विशेष पर उक्त उद्योग से सम्बन्धित किंचित सुविधाएं उपलब्ध होने से उत्पादन-लागत का निम्नतम होना होता है। इस प्रकार स्थानीयकरण स्थान-निर्धारण का व्यापक रूप है और दोनों ही निम्नतम उत्पादन-लागत से प्रभावित होते हैं।

जब किसी क्षेत्र विशेष में भिन्न-भिन्न उद्योगों की अनेकानेक उत्पादन इकाईयां स्थापित हो जाती हैं तब व्यवहारिक रूप से उसे उद्योगों के संकेन्द्रण का नाम दिया जाता है। अतएवं संकेन्द्रण स्थानीयकरण से भिन्न है। एक स्थान विशेष पर उद्योगों का संकेन्द्रण दूसरे स्थान के पिछड़ेपन का अहसास दिलाता है जैसे महाराष्ट्र में उद्योगों का संकेन्द्रण है और असम पिछड़ा हुआ है। संकेन्द्रण अनेक सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं को जन्म देता है जिससे देश के संतुलित एवं सर्वांगीण विकास में बाधा पहुंचती है। इसीलिए प्राय: सरकार संतुलित क्षेत्रीय विकास के उद्देश्य से उद्योगों के विकेन्द्रीकरण के लिए नियोजित स्थान निर्धारण नीति अपनाती है।

संक्षेप में विशिष्ट क्षेत्रों में विशिष्ट उद्योगों के आकर्षित होने, स्थापित होने, केन्द्रित होने एवं विकसित होने की प्रवृति को स्थानीयकरण कहते हैं। इसे प्रादेशिक श्रम विभाजम (Territorial Division of Labour) अथवा भौगोलिक विशिष्टीकरण (Geographical Specialization) भी कहते हैं।

3.3 स्थानीयकरण के घटक

किसी स्थान विशेष में उद्योग विशेष को आकर्षित कर स्थानीयकरण की प्रवृति को प्रोत्साहित करने वाले घटकों या कारकों को चार भागों में बांटा जा सकता है :

3.3.1 प्राकृतिक कारक

(1) **कच्चे माल की उपलब्धता -** जिन उद्योगों में भारी कच्चे पदार्थो का उपयोग होता है उनमें कच्चे पदार्थों की प्राप्ति - स्थान के निकट केन्द्रित होने की विशेष प्रवृति पाई जाती है जैसे लोहा - इस्पात उद्योग बिहार एवं पश्चिमी बंगाल में कोयले एवं लोहे की खानों के निकट स्थापित किए गए हैं।

(2) **शक्ति के साधनों की उपलब्धता -** 19 वीं शताब्दी में कोयला शक्ति का प्रमुख श्रोत था इसलिए विश्व भर में उद्योगों की स्थापना कोयला-उत्पादन क्षेत्रों के निकट हुई जैसे इंग्लैण्ड में बमिंघम में, पश्चिमी जर्मनी में ऐसन में, भारत में जमशेदपुर में। आधुनिक युग में जल-विद्युत का महत्व बढ़ा है परिणाम स्वरूप भारत में भाखड़ा नंगल क्षेत्र में उर्वरक-कारखानों की स्थापना एवं रिहण्ड बाँध के निकट ऐल्यूमिनियम कारखाने की स्थापना हुई है। परन्तु आधुनिक युग में यह कारक अधिक प्रभावी नहीं रह गया है क्योंकि अब विद्युत-शक्ति को दूर-दूर तक भेजना सम्भव हो गया. है।

(3) **जलवायु की उपयुक्तता -** सूती वस्त्र उद्योग बम्बई और आसपास केन्द्रित हो गए हैं क्योंकि वहां की नम जलवायु सूती वस्त्र बुनने के उपयुक्त है।

3.3.2 आर्थिक कारक

(1) **कुशल श्रमिकों की उपलब्धता -** किसी स्थान-विशेष पर किसी उद्योग-विशेष की विभिन्न इकाइयों की स्थापना से उस उद्योग के लिए कुशल श्रमिकों की उपलब्धता बढ़ जाने से, विशेष रूप से यदि उद्योग श्रम-प्रधान हो, स्थानीयकरण की प्रवृति को बढ़ावा मिलता है। जैसे फिरोजाबाद में चूड़ी उद्योग, वाराणसी में साड़ी उद्योग।

(2) **परिवहन के साधनों की पर्याप्तता -** भारत में कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, और दिल्ली के औद्योगीकरण के लिए यह एक महत्वपूर्ण कारक है।

(3) **पूँजी की उपलब्धता -** जहां बैंक अथवा वित्तीय संस्थाओं के विकसित होने से पूंजी पर्याप्त मात्रा में सुलभ होती है वहां उद्योगों के पनपने की प्रवृति पाई जाती है। सरकार पिछड़े हुए क्षेत्रों के औद्योगीकरण के लिए इसे प्रमुख अस्त्र के रूप में प्रयोग करती है।

(4) **बाजार की निकटता -** वर्तमान समय में यातायात के साधनों का पर्याप्त विकास हो जाने से इस घटक का महत्व कम हो गया है परन्तु वस्तु के अत्यधिक भारी होने या नाशवान होने पर यह स्थानीयकरण का प्रभावी कारक सिद्ध होता है। जैसे जूट उद्योग की स्थापना जूट उत्पादन क्षेत्र से दूर करने से कच्चे जूट के भारी होने के कारण यातायात व्यय अधिक होने से उत्पादन लागत बढ़ जायेगी। इसीलिए भारत में जूट उद्योग बंगाल में कलकत्ता के आस-पास केन्द्रित है।

3.3.3 राजनैतिक कारक

(1) **राजकीय संरक्षण -** लखनऊ में चिकन के कपड़ों का उद्योग वहां के नबाबों द्वारा प्रदत्त संरक्षण के फलस्वरूप ही विकसित हुआ है। वर्तमान समय में सरकार सुरक्षात्मक नीति के

अन्तर्गत पिछड़े हुए क्षेत्रों में उद्योगों को विकसिन करने के उद्देश्य से करों से छूट, यातायात की सुविधा एवं कम ब्याज पर आसान शर्तों पर ऋण सुलभ कराती हैं।

(2) शांति एवं सुरक्षा - सीमावर्ती क्षेत्रों में शान्ति एवं सुरक्षा के अभाव मे उद्योग धन्धों की स्थापना नहीं हो पाती।

3.3.4 अन्य कारक

(1) नगरों का आकर्षण

(2) स्थान की ख्याति

(3) धार्मिक कारण - तीर्थ स्थानों में मूर्ति-उद्योग विकसित हो जाते हैं।

(4) पूर्व स्थापित उद्योग - उद्योग - उद्योग को आकर्षित करते हैं क्योंकि पहले से स्थापित उद्योगों के कारण नवीन स्थापित उद्योगों को अनेकानेक सुविधायें उपलब्ध हो, जाती हैं। जैसे अनुकूल श्रम, सहायक उद्योग, बाजार इत्यादि।

3.4 स्थानीयकरण के लाभ-हानि

उद्योगों का स्थानीयकरण विवेकपूर्ण स्थान-निर्धारण का परिणाम होता है। इस भोगोलिक विशिष्टीकरण से प्रत्येक क्षेत्र के मानवीय एवं भौतिक-साधनों का सर्वोत्तम उपयोग होता है। विशिष्टीकरण के फलस्वरूप कार्य कुशलता बढ़ने से उत्पादन लागत न्यूनतम हो जाती है जिससे लाभ - एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है।

3.4.1 स्थानीयकरण के लाभ -

(1) स्थान की प्रसिद्धि (Good will) वस्तु के विक्रय को सुगम बनाती है जैसे वाराणसी में निर्मित बनारसी साड़ियां।

(2) बच्चे कार्य दक्षता पैतृक सम्पत्ति की तरह अर्जित करते हैं अतएवं श्रमिकों की कार्य कुशलता में उत्तरोत्तर विकास होता है।

(3) कुशल श्रमिकों के बाजार का विस्तार।

(4) सहायक उद्योगों की स्थापना के साथ अवशिष्ट पदार्थों का उपयोग भी सम्भव होता है। जैसे शक्कर के कारखाने के निकट जूसी से शराब एवं अल्कोहल बनाने के कारखाने स्थापित हुए हैं।

(5) पूरक उद्योग धन्धों की स्थापना - जैसे लोहा-इस्पात कारखाने के निकट कील, पेंच इत्यादि बनाने के पूरक कारखानों का जन्म।

(6) साधनों का सर्वोत्तम उपयोग।

(7) संचालकीय व्यय में कमी।

(8) उत्पादन लागत में कमी।

(9) परिवहन व्यय में बचत।

(10) अनुसंधान सुविधाओं का विकास एवं विस्तार।

(11) व्यापार - सम्बन्धी सुविधाओं जैसे बैंक, गोदाम, बीमा कम्पनियां इत्यादि का विकास।

(12) उन्नति के लिए सामूहिक प्रयास एवं परस्पर सहयोग की भावना का जन्म।

(13) क्षेत्र का सर्वांगीण विकास।

3.4.2 स्थानीयकरण की हानियां

स्थानीयकरण के अनेक दुष्परिणाम भी होते हैं -

(1) श्रमिकों की कार्य दक्षता का एकांगी विकास होने से उनकी गतिशीलता में बाधा आती है और बेरोजगारी की सम्भावना बढ़ जाती है।

(2) अकुशल श्रमिक बेरोजगारी का शिकार होते हैं।

(3) वैकल्पिक कार्य में असमर्थ होने से श्रमिक प्राय: उचित मजदूरी करने में समर्थ नहीं हो पाते।

(4) अनेक सामाजिक समस्याओं जैसे भीड़-भाड़, गन्दी बस्तियों एवं पर्यावरण - प्रदूषण की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं।

(5) उद्योगों का स्थान-विशेष पर केन्द्रित होना सुरक्षात्मक दृष्टि से भी घातक हो सकता है। दुश्मन स्थान विएशेष को नष्ट कर राष्ट्र के आर्थिक कलेवर को क्षति-ग्रस्त कर सकता है।

(6) क्षेत्रीय विषमताओं एवं दुर्भावनाओं का जन्म होता है।

3.5 स्थानीयकरण के सिद्धान्त

औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धांतों का उद्देश्य उन कारकों का विवेचन करना है जो उद्योगों के स्थान विशेष पर केन्द्रित होने की प्रवृति को स्पष्ट करते हैं। प्रतिष्ठित परम्परा (Classical School) के अर्थ शास्त्रियों ने अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया परंतु स्थानीयकरण के सम्बन्ध में उनके छुट-पुट विचार ही उपलब्ध होते हैं। एडम स्मिथ ने श्रम विभाजन की विवेचना करते हुए स्थानीयकरण को प्रादेशिक श्रम-विभाजन के रूप में प्रस्तुत किया। जे. एस. मिल एवं अल्फ्रेडड मार्शल ने उन घटकों का उल्लेख किया है जो उद्योगों के स्थानीयकरण में सहायक होते हैं परन्तु स्थानीयकरण के किसी वैज्ञानिक सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने केन्द्रीयकरण को लगान से सम्बन्धित करते हुए मत व्यक्त किया कि जिस क्षेत्र में लगान जितना अधिक होगा उस क्षेत्र में उद्योगों के केन्द्रित होने की प्रवृति उतनी ही कम होगी। कदाचित उनके द्वारा इस समस्या की उपेक्षा का कारण यह है कि उस समय स्थानीयकरण की कोई समस्या ही नहीं थी। वस्तुत: कारखाना प्रणाली (Factory System) के उद्भव से पूर्व बड़े पैमाने के उत्पादन के अभाव में औद्योगिक स्थानीयकरण की कोई समस्या नहीं थी। कारखाना पद्धति के विकास के साथ स्थान-निर्धारण की समस्या अधिक महत्वपूर्ण हो गयी। कतिपय प्राचीन विचारकों ने स्थानीयकरण के सिद्धांत के प्रतिपादन का प्रयास किया परन्तु वे भी स्थानीयकरण के कारणों की व्याख्या करने के अतिरिक्त किसी सुविचारित सिद्धांत को प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे। इसमें सोने फील्ड, लोनहार्ट एवं बुश के नाम उल्लेखनीय हैं। औद्योगिक स्थिति के सिद्धान्त (Theory of Industrial Location) का प्रतिपादन सर्वप्रथम मार्शल के समकालीन प्रसिद्ध अर्थशास्त्री वॉन थुनेन ने कृषि उद्योग के लिए

किया। तत्पश्चात् रोशर ने एक निबंध के रूप में औद्योगिक स्थिति पर अपना सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत किया। सन् 1885 में अमेरिका के प्रख्यात प्रोफेसर ई. ए. सोस ने "उद्योगों का स्थानीयकरण" नामक लेख मे रोशर का समर्थन किया। वस्तुत: औद्योगिक स्थानीयकरण के सम्यक सिद्धांत का प्रतिपादन बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में जर्मन अर्थशास्त्री अल्फ्रेड बेबर द्वारा किया गया। तत्पश्चात् सार्जेण्ट फलोरेंस ने अपनी व्याख्या प्रस्तुत की।

3.5.1 जॉन हेनरिक वॉन थुनेन का सिद्धांत

अट्ठारहवीं शताब्दी में जर्मनी के सर्वाधिक प्रतिभाशाली अर्थशास्त्री वान थुनेन एडम स्मिथ के अनुयायी थे। आर्थिक विज्ञान के क्षेत्र में आप अपने सिद्धांतों की तुलना में अपने वैज्ञानिक, गणनात्मक, विश्लेषण की पद्धति के लिए विशेष ख्याति प्राप्त रहे हैं। परंतु उनके सैद्धांतिक योगदान को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। अपने लगान सम्बन्धी सिद्धांत के लिए आप जर्मनी के रिकार्डो के रूप में प्रसिद्ध हैं । साथ ही थुनेन को स्थानीयकरण के सिद्धांत का प्रतिपादक होने का गौरव भी प्राप्त है।

वॉन थुनेन ने औद्योगिक स्थिति के सिद्धांत का प्रतिपादन कृषि-उद्योग के लिए किया जिसे उद्योगों के स्थान निर्धारण की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता। उन्होंने अपने मूल-सिद्धांत के प्रस्तुतिकरण में स्पष्ट किया है कि किसी विशेष स्थान पर कृषि से सम्बन्धित किसी वस्तु विशेष के उत्पादन का कार्य इसलिए किया जाता है कि वहां वस्तु का मूल्य अपेक्षाकृत कम होने से उसके बाजार का आकार बढ़ता है। उनके मूल्य निर्धारण के सिद्धांत का आधार उत्पादन की सीमान्त लागत है। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि कृषि-वस्तुओं के उत्पादन के स्थानीयकरण का कारण उत्पादन लागत में निहित है। इस प्रकार इसे स्थानीयकरण का प्रथम सिद्धांत मान लेना अनुचित न होगा।

थुनेन के इस योगदान को स्थान-निर्धारण के सिद्धांत के रूप में अधिक महत्व नहीं दिया जाता क्योंकि :

(1) यह स्थान निर्धारण का सिद्धांत नहीं वरन् मूल्य एवं लागत के सिद्धांत का अंग है।

(2) कृषि से सम्बन्धित है।

(3) स्थान निर्धारण में मात्र यातायात लागत को महत्व देते हुए श्रम लागत की उपेक्षा की है।

3.5.2 अल्फ्रेड वेबर का सिद्धांत

औद्योगिक स्थानीयकरण के समुचित सिद्धांत की सर्वप्रथम विस्तृत एवं व्यवस्थित व्याख्या का श्रेय जर्मन अर्थशास्त्री अल्फ्रेड वेबर को देना सर्वथा उचित होगा जिन्होंने 1909 में जर्मन भाषा में स्थानीयकरण के सिद्धांत का प्रतिपादन किया जो फ्रेडटिच के द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद के रूप में 1929 में विश्व के समक्ष आया। यह निगमन प्रणाली (Deductive System) पर आधारित विशुद्ध सिद्धांत (Pure Theory) है जिसने इस क्षेत्र में विश्लेषणात्मक अध्ययनों का मार्ग प्रशस्त किया। बेखबर ने अपने सिद्धांत को दो प्रत्ययों पर आधारित किया है-

(1) स्थान निर्धारण के घटक (Location Factor) - का आशय उन आर्थिक शक्तियों से है जो एक औद्योगिक वस्तु के उत्पादन एवं वितरण की समस्त प्रक्रिया को एक स्थान विशेष पर निम्नतम लागत पर पूर्ण करने में सहायक होनते हैं।

(2) स्थान निर्धारण इकाई (Locational Unit) - से तात्पर्य एक ही स्वभाव की विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन एवं क्षेत्र विशेष में वितरण से है। वेबर ने स्थान निर्धारण का निम्नांकित वर्गीकरण प्रस्तुत किया है:

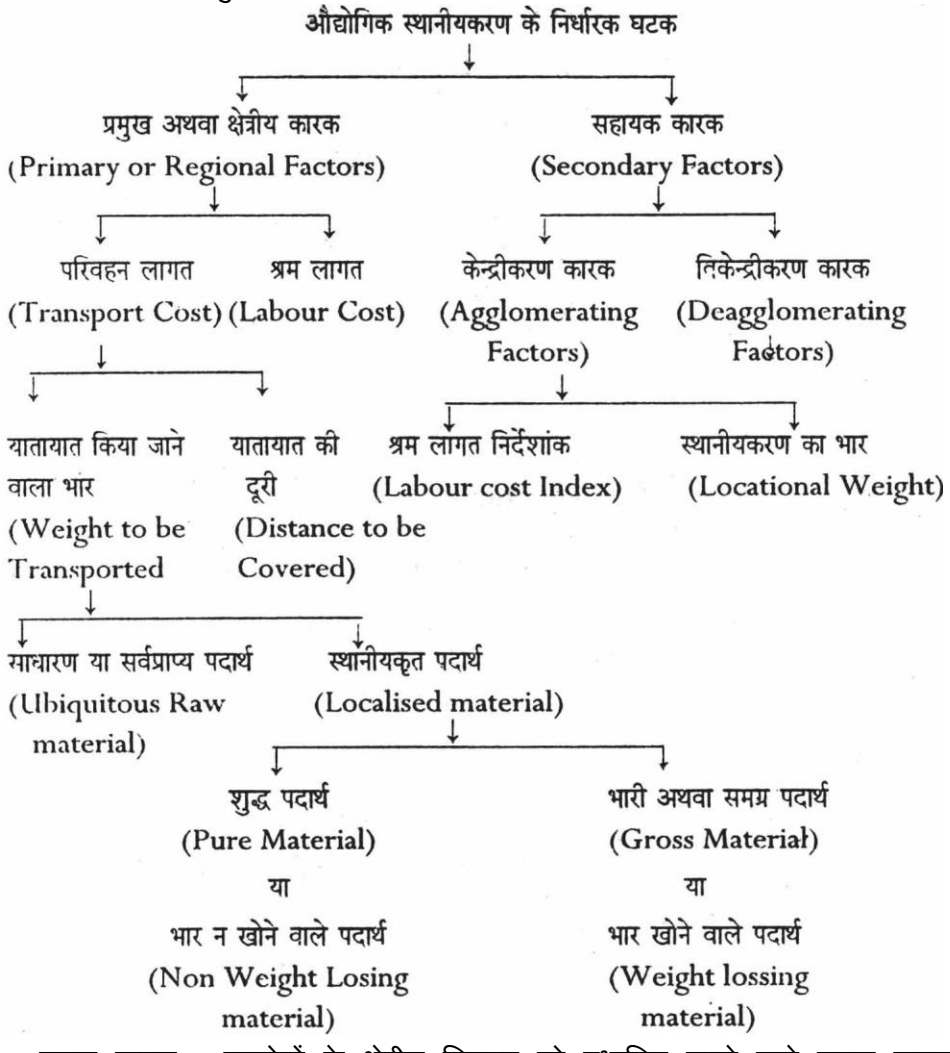

प्रमुख कारक - उद्योगों के क्षेत्रीय वितरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों में परिवहन व्यय एवम् श्रम लागत जिस स्थान पर न्यूनतम होगी वहां उद्योगों के स्थानीयकरण की प्रवृति होगी।

परिवहन व्यय का तात्पर्य उस कुल व्यय से है जो कच्चे माल तथा साज सामान को कारखाने तक लाने तथा तैयार माल को कारखाने से विक्रय केन्द्रों तक ले जाने में वहन करना पड़ता है। वेबर महोदय ने इस कारक को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हुए बतलाया है कि प्राय: कच्चे माल का श्रोत व तैयार माल का बाजार अलग-अलग स्थानों में पाया जाता है ऐसी स्थिति

में कुल परिवहन लागत जिस स्थान पर न्यूनतम होगी उद्योगों में वहीं पनपने की प्रवृति होती है। परिवहन व्यय को निर्धारित करने वाले दो संघटक **यातायात किया जाने वाला भार** एवं **यातायात की दूरी** होते हैं। प्रयुक्त पदार्थ के भार की प्रभावोत्पादकता पदार्थ की प्रकृति पर निर्भर होती है। यदि कच्चा माल साधारण अथवा सर्वप्राप्य होता है जैसे पानी, मिट्टी, पत्थर इत्यादि, जो सभी स्थानों पर प्रचुरता में उपलब्ध होता है तो उसका कोई निर्धारक प्रभाव नहीं होता। परन्तु यदि कच्चा माल स्थानीय है जो विशिष्ट स्थानों पर उपलब्ध है जैसे लोहा, कोयला, चाय, तिलहन, इत्यादि तो इनका स्थानीयकरण पर निर्धारक प्रभाव होता है । यदि यह कच्चा माल **भार न खोने वाला शुद्ध कच्चा माल** है जैसे पटसन, कपास, रेशम, इत्यादि है जिनके भार में निर्माण क्रिया में कोई विशेष अन्तर नहीं आता तो इनसे सम्बद्ध औद्योगिक इकाइयां इच्छानुसार कच्चेमाल के स्रोत या विक्रय केन्द्रों के निकट कहीं भी स्थापित की जा सकती है क्योंकि परिवहन लागत में कोई अन्तर नही आता। परन्तु यदि कच्चा माल सकल अथवा भार खोने वाला जैसे गन्ना, लोहा, कोयला, इत्यादि है जिनके भार में निर्माण क्रिया में अत्यधिक कमी आ जाती है तो इनसे सम्बद्ध औद्योगिक इकाइयां कच्चेमाल के स्त्रोतों के निकट आकर्षित होंगी क्योंकि इससे परिवहन लागत कम की जा सकेगी।

आदर्श बिन्दु (Optimum Location Point) - का निर्धारण करने के लिए वेबर महोदय ने पदार्थ निर्देशांक (Material Index) की गणना की है पदार्थ निर्देशांक कुल निर्मित माल के भार में प्रयुक्त सामग्री के भार के अनुपात को प्रदर्शित करता है सूत्र के रूप में -

$$M.I. = \frac{W.R.M. \times 100}{W.F.M.Z}$$

M.I. = Material Index पदार्थ निर्देशांक

W.R.M. = Weight of Raw Material कच्चेमाल का भार

W.F.M. = Weight of finished Material निर्मित माल का भार

पदार्थ निर्देशांक का मान जितना कम होगा उद्योग में विक्रय केन्द्रों के निकट केन्द्रित होने की प्रवृति उतनी अधिक होगी। इसके विपरीत - निर्देशांक का मान जितना अधिक होगा उद्योग कच्चेमाल के स्रोतों की ओर उतने अधिक आकर्षित होंगे। यदि पदार्थ - निर्देशांक इकाई से अधिक है तो स्थानीयकरण बिन्दु (Location Point]) के निर्धारण में स्थानीयकरण माल की निर्णायक भूमिका रहेगी तथा उद्योग में उसके स्त्रोत के अधिक निकट स्थापित होने की प्रवृति होगी। इसके विपरीत पदार्थ निर्देशांक के इकाई से कम होने पर स्थानीयकरण बिन्दु उपयोग केन्द्र के निकट पाए जाने की प्रवृति होगी।

उदाहरण - क ख ग तीन पृथक उद्योगों में प्रत्येक में 100 टन कच्चेमाल का प्रयोग किया जाता है। परन्तु निर्मित माल का भार क्रमश 80, 50 और 20 टन है। जिनके पदार्थ - निर्देशांक निम्नानुसार होंगे -

तालिका 3.1

उद्योग	कच्चेमाल का भर (टनों में)	निर्मित माल का भर (टनों में)	पदार्थ निर्देशांक (प्रतिशत)

क	100	80	125
ख	100	50	200
ग	100	20	500

"क" उद्योग के लिए पदार्थ - निर्देशांक सबसे कम है "ख" उद्योग के लिए पदार्थ - निर्देशांक उससे अधिक है अत: "ख" उद्योग के औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रवृति ''क'' उद्योग की तुलना में कच्चेमाल की प्राप्ति के निकट आने की होगी "ग" का पदार्थ निर्देशांक बहुत अधिक हैं अत: वे प्राय: कच्चे माल की प्राप्ति के केन्द्रों के निकट ही स्थापित किये जावेंगे।

श्रम लागत - वेबर महोदय के अनुसार औद्योगिक स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाला दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्रीय घटक है। स्थानीयकरण प्राय: न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु पर ही होता। परन्तु उद्योग विशेष के लिए (विशेष रूप से उद्योग के श्रम प्रधान होने पर) श्रम लागत में पर्याप्त असमानताएं हों तो उद्योग का स्थानीयकरण न्यूनतम परिवहन लागत बिन्दु से हटकर श्रम केन्द्रों की ओर होने लगता है। इसके लिए दो शर्तों की पूर्ति आवश्यक है।

(i) **श्रम की गतिशीलता** शून्य या नगण्य हो।

(ii) **श्रम लागतों मे होने वाली बचत** की मात्रा यातायात लागतों में होने वाली वृद्धि की तुलना में अधिक हो।

श्रम-स्थानीयकरण की ओर आकर्षण मूलत दो तत्वों द्वारा निर्धारित होता है:

(अ) श्रम लागत निर्देशांक (Labour cost Index) - जो निर्मित माल के कुल भार में श्रम लागत के अनुपात को प्रस्तुत करता है।

(ब) स्थानीयकरण भार (Locational Weight) - से आशय ढोये जाने वाले भार (कच्ची सामग्री एवं निर्मित माल) से है।

श्रम गुणांक (Labour Coefficient) - वह अनुपात है जो एक और श्रम लागत और दूसरी ओर स्थानीयकरण भार के मध्य होता है -

श्रम गुणांक = श्रम लागत निर्देशांक / स्थानीयकरण भार

श्रम गुणांक श्रम स्थानीयकरण की प्रवृति को बतलाता है। यदि श्रम गुणांक का मान अधिक हैं तो श्रम स्थानीयकरण को प्रोत्साहन मिलेगा तथा मान कम होने पर यातायात स्थानीयकरण को बल मिलेगा।

सहायक अथवा गौड़ कारक - उद्योगों के पुनर्वितरण को प्रभावित करते हैं। वेबर महोदय के अनुसार अनुकूलतम लागत बिन्दु स्थानीयकरण का ऐसा स्थाई या अंतिम बिन्दु नहीं होता जहां से विचलन असंभव हो। विचलन को प्रभावित करने वाले सहायक कारकों को उन्होंने केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीकरण के रूप में प्रस्तुत किया है। वेबर के मतानुसार किसी क्षेत्र विशेष में कुछ ऐसे कारक या घटक होते है जो उद्योग को उस क्षेत्र में केन्द्रित कर देते है - जैसे बैकिंग, बीमा, विपणन सुविधा एवं अन्यान्य बाह्य मितव्ययताएं उद्योगों को क्षेत्र विशेष में केन्द्रित होने को प्रोत्साहित करती है। इन्हें उन्होंने **केन्द्रीकरण के घटक** कहा है। केन्द्रीकरण की प्रवृति दो तत्वों से प्रभावित होती है ।

(अ) **उत्पादन निर्देशांक (Manufacturing Index) -** जो निर्माण व्यय का वस्तु के भार से अनुपात बतलाते है।

(ब) **स्थानीयकरण भार**

श्री वेबर ने इनके आधार पर निर्माण गुणांक (Coefficient of Manufacturing) की गणना द्वारा केन्द्रीयकरण की प्रवृति की व्याख्या की है।

उदाहरण - यदि निर्माण व्यय 2000 रू. प्रतिटन तथा स्थानीयकरण भार - 400 टन है तो निर्माण गुणांक 2000/400 = 5 होगा।

उच्च गुणांक वाली इकाइयों में केन्द्रीयकरण वाले स्थानों की ओर आकर्षित होने की प्रवृति पाई जाती है जबकि निम्न गुणांक वाली इकाइयां विकेन्द्रित स्थानों की ओर आकर्षित होती हैं।

वेबर महोदय के अनुसार केन्द्रीयकरण की प्रवृति बहुत अधिक हो जाने पर विकेन्द्रीकरण के घटक क्रियाशील हो जाते हैं। अत्यधिक केन्द्रीयकरण से लाभ कम हो जाता है क्योंकि भूमि, श्रम एवं कच्चा माल महंगा हो जाता है और करों में भी वृद्धि होने लगती है फलत: विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलता है।

वेबर महोदय ने औद्योगिक स्थानीयकरण के उपर्युक्त विवेचन के अतिरिक्त दो अन्य सम्भावनाएं भी व्यक्त की हैं:

(i) **खण्डीय स्थानीयकरण (Spilt in Location) -** एक उद्योग के एक से अधिक स्थानों पर स्थानीयकरण की प्रवृति को व्यक्त करता है। जब एक औद्योगिक इकाई के उत्पादन-क्रिया के एक से अधिक स्वतंत्र भाग होते हैं जो तकनीकी रूप से भिन्न स्थानों पर सम्पादितत किए जा सकते हैं। और उनकी एक क्रिया में भार कम होने वाले पदार्थ का उपयोग किया जाता है। जबकि दूसरी क्रिया में भार न खोने वाले पदार्थो का प्रयोग किया जाता हैं तो प्राय: पहली क्रिया से सम्बद्ध कार्य कच्चे पदार्थों के निकट केन्द्रित होने की एवं दूसरी क्रिया से सम्बद्ध कार्य विक्रय केन्द्रों के निकट स्थापित होने की प्रवृति रखते हैं, क्योंकि इस प्रकार उत्पादन लागत को न्यूनतम किया जा सकता है। कागज उद्योग इसका सर्वोत्तम उदाहरण है - लुगदी बनाने का कारखाना कच्चे पदार्थो के स्त्रोतों के निकट स्थापित करना और कागज बनाने का कारखाना उपभोग केन्द्र के निकट स्थापित करना उचित होगा।

(ii) **सह स्थानीयकरण (Locational Coupling) -** उद्योगों के परस्पर निर्भर होने पर उनके एक ही स्थान पर स्थापित होने की सम्भावना को व्यक्त करता है। यदि एक उद्योग का निर्मित अथवा अर्द्ध निर्मित माल दूसरे उद्योग में कच्चेमाल के रूप में प्रयोग किया जाता है तो उनका सह स्थानीयकरण एक क्षेत्र में हो सकता है जैसे शक्कर एव अल्कोहल उद्योग।

वेबर के सिद्धांत का मूल्यांकन

वेबर का सिद्धांत प्रथम वैज्ञानिक सिद्धांत कहा जा सकता है जो तत्कालीन सामाजिक - आर्थिक परिस्थितियों में व्यवहारिक था। परन्तु विचारकों ने इसे विशुद्ध आर्थिक सिद्धांत के रूप में स्वीकार न करते हुए **एस. आर. डेनीसन, सार्जेण्ट फलोरेंस, एण्ड्रीज प्रीडाल एवं आस्टिन राबिन्सन** जैसे अनेक अर्थशास्त्रियों ने अनेक आधारों पर इसकी कटु आलोचना की है :

(1) यह सिद्धांत **काल्पनिक मान्यताओं** पर आधारित है जैसे श्रम केन्द्र, उपभोग केन्द्र एवं कच्चे पदार्थों का केन्द्र निश्चित होना।

(2) एण्ड्रीज ने इस पर **चयनात्मक सिद्धांत** होने का आरोप लगाते हुए कहा है कि इसमें स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले दो घटकों यातायात लागत एवं श्रम लागत को महत्व प्रदान करतें हुए अन्य महत्वपूर्ण घटकों जैसे जलवायु, पूंजी, शक्ति के साधनों इत्यादि की पूर्ण उपेक्षा की गई है।

(3) **परिवहन लागत** की गणना करते समय केवल दो निर्धारकों यातायात किया जाने वाला भार एवं परिवहन दूरी को महत्व देते हुए अन्य निर्धारकों जैसे माल की प्रकृति (हल्का, भारी, टिकाऊ, शीघ्र नष्ट होने वाला) यातायात के साधन, प्रदेश की धरातल रचना इत्यादि की पूर्ण अवेहलना की है।

(4) वेबर ने **श्रम-लागत** का निर्धारण दो मान्यताओं के आधार पर किया है श्रम केन्द्र स्थाई होते हैं और इन पर श्रम पूर्ति असीमित होती है ये दोनो मान्यताएं दोषपूर्ण एवं भ्रामक हैं। श्रम केन्द्र जहां एक ओर औद्योगिकरण का कारण होते हैं वही दूसरी ओर स्थान विशेष पर औद्योगिकरण वहां श्रम केन्द्रों के निर्माण को प्रोत्साहित करता है।

(5) आस्टिन राबिन्सन का तर्क है कि आधुनिक प्रतिस्पर्धात्मक युग में उपभोग केन्द्रों का निश्चित होना सम्भव नही वरन् वे फैले हुए होते हैं।

(6) राबिन्सन ने वेबर द्वारा कच्चे प्रदार्थों के वर्गीकरण को भी काल्पनिक बतलाया है।

(7) वेबर ने स्थानीयकरण के ऐतिहासिक एवं सामाजिक कारणों की उपेक्षा की है।

(8) श्री डेनीसन महोदय का आरोप है कि वेबर के विश्लेषण को आर्थिक सिद्धांत न मानकर **तकनीकी विश्लेषण** कहना अधिक उचित होगा क्योंकि यह लागत एवं मूल्यों पर आधारित होने के स्थान पर तकनीकी गुणांक पर आधारित है।

(9) वेबर के सिद्धांत पर **गणितीय जटिलता** का आरोप भी है।

निष्कर्ष स्वरूप कह सकते हैं कि वेबर के विश्लेषण पर लगाए गए आरोप तार्किक एवं तथ्य पूर्ण है तथापि उसे पूर्ण रूप से मूल्यहीन एवं अव्यवहारिक नहीं कहा जा सकता। भारतीय उद्योगों से प्राप्त अनुभव इसकी पुष्टि करते हैं। प्रारम्भ में केन्द्रीकरण के घटकों के प्रभावी होने से महाराष्ट्र एवं गुजरात में सूती वस्त्र उद्योगों का स्थानीयकरण हुआ परन्तु बाद में विकेन्द्रीकरण के घटकों के प्रभावशील होने से इसका विकेन्द्रीकरण हुआ। इसी प्रकार जूट उद्योग का स्थानीयकरण बंगाल में परिवहन लागत के न्यूनतम होने के फलस्वरूप हुआ।

वेबर के सिद्धांत को अधिक व्यवहारिक बनाने के लिए कुछ **सुझाव** दिए गए हैं :

(1) **परिवहन लागत** की गणना में भार तथा दूरी के स्थान पर भार दर **तालिकाओं** (Freightrate Table) का प्रयोग अधिक उचित होगा।

(2) **श्रम सम्बन्धी मान्यताओं,** स्थाई श्रम केन्द्र एवं श्रम की **असीमित** पूर्ति, का परित्याग करें।

(3) **निश्चित उपभोग केन्द्रों** के विचार का परित्याग करें।

(4) प्रो० डेनीसन का सुझाव है कि यथा सम्भव **लागत** एवं **मूल्य-सम्बन्धी गणनाओं** का उपयोग करें।

3.5.3 सार्जेण्ट फलोरेंस का सिद्धांत

सार्जेण्ट फलोरेस का आगनात्मक विश्लेषण (Inductive Analysis) पर आधारित सिद्धांत 1948 में प्रकाश में आया। फलोरेंस ने स्थान निर्धारण में भौगोलिक तत्वों को विशेष महत्व न देते हुए कहा है कि "किसी प्रदेश से उद्योगों का सम्बन्ध इतना महत्वपूर्ण नहीं जितना कि सम्पूर्ण श्रमिक जनसंख्या के वितरण का उद्योग से होता है।"

फलोरेंस ने दो नवीन अवधारणाओं का उपयोग किया है :

(1) स्थानीयकरण भाष्य (Locational factor)

(2) स्थानीयकरण गुणांक (Coefficient of Location)

स्थानीयकरण भाज्य का निर्देशांक है जो क्षेत्र-विशेष में किसी उद्योग के स्थानीयकरण की मात्रा को दिखलाता है। सूत्र रूप मे :

$$L = \frac{\frac{A \times 100}{B}}{\frac{C \times D}{D}}$$

जबकि L = स्थानीयकरण भाज्य

A = क्षेत्र विशेष में उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या

B = सम्पूर्ण देश में उस उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या

C = उस क्षेत्र विशेष में कुल औद्योगिक श्रमिकों की संख्या

D = सम्पूर्ण देश में कुल औद्योगिक श्रमिकों की संख्या

उदाहरण-उद्योग विशेष के सम्बन्ध में निर्देशांक की गणना है आंकड़े निम्नानुसार हैं-

तालिका 3.2

श्रम	क्षेत्र विशेष में	सम्पूर्ण देश में
1. उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या	40,000 (A)	2,00,000 (B)
2. कुल औद्योगिक श्रम शक्ति	1,00,000 (C)	10,00,000 (D)

$$\text{स्थानीयकरण भाज्य} = \frac{\frac{40,000 \times 100}{2,00,000}}{\frac{1,00,000 \times 100}{10,00,000}} = 20/10 = 2$$

फलोरेंस का निष्कर्ष है :

(1) उद्योग का स्थानीयकरण भाज्य इकाई या उसके निकट है तो उद्योग देश के विभिन्न भागों में समान रूप से विभाजित होगा।

(2) भाज्य इकाई से जितना अधिक होगा क्षेत्र में केन्द्रीकरण की प्रवृति उतनी ही अधिक होगी।

(3) भाज्य इकाई से जितना कम होगा उस क्षेत्र में उद्योग की स्थापना की प्रवृत्ति उतनी ही कम होगी।

(4) यदि किसी क्षेत्र के लिए भाज्य शून्य है तो यह उस क्षेत्र में उस उद्योग के पूर्ण अभाव का सूचक है।

स्थानीयकरण गुणांक का उपयोग फलोरेंस ने स्थानीयकरण की सीमा को नापने के लिए किया है। इस गुणांक की सीमाएं o एवं 1 है। यदि एक उद्योग का स्थानीयकरण गुणांक 0 है (देश के सभी क्षेत्रों में उद्योग का समान वितरण होने पर) तो उस उद्योग में केन्द्रीकरण की प्रवृति का अभाव माना जावेगा। यदि गुणांक 1 है (देश के एक ही भाग में उद्योग के स्थानीयकरण की स्थित में) तो उस उद्योग में केन्द्रीकरण की प्रवृति अधिकतम मानी जाती है। ये दोनों ही चरम अवस्थाएं हैं। गुणांक मान के आधार पर समस्त उद्योगों को तीन भागों - उच्च, निम्न एवं मध्यम गुणांक उद्योगों में बांटा जा सकता है। पूरे देश के लिए एक उद्योग के गुणांक का मान एक ही होता है। इसकी गणना के लिए निम्नलिखित प्रतिशत की गणना आवश्यक होती है-

(1) प्रत्येक क्षेत्र में देश के सम्पूर्ण श्रमिकों की संख्या का प्रतिशत

(2) प्रत्येक क्षेत्र में किसी उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या का प्रतिशत।

क्षेत्रवार ये प्रतिशत उपलब्ध होने पर इनके धनात्मक विचलनों के योग में 100 का भाग कर इस गुणांक को प्राप्त किया जाता है।

उदाहरण : एक देश A, B, C, D, E, और F 6 राज्यों या क्षेत्रों में विभाजित है। इन क्षेत्रों में देश के समस्त औद्योगिक श्रमिकों की तुलना में राज्यवार श्रमिकों का प्रतिशत तथा सूती वस्त्र उद्योग, चीनी उद्योग एवं लोहा इस्पात उद्योग में श्रमिकों का राज्यवार प्रतिशत निम्न तालिका में दिखलाया गया है।

तालिका 3.3

राज्य उद्योग अथवा क्षेत्र	श्रमिकों क्षेत्रवार प्रतिशत	**सूती वस्त्र उद्योग**		**चीनी-उद्योग**		**लोहा एवं इस्पात**	
		श्रमिकों का प्रतिशत	घनात्मक विचलन	श्रमिकों का प्रतिशत	घनात्मक विचलन	श्रमिकों का प्रतिशत	घनात्मक विचलन
A	30	50	20	5	-	-	-
B	15	15	-	40	25	-	-
C	10	20	10	35	25	-	-
D	10	15	5	15	5	20	10
E	15	-	-	5	-	5	-
F	20	-	-	-	-	75	55
योग	100	100	35	100	55	100	65
स्थानीयकरण गुणाक		35/100 = 0.35		55/100 = 0.55		65/100 =0.65	

स्थानीयकरण गुणांकों से स्पष्ट है कि सूती वस्त्र उद्योग की अपेक्षा चीनी उद्योग में तथा लोहा एवं इस्पात उद्योग में केन्द्रीकरण की प्रवृति सर्वाधिक है।

सार्जेण्ट फलोरेंस के सिद्धांत का मूल्यांकन :

स्थानीयकरण भाज्य तथा स्थानीयकरण गुणांक के रूप में प्रदत्त सांख्यिकीय निर्देशांकों की औद्योगिक स्थानीयकरण के विवेचन तथा विश्लेषण में पर्याप्त उपयोगिता है। परन्तु सिद्धांत की अनेक कमियों की अनदेखी नहीं की जा सकती :

(1) यह सिद्धांत अपूर्ण है क्योंकि यह स्थानीयकरण के घटकों की विवेचना नहीं करता। केवल देश में उद्योगों के वितरण पर प्रकाश डालता है।

(2) फलोरेंस का विश्लेषण उद्योगों के वर्तमान वितरण की विवेचना में सीमित है। क्षेत्रों के मध्य उद्योगों के उचित वितरण की समस्या पर विचार नहीं करता। अत: **भावी नीति के निर्धारण में सहायक नहीं है।**

(3) **निर्देशांकों की गणना केवल श्रमिकों की संख्या पर आधारित है** जबकि उत्पादन क्षमता के निर्धारक अनेक कारक होते हैं जो स्थानीयकरण का महत्व्पूर्ण निर्धारक है।

(4) गुणांकों के आधार पर केन्द्रीयकरण अथवा विकेन्द्रीकरण की सत्यता की पुष्टि तो की जा सकती है **परन्तु स्थानीयकरण की आधारभूत प्रवृत्ति का विश्लेषण सम्भव नहीं।**

(5) स्थानीय विशेषताएं जैसे जलवायु, मिट्टी, कच्चेमाल की उपलब्धि इत्यादि प्रभाव डालती हैं जिन्हें अपने विश्लेषण में फलोरेंस ने कोई स्थान नहीं दिया है।

निष्कर्ष रूप मे फलोरेंस का सिद्धांत शोध एवं विचार-विनिमय को प्रोत्साहित करने में समर्थ रहा है। स्थानीयकरण गुणांक की सहायता से उद्योगों के क्षेत्रीय वितरण की प्रकृति की स्पष्ट व्याख्या की जा सकती है।

3.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में स्थानीयकरण के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसके महत्वपूर्ण कारकों की विवेचना की गई है। सुदृढ़ औद्योगीकरण के लिए स्थानीयकरण के महत्व का निरूपण करते हुए उसके दुष्परिणामों की सम्भावना भी व्यक्त की गई है। उद्योगों के स्थान विशेष पर केन्द्रित होने की प्रवृति की व्याख्या के लिए स्थानीयकरण के महत्वपूर्ण सिद्धांतों की विवेचना की गई है। वॉन थुनेन के स्थानियकरण के विशिष्ट सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया है, कृषि उद्योग के सम्बन्ध मे इसका संक्षिप्त संकेत मात्र मिलता है। अल्फ्रेड वेबर ने निगमनात्मक तथा सार्जेण्ट फलोरेंस ने अगनात्मक विश्लेषण करते हुए स्थानीयकरण के वैज्ञानिक सिद्धांत के प्रतिपादन का प्रयास किया है परन्तु वे अपने विवेचन को पूर्णता प्रदान करने में असमर्थ रहे जिससे विचारकों ने उनकी कटु आलोचना की। परन्तु इनकी उपयोगिता को झुठलाया नहीं जा सकता। वस्तुत: ये दोनों सिद्धांत परस्पर पूरक हैं। औद्योगिक स्थानीयकरण की समस्याओं के विवेचन के लिए इनका सम्यक उपयोग उचित होगा। दोनों ही सिद्धांत पूंजीवादी ढाँचे पर आधारित होने से लागत एवं लाभ को अधिक महत्व देते हैं। भारत जैसे समाजवादी देश में हमारा उद्देश्य क्षेत्रीय विषमता का उन्मूलन कर देश का सर्वांगीण विकास है जिसमें लाभ की तुलना में जनकल्याण का महत्व अधिक होगा। अतएव भारतीय परिस्थितियों में इनकी उपयोगिता संदिग्ध है।

3.7 शब्दावली

आग्नात्मक	:	विशिष्ट के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकालने की पद्धति
आदर्श स्थानीयकरण बिन्दु	:	उद्योग के लिए सर्वोत्तम स्थान
इष्टतम	:	सर्वोत्तम
उत्पादन निर्देशांक	:	वस्तु के भार में निर्माण व्यय का अनुपात
खण्डीय स्थानीयकरण	:	उद्योग की विभिन्न स्वतंत्र क्रियाओं में अलग-अलग स्थान पर स्थापित होने की प्रवृति।
निर्माण गुणांक	:	स्थानीयकरण भार नें निर्माण व्यय का अनुपात
निगनात्मक	:	सामान्य के आधार पर विशिष्ट निष्कर्ष निकालने की पद्धति
पदार्थ निर्देशांक	:	निर्मित माल के भार में कच्चे माल के भार का अनुपात
यातायात स्थानीयकरण	:	परिवहन लागत न्यूनतम होने के कारण स्थानीयकरण
स्थानीयकरण भार	:	परिवहन किया जाने वाला कुल भार
स्थानीयकरण	:	एक क्षेत्र में एक प्रकार के उद्योगों का जमाव
स्थान निर्धारण	:	न्यूनतम लागत के आधार पर उद्योग के लिए स्थान का चुनाव
सह स्थानीयकरण	:	परस्पर निर्भर उद्योगों का क्षेत्र विशेष नें जमाव
संकेन्द्रण	:	विभिन्न उद्योगों का एक क्षेत्र में जमाव
श्रम लागत निर्देशांक	:	निर्मित माल के भार में श्रम-लागत का अनुपात
श्रम गुणांक	:	स्थानीयकरण भार में श्रम लागत निर्देशांक का अनुपात
श्रम-स्थानीयकरण	:	श्रम लागत न्यूनतम होने के कारण स्थानीयकरण

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कुलश्रेष्ठ, आर एस.	:	औद्योगिक अर्थशास्त्र - साहित्य भवन, आगरा
गंगेल, अरूण कुमार	:	औद्योगिक संगठन एवं प्रबन्ध
	:	मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्त्र अकादमी, भोपाल
सक्सेना, एस.सी.	:	भारत में उद्योगों का संगठन वित्त व्यवस्था एवं प्रबन्ध किताब घर, ग्वालियर
सिन्हा, बी.सी. एवं सिन्हा, पी	:	औद्योगिक अर्थशास्त्र लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
श्री वास्तव, ओ.एस.	:	रिजनल इकोनॉमिक्स

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उद्योगों के स्थानीयकरण से आप क्या समझते हैं? स्थानीयकरण के सम्बन्ध में थुनेन के विचारों की विवेचना कीजिये।
2. वेबर के औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धांत का संक्षिप्त वर्णन कीजिये। अपने विश्लेषण को भारतीय अनुभव के आधार पर पुष्ट कीजिये।
3. सार्जेण्ट फलोरेंस द्वारा प्रतिपादित उद्योगों के स्थान निर्धारण के आगनात्मक सिद्धांत की समीक्षात्मक व्याख्या कीजिये।
4. "वेबर एवं फलोरेंस के सिद्धांत परस्पर पूरक हैं।" कथन की समीक्षा कीजिये।
5. निम्नांकित प्रत्ययों को स्पष्ट कीजिए :

   (अ) स्थानीयकरण एवं संकेन्द्रण

   (ब) पदार्थ निर्देशांक

   (स) श्रम गुणांक

   (ट) स्थानीयकरण गुणांक

इकाई 4

बाजार के आकार एवं स्वरूप के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 बाजार के निर्धारक तत्व

4.3 बाजार के आकार एवं प्रारूप का निर्धारण

4.3.1 समयानुसार निर्धारण

4.3.2 भौगोलिक दशानुसार बाजार का आकार

4.3.3 विक्रय मात्रा के आधार पर बाजार का आकार

4.3.4 विशिष्टीकरण के आधार पर बाजार का प्रारूप

4.3.5 वैधानिकता के आधार पर बाजार का प्रारूप

4.3.6 प्रतियोगिताधारित बाजार का स्वरूप

4.3.7 विक्रय प्रक्रियानुसार बाजार का स्वरूप

4.4 बाजार का आकार एवं प्रारूप और भारत

4.5 बाजार विस्तार

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 उद्देश्य

अध्याय के अध्ययन की समाप्ती पर निम्न तथ्यों की जानकारी प्राप्त होगी : -

(1) बाजार अवधारणा का परिचय

(2) विभिन्न आधारों पर बाजार के आकार का वर्गीकरण

(3) वर्गीकृत बाजार की आवश्यकता को बढावा देना

(4) बाजार को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत करना

(5) बाजार के आकार एवं प्रारूप के वर्गीकरण का औचित्य

(6) भारत में विभिन्न वस्तुओं के बाजार का ज्ञान

(7) भारतीय आर्थिक दशाओं में बाजार की व्यूहरचना

4.1 प्रस्तावना

सामान्य शब्दों में बाजार शब्द का अभिप्राय उस स्थान से होता है जहाँ पर क्रेता एवं विक्रेता वस्तुओं के विनिमय के लिए एकत्रित होते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र के अन्तर्गत बाजार शब्द को व्यापक रूप में व्यक्त किया जाता है। अर्थशास्त्र में बाजार शब्द का अभिप्राय उस सम्पूर्ण

क्षेत्र से होता है जहाँ पर वस्तु विशेष के क्रेता एवं विक्रेता आपस में प्रतियोगिता के आधार पर उस क्षेत्र भर के लिए वस्तु की एक कीमत स्थापित कर देते हैं। दूर से भी क्रय विक्रय बगैर ग्राहक व बेचने वाले के एक जगह इक्कठा हुए भी स्थापित हो जाता है।

बाजार शब्द को विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा परिभाषित किया गया है-

ऐली के अनुसार – 'बाजार शब्द का अभिप्राय उस साधारण क्षेत्र से है, जिसमें किसी वस्तु - विशेष की कीमतों का निर्धारण करने वाली शक्तियाँ कार्यशील हैं।"

सिजविक के अनुसार – "बाजार क्रेता एवं विक्रेताओं का एक ऐसा समूह है जिसमें दोनों के मध्य इस प्रकार के वाणिज्य सम्बंध स्थापित हुए हों, जिसमें प्रत्येक को आसानीपूर्वक यह पता चल जाए कि अन्य व्यक्ति समय-समय पर कुछ वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय किन कीमतों पर करते हैं।"

केरनक्रास के अनुसार – "बाजार, क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच किसी वस्तु या साधन के विनिमय का जाल सूत्र है।"

जेवंस के अनुसार – "बाजार शब्द व्यक्तियों का वह समूह है जिनमें व्यापारिक सम्बन्ध होते हैं और वस्तुओं में मिश्रित व्यापार करते हैं।"

चैपमेन के शब्दों में – "बाजार का अभिप्राय, स्थान विशेष से न होकर वस्तु या वस्तुओं और उनके क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच प्रत्यक्ष प्रतियोगिता से होता हैं।"

प्रो. जे. के. मेहता के अनुसार – "बाजार एक ऐसी स्थिति है जिसमें कोई वस्तु विक्रय के लिए उस स्थान पर रखी जाती है जिस स्थान पर उसकी माँग हो।"

4.2 बाजार के निर्धारक तत्व :

(अ) क्षेत्र - बाजार शब्द का अभिप्राय अर्थशास्त्र में किसी स्थान विशेष से न होकर उस क्षेत्र से होता है जिसमें वस्तुओं के खरीदने एवं बेचने वाले फैले हुए होते हैं और उनके मध्य आपस में प्रतियोगिता होती है। जिस सीमा तक वस्तुओं के क्रेता एवं विक्रेता फैले हुए होते हैं वह सारा क्षेत्र कहलाता है। यह क्षेत्र एक गाँव, राज्य, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो सकता है। यदि क्रेता एवं विक्रेता दोनों में से कोई एक, एक राष्ट्र का तथा दूसरा, दूसरे राष्ट्र का हो तो बाजार का क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं तक होगा।

(ब) वस्तु - अर्थशास्त्र में बाजार के अन्तर्गत एक समय में एक ही वस्तु को माना जाता है। सामान्यत: व्यवहार में एक स्थान पर एक से अधिक वस्तुओं का विनिमय किया जा सकता है जैसे- घी, कपड़ा, किराना का सामान आदि। परन्तु अर्थशास्त्र में प्रत्येक वस्तु का

अलग-अलग बाजार माना जाता है जैसे कपड़ा बाजार, अनाज बाजार, सज्जी बाजार आदि। संक्षेप में अर्थशास्त्र के अन्तर्गत जितनी वस्तुएं होती हैं उतने ही वस्तु के लिए बाजार माने जाते हैं।"

(स) क्रेता और विक्रेता - दोनों ही बाजार के महत्वपूर्ण अंग हैं। दोनों में से किसी एक के भी अभाव में बाजार की कल्पना नहीं की जा सकती है। बाजार में दोनों की संख्या निश्चित नहीं होती है। यह संख्या बाजार के आकार, वस्तु की प्रकृति, उपभोक्ता की आदत एवं स्वभाव के ऊपर निर्भर करती है।

(द) प्रतियोगिता - बाजार में क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य स्वतंत्र एवं स्वच्छ प्रतियोगिता होती है और वस्तुओं का विनिमय करते समय किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होता है।

(य) मूल्य या कीमत - बाजार में क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य स्वतंत्र प्रतियोगिता होने के कारण एक समय में वस्तु का एक ही मूल्य पाया जाता है यदि वस्तु के मूल्यों में अन्तर होता है तब माँग एंव पूर्तियों की शक्तियों की क्रियाशीलता के कारण उनमें समान होने की प्रवृत्ति होती है।

4.3 बाजार के आकार एवं प्रकृति का निर्धारण

4.3.1 समयानुसार निर्धारण - समय के आधार पर बाजार के निम्न प्रकार होते हैं-

(अ) अति अल्पकाल बाजार - यह बाजार की वह दशा होती है जिसमें वस्तु की पूर्ति स्थिर रहती है और वस्तु का मूल्य निधारण पूर्णरूप से वस्तु की माँग पर निर्भर करता है। सामान्यत: शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएं जैसे-फल, सज्जी, दूध, मछली आदि का बाजार अति अल्पकाल में आता है।

(ब) अल्पकाल बाजार - इस बाजार में वस्तु की पूर्ति को वस्तु की स्टॉक की सीमा तक ही बढाया जा सकता है। वस्तु की पूर्ति मांग की मात्रा तक नहीं बढ़ाई जा सकती है। इसलिए इन बस्तुओं के मूल्य निर्धारण में मांग का ही अधिक प्रभाव रहता है।

(स) दीर्घकाल बाजार - यह अवधि इतनी लम्बी होती है कि माँग के अनुसार पूर्ति को समायोजित किया जा सकता है इसलिए बाजार की इस स्थिति में वस्तु के मूल्य निर्धारण में मांग एवं पूर्ति का समान प्रभाव रहता है।

(द) अति दीर्घकाल बाजार - बाजार की इस दशा में वस्तु का उत्पादक उपभोक्ता के स्वभाव, रूचि और फैशन के अनुसार वस्तु का निर्माण कर सकता है। और वस्तु का उत्पादन किसी भी सीमा तक बढ़ाया जा सकता है इसलिए इस बाजार में वस्तु की माँग की तुलना में वस्तु की पूर्ति अधिक लोचदार होती है। वस्तु के मूल्य निर्धारण में पूर्ति का अधिक प्रभाव रहता है।

4.3.2 भौगोलिक दशानुसार बाजार का आकार

(अ) स्थानीय बाजार - वस्तुओं के क्रेता एवं विक्रेता यदि दोनों एक ही स्थान के होते हैं। उस बाजार को स्थानीय बाजार कहते हैं। ये बाजार प्राय: निम्न वस्तुओं के होते हैं-

(i) शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएँ (सब्जियाँ, दूध, फल, मछली आदि)

(ii) अधिक भारी वस्तु किन्तु कम मूल्यवान (पत्थर)

(iii) किसी स्थान विशेष के उपयोग को वस्तुएँ

(ब) राज्य बाजार - जब वस्तु के क्रेता और विक्रेता एक राज्य की सीमाओं में रहते हैं उसे राज्य बाजार कहते हैं। जैसे यदि क्रेता जयपुर तथा विक्रेता उदयपुर में रहता है तब यह बाजार राज्य बाजार कहलायेगा।

(स) राष्ट्रीय बाजार - वस्तुओं का आदान प्रदान एक देश ही सीमाओं किन्तु अन्तर्राज्य सीमाओं में होता है उसे राष्ट्रीय बाजार कहते हैं।

(द) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार - यदि किसी वस्तु का क्रय-विक्रय विश्व के विभिन्न भागों में किया जाता है और उसके क्रेता एवं विक्रेता सम्पूर्ण विश्व में पाये जाते है उसे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कहते हैं। संक्षेप में यह कह सकते हैं जब वस्तु का विनिमय एक राष्ट्र की सीमाओं को पार कर जाता है उसे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कहते हैं।

4.3.3 विक्रय मात्रा के आधार पर बाजार का आकार

(अ) फुटकर बाजार - जब बाजार में वस्तुओं का क्रय-विक्रय थोड़ी-थोड़ी मात्रा में होता है उसे खुदरा या फुटकर बाजार कहते है। इस बाजार को उपभोक्ता वस्तु बाजार भी कहते है जिसमें उपभोक्ता अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुओं को बाजार से खरीदते हैं।

(ब) थोक बाजार - इस बाजार में वस्तुओं का विनिमय बड़ी मात्रा में किया जाता है। व्यवसायों द्वारा वस्तुओं का क्रय करके उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकतानुसार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में वस्तुओं का विक्रय किया जाता है।

4.3.4 विशिष्टीकरण के आधार पर बाजार का आकार

(अ) मिश्रित बाजार - जिस बाजार में कई वस्तुओं का क्रय-विक्रय एक साथ किया जाता है।

(ब) विशिष्ट बाजार - जिस बाजार में केवल किसी एक वस्तु अथवा उसकी किस्म का ही विनिमय किया जाता है उसे विशिष्ट बाजार कहते हैं जैसे- सर्राफा बाजार।

4.3.5 वैधानिकता के आधार पर

(अ) वैद्य बाजार - जब किसी बाजार में वस्तुओं का विनिमय वैधानिक नियमानुसार किया जाता है और प्रत्येक व्यक्ति को उचित प्रतियोगिता मूल्य पर वस्तुएँ प्राप्त होती हैं ऐसे बाजार को वैद्य बाजार कहते हैं।

(ब) अवैद्य बाजार - जब वस्तुओं का आदान-प्रदान वैधानिक नियमानुसार नहीं होता है उसे अवैद्य बाजार कहते हैं।

4.3.6 प्रतियोगिताधारित बाजार का स्वरूप

(अ) पूर्ण प्रतियोगिता बाजार - इस बाजार में क्रेताओं एवं विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है। वस्तु भेद नहीं होता, क्रेता व विक्रेता अलग-अलग से मूल्य गिरा या बढ़ा नहीं सकते। लगाव मूल्य से होता है क्रेता व विक्रेता से नहीं। मांग लोचदार होती है। उत्पादन कर्ता का उत्पादन में आना व निकलना स्वतंत्र है। बाजार में वस्तु का एक मूल्य होता है। क्रेताओं और विक्रेताओं दोनों को बाजार की पूर्ण जानकारी होती है तथा बाजार में प्रतियोगिता पाई जाती है।

(ब) एकाधिकार बाजार - इस बाजार के अन्तर्गत वस्तु का एक ही उत्पादक होता है। यह बाजार में असामान्य लाभ अर्जित करता है। बाजार में एकाधिकारी का कोई प्रतियोगी नहीं होता है। बाजार में वस्तु की प्रतिस्थापन वस्तु नहीं होती है।

(स) अल्पाधिकारी - बाजार के इस स्वरूप में कुछ उत्पादनकर्त्ता व विक्रेता ही होते हैं। यदि किसी बाजार में वस्तु की पूर्ति कुछ विक्रेताओं द्वारा की जाती है तो उसे अल्पाधिकार कहते हैं। विक्रेताओं की संख्या कम होने के कारण विक्रेता वस्तु की पूर्ति एवं उसके मूल्य के प्रति जागरूक रहते हैं। इस बाजार में प्रत्येक विक्रेता की उत्पादन नीति दूसरे विक्रेता की उत्पादन नीति को प्रभावित करती है।

(द) एकाधिकृत अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार - इस बाजार में विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है। बाजार में वस्तु का विक्रय एवं उत्पादन विक्रेता द्वारा वस्तुओं में विभेद करके किया जाता है। सामान्यत: बाजार में न तो पूर्ण प्रतियोगिता की और न ही एकाधिकार की स्थिति होती है। इसलिए ये दोनों काल्पनिक दशायें हैं। बाजार में सामान्यत: इन दोनों बाजारों के बीच की स्थिति पाई जाती है।

(र) द्वयाधिकारी - बाजार के इस स्वरूप में केवल दो ही उत्पादक होते हैं। दोनों के द्वारा एक ही वस्तु का उत्पादन किया जाता है। वस्तु की उत्पादन एवं किस्म में समरूपता पाई जाती है। दोनों उत्पादकों का कार्य-क्षेत्र अलग-अलग होता है। यदि दोनों उत्पादक मिल जाते है ऐसी स्थिति में बाजार में से द्वयाधिकार की स्थिति समाप्त होकर एकाधिकार बाजार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

तालिका 4.1

बाजार का प्रतियोगिता के आधार पर आकार एवं स्वरूप

प्रतियोगिता का प्रकार	उत्पादकों की संख्या	वस्तु विभेद का अंश	अर्थव्यवस्था का क्षेत्र	कीमत पर नियंत्रण का हिस्सा	विक्रय के तरीके	प्रवेश स्थिति
1. पूर्ण प्रतियोगिता	अनेक	एक ही वस्तु	कृषि गत उद्योग	बिल्कुल नहीं	विनियम या नीलामी	स्वतंत्र प्रवेश एवं वहिर्गमन प्रतिबंध नहीं
2. अपूर्ण प्रतियोगिता	अनेक	काल्पनिक भेद या मामूली भेद	टूथपेस्ट खुदरा व्यापार कंपनियां		विज्ञापन तथा किस्म प्रतियोगिता	

					निर्धारित कीमत	
3. विभेदात्मक	कम	वस्तु विभेद	इस्पात	थोड़ा या कम		वस्तु विभेद के आधार पर प्रवेश
4. एकाधिकार	उत्पादक		एल्मोनियम			
5. अल्पाधिकर	कम उत्पदक	कुछ विभेद	कारे मशीनरी			
6. एकाधिकार	एक ही	स्थानापन्न नहीं	सार्वजनिक उपक्रम जैसे विद्युत, गैस एवं रेल सेवा	विकासशील तथा संस्थागत किस्म का विज्ञापन जिसके माध्यम द्वारा जनता से संपर्क किया जाता है		प्रवेश पर प्रतिबंध

4.3.7 विक्रय प्रक्रियानुसार बाजार का प्रारूप

(अ) ग्रेडिंग के आधार पर - इस विधि द्वारा वस्तुओ का विनिमय ग्रेड के आधार पर किया जाता है। जैसे- चावल के विभिन्न ग्रेड है- लाल किला, हरा किला, देहरादून आदि।

(ब) ट्रेडमार्क द्वारा - वस्तुओं का विनिमय वस्तु केर ट्रेडमार्क के आधार पर किया जाता है- जैसे- लक्स, लिरिल, पाउडर, निराला दन्त मंजन आदि।

(स) प्रमाणित वस्तु के नमूने के आधार पर - विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं का विनिमय वस्तुओं के नमूनों के आधार पर किया जाता है जैसे - साबुन, क्रीम, पाउडर आदि।

(द) जाँच के आधार पर - जिस बाजार में वस्तुओं का क्रय-विक्रय जाँच के आधार पर किया जाता है उसे निरीक्षण या जाँच द्वारा बेची जानी वाली वस्तुएँ कहते हैं जैसे - गाय, बैल, ऊँट, घोडा, भैंस आदि का क्रय-विक्रय इनकी जाँच या देखने के बाद ही किया जाता है।

4.4 बाजार का आकार एवं प्रारूप और भारत

भारतीय अर्थव्यवस्था एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है जो कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अपना आर्थिक विकास विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से नियोजित तरीके से कर रहा है। पिछले 50 वर्षों में भारत ने अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र-कृषि, उद्योग, व्यापार, वितरण, बैकिंग एवं विनियोग में द्रुतगामी विकास किया है।

भारत में कृषि उद्योग में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति देखने को मिलती है। क्योंकि कृषि द्वारा उत्पादित वस्तु समरूप होती है। बाजार में बहुत से कृषक होते हैं। स्वतंत्र रूप से कोई भी कृषक बाजार में वस्तु की मात्रा एवं मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता है।

औद्योगिक वस्तुओं में जैसे सीमेन्ट, कागज, मशीनरी, ट्रक, कार इत्यादि में कुछ उत्पादकों का प्रभाव होने से इन उद्योगों में अल्पाधिकार की स्थिति पाई जाती है। लेकिन द्रुतगामी विकास एवं औद्योगिकरण के कारण बाजार में एकाधिकृत बाजार की स्थिति पाई जाती है। सामान्यत: टुथपेस्ट, डिटरजैन्ट, कपड़ा, तेल, कास्मेटिक उद्योग एकाधिकृत बाजार की

स्थिति के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। परिवहन उद्योग, जल की पूर्ति, गैस, विद्युत आदि सार्वजनिक सेवाओं के उद्योग या उपक्रमों में एकाधिकार की प्रवृति पाई जाती है।

4.5 बाजार विस्तार

किसी वस्तु का बाजार संकीर्ण है या विस्तृत यह निम्न बातों पर निर्भर करता है-

(अ) वस्तु के गुण और

(ब) देश की आंतरिक व्यवस्था

किसी वस्तु का बाजार उस समय संकीर्ण होगा जबकि किसी वस्तु विशेष की माँग एक ही क्षेत्र तक सीमित रहती है। विस्तृत बाजार में वस्तु विशेष के क्रेताओं एवं विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है और बाजार का क्षेत्र सीमित नहीं होता है। इस बाजार में क्रेताओं और विक्रेताओं का फैलाव बड़े क्षेत्र में होता है।

(अ) किसी भी वस्तु का बाजार उस वस्तु के गुणों पर निर्भर करता है जो कि इस प्रकार है-

(i) वस्तु की मांग व्यापक और नियमित होने पर बाजार विस्तृत एवं मांग सीमित होने पर बाजार संकीर्ण होगा जैसे- गेहूं की मांग व्यापक होने के कारण गेहूं का बाजार विस्तृत है।

(ii) यदि वस्तु की पूर्ति उसकी मांग के अनुसार शीघ्र बढ़ायी जा सकती है तो बाजार विस्तृत तथा पूर्ति को मांगानुसार नहीं बढ़ाने पर बाजार संकीर्ण होगा।

(iii) वस्तु टिकाऊ होने पर बाजार विस्तृत तथा शीघ्र नष्ट होने वाली होने पर बाजार संकीर्ण होगा। फल, सब्जी, दूध मछली आदि का बाजार संकीर्ण होता है।

(iv) वस्तु का वजन कम तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से भेजा जा सकता है तो ऐसी वस्तु का बाजार विस्तृत तथा भारी वस्तु होने पर और मूल्य कम होने पर बाजार संकीर्ण होगा।

(v) वस्तु की स्थानापन्न एवं प्रतिस्थापन वस्तुएँ होने पर बाजार संकीर्ण तथा दूसरी ओर स्थानापन्न वस्तुओं के अभाव में वस्तु का बाजार विस्तृत होगा।

(ब) देश की आन्तरिक व्यवस्था -

(i) राजनैतिक स्थिरता, कुशल प्रशासन, शान्ति, तथा सुरक्षा व्यवस्था अच्छी है उस देश का बाजार स्थिर एवं विस्तृत होगा। तथा जिस देश में यह उपरोक्त बातें नहीं जाती उस देश का बाजार संकीर्ण होगा।

(ii) बाजार का संकीर्ण एवं विस्तृत होना उस देश की परिवहन व्यवस्था एवं परिवहन लागत पर भी निर्भर करता है।

(iii) देश की औद्योगिक, व्यापारिक एवं आर्थिक नीतियां भी देश के बाज़ार के रूप को प्रभावित करती हैं।

(iv) श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण की नीतियाँ भी बाजार के स्वरूप को प्रभावित करती है।

(v) पूँजी निर्माण की दर, विनियोग एवं बचत की दर तथा देश की सुरक्षा एवं सुदृढ़ बैकिंग व्यवस्था से भी देश में बाजार का स्वरूप प्रभावित होता है।

4.6 सारांश

बाजार शब्द का आशय किसी स्थान विशेष तक सीमित न होकर उस सम्पूर्ण क्षेत्र से लगाया जाता है। जहाँ पर क्रेता एवं विक्रेता स्वतन्त्रता पूर्वक वस्तुओं का विनिमय करते हैं। बाजार में क्रेताओं और विक्रेताओं का स्वतंत्र प्रवेश एवं बहिर्गमन होता है। क्रेता अपनी पसन्द की वस्तु मूल्य देकर प्राप्त करते हैं। तथा विक्रेता उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जिनकी मांग क्रेताओं द्वारा की जाती है। बाजार की अवधारणा यह बताती है कि बाजार में किस वस्तु का उत्पादन किया जा रहा है? उस उत्पादित वस्तु का मूल्य क्या होगा?

बाजार का विभिन्न आधारों क्षेत्रानुसार, किस्म एवं मात्रा के आधार पर, प्रतियोगिता के आधार पर तथा समयानुसार वर्गीकरण किया गया है। राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में जैसे कृषि क्षेत्र में पूर्ण प्रतियोगिता, औद्योगिक वस्तुओं जैसे-सीमेंन्ट, कागज, मशीनरी, ट्रक, कार, बस आदि में अल्पाधिकार तथा एकाधिकारात्मक और राष्ट्र के विभिन्न सार्वजनिक सेवा क्षेत्रों-परिवहन, उद्योग, जल आपूर्ति, विश्रुत एवं गैस आदि क्षेत्रों में एकाधिकार बाजार की स्थिति पाई जाती है।

वस्तु की माँग स्थान विशेष तक सीमित होने पर संकीर्ण तथा सीमित न होने पर विभिन्न क्षेत्रों तक फैला हुआ होता है तब उसे विस्तृत बाजार कहते हैं। बाजार का स्वरूप वस्तु के गुण तथा देश की आन्तरिक व्यवस्था पर निर्भर करता है। ये विशेषताएं यातायात व्यवस्था, वस्तु का स्वभाव, माँग की व्यापकता, स्थानपत्र एवं निकट वस्तुओं की उपलब्धता, देश में शान्ति एवं सुरक्षा, औद्योगिक वातावरण आदि देश के बाजार के स्वरूप को प्रभावित करते हैं।

4.7 शब्दावली

(1) MARKET - An area over which buyers and sallers communicate their purchase and production decision such that price tends to reach the same level throughout, we may speak of a specific market (for some good) or the whole market (Market economy)

(2) CONSUMERS - Buyers of finished goods and services.

(3) SUBSTITUTE GOOD - A good which is easily used in place of another good.

(4) COMPLEMENTORY - A good which is ordinarily used together with another good.

(5) विनियम - स्वतंत्र, पारस्परिक एवं वैधानिक आदान-प्रदान।

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अग्रवाल, एम. डी.	अर्थशास्त्र के सिद्धान्त
आहुजा, एच. एल	अर्थशास्त्र के सिद्धान्त एवं व्यवहार
औझा, बी. एल.	अर्थशास्त्र के सिद्धान्त
झिगन, एम. एल.	व्यष्टि अर्थशास्त्र

Anderson, Puysllsze, Shepherd — Economics
Mehta, P.L. — Managerial Economics
Misra, S.K. Puri, VK — Micro Economics
Rebert Haney Scott — Principles of Economics

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) बाजार शब्द से आप क्या समझते हैं? उन कारणों का वर्णन कीजिए जो किसी वस्तु के बाजार को विस्तृत बनाते हैं।

(2) बाजार शब्द की व्याख्या कीजिए और निम्न वस्तुओं के बाजार के आकार के सम्बंध में आपने विचार प्रकट कीजिए- सोना, दूध, दुर्लभ चित्र, रिजर्व बैंक, मकान

(3) निम्न दशाओं में बाजार की संरचना को बतायें और उनके पक्ष में अपना तर्क प्रस्तुत कीजिए-

(i) भारत की मण्डियों में गेहूं का बाजार
(ii) लक्स नहाने का साबुन
(iii) भिलाई इस्पात कारखाने का विक्री योग्य इस्पात
(iv) राजस्थान राज्य विद्युत मण्डल द्वारा विद्युत की आपूर्ति
(v) राजस्थान में सीमेन्ट उद्योग

(4) क्षेत्र के आधार पर बाजारों का वर्गीकरण कीजिए तथा ईंटों, हरी सब्जियों तथा बहुमूल्य धातुओं के बाजारों का क्या क्षेत्र होगा? उदाहरण देकर अपने तर्क प्रस्तुत कीजिए।

(5) "बाजार से अभिप्राय उस समस्त क्षेत्र से होता है जहाँ किसी वस्तु विशेष के मूल्यों को निर्धारित करने वाली शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं।" व्याख्या कीजिए एवं बताइए कि बाजार का वर्गीकरण किन आधारों पर किया जा सकता है।

इकाई 5
साम्यावस्था और असाम्यावस्था सिद्धान्त
लौश मॉडल व उसकी आलोचना

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 बाजार दशाएं एवं साम्यावस्था
5.3 साम्यावस्था पर सैद्धान्तिक व सामान्य विचार वर्णन
5.4 क्षेत्रीय नियोजन और साम्यावस्था सिद्धान्त
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस अध्याय में हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर वस्तुओं की मांग व पूर्ति की साम्यावस्था और असाम्यावस्था का वर्णन करेंगे। सरल उदाहरण स्पष्ट करेंगे कि, सरल परिस्थितियों में मांग व पूर्ति का व्यवहार किस प्रकार कार्य करता है। यह - विवरण साम्यावस्था सिद्धान्त के ढांचे में आच्छादित (ढका हुआ) है। चूंकि क्षेत्रों में उत्पादकता, संसाधनों और जनसंख्या की संरचना के विभिन्न स्तर पाये जाते है, इसलिए वस्तुओं का आवागमन एक स्थान (पूर्ति बिन्दु) से दूसरे स्थान (मांग बिन्दु) पर होता है। इसके लिए बाजार क्षेत्र के यातायात व रेखागणित (ज्योमिति) के वर्णन की आवश्यकता होती है। लोश (Losch) एक विख्यात क्षेत्रीय अर्थशास्त्री ने कुछ मान्यताओं के आधार पर बाजार रेखागणित की प्रकृति को समझाया है। इस सिद्धान्त की समर्थनीयता को समझने के लिए इन मान्यताओं का परीक्षण किया जाना चाहिए। यह विवरण अधिक जटिल परिस्थितियों को स्पष्ट करने के लिए सरल उदाहरणों का उपयोग करता है।

5.1 प्रस्तावना

मांग व पूर्ति के सिद्धान्त का अनुकरण करते हुए, वस्तुओं व मानव शक्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान को आवागमन होता है। यह मांग व पूर्ति तत्व, मांग व पूर्ति के बिन्दुओं के बीच यातायात की लागत से प्रभावित होते है। चूंकि मांग व पूर्ति बहुत से तत्वों से प्रभावित होती है, इसलिए वे हमेशा परिवर्तनशील होती हैं। कभी-कभी ऐसा लगता है कि मांग व पूर्ति स्थिर हैं। अर्थात, विक्रेताओं से क्रेताओं अर्थात दुकान से उपभोक्ताओं, एक दुकान से दूसरी दुकान, और एक फर्म से दूसरी फर्म को वस्तुओं का आवागमन नहीं होता। इसे स्थिर स्थिति, गतिहीन या साम्यावस्था कहा जाता है।

अर्थशास्त्र की अधिकांश पाठ्य-पुस्तकें साम्यावस्था (ई) के विचार पर बल देती है। दुर्भाग्यवश, वास्तविक विश्व में साम्य कठिनाई से प्राप्त होते हैं, और जब भी यदि होते हैं तो भी, उन्हें अभिन्नित करना आसान नहीं होता।

एक स्थान से दूसरे स्थान पर, तथा क्षेत्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं के पार रेलगाड़ियों, ट्रकों व अन्य वस्तु वाहकों के द्वारा वस्तुओं का आवागमन, विभिन्न गहनताओं से कार्य कर रही अस्थिर बाजार दशाओं की व्याखा करती है। इस जटिलता को समझने के लिए मंहगी निरन्तर सूचनाओ, की प्राप्ति व देखरेख, और विश्लेषण की आवश्यकता होती है।

साम्यावस्था नहीं होती तो असाम्यावस्था (डी०-ई०) कार्यशील होती है। दूसरे शब्दों में ई० और डी० ई० एक ही समतल (Plane) पर दो बिन्दु होते हैं, जो विपरीत शक्तियां होती हैं। दो अंतिम स्थितियों (Extremeties) को समझने का यह सरलतम तरीका है। मांग व पूर्ति सदैव परिवर्तनशील होती हैं। केवल प्रवृतियां संकेत दे सकती हैं कि, परिस्थितियां किस दिशा में परिवर्तित हो रही हैं।

5.2 बाजार दशाएं एवं साम्यावस्था:

संतुलन या साम्यावस्था की सरलतम स्थिति यह है, जब एक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने प्रत्यक्ष कार्य से करता है। जब एक लड़का बेर या अन्य जंगली फल स्वयं के खाने के लिए तोड़ता है तो यह कार्य कुछ समय तक संभवत: स्वयं आनन्ददायक होता है। कुछ समय के लिए बेर खाने का आनन्द इन्हें तोड़ने के कष्ट के लिए भुगतान के लिए पर्याप्त से अधिक होता है। लेकिन जब वह काफी बेर खा लेता है तो, बेरों की उसकी इच्छा घटती है। अब बेर तोड़ने का कार्य थकान करने लगता है। फल तोड़ने के कार्य की एकरसता के कारण नीरसता की भावना हो सकती है। साम्यावस्था उस समय प्राप्त होती है, जब खेलने की तत्परता और बेर तोड़ने के कार्य की अनिच्छा, बेर खाने की इच्छा को परस्पर संतुलित (Counterbalance) करती है। फल ताड़ने से मिलने वाली संतुष्टि अपने अधिकतम तक पहुंच गयी है क्योंकि, इस समय तक नये फल तोड़ने के कार्य से उसके आनन्द में कमी की तुलना में वृद्धिअधिक होती है (संतुष्टि कर वक्र में वृद्धि होगी)। उस उच्चतम-आनन्द के समय के बाद, और अधिक फल तोड़ने से उसके आनन्द में होने वाली वृद्धि से कमी अधिक होगी। (संतुष्टि वक्र में गिरावट होगी)।

यह एक सरल उदाहरण है और अब हम एक ऐसा उदाहरण देंगे जिसमें साम्यावस्था नहीं होती हो। एक आकस्मिक सौदे में जो एक व्यक्ति दूसरे के साथ करता है, उदाहरणार्थ जब दो ग्रामीण - एक खाती और एक लौहार, एक कुर्सी और एक कुल्हाड़ी के बीच वस्तु-विनिमय करते हैं। तो, यहां मुश्किल से ऐसा कुछ है जिसे सही रूप में मांग व पूर्ति की साम्यावस्था कहा जा सके। मगर शायद दोनों पक्षों को संतुष्टि तत्व है। क्योंकि शायद कोई कुर्सी के लिए कुल्हाड़ी के अलावा कुछ और भी देने को तैयार होगा, अन्यथा लौहार को कुर्सी प्राप्त नहीं होगी। यह बिल्कुल सम्भव है कि आवश्यकता के कारण, खाती कुल्हाड़ी के लिए कुछ और भी दे सकता है। अपने इस प्रकार के सौदों पर गावों के मेला या घर-घर जाकर चूड़ियाँ बेचने या छोटे कस्वों में

दुकानदारों के द्वारा कपड़े के लिए सौदों पर ध्यान दिया होगा। वस्तु-विनिमय एक जटिल क्रिया है, जो इतिहास में क्रय व विक्रय के पहिले शुरू हुई थी। यह वास्तव में संभव है कि, वस्तु-विनिमय के अन्तर्गत सही (तत्व) साम्यावस्था प्राप्त की जा सके। सही साम्यावस्था मूल्य के सरलतम उदाहरण, एक अधिक उन्नत सभ्यता की स्थिति के बाजारों में पाये जाते हैं।

हम लेन-देन के एक वर्ग को जिसका हमने काफी वर्णन किया है, उसको कम महत्वपूर्ण वर्ग का मानकर अलग कर सकते हैं। इनका सम्बन्ध महान चित्रकारों के चित्रों, बिरले सिक्कों व अन्य वस्तुओं से है, जिनको बिल्कुल भी श्रेणीबद्ध नहीं किया जा सकता इनमें से प्रत्येक वस्तु जिस कीमत पर बिकती है, वह इस बात पर निर्भर करती है कि, उनके विक्रय के समय क्या कोई अमीर व्यक्ति उपस्थित है, जिसका इन वस्तुओं के प्रति एक विशेष आकर्षण है। यदि नहीं तो शायद यह उन दलालों के द्वारा खरीदी जायेगी जो इन्हें लाभ पर बेचने के योग्य मानते हैं और कीमतों में अन्तर जिन पर एक ही चित्र हर असली नीलामी पर बिकता है काफी होते हैं, वे अन्तर और भी अधिक होंगे, यदि व्यवसायिक क्रेताओं के द्वारा इन पर स्थिरीकरण का प्रभाव न हो।

अब हम आधुनिक जीवन के सामान्य लेन-देन पर अपना ध्यान मोड़ते हैं। हम एक कस्वे में, गेहूँ के बाजार से एक उदाहरण ले सकते हैं। सरलता के लिए हम मानते है कि बाजार में संपूर्ण गेहूं एक ही प्रकार (गुणवता) का है। गेहूं की मात्रा जो एक कृषक या अन्य विक्रेता किसी एक कीमत पर विक्रय के लिए देने को तत्पर है, उसका निर्धारण उसके पास मुद्रा की आवश्यकता, और उसकी उस बाजार की वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं की गणना से निर्धारित होगा, जिससे उसका सम्बन्ध है। कुछ ऐसी कीमतें है जिन्हें कोई भी विक्रेता स्वीकार नहीं करेगा। साथ ही कुछ ऐसी कीमतें भी है, जिनको कोई इन्कार नहीं करेगा। इनके बीच कुछ अन्य कीमतें भी है, जिन्हें छोटी या बड़ी मात्राओं के लिए बहुत से सभी विक्रेताओं के द्वारा स्वीकार किया जायेगा। प्रत्येक, बाजार की अवस्था का अनुमान लगाने का प्रयास करेगा और, उसी के अनुसार कार्य करेगा। मान लीजिये कि वास्तव में 600 किलोग्राम से अधिक गेहूं नहीं है, जिनके मालिक निम्नतम रु 35/ - कीमत स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। लेकिन एक अन्य 100 किलोग्राम के मालिक रु 36/ - की कीमत और फिर एक अन्य दूसरे 300 किलोग्राम के मालिक रु० 37/ - की कीमत के लिए आकर्षित होंगे। इन तथ्यों को एक तालिका में इस (निम्न) प्रकार रखा जा सकता है।

तालिका 5.1

मांग अनुसूची

कीमत (रु०)	मालिक बेचने को तत्पर है (किलो.)	क्रेता खरीदने को तत्पर है (किलो.)
37	1000	600
36	700	700
35	600	900

हालांकि उनमें से कुछ को वास्तव में विक्रय के बिना बाजार छोड़ने के बजाय रु० 38 लेने को तैयार है, लेकिन वे एकदम यह नहीं दर्शायेंगे कि वे इस कीमत को स्वीकार करने को तैयार हैं। इसी प्रकार क्रेता भी दिखायेंगे कि वे उतने उत्सुक नहीं हैं, जितने कि वे वास्तव में हैं। इस प्रकार कीमत वैडमिनटन की चिड़िया की तरह इधर-उधर उस समय तक उछाली जायेगी, जब तक दोनों में से एक पक्ष सौदेबाजी में दूसरे से बेहतर स्थिति प्राप्त नहीं कर लेता। पता लगाइये (देखिये) कि किस प्रकार मारवाड़ी व्यापारी मूल्यवान पदार्थ जैसे माणिक्य, पन्ने (Emerald) की कीमतों के लिए जौहरी बाजार में सौदेबाजी उस समय तक करते हैं, जव तक कि सौदा तय नहीं हो जाता। लेकिन जब तक वे असमान स्थिति में नहीं पहुंच जाते, उदाहरणार्थ जब तक एक पक्ष बहुत सरल या दूसरे पक्ष की ताकत को नापने में दुर्भाग्य पूर्ण रूप से असफल न हो, तब तक कीमत बाजार के अन्त तक भी तय नहीं होगी। क्योंकि यदि मालिक समझते हैं कि, क्रेता वास्तव में रु० 36 कीमत पर वह सभी मात्रा खरीदने के योग्य है, जो उस कीमत पर लेने को तैयार है, वे उस अवसर को खोना नहीं चाहेंगे, जो उन्हें उस कीमत से उच्च कीमत पर मिल सकता है। क्रेता भी इसी प्रकार की गणना करेंगे, और यदि किसी समय कीमत रु० 36 से ऊंची होती है तो, वे तर्क देंगे कि उस कीमत पर पूर्ति मांग से काफी अधिक होगी, उनमें से वे भी जो वस्तु न पाने के स्थान पर कीमत देने को तैयार होंगे, वे भी इन्तजार करेंगे, और इससे कीमत के कम होने में सहायक होंगे। दूसरी ओर जब कीमत रु० 36 से काफी नीची है तो, वे विक्रेता भी जो अपने बिना बिके गेहूं को लेकर बाजार छोड़ने के बजाय उस कीमत को स्वीकार करेंगे, वे भी तर्क देंगे कि इस कीमत पर पूर्ति की तुलना में मांग का आधिक्य होगा, इससे वे इन्तजार करेंगे और इस प्रकार कीमत वृद्धि में सहायक होंगे।

इस प्रकार रु० 36/ - कीमत को सही साम्यावस्था कीमत कहा जा सकता है क्योंकि यदि यह प्रारम्भ में निर्धारित होती और पूरे समय तक रहती तो वह मांग व पूर्ति की समानता स्थापित करेगी। अर्थात उस कीमत पर क्रेता वस्तु (गेहूं) की जो मात्रा खरीदने को तैयार होंगे, वह उस मात्रा के बराबर होगी, जो विक्रेता उस कीमत पर बेचने को तैयार होंगे और, प्रत्येक विक्रेता को बाजार की आशानुसार कीमत स्थापित करने वाली परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान होगा।

5.3 साम्यावस्था पर सैद्धान्तिक व सामान्य विचार वर्णन :

साम्यावस्था एक परिवर्तनहीनता की स्थिति है। अर्थशास्त्र में इसकी स्थापना उस समय हुई मानी जाती है, जबकि एक बाजार में समान उत्पत्ति के लिए एक ही कीमत पायी जाती है, और जब इस कीमत के परिवर्तन के लिए कोई आर्थिक शक्तियां नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, साम्यावस्था में वस्तु की कीमत और मात्रा, उपभोक्ता व उत्पादकों की उम्मीदों से मेल खाती है, और वास्तविक व इच्छित कीमतों व मात्राओं में कोई अवमानना नहीं पायी जाती। परिणामस्वरूप, बाजार में वस्तु की पूर्ण पूर्ति की खपत हो जाती है और, अविक्रित स्टाक के अनिच्छित भण्डार नहीं हैं। एक बाजार का सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में उपभोक्ताओं व उत्पादकों के साम्यावस्थीय व्यवहार की विशेषता इस तथ्य से पायी जाती है कि क्रेताओं और विक्रेताओं में अपने व्यवहार को परिवर्तित करने की तीवता की भावना नहीं पायी जाती।

इसके विपरीत असाम्यावस्था वह स्थिति है, जिसमें कुछ क्रेताओं व विक्रेताओं में अपने व्यवहार में परिवर्तन की भावना बलवती होती है, क्योंकि उनकी परिस्थितियों में परिवर्तन की शक्तियां कार्यशील होती हैं। अपने व्यवहार में परिवर्तन के द्वारा वे अन्य उत्पादकों व उपभोक्ताओं की परिस्थितियों में अविवेकपन से परिवर्तन लाते है, जो प्रारम्भ में साम्यावस्था में हो सकते हैं। इसके बाद असाम्यावस्था समायोजन व पुनर्समायोजन प्रक्रियाओं की श्रृंखला को सक्रिय करती है : उदाहरणार्थ, लन्दन के वस्तु बाजारों व शेयर विनिमालयों (बाजारों) में क्रेता व विक्रेता परिवर्तित अवस्थाओं के प्रभाव में दिन प्रतिदिन अपने व्यवहार को परिवर्तित करते हैं।

एक महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि, उत्पत्ति व रोजगार के समायोजन में समय लगता है, और उत्पादन व उपभोग क्रियाओं के विभिन्न दिशाओं या प्रकार के परिवर्तनों में व्यापक समय विलम्ब (Time Lags) पाये जाते हैं। असाम्यावस्था अर्थ-शास्त्र का सम्बन्ध, साम्यावस्था के मार्ग में आने वाले समय विलम्बों और साथ ही साम्यावस्था के समायोजन की गति एवं दिशा का पता लगाना है। दुर्भाग्यवश, हर संभव विचारणीय परिस्थिति में समय विलम्बों को अभिन्नित (पहचान) करना बहुत कठिन है; उत्पादकों व उपभोक्ताओं की विभिन्न परिस्थितियों में प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न होती है और, उनके प्रति प्रभाव (Responses) की दर में भी विभिन्न उपभोक्ता वर्गो व उत्पादकों के वर्गो के बीच काफी भिन्नता पायी जाती है। एक परिवर्तित स्थिति में एक सम्भव प्रतिक्रिया "इन्तजार करो और देखौ" (Wait and see) की हो सकती है। उदाहरणार्थ, एक बेरोजगार श्रमिक, एक घटी हुई मजदूरी की दर पर काम स्वीकार करने के निर्णय के पहले, एक समय अवधि तक इन्तजार करके कार्य (रोजगार) की तलाश कर सकता है। इसी प्रकार उत्पादक भी अपनी विक्रय में गिरावट के होते हुए भी, अन्तिम रूप में अपनी उत्पादन योजनाओं को काटने (कम करने) के पहले, अपनी उत्पति व रोजगार के विद्यमान सार को कायम रख सकता है।

लक्षणों के आधार पर असाम्यावस्था के लिए निर्णय करने में समय-विलम्ब के अलावा, एक विशेष नीति, क्रिया को क्रियान्विति के निर्णय में भी समय विलम्ब होता है । फिर क्रिया के प्रभावों को समूर्ण प्रणाली में कार्यशील होने के लिए भी समय लगता है। जब तक यह सब कुछ हो, मूल परिस्थिति इस प्रकार परिवर्तित हो सकती है कि, एक चयनित नीति क्रिया का औचित्य ही न रहे। इसका तात्पर्य यह है कि एक प्रभावी नीति प्रयास के प्रतिपादन के लिए आवश्यक है कि, समय विलम्बों और समायोजन प्रक्रिया की गति व दिशा के बारे में पर्याप्त सूचना पास हो। व्यवहार में क्रेता व विक्रेता अपर्याप्त सूचनाओं से ही सामान्यतया वस्तुओं व सेवाओं का व्यापार करते हैं, अर्थात् वे असाम्यावस्था में ही व्यापारिक सौदे करते हैं।

इस बिन्दु का एक अच्छा उदाहरण जयपुर शहर में मकानों के लिए बाजार है, जहां मकानों की वास्तविक कीमतें अक्सर इच्छित (या आशातीत) कीमतों से भिन्न होती है और परिणामस्वरूप मांग व पूर्ति की दशाएं साम्यवस्था स्थिति से कम या अधिक होती हैं। यूरोपीय आर्थिक समुदाय में मक्खन, मांस व अनाज के वक्रित पहाड़ बड़ी मात्राएं वास्तविक बाजार में असाम्यावस्था की दशाओं के ओर भी उदाहरण हैं। यहां हम साम्यावस्था व असाम्यावस्था की आर्थिक प्रावैगिकी को प्रभावित करने वाले भूगोल के क्षेत्र में पहुंचते हैं। क्योंकि वस्तुएं, दूरियां,

जनसंख्या, व लोगों की संस्कृति व स्थान विशिष्ट बहुत सारे तत्व मांग व पूर्ति को प्रभावित करते हैं।

व्यष्टि व समष्टि दोनों प्रकार की साम्यावस्था मानवीय रिहायशीय स्थानों (Settelments) में क्रियाशील होती हैं, जो अपनी प्रकृति से ही अति जटिल आर्थिक व सामाजिक प्रजातियां हैं। आर्थिक साम्यावस्था पर क्रियाशील अवस्थाओं की श्रेष्ट स्पष्टता हमें मानवीय बस्तियों को निर्धारित करने वाले सम्बन्धित नियमों को अच्छी तरह समझने से प्राप्त होती है। मानवीय क्रियाओं के स्थानीयता के सिद्धान्त का वर्णन करने से पहले यह सहायक होगा कि, हम पहले उन प्रक्रियाओं को समझें जो E(ई) की ओर मांग व पूर्ति के प्रादुर्भाव व परिवर्तन को परिभाषित करती हैं। उदाहरण सरल है मगर अतिस्पष्ट करने वाला है।

5.4 क्षेत्रीय नियोजन और साम्यावस्था सिद्धान्त :

जैसा हमने प्रारम्भ में संकेत दिया है, वस्तुओं व मानव शक्ति की मांग व पूर्ति शून्यता या रिक्ता (Vaccum) में कार्य नही करती। वे वास्तविक बाजार स्थानों व स्थितियों में कार्य करती हैं, जो यातायात व भण्डारण की लागतों से नियमित या समायोजित होती हैं। दूरियाँ यातायात व भण्डारण की लागतों से नियमित व समायोजित होती हैं। दूरियाँ यातायात लागत मांग व पूर्ति के व्यवहार में एक महत्वपूर्ण तत्व होता है। यह एक महत्वपूर्ण अतिरिक्त है जो वस्तुओं व सेवाओं के आवागमन को निर्मित करती है। एक बाजार मानवीय बस्तियों की संरचना, जनसंख्या के घनत्व, यातायात के जाल व उपभोक्ताओं की संस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है। यदि अन्य बातों को समान रखा जाये तो, बाजार सतह पर चक्रीय होगा। लेकिन एक चक्रीय बाजार संभव नहीं है, क्योंकि एक चक्रीय स्थान पूर्ण बाजार को शामिल नहीं करता। सदैव कुछ ऐसे क्षेत्र होते हैं, जो सभी चक्रीय बाजारों को एक दूसरे की तरफ रखने पर असेबित रहते हैं।

जब यह निश्चित करने के प्रयास किये जाते हैं कि, सभी उपभोक्ताओं को किस प्रकार की सेवा प्राप्त होगी, तो हमें उस स्थिति का सामना करना पड़ेगा, जिसमें कुछ उपभोक्ताओं को दो बाजारों से सेवा प्राप्त होती है। यह एक अवास्तविक स्थिति है। क्योंकि जब दो बाजार लाभ के लिए प्रतियोगिता करते हैं, तो लाभ में कमी होगी, और प्रतियोगिता के कारण कीमतों में भारी कमी हो सकती है। तो बाजार का स्वरूप क्या होना चाहिए, जब अति सेवा (दो बाजारीय प्रतियोगिता) व अर्थ सेवा (कुछ उपभोक्ताओं के बाजार से बाहर छोड़े जाना) न पायी जाती हो? क्षेत्रीय नियोजकों के लिए यह एक रोचक समस्या रही है, जिन्होंने विभिन्न प्रकार के समाधान व मान्यताएं दी हैं। आगस्ट लोश (August Losch) ने इस क्षेत्र में मुख्य योगदान दिया है।

आगस्ट लोश की स्थानीयता के अर्थशास्त्र (Economies of Location) नामक पुस्तक, प्रथम बार सन् १९३९ में प्रकाशित हुई थी। लोश आर्थिक क्रिया की स्थानीयता की केन्द्रीय समस्या और विशेषकर आर्थिक क्षेत्रों के निर्माण से सम्बन्धित थे। इसीलिए उन्होंने क्रिष्टोलर (Krishtoller) के समान, उनके द्वारा नामांकित प्राकृतिक तत्वों के विपरीत या उनके द्वारा नामांकित "प्राकृतिक" या राजनैतिक तत्वों के विपरीत, आर्थिक तत्वों पर जोर दिया। कच्चे माल का एक समतल (चौरस या चपटे) स्थान पर समान रूप से फैले हुए होना था,

जिसमें समान अन्तर से संभवत: अधिकतम घनत्व प्रकार के स्वावलम्बी खेतों के स्वरूप विशेषता पायी जाती है। इस धारणा की अवस्था से स्थान सम्बन्धी अन्तरों का प्रादुर्भाव संकेन्द्रीकरण की शक्तियों के कारण होगा, जो विशिष्टीकरण की संभावना व पैमाने की बचतों की कार्यशीलता के कारण पायी जायेगी। यद्यपि यह एक प्रकार से सीमित करने वाली शक्तियां, यातायात, लोगों के स्वरूप और विविध प्रकार के उत्पादन के लाभों के रूप में होगी। लोश ने इस स्थिति की रूपरेखा एक कृषक की दी है, जो चुकन्दर का उत्पादन करता है, मगर यह ध्यान देने की बात है कि, यह तृतीयक सेवा नहीं बल्कि द्वितीयक (सहायक) उत्पादक क्रिया है। बाजार के आकार का निर्धारण सामान्य वैयक्तिक मांग वक्र में प्रकट सम्बन्धों से होता है। (चित्र- 5.1)

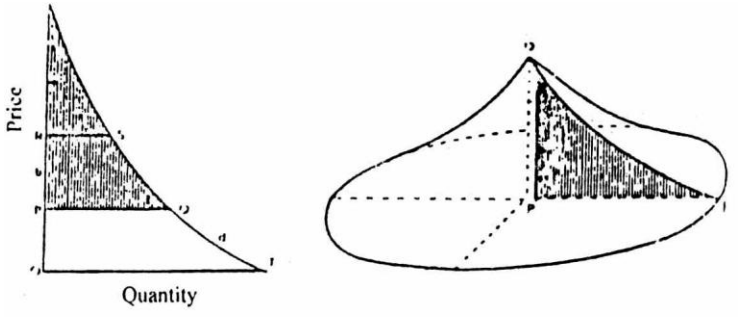

Lösch's derivation of the market area and demand cone from the demand curve for a product as a function of distance.

रेखा चित्र 5.1

चित्र- 5.1 दूरी के फलन के रूप में एक उत्पत्ति के लिए मांग वक्र से लोश के द्वारा बाजार क्षेत्र व मांग वक्र की उत्पत्ति (निकालना) व्याख्या के लिए देखिये पुस्तक अनुसार पूर्व उद्धरित (op. cit.) पृष्ठ 82

यदि ओ पी ब्रूअरी (Brewary) (शराब बनाने का स्थान) की कीमत है, तो व्यक्ति पी० क्यू० मात्रा खरीदेगा। लेकिन उत्पादन केन्द्र से दूर कीमत (पी) यातायात की लागत के कारण तब तक बढ़ेगी, जब तक कि एफ बिन्दु पर बीयर इतनी मंहगी हो जाये कि बेची न जा सके। पी एफ अन्तिम सीमा होगी और कुल विक्रय कोन (Cone) नोकदार आकृति का धनफल (Volume) होगा, जो पी के चारों ओर पी एफ क्यू घुमाने से बनेगा, जिसमें जनसंख्या घनत्व के तत्व (Factor) का गुणा करके प्राप्त होगा। अब तक एक स्थिर कीमत ओ पी की मान्यता रही है, लेकिन यह कीमत कुल विक्रय के साथ अर्थात पैमाने की बचतों के साथ परिवर्तित होगी, जो उत्पादन वृद्धि के साथ उत्पन्न होगी। इसलिए एक नया चक्र काल्पनिक कीमतों की श्रेणियों के लिए गणना करके मांग कोन (Cone) की मात्रा पर आधारित खींची गयी है। यह ब्रेअरी कीमत () के फलन के रूप में कुल मांग का प्रतिनिधित्व करता है। इसके ऊपर एक नियोजन वक्र खींचा गया है, जो निम्नतम उत्पादन की लागत दर्शाता है जिस पर किसी भी मात्रा (x) का उत्पादन किया जा सकता है। बीयर की किसी भी मात्रा के विक्रय के लिए, इन वक्रों का परस्पर काटना जरूरी है और यदि वे एक दूसरे को नहीं काटती, तो उत्पादन की

लागत उस कीमत से अधिक होगी जिसे पर्याप्त संख्या में लोग देने को तैयार होंगे। ग्राफ (चित्र 2) पर एम एन वह कुल मात्रा है जिसका विक्रय किया जा सकता है, एम एफ अधिकतम माल पहुंचाने की दूरी है अर्थात, वह सीमा है जिस तक बीयर बेची जा सकती है। लेकिन ब्रेअर (Brewary) की उत्पत्ति कम की जा सकती है और, उत्पादन उस समय (स्थिति) तक भी लाभप्रद होगा जब तक दो वक्र स्पर्श (Tangential) करते हैं (चित्र 5.2 में खण्डित रेखा देखिये)

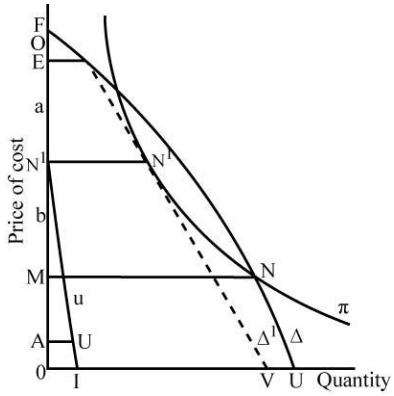

Demand curve (Δ) quantity demand as a function of price and planning curve (π) smallest average cost related to quantity produiced

रेखा चित्र 5.2

चित्र 5.2 मांग वक्र () कीमत के फलन के रूप में मांग की मात्रा और नियोजन वक्र (π) उत्पादित मात्रा से सम्बन्धित अल्पतम औसत लागत व्याख्या के लिए देखिये पुस्तक अनुसार H. Carter op.cit. पृष्ठ 82.

इस प्रकार एम०एफ० उत्पादन किये जा सकने के लिए आवश्यक निम्नतम क्षेत्र का माप है, और यदि इसे एक तत्व (Factor) से गुणा किया जाये जो जनसंख्या घनत्व का प्रतिनिधित्व करता हो, तो ब्रूअर (Brewary) को कायम रखने के लिए आवश्यक निम्नतम व्यक्तियों की संख्या प्राप्त होती है। यदि अब तक उपयोग में लायी गयी शब्दावली में इसका रूपान्तरण किया जाये तो, यह प्रवेश मार्ग पर (Threshold) जनसंख्या है।

यह स्पष्ट होगा कि यहां हम क्रिष्टोलर (Kristoller) के काफी निकट है। जैसा कि पहले परिभाषित किया जा चुका है, एम०एफ उच्च सीमा और एम०एफ निम्न सीमा है। दोनों लेखकों के विचार मौलिक रूप से समान हैं, लेकिन उन्होंने विभिन्न तर्कों से उन्हें ढका है।

लोश यह दर्शाते हुए आगे बढ़ते है कि, उनके विश्लेषण का परिणाम चक्राकार बाजार क्षेत्रों की श्रेणियों के रूप में होगा, लेकिन क्षेत्र को अधिकतम लाभप्रद बनाने के लिए उन्हें षटकोणों (Haxagons) में परिवर्तित करना होगा, बशर्ते ऐसा करना उचित हो। षटकोणीय ढांचा एक वस्तु का उत्पादन करने के लिए कई खेतों पर निर्भर करता है, और इस संख्या में वस्तुनुसार काफी अन्तर पाया जायेगा। लोश, क्रिष्टोलर के समान इस तथ्य को मानकर इसे अपनी संरचना के योग्य बनाते हैं। दिये हुए खेतों के निकटतम बँधे हुए वितरण और षटकोणीय

क्षेत्रों के आधार पर, अल्पतम खेतों की संख्या जिन पर सेवा की जा सकती है, वह चित्र 5.1 में तीन हैं। ये निम्नतम प्रवेश द्वार (Threshold) पर है, और उसके बाद इनकी संख्या चार व सात तक हो जाती है।

रेखा चित्र 5-3

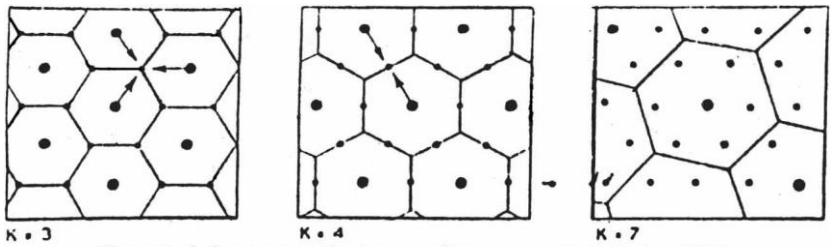

The central place system: the three smallest systems. K 3, K 4 and K 7.

चित्र-3 केन्द्रीय स्थान प्रणालियां; तीन अल्पतम प्रणालियां के-3, के-4 और के-7 पीटर हैगट (Peter Hagget) के अनुसार, एच. कार्टर (h. Carter) (Ibid) p-80 में उद्धरित। यह क्रिष्टोलर के द्वारा विकसित तर्क के अनुरूप है, लेकिन लोश इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं, क्योंकि उत्तरोत्तर तर्कों की समूर्ण श्रेणियां हैं, जिनमें से क्रिष्टोलर केवल तीन अल्पतम स्थितियों को पृथक करते हैं। संपूर्ण श्रेणियां 3,4,7,9,12,13,16 आदि जारी रहती हैं। लोश आगे दस अल्पमत क्षेत्रों पर विचार करते हैं ओर, उनके बीच सम्बन्धों को तालिका बद्ध करते है। (चित्र 5.4 तालिका।)

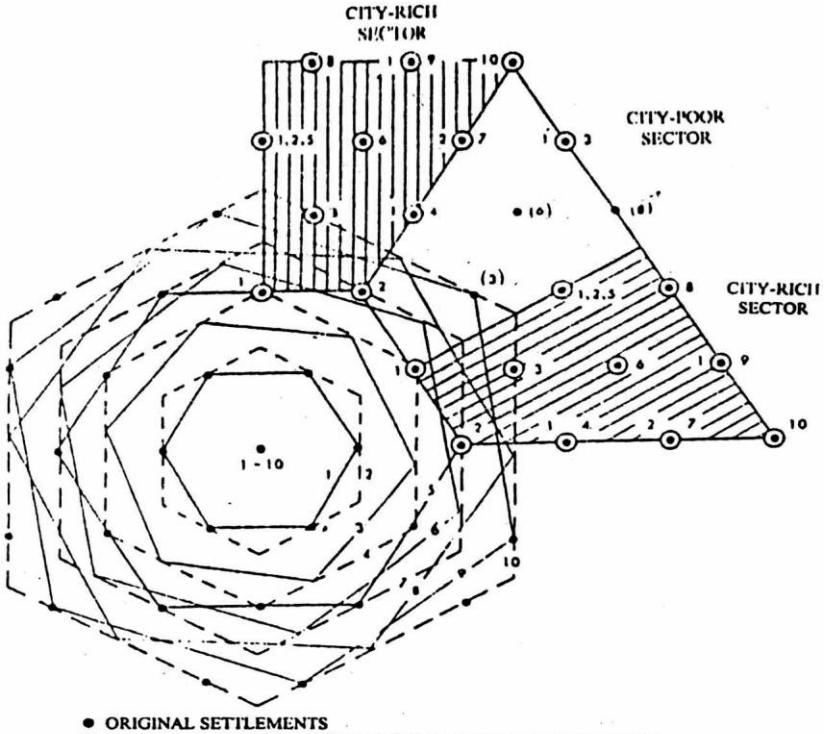

The teri smallest possible market areas. After A. Losch, op. cit.

रेखा चित्र 5.4

- मूल बस्तियाँ।
- अंकों के द्वारा सांकेतिक आकारों के क्षेत्रों के केंद्र। अलग से प्रकट (Paranthesis) के दर्शाये गये वैकल्पिक क्षेत्रीय केन्द्र।

चित्र 5.4 : दस अल्पतम संभव बाजार क्षेत्र। ए लोश (A Losch) के अनुरूप op.cit. in H. Carter पूर्व उद्धरित (Ibid) पृष्ठ 85 तालिका। दस अल्पतम संभव बाजार क्षेत्र :

तालिका 5. 2

Table 1 : The ten smallest possibke market areas

क्षेत्र संख्या Area Number	पूर्णतया पूर्तिकृत बस्तियों की संख्या Number of Settlements Completely Supplied	केन्द्रों के बीच की दूरियाँ Distance Between Centres	श्रेणी Range
1	3	$a\sqrt{3}$	a
2	4	$a\sqrt{4}$	a
3	7	$a\sqrt{7}$	a
4	9	$a\sqrt{9}$	a/3
5	12	$a\sqrt{12}$	2a
6	13	$a\sqrt{13}$	a/3
7	16	$a\sqrt{16}$	2a
8	19	$a\sqrt{19}$	2a
9	21	$a\sqrt{21}$	a/7
10	25	$a\sqrt{25}$	a/7

After : Harold Carter, ibid., p.84, table 5.2

अनुसार : हेराल्ड कार्टर पूर्व उद्धरित पृष्ठ 84 तालिका 5.2

जैसा कि पहले सूचित किया जो चुका है, प्रत्येक बेची गयी वस्तु व प्रत्येक पेश की गयी सेवा की एक भिन्न निम्न व उच्च सीमा होगी, जिसे एक भिन्न प्रवेश मार्ग (Threshold) व श्रेणी या सीमा (Range) और वास्तव में विभिन्न बिन्दुओं पर पेश किया जा सके। इसलिए ऐसा कोई कारण नहीं है कि, एक कल्पित सजातीय समतल क्षेत्र पर विभिन्न जालों का एक भ्रम पैदा न हो। सभी जालों को एक बिन्दु पर काल्पनिक रूप में रखकर एक प्रकार की व्यवस्था लागू की जा सकती है, जो इसी तथ्य से (Ipsofacto) मुख्य नगर (Metropolis) बनते हैं। इसी बिन्दुशहर के आस-पास विभिन्न जाली को फैलाकर (घुमाकर) अकस्मातता (Coincidance) की अधिकतम मात्रा से संपन्न व निर्धन शहरी क्षेत्र बनाये जा सकते हैं। लेकिन यह जोर देना आवश्यक है कि, केवल अत्यधिक व अवास्तविक सरलीकरण के द्वारा ही, ताकि स्थिर बिन्दु पर एक सजातीय संरचना की पूर्व कल्पना से ही क्रिष्टोलर का

मॉडल प्राप्त किया जा सकता है। लोश की योजना के अधीन एक श्रेणीबद्ध क्रम (Hierarchy) शब्द के सही (कड़े) रूप में अर्थात, सेवाकृत सहायक स्थानों को संख्या में समान व नियमित वृद्धि के रूप का प्रादुर्भाव नहीं होता। लेकिन सहायक स्थानों का विशेष अभिनित समूहीकरण पता लगाया जा सकता है और इसी कारण विशेष अभिन्नित (Distinctive) (क्रम) श्रेणी दिये जा सकते हैं। यह स्तब्धता (अशांति) या अनिश्चय की स्थिति संभवत: भाषा के अर्थ के रूप (Semantic) में हैं, लेकिन प्रयोगात्मक अनुसंधानकारी (Empirical) अध्ययनों को उचित रूप में संचालित करने व अर्थ स्पष्टीकरण के लिए एक स्पष्ट समझना (या आँकलन करना) आवश्यक है। इसलिए अन्त में यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि, सेवाओं का कार्यात्मक क्रय सभी स्थितियों (मामलों) में विशेष समूहीकरणों में नही आता। केवल उस स्थिति में जब एक स्थिर K की मान्यता की जाती है, तभी क्रिष्टोलर के अर्थ में एक कड़ी (सही) श्रेणीबद्ध क्रम (Hierarchy) की प्राप्ति होती है।

इस अवस्था पर, एक और शहरी आकार का आँकलन (Interpretation) शहरों के लिए श्रेणी- आकार नियम (Rank Size Rule for cities) का विचार प्रवेश या प्रस्तावना उचित होगी। इस "नियम" का आधार मूलत: फेलिक्स आरवाक (Felix Aurbach) ने सन् 1913 में रखा था। मगर इसका विकास व लोकप्रियता सन् 1941 में प्रकाशित एक ग्रंथ में जार्ज के जिप्फ़ (George K. Zipf) के साथ हुई, जिसका शीर्षक "राष्ट्रीय एकता व अनेकता " (National Unity and Diversity) था। अबद्ध व सरल रूप में यह नियम बतलाता (व्यक्त करता) है कि, यदि एक शहर की जनसंख्या को उसके क्रम (Rank) से गुणा किया जाता है तो, यह सबसे बड़े व उच्चतम क्रम वाले शहर की जनसंख्या के बराबर होगा। इसे अक्सर निम्न प्रकार व्यक्त किया जाता है :

Rn Sr = M

जहां आर (R) - शहर का क्रम (Rank), और Sr = R शहर की जनसंख्या और M व n स्थिरांक (Constant) हैं।

लेकिन जहां R = 1 है, n का मूल्य चाहे जो भी हो, S = M होता है, ताकि स्थिर एम सबसे बड़े शहर की जनसंख्या हो। यह भी कम विश्वसनीयता से तर्क दिया जाता है कि, पश्चिमी औद्यौगिक राष्ट्रों में स्थिर एन इकाई के बराबर होता है, ताकि पूर्व वर्णित व्याख्या सही पायी जाती हो। (चित्र- 5.5) ।

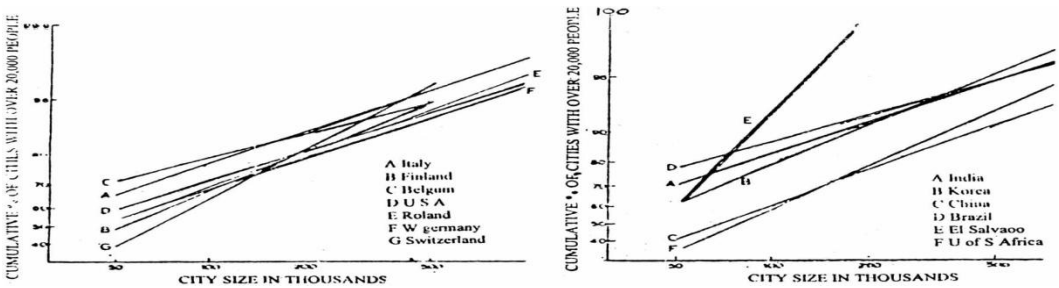

Countries with lognormal (rank-size) distribution of urban populations. The upper diagram consists of

what are generally regarded as developed countries while the lower diagram shows that this condition is also found in countries generally regarded as underdeveloped

रेखा चित्र 5.5

चित्र 5.5 : शहरी जनसंख्याओं के लागनार्मल (क्रम-आकार) वितरण सहित राष्ट्र। पहला चित्र ए उन राष्ट्रों को निहित करता है, जिन्हें सामान्यतया विकसित राष्ट्र माना जाता है, और दूसरा चित्र बी दिखलाता है कि, यह स्थिति उन राष्ट्रों में भी पायी जाती है, जिन्हें सामान्यतया अर्धविकसित माना जाता है। वी० एच० बेरी (B.H. Berry-1969) के अनुसार एच कार्टर में उद्धरित, पूर्व उद्धरित (ibid) पृष्ठ 88-89

अल्पज्ञता से क्रम या श्रेणी आकार नियम क्रिष्टोलर व लोश के निष्कर्षों को लगभग प्रत्येक पहलू से अन्तर करते प्रतीत होते हैं। यह एक माना हुआ निगमात्क मॉडल नहीं बल्कि आलोकित तथ्य है। यह सत्य है कि जिप्फ ने इसे एक व्यापक सिद्धान्त का भाग माना है, जिसमें कोई भी अर्थव्यवस्था दो शक्तियों के अधीन होती है। एक प्रकार की शक्तियां विविधता की ओर बढ़ती हैं, जहां एक बड़ी संख्या में समुदाय कच्चे माल के स्त्रोतों के निकट स्थित हों, व निम्नतमकृत यातायात लागतों से लाभान्वित होते हैं। दूसरी शक्तियां वे होती हैं जो तैयार वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुंचाने वाली होती हैं। इन विरोधी अवस्थाओं से एक संतुलन का प्रार्दुभाव हुआ, जो श्रेणी आकार नियम में प्रतिबिंबित हुआ।

5.5 सारांश

यहां हमने वस्तुओं व सेवाओं की मांग व पूर्ति के द्वारा स्थापित साम्यावस्था के सिद्धान्त का वर्णन किया है, जो स्वयं भी फिर साम्यावस्था को प्रभावित करता है। यातायात लागतें व भौगोलिक और, साथ ही प्राविधि व प्रचार माध्यम की भूमिका भी मितव्ययता व अमितव्ययता की प्रकृति को प्रभावित करती हैं। लोश का सिद्धान्त जो क्रिष्टोलर के द्वारा प्रतिपादित केन्द्रीय स्थानक सिद्धान्त के समान है, इसकी भी समान मान्यताएं हैं। इसलिये लोश की वैचारिक रचना, विशेषकर सजातीय भौगोलिक धरातल और समान यातायात लागत व उपभोक्ता व्यवहार की मान्यता के लिये भी, आलोचना के लिये खुली है। यह सिद्धान्त क्रेताओं के चयनों व सामायिक अवस्थाओं को महत्व नहीं देता। यदि इन सभी अति आवश्यक स्थिरांको (Parameters) को सिद्धान्त की जांच करने में ध्यान में रखा जाये, तो यह सिद्धान्त अपनी रचना में कतरा (छांटा) हुआ प्रतीत होता है, और सर्वव्यापी या सभी स्थानों पर लागू न होने वाला पाया जाता है। तथापि, सिद्धान्त साम्यावस्था के व्यापक रूप में बाजार व्यवहार व वस्तुओं के बहाव को समझने के लिए कुछ संकेत अवश्य देता है। नियोजन व भविष्यवाणी (Prediction) करने के लिए क्षेत्रीय विज्ञानों में यह महत्वपूर्ण उपकरण रहता है।

5.6 शब्दावली

साम्यावस्था व असाम्यावस्था (Equilibrium and Disequilibrium) बाजार दशाएं (Market Condition) यातायात लागतें व उनकी अतिरिक्तता (Transport costs and its additionality) वस्तुओं व सेवाओं का आवागमन (Movements of goods and

services) मांग और पूर्ति (Demand and supply) बाजार रेखा गणित (Market Geometry) उपभोक्ता सन्तुष्टि (Consumer satisfaction) कीमत (Price) वस्तु विनिमय प्रणाली (Barter System) कीमत सौदेबाजी (Price Haggling) क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएं, व कीमतों में परिवर्तन (Regional and international boundaries, and variations in prices) सूचना एवं समय विलम्ब (Information and Time-lag) सन्तुष्टि का वक्र (Curve of satisfaction) मानवीय बस्तियां (Human settlements) आनेवाली जनसंख्या (Threshold population) विशिष्टीकरण (Specialization) पैमाने की बचत (Economy of scale)

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें (Suggested Readings)

W Christaller 1966 Central Places in Southern Germany Translated by Baskin.

Brian J.L. Berry 1967 Geography of Market Centres and Retail Distribution. Englewood Cliffs, N.J.

A Losch. 1954. The Economics of Location. New Haven. This is an English translation by W.H. Woglom. The German edition first appeared in 1939.

Philp Hardwick, Bahadur Khan, and John Langmead 1982. An Introduction to Modern Economics Longman.

Alfred Marshall. Principles of Economics 1962. Macmillan (Eighth Edition)

Harold Carter 1976, The Study of Urban Geography John Wiley and Sons.

H.W. Richardson 1973, The Economics of Urban Size, Farnborough.

Ronal Abler, John S. Adams and Peter Gould 1977. Spatial Organisation: The Geographer's View of the World. Prentice Hall International See Part III.

इकाई 6
केन्द्रीयकरण की मितव्ययताएं व अमितव्ययताएं
विकास ध्रुव का विचार

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 मितव्ययताएं और अमितव्ययताएं

6.2.1 मितव्ययताएं

6.2.2 अमितव्ययताएं

6.3 विकास ध्रुव और आइसोडापेन

6.3.1 परिभाषा और बेबेरियन सिद्धान्त

6.3.2 विकास ध्रुव व कई क्रम के आइसोडापेन

6.4 व्यवहार में एकत्रीकरण विश्लेषण

6.5 सारांश

6.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.7 शब्दावली

6.0 उद्देश्य

विकास ध्रुव एक आर्थिक व स्थान सम्बन्धी विद्यमानता है। दूसरे शब्दों में क्षेत्रीय नियोजन व यातायात क्षमता को विकास ध्रुव की प्रावैगिकता के सन्दर्भ में बेहतर समझा जा सकता है। इस विचार विवरण में हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि कुछ फार्मों की एक स्थान पर एकत्रीकरण या समूहीकरण की प्रक्रिया से केन्द्रित होने की प्रवृति क्यों पायी जाती है। इसके विपरीत हम उन तत्वों (कारकों) को भी समझायेंगे जो विकेन्द्रीकरण प्रक्रिया या भौगोलिक विकेन्द्रीयकरण की प्रक्रिया को जन्म देते हैं। दूसरे शब्दों में, हम यह स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे कि, औद्योगिक फर्म क्यों एक संकेन्द्रण के स्थान से दूसरे अन्य कम संकेन्द्रण के स्थान पर जाने की प्रवृति रखती हैं। यह उस समय स्पष्ट होता है, जब हम तीन अन्तर्संबंधित विचारों. - पैमाने की बचत, अमितव्ययता व विकास ध्रुव, का वर्णन करते हैं। इसके लिए हमें यह समझना होगा कि आइसोडापेन (Isodopene), समान लागत वक्रें किस प्रकार कार्य करती हैं। यह लागत तत्व यातायात लागत, और अब बहुत से अन्य तत्वों, जैसे जीवन की गुणवता व मनोरंजन के स्थान आदि से अच्छी तरह स्पष्ट होता है। यह स्पष्ट किया जायेगा कि; किस प्रकार अमितव्ययताओं के उत्पन्न होने पर केन्द्रीयकरण का स्थान विकेन्द्रीयकरण लेता है। हमें बहुत स्पष्ट होना चाहिए कि, सभी फर्में लागतें कम करके लाभ कमाना चाहती हैं, चाहे इन लागतों का सम्बन्ध वास्तविक लागतों (Inputs) जैसे कच्चे माल की लागतें या श्रमिकों के परिवारों के स्वास्थ्य या स्कूल व्यवस्था की लागतें हों।

6.1 प्रस्तावना

क्षेत्रीय नियोजन का सम्बन्ध स्थान सम्बन्धी बिन्दुओं व रेखाओं और उनके समूहीकरण से है, जो बहुमुखी स्थानों या क्षेत्रों का निर्माण करते हैं। सभी आर्थिक विकासीय क्रियाएं जैसे उद्योगों व व्यापारिक फर्मों की स्थापना, विकास व विस्तार स्थानीय विशेषताएं होती हैं। अर्थात् वे भौगोलिक प्रकृति की होती हैं। उदाहरणार्थ, समय के साथ एक औद्योगिक इकाई का भौगौलिक विस्तार एक बिन्दु और बहुत से बिन्दुओं पर एक साथ हो सकता है। ऐसा होता कि दो या कई औद्योगिक स्थानों का विस्तार इस प्रकार से होता हो कि, वे एक भौगोलिक इकाई बनने की और अग्रसर होती हैं। दूसरे शब्दों में, इन स्थानों के बीच खाली पड़े स्थान समय के साथ भरने लगते हैं, जिससे क्षेत्र एक प्रतिवेशात्मक (संलग्न या निकटीय) अस्तित्व पाने लगता है। यह नियमित या अनियमित और, आकार में रेखीय या चक्रीय हो सकता है। एक भौगोलिक बिन्दु, जैसे एक शहर, कस्बा, गांव, दुकान या फैक्टरी समय के साथ वाह्य रूप में विस्तार करती है। इस प्रकार का बिन्दु ध्रुव कहलाता है, जिसके चारों और विकासीय संवर्द्धन होता है। यह अत्यन्त सरल वर्णन है। हालांकि इस प्रकार का विस्तार (एक कही अधिक विषय प्रक्रिया) बहुत से आर्थिक, सामाजिक व भौगोलिक तत्वों के आपस में क्रियात्मक होने के कारण एक कही अधिक विषम प्रक्रिया है।

इस प्रकार की प्रक्रियाओं का विश्लेषण कुछ मान्यताओं, सरलीकरण व गणितीय उपकरणों के बिना कठिन है। विकास ध्रुव का सिद्धान्त मितव्ययता व अमितव्ययता के अधीन कार्य करता है। जैसा कि आपने देखा होगा, दुकानें केवल वस्तु नही बेचती जैसे चीनी या साबुन। आपने सावधानी पूर्वक नोटिस किया होगा कि, एक छोटी सी दुकान जैसे पान की दुकान भी दस से बीस वस्तुओं को बेचती हैं जैसे, पान, पान मसाला, तम्बाकू की बीस से अधिक प्रकार की थैलियाँ (या पैकेट), कई प्रकार की सिगरेट, केण्डिया (मुरब्बे या कन्द), माँचिस, कई प्रकार के शीतल पेय पदार्थ आदि। आप इन वस्तुओं का अनुभव उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के आधार पर कर सकते हैं। इसी प्रकार आप यह भी अच्छी तरह समझ सकते हैं कि, बड़े शहरों जैसे जयपुर, दिल्ली मुम्बई आदि में इन दिनों बड़े-बड़े आधुनिक डिपार्टमेन्टल स्टोर्स उपभोक्ताओं की अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्थापित हो रहे हैं, जहां हर सम्भव आवश्यकता जैसे आटा, साबुन, मसाले, दालें, अनाज, चीनी, मिठाइयां, कपड़े, बर्तन दवाइयां, फर्नीचर, इलेक्ट्रोनिकी वस्तुएं, जूते, सजावट का सामान, टायलेट की वस्तुएँ, आईस क्रीम तक की पूर्ति हो सकती है। हर संभव घरेलू आवश्यकता की वस्तु की पूर्ति मुख्य सड़क पर बनी बड़ी दुकान से की जा सकती है, जिसे डिपार्टमेन्टल स्टोर कहा जाता है।

इस प्रकार के व्यवहार का अनुकरण बहुत सी औद्योगिक इकाइयों के द्वारा भी किया जाता है। हो सकता है कि उन्होंने, एक ही वस्तु या वस्तुओं के एक ही प्रकार (वर्ग) के उत्पादन से आरम्भ किया हों, जिनकी उपभोक्ताओं को आवश्यकता होती हो, जैसे कार या स्कूटर्स। समय के साथ इन औद्योगिक इकाइयों के द्वारा नई उत्पादन वस्तुओं को भी शामिल कर लिया जाता है। वे आटा, वस्त्र, पेट्रोलियम की वस्तुएं, मसाले, आदि का उत्पादन भी प्रारम्भ कर देती हैं,

जिनके बारे में वे अनुभव करते हैं कि, इस प्रकार की वस्तुओं के लिए बाजार उपलब्ध है। उत्पादन में इस प्रकार का दृष्टिकोण किसी एक वस्तु में हानि के विरुद्ध सिद्ध बीमा है । (कृषक भी इसी प्रकार का व्यवहार करते है, जब वे फसल फेल (खराब) होने की स्थिति से बचने के लिए, दो या तीन प्रकार की फसलों के बीच चयन करते हैं।

सभी व्यापारिक फर्में लाभ कमाने के लिए पायी जाती हैं। जब भी अन्य क्षेत्रों में इसकी संभावना होती है, वे लाभ के लिए प्रतियोगिता करती हैं। इस प्रकार के वस्तुओं या सेवाओं के बहुउद्देशीय उत्पादन या विक्रय को विविधीकरण कहा जाता है। इस विविधीकरण के साथ-साथ फर्में यदि पर्याप्त लाभ की संभावना हो तो, वे अपने उत्पादन के पैमाने में भी वृद्धि करती हैं।

लेकिन कुछ भी शून्य (Vacuum) की स्थिति में नहीं होता। एक आर्थिक व्यवहार पृथ्वी पर होता है। इसलिए इन क्रियाओं व स्थानों के बीच अन्तर्क्रियाओं का समझना आवश्यक है। विक्रेता और क्रेता दोनों के लिए एक महत्वपूर्ण लागत तत्व, इन वस्तुओं या सेवाओं की प्राप्ति के लिए यात्रा की लागत है। किसी एक विशेष वस्तु जैसे सीमेंट के उत्पादन के लिए फैक्टरी के मालिक को, कच्चा माल जैसे पत्थर, पत्थर तोड़ने वाली मशीनें, ऊर्जा, श्रम, भंडारण सुविधाओं, थैले आदि को खरीदना होगा। इसमें यातायात व भंडारण की लागत आती है। हम सभी जानते हैं कि जब हम चिकित्सा सेवा के लिए या सिनेमा हाल में फिल्म देखने जाते हैं तो, हमें अपने वाहनों के लिए पैट्रोल के रूप में या टैक्सी किराये के रूप में यातायात लागत का भुगतान करना पड़ता है। यातायात लागत की यह वृद्धि (अतिरिक्ता) भौगोलिक प्रवृत्ति की है, क्योंकि यातायात में दूरी निर्णयात्मक तत्व है। जितना दूर आपको किसी वस्तु की प्राप्ति करने के लिए जाना पड़ेगा, उतनी अधिक उसकी लागत का भुगतान करना होगा। यह सर्वव्यापी तत्व है। एक आर्थिक मनुष्य (Homo economicus) अपनी खाद्य, मनोरंजन, शिक्षा व चिकित्सा आदि की पूर्ति निम्नतम लागत पर करने की प्रवृति रखता है। इसका उदाहरण यह है कि, जब हम कोई चीज खरीदने के लिए बाजार जाते हैं, तो हम अपनी क्रयों (खरीदों) की सूची में अन्य वस्तुओं को भी शामिल कर लेते हैं, ताकि हम समय व यातायात की लागत की बचत कर सकें। यह यातायात लागतों का इष्टतमकरण कहलाता है। इस व्यक्तिगत व्यवहार से जो हमारी खरीद सूची और यातायात लागत के न्यूनतमकरण की व्याख्या करता है, हम औद्योगिक इकाइयों के लाभ कमाने के व्यवहार को भी समझ सकते हैं।

विद्यमान लागतों (Inputs) (अर्थात अतिरिक्त लागतों के बिना) जैसे श्रम, यातायात, भण्डारण सुविधाओं, टेलीफोन, फैक्टरी के मालिक या इसके व्यवस्थापकों के पास उपलब्ध समय, व्यापारिक कुशलता (उदाहरणार्थ आई.आई.एम अहमदाबाद से एम०बी०ए), व्यापार या यातायात में पारिवारिक अनुभव, अप्रयुक्त क्षमता, व्यक्तिगत सम्पर्क आदि से अधिक उतादन या उत्पादन का विविधीकरण किया जा सकता है। एक बड़ी इकाई जैसे गुड़गांव हरियाणा में मारुति कार निर्माण इकाई के निकट, मारुति उद्योग लिमिटेड, आस-पास के क्षेत्रों के श्रमिकों व जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य सहायक इकाइयां (Ancellary units) स्थापित की गयी है। सन् 1982 से मारुति उद्योग के चारों और गुड़गांव का नक्शा काफी परिवर्तित हो

गया है। इसके आस-पास औद्योगिक इकाइयां, दुकानें, बाजार व ढाबे खुल गये। कारण बहुत स्पष्ट है। उन्होंने विद्यमान आधार ढांचे जैसे सड़कों, टेलीफोन्स, ऊर्जा, व पेयजल जैसी सुविधाओं (जिनमें से कुछ को ही व्यक्त किया गया है) का लाभ उठाया है। जैसा कि आप यह जानते हैं, किसी भी नवीन निर्माण इकाई की स्थापना करने में ये तत्व बहुत महत्वपूर्ण विचार के हैं। क्या हम उस आवासीय भूखण्ड के लिए अधिक कीमत नहीं चुकाते जो सड़क, बिजली, परनालो (Sewage) से जुड़ा हो और, दुकानों व बाग-बगीचे के निकट हो। इस प्रकार के तत्वों को स्थानीय लाभ कहा जाता है। जब एक बड़ी संख्या में आवासीय या व्यापारिक इकाइयां इस आधार ढांचे का उपयोग करती हैं, तो इन पर लागत घट जाती है। भारत में, औद्योगिक क्षेत्र में विदेशी निवेश आकर्षित करने के लिए आधार ढांचे के विकास पर काफी जोर (महत्व) दिया गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, जापान, ब्रिटेन, विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक कोष (आइ० एम० एफ०) के माध्यम से दबाव डाल रहे हैं कि, भारत आधार ढांचे के विकास पर ध्यान दे, ताकि औद्योगिक फर्म दक्षता से कार्य कर सकें।

उचित कीमत पर इस प्रकार के आधार ढांचे को उपलब्ध कराने के लिए बहुत से राज्य औद्योगिक बस्तियां विकसित कर रहे हैं, जैसे अलवर में भिवाड़ी और जयपुर में विश्वकर्मा। इस प्रकार के औद्योगिक क्षेत्रों में फर्में कई मदों पर अपनी लागतें कम कराने के लिए आकर्षित होती हैं। इस प्रकार का भौगोलिक उद्भव विकास ध्रुव का प्रगट होना कहलाता है। व्यापारिक फर्में इस प्रकार के भौगोलिक स्थान पर उस समय तक एकत्रित (स्थापित) होती जाती हैं, जब तक कि वहां उनकी विक्रय कीमत, प्रति इकाई लागत (औसत लागत) से ऊंची रहती है। इसे पैमाने की बचत कहा जाता है। दूसरे शब्दों में वातावरण सम्बन्धी कारकों के कारण यातायात, ऊर्जा, भण्डारण, श्रम व भूमि पर उच्च लागत के कारण, प्रति इकाई उत्पादन की लागत इतनी बढ़ जाती है कि उत्पत्ति के क्रेता ही नहीं रहते। इस प्रकार औद्योगिक स्थान पर अमितव्ययताएं उत्पन्न होती हैं। इससे फर्मों को व्यापार छोड़ना पड़ता है। अथवा फर्मों को सस्ते कच्चे माल, श्रम व भूमि की तलाश में अन्य क्षेत्रों में जाना पड़ता है।

आपने सुना होगा कि संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी व जापान से बहुत से बहु-राष्ट्रीय निगम भारत में आ रहे हैं। पहले सस्ते श्रम व औद्योगिक अनुशासन की तलाश में उनका उत्प्रवासन (Migration) कोरिया व तायवान को हुआ था। यह उनकी उत्पति के लिए वृहत-बाजार, सस्ते श्रम और सरकारी नीतियों के कारण हुआ था। दूसरे शब्दों में संयुक्त राज्य अमेरिका (यू०एस०ए) व जापान की तुलना में भारत में निर्माण करना सस्ता है।

मितव्ययताओं व अमितव्ययताओं के सम्बन्ध में विकास ध्रुव सिद्धान्त के तकनीकी पहलुओं का वर्णन करने के पहले हमें इन शब्दों - मितव्ययताएं, अमितव्ययताएं व विकास ध्रुव - को कुछ पृथक से समझना चाहिए। फिर हम इनके बीच छुपे हुए अन्तर्सम्बन्धों को व्यक्त करेंगे। ऐसा करने के लिए हम एक व्यापारिक फर्म या एक औद्योगिक इकाई के संदर्भ में आरम्भ करेंगे।

6.2 मितव्ययताएं और अमितव्ययताएं

6.2.1 मितव्ययताएं (बचतें)

सभी फर्में लाभ कमाने के उद्देश्य से कार्य करती हैं? एक फर्म एक स्थान से अन्य स्थानों पर अपनी शाखाओं या इनके बिना कार्य करती है। जब तक एक फर्म उस स्तर तक लाभ (विक्रय-लागत = लाभ) कमाती हैं, जिस पर वह बनी रह सकती हैं, उस स्तर तक फर्म कार्यरत रहेगी। समय के साथ जब तक फर्म अपने उत्पादन का विस्तार करती है तो उसकी प्रति इकाई लागत कम होने लगती है, तब फर्म पैमाने की बचत प्राप्त कर रही कही जाती है। इस प्रकार वहां ऐसी फर्में होती हैं जिन्हें लघु, मध्यम या वृहत-स्तरीय पैमाने की बचतें प्राप्त हो रही होती हैं। मितव्ययताओं (बचतों) वाली फर्मों में कार्यात्मक व्यूहरचना अपनाने की प्रवृति होती है, जिसके अन्तर्गत विद्यमान संसाधनों का उपयोग विविध उत्पत्तियों के लिए किया जाता है जिसके परिणाम-स्वरूप फर्म को अधिकतम लाभ होता है। इस प्रकार की व्यूहरचनाओं में प्रशिक्षित व अप्रशिक्षित मानव शक्ति के भण्डार, विद्यमान आधार ढांचे, व्यापारिक संपर्क, साख उत्तमता (credit worthness) व उपलब्ध नकद प्रवाह (बहाव) आदि को ईष्टतम, रूप से इस प्रकार जाल पाश में बांधा जाता कि, फर्म की उत्पादन सूची में नयी उत्पत्तियों को जोड़ा जाता है और, लाभ कमाया जाता है। इसे वैयक्तिक फर्म स्तर पर मितव्ययताएं कहा जाता है। वह क्षेत्रीय स्तर पर भी इस अर्थ में हो सकता है कि, व्यापारिक व औद्योगिक क्षेत्रों (complexes) ने मितव्ययताएं प्राप्त की हों।

जब एक बड़ी संख्या में फर्में एक बिन्दु (स्थान) पर एकत्रित होती हैं, जैसी कि उनमें प्रवृति पायी जाती है, जो आधार ढांचे में उनके भाग लेने, यातायात भण्डारण आदि में लागत कम होने से उनकी प्रति इकाई लागत भी कम होती है। इस प्रकार अधिक क्रेताओं को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए विक्रय कीमतें घटायी जाती हैं। इस प्रकार के स्थान के लिए फर्मों में प्रतियोगिता पायी जाती है, जहां बहुत सी लागतों में कमी के अवसर पाये जाते हैं । जब फर्में स्थानीय लाभों को उठाने के लिए इस प्रकार के स्थान पर स्थापित होने लगती हैं तो, इस प्रक्रिया को केन्द्रीयकरण (Agglomeration) तथा उस स्थान को जहां इस प्रकार की स्थिति बनती है, उसे विकास ध्रुव कहा जाता है। इस प्रकार के एकत्रीकरण (समूहीकरण) (Clustering) में मुख्य प्रेरक यातायात लागतें होती हैं, जिनका वर्णन हम बाद में करेंगे।

6.2.2 अमितव्ययताएं (Diseconomies)

इसके विपरीत जब फर्म इस प्रकार कार्य करती है कि प्रति इकाई उत्पत्ति लागत बढ़ती है, तो अमितव्ययताएं (हानियां) लागू होनी कही जाती हैं। आपको ज्ञात होगा कि, सुदूर क्षेत्रों में नवीन औद्योगिक इकाइयों को स्थापित होने में आवश्यक साधनों की कमी के कारण कठिनाइयां आती हैं, जैसे कच्चा माल, जनशक्ति, आधार ढांचा, क्रेता, भण्डारण सुविधाओं एवं अन्य सहायक तत्व जिनकी आवश्यकता पड़ सकती है। जब फर्म सु-संपन न हो और उसके पास उपयोग के लिए भारी मात्रा में संसाधन न हों, और उसे यह ज्ञात न हो कि, एक नये स्थान पर

प्रारम्भिक शुरुआत के लाभ दीर्घ काल में प्राप्त होंगे, तब तक फर्म अपना भविष्य खतरे में नहीं डालती। जब फर्मों के लाभ आधार ढांचे, श्रम की उच्च लागत, श्रमिक संघों की हड़तालों, जल एवं वायु की निम्न गुणवत्ता, सेवकवर्ग (स्टाफ) के लिए आवास व्यवस्था, कर्मचारियों के बच्चों की स्कूली शिक्षा, या कर ढांचे के कारण सरकारी नीतियां, हानिकारक सरकारी नीतियां आदि के कारण घटने लगते हैं, तो फर्मों को इनके कारण प्रति इकाई लागत अधिक उठानी पड़ती है, जो उनके लिए प्रभावी लाभ घटाती है। इस प्रकार की स्थिति में एक क्षेत्र में अमितव्ययताओं के लागू होने के कारण फर्में नवीन क्षेत्रों में उत्प्रवास करने (जाने) लगती हैं। आपने सुना होगा कि श्रमिक संघवाद, श्रमिक असंतोष, खराब रहन-सहन की अवस्थाएं, महंगी आवास व्यवस्था, अच्छे स्वस्थ वातावरण आदि कें कारण पश्चिमी बंगाल से बहुत सी फर्मों ने भारत के अन्य क्षेत्रों में जाना या (अप्रवास) (Migration) शुरु कर दिया था। अब बैंगलोर एक नवीन औद्योगिक चुम्बक या आकर्षण केन्द्र (मेग्नेट) बन रहा है, जो मध्यम व हल्के जैसे कम्प्यूटर निर्माण व सोफ्टवेअर डिजाइन को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। इसी प्रकार बहुत से परम्परागत मारवाड़ी व्यापारी राजस्थान में यहां नवीन अवसरों, सस्ते श्रम व भूमि की उपलब्धि, सरकार से प्रेरणाओं (प्रलोभनों) आदि के कारण, राजस्थान को लौट रहे हैं।

भारत जैसे विकासशील देश में नीतिगत हस्तक्षेप पिछड़े हुए क्षेत्रों में विकास ध्रुव का निर्माण करते हैं, ताकि इनके इर्द-गिर्द औद्योगिक व व्यापारिक विकास हो सके। जब इस प्रकार के विकास ध्रुव राज्य के द्वारा निर्मित किये जाते हैं तो, आधार ढांचे जैसे सड़क, रेल, हवाई अड्डे (ऐयर पोर्ट), जल, नालियां (सीवेज), विक्रय केन्द्र (शापिंग काम्पलेक्स) भण्डार गृह, श्रमिकों के आवास गृह, स्कूल और मनोरंजन की सुविधाओं पर भारी विनियोग किया जाता है। इस प्रकार का आधार ढांचागत विकास अप्रत्यक्ष आर्थिक सहायता (सब्सिडी) के रूप में वित्तीय प्रेरणाओं के परिणाम-स्वरूप फर्म व श्रम शक्ति विकास ध्रुवों की ओर आकर्षित होती है।

राजस्थान में रीको (RIICO) ने इस प्रकार के विकास ध्रुवों का निर्माण किया है, जिसका उदाहरण अलवर जिले में भिवाड़ी है। समय बीतने पर जब आधार ढांचे की ठीक प्रकार देखभाल नहीं होती (या उन्हें कायम नहीं रखा जाता) तो, वातावरण दूषित होने लगता है, श्रमिकों पर स्वास्थ्य की लागत बढ़ती है, जीवन स्तर गिरता है, तो प्रति इकाई लागत में वृद्धि व लाभों में कमी होने लगती है। इस स्थिति को केन्द्रीयकरण (Agglomeration) की अमितव्ययता (हानि) कहा जाता है। विकास ध्रुव एक स्थैतिक या निरंतर मिटते हुए स्थान में रूपान्तरित हो जाता है। परिणाम-स्वरूप, अन्य स्थानों पर नवीन विकास ध्रुव उभरने लगते हैं जहां स्थानीय लाभ श्रेष्ठ होते हैं, और फर्मों व व्यापार को आकर्षित करते हैं। यहां हमने जिसका वर्णन किया है, वह एक प्रारम्भिक प्रक्रिया है जो वास्तव में बहुत विषम होती है, जो और सैद्धान्तिक स्थापित विचारों को चुनौती देती है। आगे जिसका वर्णन किया गया है वह वाल्टर इसराद (Walter Israd) के द्वारा दिया गया कठोर (खरा) सैद्धान्तिक रचना है।

6.3 विकास ध्रुव और आइसोडापेन (Isodapane)

क्षेत्रीय विज्ञान के जनक वाल्टर इसराद के अनुसार वास्तविक स्थानक सिद्धान्त और वास्तविक व्यापार सिद्धान्त दोनों एक ही हैं। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं क्योंकि वस्तुओं, साधनों (श्रम और पूंजी) तथा विचारों का प्रवाह दो स्थानों के बीच होता है। इन प्रवाहों की पूर्णतया व्याख्या करने के लिए, हमें यह जानना चाहिए और साथ-साथ व्याख्या करनी चाहिए कि, इन स्थानों पर क्या पाया जाता है या विद्यमान है। अन्यथा, यह पूर्णतया स्पष्ट करने के लिए कि, अन्तर्क्रिया करने वाले स्थानों के समूह के बीच क्या पाया जाता है, हमें इन स्थानों के बीच वस्तुओं, साधनों व विचारों के प्रवाहों को जानना और साथ-साथ ही इनकी व्याख्या करनी चाहिए।

क्षेत्रीय अन्तर्राज्यीय या अन्तर्राष्ट्रीय आवंटन की आर्थिक क्रियाओं के प्रश्न को समझने के लिए अन्य के साथ निम्न तत्वों पर विचार किया जाना चाहिए :-

(1) उत्पादक साधनों श्रम, पूँजी, खनिज व अन्य सभी सम्बन्धित साधनों का विभिन्न राष्ट्रों के बीच वितरण;

(2) भौतिक व अन्य दूरियां, और दूरी के फलन के रूप में यातायात लागत;

(3) इन साधनों व संसाधनों की सापेक्षिक गतिहीनता जो यातायात लागत के परे जाती है और जो सामाजिक, सांस्कृतिक, विचारधारात्मक व अन्य शक्तियों को प्रतिबिंबित करती हो;

(4) उत्पादन में पैमाने की बचतें और स्थानीयकरण के कारण वाह्यताएं (या वाह्य बचतें) शहरीकरण व अन्य प्रकार की एकत्रीकरण (Agglomeration)की मितव्ययताएं;

(5) प्राथमिकताओं व भुगतान फलनों (pay-off functions) (उत्पादकों, उपभोक्ताओं, व्यापारियों, राष्ट्रों, बहुराष्ट्रीय उद्यमों सहित) व्यवहार करने वाली इकाइयां;

(6) प्राविधि, सूचियों व अन्य अन्तर्निहित व वाह्यनिहित प्रक्रियाओं को प्रभावित करने के रूप मे समय;

(7) विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक व अन्य मूल्यों और राष्ट्रों के बीच संस्थाओं को प्रतिबिंबित करने के रूप में व्यापारिक नीति।

स्पष्टतया वास्तविक व्यापार और स्थान सम्बन्धी (स्थानक) (LOcation) दोनों सिद्धान्तों ने इन सभी व अन तत्वों पर विचार किया है और करना चाहिए। यदि हमें प्रभावी व्यापार व स्थानक (Location) नीति के लिए अन्वेषणात्मक ज्ञान प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर होना है तो, हमें विषम विश्लेषण करने की सीमित बुद्धिमता की क्षमता के कारण हमें इनमें से बहुत से तत्वों का सार निकालना चाहिए। तदनुसार विशिष्ट सिद्धान्त होने चाहिए और है भी जैसे, दिये हुए और विविध साधन संपन्न दो राष्ट्रों के 2.2 मॉडलों से सम्बन्ध शुद्ध व्यापार सिद्धान्त। इस प्रकार का सिद्दान्त अक्सर दो राष्ट्रों के बीच यातायात लागतों को स्थिर मानकर, पैमाने व अन्य एकत्रीकरण की बचतों, समय, बहु-राष्ट्रों आदि के सार निकालकर या अलग करके सरलीकृत करता है। इसके विपरीत (तुलना में) जैसा कि यहां विचार किया गया है, विशिष्टकृत स्थानक सिद्धान्त (Specialised Location Theory) है। इस सिद्धन्त का मुख्य

महत्व अवयव के रूप में यातायात लागतों पर और, एकत्रीकरण मितव्ययताओं पर है, जबकि विनिमय दर परिवर्तन, भुगतान संतुलन प्रतिबंधों व अन्य शक्तियों को विचार से अलग करता है। ये दोनों ही विशिष्टकृत सिद्धान्त एक प्रभावी नीति और साथ ही अन्य विशिष्टकृत सिद्धान्तों का विकास करने में अत्यन्त उपयोगी हैं। आधारभूत रूप में विभिन्न व्यापार व स्थानक सिद्धान्तकारियों के बीच कोई अन्तर्वर्ती अन्तर नहीं है। इन सिद्धान्तकारियों के बीच अन्तर तभी उत्पन्न होते हैं, जब वे विभिन्न-विभिन्न मान्यताओं के साथ कार्य (अध्ययन) करने को चुनते हैं। फिर भी, इसके साथ ही प्रत्येक सिद्धान्त को अधिक वास्तविक व प्रभावी तभी बनाया जा सकता है, जब इनमें से प्रत्येक सिद्धान्त को, विश्लेषण की गहनता का त्याग किये बिना, इन अन्य सिद्धान्तों के कुछ शक्तिशाली विश्लेषणों को शामिल करने के लिए, इनमें से प्रत्येक को विस्तृत या व्यापक बनाया जा सके। हमारे लिए सिद्धान्तकारियों के विभिन्न वर्गों के बीच कम से कम कुछ पृथकता को हटाना होगा, जो पिछले तीन दशकों से इनकी विशेषता बनी हुई है।

भाग 2 में एकत्रीकरण मितव्ययताओं की परिभाषा दी गयी है। इसके बाद एक प्रारम्भिक रूप में, सस्ते साधन जैसे श्रम व स्थानों पर एकत्रीकरण पर महत्व सहित, एकत्रीकरण विश्लेषण के कुछ आधारभूत तत्वों को एक प्रारम्भिक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

भाग 3 में, व्यवहार में एकत्रीकरण विश्लेषण से सम्बन्धित एक उदाहरण या विशिष्ट अध्ययन (Case Study), प्रोटो रिको (Puerto Rico) में औद्योगिक बस्ती (Industrial Complex) विकास का वर्णन किया गया है। भाग-5 में पैमाने की बचतें और प्रावैधिक विकास का महत्व (जोर देने) सहित, प्रथम प्रवेश या देर से औद्योगिक बस्ती में प्रवेश करने के लाभों का वर्णन किया गया है। भाग-5 में हमने सस्ते वातावरणीय स्थानों और भविष्य में नवीन एकत्रीकरण और भविष्य में विश्व व्यापार के स्वरूप के लिए उनके प्रभावों का वर्णन किया है। भाग-6 मे, आर्थिक क्रिया व व्यापार और उपयुक्त विधियों के बारे में भविष्य के स्वरूप के लिए, कुछ साधारण अनुमान व उपसंहार टिप्पणियां करूंगा।

6.3.1 परिभाषा और वेबेरियन सिद्धान्त:

(Definition and Weberial Theory)

ई०एम०हूवर ने एकत्रीकरण व विकेन्द्रीकरण (Agglomeration and Degleration) मितव्ययताओं का स्पष्टतया वर्गीकरण निम्न प्रकार, किया है:-

1- एक फर्म के एक समय बिन्दु पर उत्पादन के पैमाने में विस्तार के परिणाम-स्वरूप वृहत- स्तरीय मितव्ययताएं।

2- उस स्थान पर उस उद्योग की कुल उत्पत्ति के विस्तार के परिणाम-स्वरूप एक अकेले स्थान पर सभी फर्मों के लिए स्थानीयकरण की मितव्ययताएं।

3- सभी उद्योगों सहित उस स्थान पर कुल आर्थिक आकार (जनसंख्या, आय, उत्पत्ति या संपत्ति) में वृद्धि के परिणाम-स्वरूप सभी उद्योगों की सभी फर्मों के लिए शहरीकरण की मितव्ययताएं।

सार या संक्षेप में, एकत्रीकरण सिद्धान्त वेबर (1909) के साथ प्रारम्भ होता है। उनके सिद्धान्त को चित्र के द्वारा व्यक्त करने के लिए मान लीजिये कि, एक समान वस्तु की उत्पत्ति करने वाली उत्पादन की तीन इकाइयां चित्र-6.1 में P_1, P_2, P_3, बिन्दुओं पर स्थित हैं। प्रत्येक स्थिति आवश्यक कच्चे माल के असेम्बल या मिलाने के और, निर्मित तैयार माल के अपनी इकाई के बाजार में यातायात करने के सन्दर्भ में निम्नतम यातायात के लागत के बिन्दु हैं। प्रत्येक इकाई की स्थिति के चारों ओर इकाई के स्थानक त्रिभुज व आलोचनात्मक आइसोडापेन (Critical Isodapane) खींचे गये हैं। इस स्थिति में उत्पादन की एक इकाई के लिए आलोचनात्मक आइसोडापेन वे बिन्दुओं के समूह (Cocus) होते हैं, जिनमें से प्रत्येक के लिए कच्चे माल को मिलाने (असेम्बल करने) व तैयार माल को बाजार तक पहुचाने की यातायात लागतें, उन तद्नुरूप यातायात लागतों से अधिक होती हैं, जो एक समान मात्रा में उस इकाई की ईष्टतम यातायात बिन्दु से सम्बन्धित होती है। इस यात्रा को एकत्रीकरण (Agglomeration) मितव्ययताओं के बराबर माना जा सकता है, जिनकी प्राप्ति उस इकाई के द्वारा की जायेगी, यदि वह एक प्रभावी एकत्रीकरण में अन्य इकाइयों से संबद्ध हो गया होता। चित्र-6.1 में आलोचनात्मक आइसोडापेन एक दूसरे को नहीं काटते। एकत्रीकरण व्यवहारिक नहीं है।

इसके विपरीत चित्र 6.2 में दर्शायी गयी स्थिति है, जिसमें ये तीनों इकाइयां एक दूसरे के निकट हैं। यह इनके आलोच्य आइसोडापेन एक दूसरे को काटते हैं। वेबर की योजना में एकत्रीकरण उस स्थान पर होगा, जो इनका सामान्य भाग है और, जिसे, गहरा (Shaded) किया गया है।

इस बिन्दु 1 पर हमें विस्तार से उन विषम तर्कों का वर्णन करना होगा, जो वेबर व अन्य सिद्धान्तकारियों ने दिये हैं, विशेषकर गहरे किये गये क्षेत्र (एकत्रीकरण समूह) (Set) या इसके बाहर के क्षेत्र को भी अभिन्नित (Identify) करने के प्रश्न जो ईष्टतम हैं, या जो एकत्रीकरण के बिन्दु के रूप में प्राप्त किये जायेंगे, हम जिस पर विचार कर सकते हैं, वह एक स्थान से एक सस्ते साधन पर विचलन का प्रश्न है। यह वह स्थान है जहां एक साधन, एक विशेष ईष्टतम यातायात लागत (निम्नतम लागत) बिन्दु से काफी कम लागत का है, जो कुछ गतिहीनता या अपेक्षाकृत वृहत यातायात लागत या दोनों के कारण है। उदाहरणार्थ मान लीजिये कि

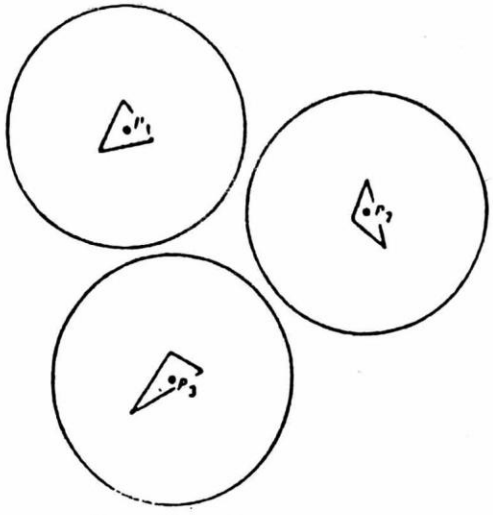

रेखा चित्र 6.1

रेखा चित्र-6.1 परस्पर न काटते हुए आलोच्य आइसोडापेन्स : एकत्रीकरण का अभाव।

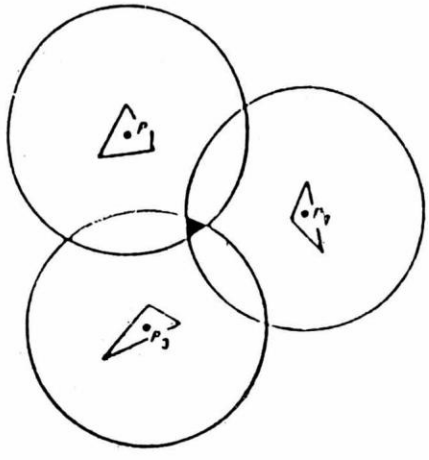

रेखा चित्र 6.2

चित्र 6.2: परस्पर काटते हुए आइसोडापेन्सः

एकत्रीकरण- वाल्टर इसराद (Ibid)

सस्ते श्रम का एक स्थान है जैसा चित्र 6.3 में दिखाया गया है। अब हम यह पूछते हैं कि P_1 P_2 P_3 बिन्दुओं पर उत्पादन की इकाईयां किस मात्रा में सस्ते श्रम स्थान की तरफ विचलित होंगी (जायेगी)।

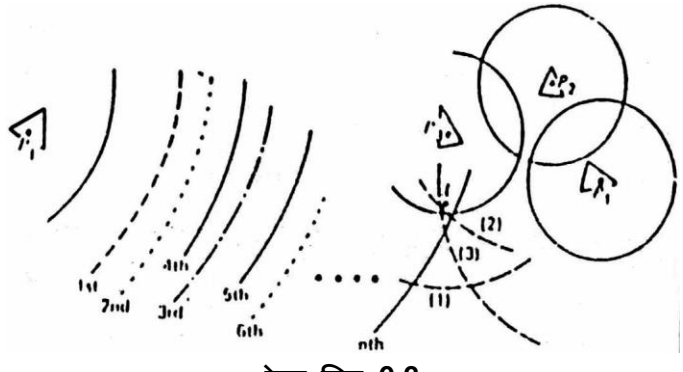

रेखा चित्र 6.3

रेखा चित्र-6.3 : आलोच्य आइसोडापेन्स और सस्ते श्रम स्थान का एकत्रीकरण।

6.3.2 विकास ध्रुव व कई क्रम के आइसोडापेन

(Growth Poles and Isodopanes of several order)

(1) आलोच्य आइसोडापेन और सस्ते श्रम का स्थान:

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हम पहले किसी भी इकाई i(i = 1,2,3) के स्थान पी$_1$ के आस-पास इसके आलोच्य आइसोडापेन, सस्ते श्रम स्थान के सन्दर्भ में, या इसके लिए बनायेंगे। इस समय चित्र 3 में केन्द्र और बायीं तरफ की अवहेलना करते हुए या बिना देखते हुए चित्र के दायीं और देखिये, यह स्थिति आलोच्य आइसोडापेन बिन्दुओं का वह समूह है जिसके लिये कच्चे माल को एकत्रित करने, व तैयार माल को बाजार तक पहुंचाने की अतिरिक्त यातायात लागत की जब तुलना पी$_i$ पर की जाती है तो, वह उत्पत्ति की प्रति इकाई श्रम लागत की बचत के बराबर है, यदि इकाई i, L पर स्थित है। प्रस्तुत चित्र में उत्पादन की केवल एक इकाई अर्थात इकाई 3 ही L पर खिसकेगी, जो इकाई- 3 के आलोच्य आइसोडापेन के अन्दर है, लेकिन जो इकाई 1 और 2 के आलोच्य आइसोडापेन के अन्दर नहीं है।

(2) एकत्रीकरण मितव्ययताओं का बीच में आना (Interjection of Agglomeration Economies) प्रथम समायोजित आलोच्य आइसोडापेन

मान लीजिये कि एकत्रीकरण मितव्ययताएं जो प्राप्त की जा सकती हैं, यदि सभी तीनों एक ही स्थान पर स्थित हैं, तो वे $ 2.00 प्रति इकाई उत्पत्ति हैं। तो दोनों सस्ते श्रम व एकत्रीकरण मितव्ययताओं पर विचार करने के लिए हमें, प्रत्येक इकाई के लिए एक समायोजित आलोच्च आइसोडापेन बनाने होंगे। प्रथम समायोजित आलोच्च आइसोडापेन सभी तीनों उत्पादन की इकाइयों के लिए खण्डित रेखाओं के रूप में आइसोडापेन। इस कारण से उत्पादन की प्रत्येक इकाई के लिए, यदि सभी ऐसा करती हैं, तो L पर विचलित होना लाभदायक होगा।

बदलाव जमाओं (Replacement deposits) की संभावना पर विचार कीजिये - अर्थात् L के निकट उत्पादन की एक इकाई के नवीन कच्चे मात्र के स्त्रोतों का उपयोग, या उन स्रोतों पर, जिनसे L पर एक इकाई के द्वारा अधिक सस्ते रूप में कच्चे माल की प्राप्ति की जा सकती है, उसकी तुलना में जब उत्पादन की इकाई ईष्टतम यातायात बिन्दु पर स्थित है।

उस तत्व व अन्य जिनका वर्णन किया जायेगा, सभी पर विचार करने के लिए अब हम अपना ध्यान उत्पादन की एक इकाई j पर केन्द्रित करेंगे, जिसका ईष्टतम् यातायात बिन्दु bj चित्र 3 के बायीं ओर अन्तिम भाग पर स्थित है। उनके पास हमने आलोच्य आइसोडापेन खींचे हैं जो (अ) सस्ते श्रम स्थिति L - गहरी रेखा, और (ब) प्रथम समायोजित आलोच्य आइसोडापेन- खण्डित रेखा हैं।

(3) द्वितीय समायोजित आलोच्य आइसोडापेन (Second Adjusted Critical Isodopane)

अब हम द्वितीय समायोजित आलोच्य आइसोडापेन बना सकते हैं, ताकि इस तथ्य को विचार में लाया जा सके कि, एक उत्पादन इकाई L के निकट जमा कच्चे माल के भण्डारण

के स्त्रोत का उपयोग करेगी, उन स्त्रोतों की तुलना में जिनका वह उपयोग अन्य इकाइयों के साथ L पर जमाव होने पर करती। हम देखते हैं कि इकाई j इस अपेक्षाकृत सरल रचना में L पर विचलित होने के लिए प्रेरित नहीं होती।

(4) तृतीय समायोजित आलोच्य आइसोडापेन

L पर सस्ते श्रम की उपलब्धि सामान्यतया साधन स्थापनता को प्रोत्साहित करेगी, अर्थात L पर सस्ते श्रम का प्रतिस्थापन साधन उतादन को प्रेरित करेगा, जो L पर एकत्रीकरण (जमाव) से और अधिक लाभ को जन्म देगा। हम इसे इकाई के तृतीय समायोजित आलोच्य आइसोडापेन से प्रदर्शित करते हैं।

(5) चतुर्थ समायोजित आलोच्य आइसोडापेन :

सस्ते श्रम के स्थान L पर उत्पादन की कुछ हानियां भी हो सकती हैं। उदाहरणार्थ उत्पादन इकाई j, pj की तुलना में उच्च ईधन की लागत पा सकती है। पानी की लागत भी अधिक हो सकती है, लेकिन कर कम हो सकते हैं। इसलिए j के लिए अन्य सभी लागत अन्तरों (और साधन स्थापन्नता या इसी प्रकार की अन्य स्थितियां जो इसके तात्पर्य हो सकती हैं) को स्वीकार (पहचान) करने के लिए हमें अपने विश्लेषण को समायोजित करने की आवश्यकता है। मान लीजिये कि शुद्ध रूप में ये j के लिये हानियां हैं। इस प्रकार चतुर्थ आलोच्य आइसोडापेन जो इन तत्वों व अन्य तत्वों को भी ध्यान में रखता है, जिनका उल्लेख पहले ही किया गया है, वह j के अधिक निकट, तृतीय आइसोडापेन की तुलना में है।

(6) पंचम समायोजित आलोच्य आइसोडापेन

जैसे 2, फर्म 1, 2 व 3 बिन्दु L पर कार्य करती हैं और, जैसे 2 श्रमिकों की सेवा के लिये अन्य क्रियाएँ भी L पर स्थित होती हैं (फर्म 1, 2 व 3 फर्मों में लगे एवं अपनी स्वयं की क्रियाओं में लगे श्रमिकों की सेवा के लिये) L पर स्थित उत्पादन की प्रत्येक इकाई के लिये अतिरिक्त बाजार अस्तित्व में आता है, जिसके कारण उत्पत्ति की प्रति इकाई माल पहुँचाने की औसत लागत गिरने के कारण, अतिरिक्त लाभ की स्थिति में होती है, इसके कारण पंचम समायोजित आलोच्य आइसोडापेन अस्तित्व में आता है।

(7) षष्टम (छठी) समायोजित आलोच्य आइसोडापेन

जैसे 2 L बिन्दु पर जनसंख्या में वृद्धि होती है, आयात प्रतिस्थापन के साथ अतिरिक्त मितव्ययताएँ भी जुड़ी हो सकती हैं, जैसे 2 1, 2, 3 व शायद j फर्में L बिन्दु पर स्थित होती हैं, नवीन फर्मों के लिये उन वस्तुओं को निम्म लागत पर उत्पादन करना लाभदायक व साथ ही संभव हो सकता है, जिनका अन्य स्थानों से आयात होता है। यदि वे वस्तुएँ 1, 2, 3 व j फर्मों के लिये आगत है तो, एक अतिरिक्त तत्व उत्पन्न होता है, जो बदलाव भण्डारों के समान होगा। इस प्रकार हमें पूर्व अनुमानित विकास पर आधारित छठा समायोजित आलोच्य आइसोडापेन प्राप्त होगा।

(8) अगले (n^{th}) सामायोजित आलोच्य आइसोडापेन (Subsequent n^{th} adjusted critical Isodapane)

समय के साथ अतिरिक्त ऐकीकरण (समूहीकरण) मितव्ययताओं का पूर्व अनुमान लगाया जा सकता है, तो स्थानीयकरण की मितव्ययताओं से परे शहरीकरण की मितव्ययताओं की पूर्ण श्रेणी व विविधता सहित होगा। उदाहरणार्थ, यह पूर्व अनुमान लगाना उचित होगा, इस कारण क्योंकि शायद L स्थान की केन्द्रीय स्थिति है। इसलिये वहां कई ऐसे उपक्रम स्थापित हो सकते हैं, जो 1, 2, 3 व j फर्मों की उत्पत्तियों को अपनी उत्पादन प्रक्रिया में उपयोग में लेगें, जिससे और अधिक लाभ और अधिक माल पहुँचाने की प्रति इकाई लागत में और अधिक कमी करके, स्थानीय आय व रोजगार गुणांक प्रभावों (आशिक रूप में आगत-निर्गत) (Input-Output) विधि के द्वारा पूर्व अनुमानित और शायद सेवा क्रियाओं की व्यापक श्रेणी व विविधता जो शहरी-औद्योगिक ऐकन्द्रीकरणों की विशेषता है, n^{th} समायोजित आलोच्य आइसोडापेन का कारण हो सकती है, जैसा कि चित्र 3 में दर्शाया गया है। इन परिस्थितियों में एक फर्म के लिये L बिन्दु पर स्थित होना "विवेकपूर्ण होगा, जिससे ठोस ऐकीकरण प्रक्रिया को गति प्राप्त हो सकती है।

अब तक हमने अति सरल व क्रमवार रूप में एक दृश्य प्रस्तुत किया है, जो ऐकीकरण (समूहीकरण) मितव्ययताओं में योगदान करने वाले विभिन्न तत्वों को अभिन्नित (Identify) करता है। इस विवरण से अधिक मिले-जुले वर्णन अन्यत्र भी उपलब्ध हैं, जो पैमाने की मितव्ययताओं के आधारभूत तत्वों को भी शामिल करते हैं। आर्थिक क्रिया का स्थापन और, इस कारण स्थानों के बीच वस्तुओं का गमनागमन, चाहे ये स्थान एक राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों के अन्दर या विश्व के राष्ट्रों के बीच होते हैं। उनके प्रमुख महत्व का अतीत से सत्यापन होता है- उदाहरणार्थ, विश्व के अपेक्षाकृत कुछ सं केन्द्रित स्थानों पर आधारभूत इस्पात व इस्पात निर्माण की क्रियाओं का विकास, जिसने विश्व व्यापार के स्वरूप को काफी प्रभावित किया है- और भविष्य में भी प्रभावित करेगा। जैसा कि स्पष्ट उस समय होता है, जब हम योजना करते हैं कि, प्रमुख एकत्रीकरण मितव्ययताएं जो आवश्यक सुरक्षा उपायों व तेज रोश्नी (Radiation) के खतरों जैसे केवल कुछ ही व्यक्त किये गये तत्वों से सम्बन्धित रहेगी।

6.4 व्यवहार में एकत्रीकरण (जमाव) विश्लेषण

सिद्धान्त की बात करना एक चीज है, जैसे एकत्रीकरण सिद्धान्त या विकास जैसे सम्बन्धित सिद्धान्त, और व्यवहार में एकत्रीकरण की बात करना दूसरी अलग चीज है। इसके ही सम्बन्ध में हम अपने परिप्रेक्ष्य वर्णन को गहन करने के लिये औद्योगिक बस्ती विकास का उदाहरण दे सकते हैं। तथ्यों के अभाव के कारण हम भारत या राजस्थान के विशेष अध्ययन (Case Study) नहीं कर सकते, और इसी कारण-अनुसंधानकर्ता व परियोजना के लिये कोष (वित्त) उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं, जैसे रीको, मार्बल निर्माण इकाइयों, या मथुरा व अन्य स्थानों पर पैट्रोलियम पदार्थो के केन्द्रों आदि के द्वारा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना कर विशेष अध्ययन नहीं किये जा सकते। इसलिये हम भारत के बाहर के प्रसिद्ध क्षेत्रीय वैज्ञानिकों के उदाहरण लेने के लिये बाध्य हैं। इसराद व उनके साथियों ने प्योरटो रीको की एकत्रीकरण अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया है और, निर्णय क्रिया की विषम प्रक्रियाओं को व्यक्त किया है।

प्योरटो रीको के अध्ययन को प्रस्तुत करने में यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि तृतीय विश्व के राष्ट्रों में कम से कम कुछ इतने बड़े राष्ट्र होंगे कि वे प्योरटो रीकों में पाये जा सकें। विश्व व्यापार के परिवर्तित स्वरूप के लिये इसके सम्बन्ध या अर्थ स्पष्ट हैं। दूसरा बिन्दु जो ध्यान में रखा जाना है, वह पूर्व भाग में वर्णित सरल सैद्धान्तिक ढाँचे के विपरीत, इसराद कों पैमाने की बचतें और स्थानीयकरण व शहरीकरण की बचतों को भी शामिल करना पड़ा क्योंकि वे वास्तकिता की स्थिति का वर्णन कर रहे थे और, इसलिये वे इससे अलग नहीं रह सकते थे। पैमाने की बचतों (मितव्ययताओं) का वर्णन अगले भाग तक स्थगित किया जाता है।

चूंकि आज तृतीय विश्व के कई देश हैं; सन् - 1950 में प्योरटों रीकों चरम सीमा की निर्धनता का एक क्षेत्र था। उस समय इसराद व उनके दल को आर्थिक विकास प्रशासन (Economic Development Assotiation - EDA) ने अनुसंधान कार्य करने के लिये बुलाया। ई. डी ए. सस्ते श्रम पर आधारित, विशेष एक उद्योगीय अस्थिरता और शीघ्र छोड़कर जाने वाली फर्मों से सम्बद्ध संभावित हानि उठाने वाले उद्योगों पर आधारित एक उद्योग क्षेत्र को विचार से अलग रखना चाहते थे। यह दीर्धकालीन प्रतियोगी प्रकार का आधारभूत आर्थिक विकास चाहता था, जो एक छलाँग (Take-off) को चिंगारी (तीव्रता) प्रदान कर सके।

पूर्व अनुसंधान पर काफी विचार व परीक्षा के बाद यह स्पष्ट था कि, प्योरटो रीको में सस्ते श्रम वाले श्रमोन्मुखी दिशाओं के अलावा, कोई पृथक निर्माण इकाई लाभप्रदता के साथ स्थापित नहीं की जा सकती थी, जिसे ओर आगे विकास के लिये हानिकारक माना गया हो इस कारण, विभिन्न प्रकार के ऐकत्रीकरणों को ध्यान में रखते हुए, प्योरेटो रीको के लिये, विभिन्न क्रियाओं के समूहों को ओद्योगिक स्थानों में एक साथ लाने के लिए कई विकल्पों पर विचार किया गया था। एक औद्योगिक बस्ती (क्षेत्र या स्थान) को एक दिये हुए स्थान पर होने वाली उन क्रियाओं के समूह के रूप में परिभाषित किया गया था, जो क्रियाओं के एक वर्ग (उप प्रणाली) से सम्बन्ध है, जो तकनीकी, उत्पादन, विपणन व अन्य जोड़ने वाली श्रृंखलाओं के कारण, जब इन्हें एक साथ एक स्थान पर लाया जाता है, तो प्रत्येक क्रिया के लिये ये महत्वपूर्ण मितव्ययताएँ जनित करती है। यह जानते हुए कि प्योरेटो रीको एक निर्धन संसाधन आधार है, किसी भी अर्थपूर्ण औद्योगिक बस्ती को अभिनित करना अत्यन्त कठिन था। निकट पाये जाने वाले संसाधनों को जानने का प्रयास किया गया था। निकटतम संसाधन वेनेजुआला का तेल था, जो जल मार्ग से 965 किलोमीटर की दूरी पर था। इसलिये उर्वरक उत्पादन के साथ तेल शुद्धीकरण (Refining) को एक संभव आयात प्रतिस्थापन क्रिया माना गया था, क्योंकि उर्वरकों का उत्पादन तेल शुद्धीकरण फैक्टरी (Refinery) के गैस बहाव (Gas Stream) से कई चरणों में किया जा सकता था, और चूंकि प्योरटो रीको की आयात सूची में उर्वरकों कें आयात प्रधान थे, इसलिये यह कार्य और लाभप्रद था । हालाँकि हमें इसके साथ कृत्रिम धागों को जोडना पडा, यद्यपि ये सस्ते श्रम उद्योग पर निर्भरता दूर करने के उद्देश्य के विपरीत थे, मगर वास्वत मैं इसी ने प्योरटो रीको सै निश्चितगि कुछ लाभप्रद प्राप्त करने की

आशा थी, तेल शुद्धीकरण कृत्रिम धागों व उर्वरक उत्पादन नें विविध पेट्रो- रसायनिक क्रियाओं को भी जोड़ा गया था, जो मध्यवर्ती अवस्थाओं में आवश्यक थे।

जो यह जानते हैं कि तेल के द्वारा पैट्रोरसायन से अन्तिम उत्पति तक पहुँचने के कई बड़े मार्ग हैं, वे यह भी स्वीकार करते हैं कि, एक बड़ी संख्या में उन औद्योगिक बस्तियों को स्थापित

किया जा सकता है, जिनमें तकनीकी व्यवहारिकता है। समस्या यह है कि, इतने बड़े तकनीकी आधार पर व्यवहारिक (संभव) औद्योगिक बस्तियों में से प्योरटो रीको के लिये एक कुछ को किस प्रकार पृथक किया (चुना) जाये ताकि वह मुख्य क्षेत्र (Mainland) व विश्व के अन्य क्षेत्रों से प्रतियोगिता का सामना कर सके, और लाभप्रदता से कार्य कर सके।

अनुसंधान के लिये दिये गये सीमित साधनों के कारण विषम संभावनाओं की विचार विश्रृंखलता में से निम्न विकल्पों की खोज की गयी थी;

1- पैमाने की मितव्ययता (बचत)

हम स्वीकार करते हैं कि किसी एक प्लांट या संयंत्र जैसे तेल शोधन कारखाने को चलाने में, पैमाने की बचतों की सर्वाधिक संभावना है। हम जानते है कि प्योरेटो रीको में अधिकांश संयंत्रों में वहां लघु बाजारों व उनमें आवश्यक वृहत-पूंजी निवेश के कारण, पूर्ण पैमाने की बचतें प्राप्त नहीं की जा सकीं। लेकिन हम यह भी जानते हैं कि, यदि हम एक आर्थिक दृष्टिकोण से व्यवहारिक औद्योगिक बस्ती (स्थान) पता लगाने की कोई संभावना चाहते हैं, तो हमें संयंत्रों को उस स्तर तक चलाना होगा, ताकि उपलब्ध पैमाने की अधिकांश बचतों को प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार प्रत्येक क्रिया के लिये हम एक संयंत्र का एक निम्नतम आकार निर्धारित करेंगे, जिसे औद्योगिक बस्ती में शामिल किया जा सके। यह सही है कि उर्वरकों के अलावा, एक क्रिया मे निम्नतम आकार के संयंत्र से उत्पति प्योरटो रीको स्वयं में किसी भी विचारणीय मांग स्तर से अधिक होगी।

2- अन्तिम उत्पति व उनकी मांग

हम चाहते थे कि एक अंतिम उत्पति हो जो प्योरटो रीको के सस्ते साधारण कार्य वाले श्रम की एक बड़ी मात्रा का उपयोग करेगी। इस साधन की लागतों में निर्मित लाभ के कारण, जितना उसका उपयोग किया जा सकेगा, प्रोटो रीको के लिये लाभप्रद औद्योगिक स्थान पता लगाने की उतनी ही अधिक संभावना होगी। सामान्य रूप से कहा जाये तो हमने पाया कि कृत्रिम धागों (Synthetic Fibres) के निर्माण करने वाली इकाइयों में इस प्रकार के श्रम की अधिकतम आवश्यकता थी। इसलिये हमने किसी भी औद्योगिक बस्ती (स्थान) के परीक्षण में कृत्रिम धागे के उत्पादन को सदैव शामिल किया।

3- उत्पत्तियों के लिये बढ़ती हुई माँग

हमनें स्वीकार किया कि मुख्य क्षेत्र (Mainland) पर निजी व्यापार जिन पर प्योरटो रीको को निर्भर रहना पड़ेगा यदि उसका उत्पादन ही उत्पत्तियां हैं, जिनका बाजार में विक्रय होना है जिनके लिये मुख्य भूमि क्षेत्र (Mainland) के बाजार मंद दर की तुलना में तीव्र दर से बढ़ रहे हैं। इस प्रकार हमने केवल उन कृत्रिम धागों के उत्पादन पर विचार किया है, जिनकी

मांग सन 1950 के वर्षों में संयुक्त राज्य अमेरिका में तीव्र गति से बढ़ी थी, और जिसके सन् 1960 के वर्षों में भी बढ़ते रहने का अनुमान है।

4- उप-उत्पत्तियों का उपयोग (Use of By-Products)

हमारी आवश्यकता थी कि जहां भी तकनीकी रूप में संभव हो, किसी उप-उत्पत्ति को निर्रथक न जाने दिया जाये। तदनुसार हमने (एल. पी. जी.) (L.P.G.- Liquified Petroleum Gas) का विचार रखा जो उनमें से एक हो सकती है, जिसका शोधन संयंत्रों के अप्रयुक्त गैस प्रवाह व तरह भागों से उत्पादन (और स्थान बाजार में विक्रय) किया जा सके।

5- समन्वित उत्पादन स्थान या केन्द्र (Integrated Production Complex)

औद्योगिकरण की प्रक्रिया को आरम्भ करने के, लिये हमने लगभग सदैव किसी औद्योगिक स्थान (केन्द्र, बस्ती या क्षेत्र) को "पूर्ण केन्द्र'' मानने की आवश्यकता इस अर्थ में रखी कि, इसमें क्रियाओं की पूर्ण श्रृंखला (मात्रा या प्रकार) गतिमय रूप में एक और शोधन संयंत्र से उर्वरकों की तरफ और, दूसरी ओर शोधन संयंत्र से कृत्रिम धागों की अंतिम उत्पत्ति तक हो। इस प्रकार हमने मुख्य योग्यताओं की विविधता सहित उद्यम, प्रबंधन व श्रम के स्त्रोत के विकास के लिये अधिकतम प्रोत्साहनबर्धक तत्व प्राप्त करने की आशा की थी। यद्यपि यह स्वीकार करना पड़ा कि मुख्य भूमि क्षेत्र (Mainland) से हमें कुछ मदों (वस्तुओं) को आयात करने की आवश्यकता हो सकती है। क्योंकि पैमाने की बचतें व अन्य विचार प्योरटो रीको में इनका उत्पादन अति मंहगा बना देंगे। इन सभी व अन्य विचारों के साथ आयोजकों ने विविध औद्योगिक केन्द्रों पर प्रयोग व जांच करना आरम्भ कर दिया था। यह आवश्यक नहीं कि निम्नलिखित किस प्रकार किया गया, इसके विश्लेषण का विस्तार से वर्णन किया जाये।

(1) कुल आगतों (Inputs) की आवश्यकताएं निकाली गयी थीं।

(2) प्योरटो रीको की स्थिति ओर सर्वाधिक दक्ष महाद्वीप या मुख्य भू-भाग (Mainland) की स्थिति (Location) के बीच तुलनात्मक लागतों की गणना की गयी थी।

(3) वस्तु- वार स्थानीय (Location) लागत अन्तरों की गणना की गयी थी।

(4) रेखीय व गैर-रेखीय संबंधों की गणना की गयी थी और;

(5) उन विभिन्न साधन अनुपातों व प्रक्रिया मिश्रणों (Mixes) का समायोजन किया गया था, जिनका उपयोग किया जा सकता था। यह भी आवश्यक नहीं है कि, प्रत्येक निर्णय-कर्ता के सन्दर्भित श्रमिक लागत अन्तरों, पैमाने की हानियों व अन्य मदों पर उसके श्रेष्ठतम अनुमानों की रचना या ढांचें (Framework) का विस्तार से वर्णन किया जायें, जिस पर व्यापारियों और राजनैतिक नेताओं में काफी मतभेद हो सकते हैं।

6.5 सारांश

इन सभी विचारों के आधार पर निर्णय प्रक्रिया के, लिये तालिका समूह निकाले जा सकते हैं। प्योरटो रीको के प्रयोग से स्पष्ट था कि, कम से कम एक सीमित प्रकार के विकास ध्रुव के विकास के लिये, अपेक्षाकृत पूर्णतया समन्वित औद्योगिक बस्ती के सन्दर्भ में, प्योरटो रीको स्थान (स्थिति) के लाभ स्पष्ट हैं। एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि यदि आसपास के

क्षेत्रों में पाये जाने वाले अन्य संसाधनों को ध्यान में रखकर कच्चे संसाधनों का समन्वित विकास किया जाये, और इन विकास ध्रुवों कें इर्द-गिर्द मांग होती है तो, इस प्रकार के समूहीकरण (Clustering) कें लाभ जो व्यर्थ माल (Waste material) के उपयोग, संबन्धित उद्योगों, भण्डार गृहों व व्यापारिक मार्गों की स्थापना को प्रोत्साहित करते हैं तो, इनका निर्धारण अधिकांशत: यातायात दक्षता और प्रत्येक समूह (Cluster) में उत्पन्न पुर्न-उन्नत (Processinhg and Re Processing) क्रिया सहित मूल्य वृद्धि (Value-added) हुई वस्तुओं के प्रादुर्भाव से होगा। इसलिये यातायात लागत और फर्मों की उनकी स्थिति के सन्दर्भ में, लाभों के बीच प्रावैगिकी की जानकारी के लिये, आइसोडापेन को समझना महत्वपूर्ण है।

6.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें (Suggested Readings)

1. John W.Alexander 1993 , Economic Geography, (See Chapters 7-9) Prentice Hall Inc.
2. E.M. Hoover, 1973, Location Theory and Shoe and Leather Industries Cambridge, Mass, Harvard University Press.
3. Walter Isard, 1977, 'Location Theory, Agglomeration and the Pattern of World Trade', in The Internationla Allocation of Economics Activity : Proceedings of a Noble Symposium Held at Stockholm, edited by Bertil Ohlin, Per-Ove Hesselborn and Per Magnus Wijkman, New York: HM Holmes and Meier Publications, Inc., pp. 158-77Z.
4. Walter Isard, 1956 Location and Space Economy, Cambridge: M.I.T. Press.
5. Walter Israd, 1975, Introduction to Regional Science, Englewood Cliffs, NJ: Parentice Hall.
6. August Losch, 1954, The Economics of Location, New Haven: Yale University Press.

6.7 शब्दावली

मितव्ययताएं व अमितव्ययताएं (Economies and Diseconomies),

विकाश ध्रुव (Growth Pole) (फर्म) (Firm)

पैमाने की बचत (Economy of Scale) एकत्रीकरण

(जोड़ने की प्रक्रिया) व विएकत्रीकरण (Aggregation and Disaggrgation)

केन्द्रीयकरण (Agglomeration)

आसोडापेन (Isodapane)

यातायात लागत (Transport Cost)

औद्योगिक बस्तियां (Industrial Complex)

संसाधनों का अधिकतमकरण (Maximisation of Resources)

प्योरटो रिको (Puerto Rico)

इकाई 7

क्षेत्र : अवधारणा, प्रकार और पहचान

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 क्षेत्र की अवधारणा

7.3 क्षेत्र के प्रकार

7.4 औपचारिक क्षेत्रों की पहचान या चिन्हित करना

7.5 कार्यात्मक क्षेत्रों की पहचान

7.5.1 प्रवाह विश्लेषण

7.5.2 गुरूत्वाकर्षण विश्लेषण

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 निबन्धात्मक प्रश्न

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है : (i) क्षेत्र की अवधारणा को परिभाषित करना, (ii) क्षेत्र के प्रकारों का वर्णन करना और (iii) उन्हें चिन्हित करने की विधियों की व्याख्या करना।

7.1 प्रस्तावना

यद्यपि एक क्षेत्रीय अर्थशास्त्री, प्रश्न करने की अपेक्षा इसका उत्तर अच्छी प्रकार जानता है तथा यह संगत प्रश्न है कि वह इकाई क्या है जिस पर क्षेत्रीय विकास का सिद्धान्त लागू होता है? अन्य शब्दों में हम 'क्षेत्र' (Region) को किस प्रकार परिभाषित करते हैं? बिना किसी संतोष-प्रद पूर्ण उत्तर पर पहुँचते हुए इस विषय पर सैकड़ों हजारों शब्द लिखे गये हैं। वस्तुत: इस बारे में सुरक्षित बयान केवल यह है कि इसकी कोई अद्वितीय परिभाषा नहीं है, जाँच के उद्देश्य बदलने के साथ-साथ हम 'क्षेत्र' को विभिन्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं। क्षेत्रीय अर्थशास्त्र में इसे एक उपराष्ट्रीय क्षेत्रीय इकाई के रूप में समझा जा सकता है। और दूसरी ओर (अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में यह राष्ट्रों के समूह की ओर संकेत करता है। हम बहुधा एक अन्तर्क्षेत्रीय प्रणाली को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के पर्याप्त मात्रा में बड़े और समीपस्थ क्षेत्रों के सीमित संख्या (मानों छ: से पन्द्रह) में उप विभाजन कहते हैं।

7.2 क्षेत्र की अवधारणा

क्षेत्र को परिभाषित करना बहुत कठिन है क्योंकि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा इस अवधारणा को भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। क्षेत्रीय संवृद्धि या विकास (Regional

Growth) के सिद्धान्त की रचना में लगे हुए कई अर्थशास्त्री राष्ट्र को एक बिन्दु अर्थव्यवस्था मानते हुए इसे आवश्यकतानुसार प्रदेशों में मनमाने प्रकार से विभाजित करते हुए स्थान से स्वतंत्र एक विचार (Idea) मानते हैं।

फिर भी अधिकांश भूगोल वेत्ता और सामान्य जनता के लिए क्षेत्र एक वस्तुगत वास्तविकता है जो कि स्थान से संबन्धित है और स्थान के संदर्भ में परिभाषित की गई है। बड़ी समस्या वक्रोक्ति की है जिससे क्षेत्र (Region) शब्द घिरा हुआ है। कभी-कभी जिले का एक भाग 'क्षेत्र' कहलाता है, कभी एक जिले को क्षेत्र माना जाता है, कभी राज्य और कभी राज्यों के समूह को क्षेत्र माना जाता है। यहाँ तक कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुधा राष्टों के संयोग मिल कर 'क्षेत्र' (Region) बनाते हैं तथापि यदि कोई अपने अध्ययन का क्षेत्र स्पष्ट रूप से वर्णन करता है तो यह व्यग्रता बहुत कम हो जाती है।

'क्षेत्र' को तीन श्रेणियों के आधार पर स्थिरीकृत किया जा सकता है - (i) सजातीयता (ii) केन्द्रीयता और (iii) प्रोग्रामिंग।

सजातीयता भौतिक, आर्थिक और सामाजिक विशेषताओं में से किसी एक या इनके संयोग के संदर्भ में होती है। केन्द्रीयता या ध्रुवीकरण किसी केन्द्रीय स्थान के चारों ओर होता है। प्रोग्रामिंग या नीति-उन्मुख श्रेणी प्रशासनिक संयोग से संबन्धित होता है। जैसा कि मेयर (Meyer) ने बयान किया है ये तीन वर्ग अलग नहीं है "तथाकथित कार्यक्रम परस्पर प्रोग्राम या नीति क्षेत्र पूर्ण रूप से किसी के अधिकार क्षेत्र या कुछ विशिष्ट राजकीय या प्रशासकीय अभिकरणों के अधीन होने से अनिवार्य रूप से सजातीय होता है।" इसी प्रकार एक केन्द्रीय क्षेत्र (Nodal region) इस दृष्टि से सजातीय होता है कि यह ऐसे क्षेत्रों का संयोग करता है जो किसी व्यापार था एक विशिष्ट केन्द्र पर निर्भर होता है।

7.3 क्षेत्र के प्रकार (Types of region)

सजातीयता का विचार एक रूपता पर जोर देता है जबकि केन्द्रीयता का विचार परस्पर निर्भरता को व्यक्त करता है। प्रथम 'औपचारिक क्षेत्र' को इंगित करता है तो बादवाला एक कार्यात्मक क्षेत्र को व्यक्त करता है। प्रथम एक भौगोलिक क्षेत्र है, 'जो कि चयनित भौगोलिक मानदंड (जैसे समान भौगोलिक विवरण या जलवायु) या चयनित आर्थिक मापदंड (जैसे प्रति व्यक्ति आय स्तर, उत्पादन संरचना; उपभोग प्रवृत्तियाँ, बेरोजगारी की स्थिति आदि) या सामाजिक और राजनैतिक मापदंड (जैसे दलगत निष्टा) के संदर्भ में सजातीय होते हैं। जब भौतिक सजातीयता मापदंड हो तो इन्हें प्राकृतिक 'क्षेत्र' कहा जाता है। जब आर्थिक सजतीयता मापदंड हो तो हमें आर्थिक क्षेत्र प्राप्त होते हैं। यदि सामाजिक घटकों के संदर्भ में सजातीयता पर बल दिया जाता है तो ये सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र कहलाते हैं।

नियोजन क्षेत्र (Planning Region)

भारतीय नियोजन के संदर्भ में हम निम्न प्रादेशिक प्रणालियों के आधारों पर सोच सकते हैं : (i) राष्ट्र (ii) अन्तर्राज्यीय समष्टि क्षेत्र (iii) राज्य (iv) अन्तर-जिला समष्टि क्षेत्र, (v) जिला/महानगर क्षेत्र (vi) खंड/तालुका/नगर क्षेत्र (vii) गाँव।

उपर्युक्त विधि में गाँव खंड के, खंड जिले के, जिला राज्य के और राज्य राष्ट्र के अंग होते हैं। अन्तर्राज्यीय और अन्तर-जिला क्षेत्रों की कुछ दशाओं को छोड़कर, औपचारिक सीमायें नहीं होती हैं अत : नियोजन और क्रियान्वयन के लिए कोई तंत्र नही होता है। तथापि हम इस प्रणाली को नियोजन और विकास के लिए सबसे उपयुक्त नहीं मान सकते है । इसके लिए हमें नियोजन के उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए विभिन्न प्रादेशिक भागों पर विचार करना होगा। इस प्रकार हम औद्यौगिक क्षेत्र, कृषि क्षेत्र, या नदी-घाटी क्षेत्र आदि की प्रणाली को, अपना सकते हैं। हम नियोजन क्षेत्रों की चार प्रणालियाँ रख सकते हैं : (अ) आर्थिक (ब) सामाजिक (स) पर्यावरणीय और (द) प्रशासनिक क्षेत्र।

(अ) आर्थिक क्षेत्र (Economic Regions) : न्यूनतम संभव समय में विकास की अधिकतम दर प्राप्त करने के लिए हमें संसाधन संभावनाओं और मानवीय, संरचनात्मक और पूँजीगत संसाधनों की वर्तमान मात्रा के आधार पर क्षेत्रों को चिन्हित करना होगा। इन क्षेत्रों में कुछ वे सम्मिलित होंगे जहाँ विकास की संभावनायें हैं और दूसरे वे होंगे जिनमें वर्तमान स्थिति में भविष्य में विकास की संभाव्यतायें नहीं है। पी. सेनगुप्ता और जी. सडयुक (G. Sdasyuk) द्वारा प्रस्तुत योजना में क्षेत्रो का इस प्रकार विभाजन इसका एक उदाहरण है।

इस योजना के अनुसार देश को निम्न समष्टि आर्थिक क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) गत्यात्मक क्षेत्र (Dynamic regions)

(ii) संभावना वाले क्षेत्र (Prospective regions)

(iii) समस्या क्षेत्र (Problem regions)

(ब) सामाजिक क्षेत्र (Social Regions) हमारी सामाजिक और आर्थिक प्रणाली में द्वैधता (Dualism) की सीमा हमारे लिए सामाजिक क्षेत्रों पर विचार करना आवश्यक बनाती है। यह द्वैधता कई रूपों में दिखाई देती है। एक वह है जिसे हम 'ग्रामीण' और शहरी कहते हैं। भारतीय समाज की जातिगत संरचना (Cast Structure) इसका दूसरा उदाहरण है। एक वह है जिसे हम सांस्कृतिक द्वैधता कह सकते हैं। इन सबके ऊपर आर्थिक द्वैत आती है जिसमें 'संपन्न' (Haves) और 'विपन्न' (Have nots) भिन्न समूहों का निर्मा ण करते हैं। हम सामाजिक क्षेत्रों की संभवत: तीन श्रेणियों पर विचार कर सकते हैं :

(i) सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्र जैसे आदिवासी क्षेत्र।

(ii) आर्थिक दृष्टि से निर्धन क्षेत्र जहाँ प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत नीचा होता है।

(iii) ग्रामीण और शहरी क्षेत्र

(स) पर्यावरणीय क्षेत्र : पर्यावरण के दृष्टिकोण से हम निम्न वर्गीकरण कर सकते हैं-

(i) पर्यावरणीय विनाश वाले क्षेत्र

(ii) पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता वाले क्षेत्र

(iii) विशिष्ट पर्यावरणीय समस्यावाले क्षेत्र।

प्रथम में नियोजन समग्र पर्यावरण के पुन: निर्माण पर केन्द्रित होगा और दूसरे में पर्यावरण के संरक्षण को महत्व दिया जायेगा। तीसरे में पर्यावरण संबन्धी विशिष्ट समस्याओं

जैसे जल प्रदूषण और जिन समस्याओं पर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता होती है उनके समाधान पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

(द) प्रशासनिक क्षेत्र : इन क्षेत्रों की सीमा रेखायें यद्यपि वे कितनी ही मनमानी हों पहले से ही होती हैं और उनका अस्तित्व शताब्दियों से नहीं भी मानें तब भी गत कुछ दशकों की ऐतिहासिक और प्रशासनिक प्रक्रियाओं के द्वारा मजबूत बन गया है। भूतकाल की तरह वर्तमान में इन क्षेत्रों के पास योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन के लिए प्रशासन तंत्र है। नियोजन क्षेत्रों का अनुमान एक संश्लेषण क्षेत्र के रूप में लगाया जा सकता है जो आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय और प्रशासनिक क्षेत्रों की समूर्ण अवधारणा को मिलाने से बना हो। विभिन्न प्रकार के क्षेत्रों को परिभाषित करने के लिए कई उच्च तकनीक वाली विधियों का सुझाव दिया गया है। किन्तु उनमें से कोई भी उपरोक्त वर्णित सभी तत्वों को वस्तुत: समाहित नहीं करती है।

7.4 औपचारिक क्षेत्रों की पहचान या चिन्हित करना (Identification of formal regions)

औपचारिक क्षेत्रों के वर्णन में जैसा कि हमने देखा है कि एक विशिष्ट मापदंड (या मापदंडों के समूह) के आधार-पर अवस्थित स्थानों (Locations) में समानता सजातीयता और एक रूपता मिलती है। सजातीयता रखने वाले स्थानों को एक क्षेत्र में वर्गीकृत किया जाता है हमने इस पर भी बल दिया है कि मापदंड भौतिक भौगोलिक दशाओं, आर्थिक संरचना या सामाजिक सांस्कृतिक घटकों से सम्बन्धित हो सकते हैं। सर्वाधिक प्रयुक्त आर्थिक मापदंड 'प्रति व्यक्ति आय का स्तर है और विश्लेषण में वास्तविकता और अधिक श्रेष्ठता लाने के लिए इसमें अन्य मापदंडों को भी संयोजित कर लिया जाता है। सबसे सरल स्थिति वह होती है जब हम केवल प्रति व्यक्ति आय पर विचार करते हैं। उदाहरण के लिए हम मानते हैं कि a और b दो स्थान हैं जिनकी प्रति व्यक्ति आय क्रमश: Ya और Yb है। ऐसी दशायें यदि Ya = Yb हो तो a और b स्थानों को एक से क्षेत्र में सम्मिलित कर सकते हैं। वैकल्पिक रूप में यदि Ya - Yb का अन्तर थोड़ा हो तो इन्हें समान क्षेत्र में सम्मिलित कर सकते हैं। इस प्रकार हम कुछ सीमायें निर्धारित कर सकते हैं और यदि Ya - Yb इस सीमा से कम हो तो इन्हें एक समान क्षेत्र में ही सम्मिलित कर सकते हैं। यदि Ya - Yb का मान निर्धारित सीमा से अधिक होता है तो फिर अधिक a और b जैसे स्थानों को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में माना जा सकता है।

समस्या तब उत्पन्न होती है जब हम एक से अधिक विशेषताओं को लेकर 'क्षेत्रों' का वर्णन करने का प्रयास करते हैं। ऐसी दशा में समस्या का समाधान इन तीन विधियों से किया जा सकता है -

(i) स्थिर निर्देशांक विधि

(ii) परिवर्तनशील निर्देशांक विधि और

(iii) समूह विधि

स्थिर निर्देशांक विधि में क्षेत्रों में आम तौर से प्राप्य कुछ विशेषताओं (निर्देशांकों) का चयन कर लिया जाता है जैसे प्रति व्यक्ति आय, बेरोजगारी, औद्योगीकरण की दर आदि। प्रत्येक मद के निर्देशांक को इच्छानुसार भार दिया जाता है प्रत्येक क्षेत्र के लिए सरल भारयुक्त माध्य निकाल लिया जाता है। इसके पश्चात् प्रत्येक समूह में विभिन्नता को न्यूनतम करने के लिए समान निर्देशांक वाले समीपस्थ क्षेत्रों को साथ-साथ एक समूह में सम्मिलित कर लिया जाता है।

परिवर्तनशील निर्देशांक विधि में विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न क्रियाओं के स्तरों को महत्व दर्शाने के लिए परिवर्तनशील भिन्न-भिन्न भार दिया जाता है। प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक प्रकार की क्रियाओं को दिया जानें वाला 'भार' भिन्न होता है जो कि क्षेत्र में उत्पादित उस वस्तु की मात्रा या मूल्य के अनुसार होता है। उदाहरणार्थ यदि क्षेत्र A गेहूँ उत्पादक क्षेत्र और क्षेत्र B कोयला उत्पादक क्षेत्र है तो प्रथम क्षेत्र में गेहूँ निर्देशांक का और दूसरे क्षेत्र में कोयला निर्देशांक का 'भार' सबसे ज्यादा होगा। यदि मापदंडो की परस्पर तुलना संभव हो तो यह विधि अच्छी है। तथापि उन दशाओं में जब तुलना संभव नहीं हो (जैसे एक ऐसी दशा में जब एक विशेषता तो साक्षरता और दूसरी विशेषता इस्पात उत्पादन हो।) समूह विधि को अपनाना आवश्यक हो जाता है।

समूह विधि का उपयोग विभिन्न क्षेत्रीय इकाइयों की संरचना में से सजातीय विशेषताओं को ज्ञात करने के लिए किया जाता है। इस कार्य के लिए आय और व्यापार के प्रवाहों का अध्ययन किया जाता है। समूहों को ज्ञात करने के लिए हम आलेखीय पत्र तकनीक (Mapping Technique) की सहायता ले सकते हैं जहाँ परस्पर संबन्धित चरों का अध्यारोपण तकनीक के द्वारा आलेख किया जाता है। स्पेट और लियर मंथ (Spate and lear month) द्वारा चिन्हित क्षेत्रीय विभाग (regional divisions) भारत और पाकिस्तान के विभिन्न भागों में कई व्यक्तियों के बहुविध अध्ययनों के अध्यारोपण द्वारा प्राप्त किये गये हैं और योजना आयोग के लिए 'संसाधन विकास क्षेत्रों' पर वी. नाथ (V. Nath) द्वारा किये गये अध्ययन भारत में प्राकृतिक और भौतिक संसाधनों के बहु विभेदयुक्त अध्यारोपण पर आधारित थी। तथापि जब बहुत अधिक चर हों, विशेष रूप से तब जब वें सुदृढ़ अन्तर-संबन्ध नहीं रखते हो, बहु भागयुक्त औपचारिक आकार को चिन्हित करने के लिए अध्यारोपण तकनीक द्वारा आलेख्य पत्र अधिक सहायक नहीं होता है। ऐसे समय आलेख्य तकनीक के अतिरिक्त कुछ परिमाणात्मक तकनीक का आश्रय लेना होता है। ऐसी तकनीकों के उपयोग में कई संभावनाये होती हैं। वैसी दशाओं में जहाँ कई परस्पर निर्भर चरों का समावेश हो निम्न दो संभावनायें होती हैं -

(i) चर अपने में कोई आकस्मिक संबन्ध रहित या सहित, परस्पराश्रित होते हैं और वे अपने में एक विशेष क्रम रखते हैं।

(ii) अपने में किसी क्रम के अस्तित्व के बिना सभी चर साथ-साथ परस्पराश्रित होते हैं।

दो चरों सहित पहले प्रकार के उदाहरण ए. टी. ए. लियरमंथ (A.T.A. Lear month) की देखरेख में किये गये 'एन एटलस आफ रिसोर्सेज आफ मैसूर स्टेट' से संबन्धित अध्ययन में देखे जा सकते हैं जैसे सामान्य वर्षा की विश्वसनीयता के विपरीत माप के रूप में भौतिक भिन्नता सहित (विचलन गुणांक) सामान्य वर्षा।

समान महत्व के एककालिक परस्पराश्रित चरों की दशा में (जहाँ व्यक्तिगत चरों की पहचान महत्वपूर्ण नहीं होती) पाल (Pal) ने विकास के संयुक्त निर्देशांक (Composite index) का अनुमोदन किया है।

इस स्थिति में विषयगत या वस्तुगत विधियों से भागीदार चरों के भेदक महत्व को भार देते या नहीं देते हुए, सभी चरों का समन्वय किया जा सकता है।

विषयगत विधि में भूगोलवेत्ता क्षेत्र के अनुभव, मत-सर्वेक्षण या उपलब्ध परिमाणात्मक या गैर परिमाणात्मक समंकों के आधार पर सह-मापनीय या अ-सहमापनीय सूचनाओं की किस्मों के अध्यारोपण की तकनीक को प्रयुक्त करते हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों के विकास की श्रेणियों का वर्णन करने के लिए Schwartz berg (1962) ने उसी विधि से प्रयास किया था।

ऐसी स्थिति में जहाँ हमें विजातीय चरों के समूह पर कार्य करना हो और जो कई विशेषताओं या उप विशेषताओं से प्रभावित होते हों या प्रभावित करते हों, क्षेत्रों के वर्णन के लिए जो तकनीक अपनाई जाती है वह प्रिंसीपल कम्पोनेन्ट एनेलेसिस (Principal Component Analysis) के नाम से जानी जाती है। इस विधि का प्रयोग M. D. Hagood द्वारा 1943 में अपेक्षाकृत अधिक सजातीय क्षेत्रों के चित्रण के लिए किया गया था। भारतीय दशाओं मे एम. एन. पाल ने इस तकनीक के उपयोग को लोकप्रिय बनाया है।

7.5 कार्यात्मक क्षेत्रों की पहचान

उन क्षेत्रों में जहाँ योजना प्रक्रिया में क्षेत्रीय अन्तर महत्वपूर्ण होते हैं सजातीयता पर विचार नि:सन्देह उपयोगी विधि है। तथापि यह स्वयं में अपूर्ण है क्योंकि इसमें स्थान संबन्धी परस्पराश्रितता पर ध्यान नहीं दिया जाता है। अत: दूसरा कदम कार्यात्मक स्थान संबन्धी खाके की पहचान करना होता है। जिसमें स्थान संबन्धी प्रवाहों के एक या अधिक चयनित प्रतिभासों के लिए विभिन्नता वाले औपचारिक क्षेत्रों या स्थानों के बीच परस्पर निर्भरता सुनिश्चित की जाती है। कार्यात्मक क्षेत्रों के वास्तविक चित्रण के लिए जो तकनीकें बहुधा प्रयुक्त की जाती है वे हैं : (i) प्रवाह विश्लेषण (Flow analysis) और (ii) गुरुत्वाकर्षण विश्लेषण (Gravitational एनालिसिस)

7.5.1 प्रवाह विश्लेषण : प्रवाह विश्लेषण प्रवाह समंको, के प्रयोग सिद्ध अध्ययन पर आधारित होते हैं। ये प्रवाह समंक स्थान संबन्धी विभिन्न प्रवाहों से सम्बन्धित हो सकते हैं जैसे पदार्थों के अन्त: क्षेत्रीय प्रवाह: समुदाय आकार और देशान्तर निवास संबन्धी प्रवह: खुदरा और घरेलू पदार्थों के वितरण क्षेत्र और व्यापार क्षेत्र के विभिन्न भागों में उनका सापेक्ष महत्व: मात्र और यात्री प्रवाह, टेलीफोन संचार घनत्व: समाचार पत्र-प्रसार क्षेत्र: कार्यात्मक अन्त:क्षेत्रीय संबन्ध केन्द्रीय स्थान स्थित सामाजिक सेवाओं के सेवा क्षेत्र: यात्रा कार्य आकार आदि। तथापि इसमें आधार भूत कमी यह है कि सूचनाओं में अन्तराल, जो कि अविकसित देशों में गंभीर रूप में होता है, के कारण यह विधि पूरी स्थिति का वर्णन नहीं कर पाती है। अत: ग्रेविटैशनल एनलिसिस् विधि को अपनाना आवश्यक हो जाता है।

7.5.2 गुरूत्वाकर्षण विश्लेषण (Gravitational Analysis)

इस विधि में केन्द्रों के बीच वास्तविक प्रवाहों के बजाय आकर्षण की शक्तियों का सैद्धांतिक अध्ययन किया जाता है। भौगौलिक बिन्दुओं या क्षेत्रों के बीच अन्त: क्रिया उनके दो समूह (Mass) से प्रत्यक्ष रूप से और उनके बीच की दूरी से विपरीत रूप से संबन्धित होती है। 'समूह' जनसंख्या या रोजगार या आय या खैरूज बिक्री या एक या अन्य प्रकार की आर्थिक क्रिया को माना जा सकता है। 'दूरी' सड़क की दूरी, वायु यातायातीय दूरी, समय दूरी, मौद्रिक दूरी के रूप में हो सकती है। एक बार समूह और दूरी को परिभाषित कर लिया जावे तो दोनों केन्द्र i और j के बीच की गुरूत्वाकर्षण शक्ति को निम्न, प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

$$Gij = K\left[\frac{Mi\,Mj}{dij^2}\right] \qquad \text{(i)}$$

उपरोक्त में Gij दो केन्द्र i और j के मध्य गुरूत्वाकर्षण शक्ति को व्यक्त करती है Mi और Mj, i और j केन्द्रों के समूह का प्रतिनिधित्व करती हैं। और dij उन केन्द्रों के बीच दूरी को व्यक्त करती है और k स्थिरांक (Constant) है। इस माडल में उच्च तकनीकी के कई स्तरों को प्रयुक्त किया जा सकता है। एक सामान्यीकृत स्वरूप निम्न होगा।

$$Gij = K\left[\frac{Mi\alpha\,Mj}{dij}\right] \qquad \text{(ii)}$$

जहाँ α, β और γ एक्सपोनेन्सियल पेरामीटर (चर घातांकीय परिमित है। यह (i) के बराबर है जब $\alpha = \beta = 1$ और $\gamma = 2$

कभी-कभी एक केन्द्र का सभी केन्द्रों से कुछ अन्तर्क्रिया का अनुमान प्राप्त किया जाता है।

यह 'Patential at the Centre' 'केन्द्र पर संभाव्यता' कहलाता है। केन्द्र j पर समूह के कारण केन्द्र i पर संभाव्यता को निम्न रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

$$Pi, J = K\left[\frac{Mj}{dij^2}\right] \qquad \text{[(i) का अनुगमन करते हुए]}$$

तब केन्द्र i पर कुल संभाव्यता Pi, निम्न प्रकार दी गई है

$$Pi = \frac{\sum Pij}{j=i} \qquad = \frac{\sum K\partial}{J=1} \qquad \left[\frac{Mj}{dij^2}\right]$$

इस विधि में अध्ययन क्षेत्र में केन्द्रों की संभाव्यता की गणना करना और मानचित्र पर समान संभावना की कन्टूर रेखाओं को अंकित करना होता है। इन रेखाओं सें कार्यात्मक क्षेत्र की पहचान की जा सकती है। गुरूत्वाकर्षण माडलों का अति प्रारंभिक और पारंपरिक उपयोगों में से एक डब्ल्यू. जे. रेली (W.J. Railly) द्वारा किया गया था। दो कस्बों या केन्द्रों 1 या 2 के बीच आकर्षण की सीमा निम्न सूत्र में दी गई है।

$$\frac{N1,}{N2} = \left[\frac{d1}{d2}\right]\alpha$$

रेली के सूत्र में α को 2 लिया गया है। बाद में गुरूत्वाकर्षण माँडल का विकास एक श्री जे क्यू. स्टेवार्ट (J.Q. Stewart) द्वारा उनके "जनसंख्या के साम्य और वितरण" से संबन्धित

प्रयोग सिद्ध गणितीय नियमों के उनके अध्ययन में तथा एक गणित शास्त्री जी. के. जिप्ट (G.K. Zipt) के द्वारा उनकी पुस्तक 'मानव व्यवहार एवं न्यूनतम प्रयास का सिद्धान्त (Human behavior and the Principle of Least effort 1949) में किया गया।

गुरूत्वाकर्षण सिद्धान्त की सबसे महत्वपूर्ण आलोचना प्रयोग सिद्ध समस्याओं से संबन्धित है जैसे समूह Mi और Mj तथा दूरी dij और पेरामीटर α, β, γ को कैसे मापा जाय। तथापि ये समस्यायें ऐसी नहीं हैं जिनका समाधान नही किया जा सके। इस प्रकार जनसंख्या केन्द्रों के दूरी पर प्रभाव के अनुमान के अध्ययनों में जनसंख्या को समूह के मापन के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। और इसे कभी-कभी आय का 'भार' दिया जा सकता है। समस्या उस समय जटिल हो जाती है जब विभिन्न प्रतिभासों पर एक साथ ही विचार किया जाता है क्योंकि तब भार देने की समस्या उत्पन्न हो जाती है। भार देने में कैसी भी सांख्यिकीय विधियाँ प्रयुक्त की जायें नैतिक निर्णयों की एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की संभावना रहती है। इसी प्रकार की समस्या 'दूरी' को परिभाषित करते समय उत्पन्न होती है। यह परिभाषा, अध्ययन की जाने वाली समस्या के द्वारा निर्धारित होने की संभावना होती है।

स्टेवार्ट ने तर्क दिया है कि दूरी के चर घातांकी (Exponent) का मान 1 या 2 होना चाहिए। रेली ने अपने अध्ययन में $\gamma = 2$ को प्रयुक्त किया है। समीकरण नं. (i) में Gij के मान को लेते हुए सामान्यतया α और β को इकाई माना जाता है किन्तु इस मान को मानने का कोई न्यायोचित कारण नहीं है। वाह्य मितव्ययिताओं का प्रभाव अर्थदर्शक के उपयोग को 1 से अधिक आवश्यक बनायेगा और बाहय अमितव्ययिताओं का प्रभाव अर्थदर्शक का उपयोग एक से कम गुणक में आवश्यक होगा।

7.6 सारांश

क्षेत्रीय अवधारणा में 'क्षेत्र' को इसकी औपचारिक और कार्यात्मक संरचनाओं में सजातीयता और एकरूपता वाली एक अलग अस्तित्व की इकाई के रूप में मान्यता देती है। सजातीयता का विचार एकरूपता पर बल देता है जबकि केन्द्रीयता का विचार परस्पर निर्भरता को व्यक्त करता है। पहला एक औपचारिक क्षेत्र और बाद वाला कार्यात्मक क्षेत्र को प्रस्तुत करता है।

आयोजन या योजना क्षेत्र में चार प्रणालियाँ हो सकती हैं : (अ) आर्थिक (ब) सामाजिक (स) पर्यावरणीय या संबन्धी (द) प्रशासनिक

तथापि सजातीयता पर आधारित औपचारिक क्षेत्रों का वर्णन अपूर्ण होता है। अत: दूसरा प्रयास स्थान संबन्धी कार्यात्मक वर्णन-चित्रण की पहचान करना है जिसमें विभिन्न औपचारिक क्षेत्रों, स्थानों और बस्तियों में चयनित एक या अधिक स्थान संबन्धी प्रवाहों के प्रतिभासों में परस्पर आश्रितता को सुनिश्चित किया जाता है।

वास्तविक विवेचना में बहुधा प्रयुक्त की जाने वाली तकनीके हैं। (i) प्रवाह विश्लेषण (Flow Analysis) और (ii) गुरूत्वाकर्षणीय विष्लेषण (Gravitational Analysis)

7.7 शब्दावली

क्षेत्र, (Region) स्थान संबन्धी (Spatial) सजातीयता, केन्द्रीयता (Modality) प्रोग्रामिंग, परस्पर आश्रितता, औपचारिक, कार्यात्मक (Functional), समष्टि क्षेत्र, व्यष्टि क्षेत्र, गत्यात्मक (dynamic) क्षेत्र, संभावनीय क्षेत्र, समस्या क्षेत्र, योजना-आयोजन क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, पर्यावरणीय क्षेत्र, प्रशासनिक क्षेत्र, चित्रण-वर्णन (Delineation), प्रवाह विश्लेषण (Flow analysis) गुरूत्वाकर्षण विश्लेषण (Gravitational analysis), स्थिर निर्देशांक विधि, परिवर्तनीय निर्देशांक विधि, समूह विधि (Cluster Method)

7.8 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. क्षेत्र की धारणा को परिभाषित कीजिए?

प्रश्न 2. क्षेत्र कितने प्रकार के होते हैं?

प्रश्न 3. औपचारिक और कार्यात्मक क्षेत्रों की आप किस, प्रकार पहचान करेंगे?

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. J.R. Meyer, "Regional Economics: A Survey" in L. Needleman (ed.) Regional Analysis, Penguin Modern Economics Readings, 1968, p.23.
2. R.P. Misra, K.V. Sunderam, V.L.S. Prakash Rao, Regional Development Planning in India : A New Stretegy, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. Delhi 1974, p.35.
3. P. Sen Gupta and G. Sdasyuk, Economic Regionalization of India: Problems and Approaches, New Delhi, Census of India, Monograph Series, Vol. I,
4. O.H.K. Spate and A.T.A. Learmonth, India and Pakistan- A general and Regional Geography, London : Mathuen and Co, Ltd., 1954, and V. Nath, Resource Development Regions and Division of India, New Delhi : Planning Commission, 1965.
5. M.N. Pal, "A Method of Regional Analysis of Economic Development With Special Reference to South India." Journal of Regional Science,5, 1963 (pp. 41-58); reprinted in R.P. Misran, Regional Planning (University of Mysore, 1969)
6. W.J. Reilly, The Law of Retail Grevitation (New York : 1931).

इकाई 8

प्रादेशिक आय लेखा : प्रादेशिक आदा-प्रदा विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 प्रादेशिक आय लेखा

8.2.1 पर-प्रादेशिक संस्थाओं की समस्या

8.2.2 प्रादेशिक लेखा का प्रारूप

8.0 प्रादेशिक लेखा निर्माण

8.3.1 उत्पादन लेखा

8.3.2 उपभोग लेखा

8.4 प्रादेशिक इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण

8.4.1 इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण

8.4.2 इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण की सीमायें

8.5 सारांश

8.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.7 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में प्रादेशिक आय लेखा की व्याख्या करेंगे। तत्पश्चात् आदा-प्रदा विश्लेषण की व्याख्या की जायेगी ।

8.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय आय लेखा एक राष्ट्र मे होने वाले लेन-देन का विवरण होता है जो एक आर्थिक प्रक्रिया में प्रयोग होते हैं। एक राष्ट्र के प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र की परिस्थितियाँ भिन्न होने के कारण आर्थिक विकास में प्रादेशिक विषमताऐं प्रकट होती हैं। इन विषमताओं का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रादेशिक आय लेखाओं का निर्माण किया जाए। इस प्रकार राष्ट्र स्तर के लेखाओं को प्रदेश स्तर के लेखाओं का संकलन माना जा सकता है।

समष्टि स्तर पर ये लेखा आर्थिक दृष्टिकोण तो प्रदान करते हैं, परन्तु इसमें वस्तुओं एवं सेवाओं कें मध्यवर्ती प्रवाहों की उपेक्षा हो जाती है। यदि हमारा उद्देश्य कुल उत्पादन प्रणाली का अध्ययन करना हो तो इन मध्यवर्ती प्रवाहों को सम्मिलित करना आवश्यक है। इस प्रकार के अध्ययन करने हो तो इन मध्यवर्ती प्रवाहों को सम्मिलित करना आवश्यक है। इस प्रकार के अध्ययन में आदा-प्रदा (इन्पुट-आउटपुट) विश्लेषण महत्वपूर्ण हो जाता है।

8.2 प्रादेशिक आय लेखा

शुद्ध घरेलू उत्पादन की राष्ट्र स्तर की अवधारणा को प्रदेश स्तर पर भी प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु इसकी परिभाषा में कुछ गौण सुधार करने पड़ते हैं। इस प्रकार एक प्रदेश की आय से हमारा तात्पर्य उस प्रदेश के एक प्रवासी की आय होता है। प्रादेशिक स्तर की आय और लेखा, उस प्रदेश के नियोजन के लिए उपयोगी होते हैं। इस अवस्था में जब एक प्रदेश के नियोजन के नीति निर्धारण में प्रादेशिक आय लेखा का प्रयोग किया जाता है तब यह महत्वपूर्ण नहीं है कि प्रत्येक प्रदेश में आय की अवधारणा उस प्रदेश की आर्थिक, भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। जब राष्ट्रीय लेखा पद्धति को प्रदेश स्तर पर प्रयोग करने से यह आर्थिक समंको के संकलन का आधार होता है।

यदि प्रादेशिक आय लेखा का उपयोग राष्ट्र स्तर पर प्रादेशिक नियोजन के लिए किया जाता है तब यह आवश्यक नहीं है कि ये लेखा विस्तृत हों। इस अवस्था में सरल प्रादेशिक लेखाओं से काम चलाया जा सकता है। इस प्रकार राष्ट्रीय लेखा पद्धति को प्रादेशिक लेखा पद्धति के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। इसमें केवल दो प्रकार की समस्याएं आती हैं। प्रथम पर-प्रादेशिक संस्थाओं की समस्या तथा दूसरी वस्तुओं एवं सेवाओं के अन्तर प्रादेशिक प्रवाह की समस्या।

8.2.1 पर-प्रादेशिक संस्थाओं की समस्या

पर-प्रादेशिक संस्थाऐं वे संस्थाऐं होती हैं जिनका प्रशासन किसी एक प्रदेश या कुछ प्रदेशों में सीमित न होकर राष्ट्र के सभी प्रदेशों में होता है। उदाहरण के लिए केन्द्रीय सरकार, राष्ट्रीय सुरक्षा, केन्द्रीय बैंक आदि। प्रादेशिक आय लेखा का निर्माण करते समय इस प्रकार की संस्थाओं का प्रदेश की आर्थिक गतिविधियों में योगदान ज्ञात करना सहज प्रक्रिया नहीं है।

अन्तरर्पादेशिक प्रवाह: राष्ट्रों की वस्तुओं एवं सेवाओं का प्रवाह कठिन होता है, परन्तु एक राष्ट्र में यह प्रवाह एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में बिना किसी समस्या के होता है इन परिस्थितियों में इनके ऑकड़े सहज उपलब्ध नहीं होते हैं इस कारण प्रदेश लेखाओं को संकलित करके राष्ट्र के लेखा प्राप्त नहीं किए जा सकते

8.2.2 प्रादेशिक लेखा का प्रारूप

राष्ट्रीय आय लेखा के समान, प्रादेशिक लेखा के भी तीन भाग होते हैं

(i) उत्पादन

(ii) उपभोग

(iii) संचयन

उत्पादन से हमारा तात्पर्य वस्तुओं एवं सेवाओं से है जो खानों, फैक्ट्रियों, खेतों, दुकानों कार्यालयों आदि में होता है। इसको दो भागों में बाँटा जाता है-

(अ) मध्यवर्ती उत्पादन

(ब) अन्तिम उत्पादन

मध्यवर्ती उत्पादन, कुल उत्पादन का वह भाग है जो अन्य वस्तुओं के उत्पादन में इन्पुट प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए गेहूँ के कुल उत्पादन का एक भाग बेकरी के उत्पादन में काम आता है।

अन्तिम उत्पादन का एक भाग जिसे उपभोग के लिए अथवा संचयन के लिए बाजार में क्रय किया जाता है। प्रथम भाग को समय में ही उपभोग किया जाता है, जबकि दूसरें भाग का संचयन भविष्य में उपभोग के लिए किया जाता है। पहले भाग को अन्तिम उपभोग तथा दूसरे भाग को पूँजी निर्माण माना जाता है। इस प्रकार उत्पादन, उपभोग तथा संचयन आर्थिक गतिविधि के तीन मूल भूत प्रकार हैं।

यदि उपभोग में वृद्धि करनी है तो इसका अर्थ यह है कि उत्पादन करने के लिए स्थायी साधन की सेवाओं की आवश्यकता होती है। इसके लिए यह जरूरी है कि उपभोग स्तर को समर्थन देने के लिए स्थायी उपकरणों को सुरक्षित रखना होगा। यदि उत्पादन के एक बड़े भाग का संचयन करना है ताकि उत्पादन क्षमता स्थिर रहे तथा भविष्य में उपभोग के लिए अधिक उत्पादन उपलब्ध हो सके। यदि उपभोग के एक भाग का संयचन किया जाऐ तो भविष्य में उपभोग के लिए अधिक उत्पादन उपलब्ध हो सकेगा। इस प्रकार प्रादेशिक लेखा तीनों आर्थिक गतिविधियों के लिए बनाने होंगे ये तीन लेखा हैं-

(i) उत्पादन लेखा।

(ii) उपभोग लेखा

(iii) पूँजी लेखा

प्रत्येक लेखा से संबंधित आवक तथा जावक को लिपिबद्ध करना होता है। यदि अन्तर्प्रादेशिक वस्तुओं एवं सेवाओं के आकड़े उपलब्ध हों तो कुल चार लेखा होंगे। उपरोक्त तीन लेखाओं के साथ-साथ एक और लेखा बनाना होगा वह है अन्य प्रदेश प्रवाह।

एक प्रदेश से संबंधित लेखाओं को चित्र इसे एक वृत के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। बाहरी चक्र में राष्ट्र के शेष प्रदेशों से होने वाले प्रवाह सम्मिलित किये जाते हैं। अन्तर-वृत्त को तीन भागों में विभक्त करके तीन लेखा प्रदर्शित किए जाते हैं। ये तीन लेखा घरेलू प्रदेश में होने वाले प्रवाह बताते हैं। ये हैं उत्पादन लेखा, उपभोग लेखा तथा पूँजी या संचयन लेखा।

8.3 प्रादेशिक लेखा निर्माण

इस भाग में हम एक प्रदेश में होने वाले वस्तु एवं सेवा प्रवाहों को सम्मिलित करते हैं, ये प्रवाह उत्पादन, उपभोग अथवा पूँजी निर्माण से संबंधित मुद्रा में हो सकते हैं।

8.3.1 उत्पादन लेखा

एक प्रदेश में वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन से संबंधित समस्त प्रवाह सम्मिलित किए जाते हैं। ये प्रवाह आवक एवं जावक के रूप में होते हैं। आवक प्रवाह वे प्रवाह हैं जो उत्पादन को उपभोग, अन्य वस्तुओं के वर्तमान उत्पादन के लिए अथवा पूंजी निर्माण के लिए होते हैं। जावक में हम उन मदों को सम्मिलित करते हैं जो अन्य उत्पादकों से क्रय करके प्राप्त किए गये हैं, (इसे मध्यवर्ती उत्पाद भी कहते हैं) । इसके अलावा जावक में घिसावट अथवा मूल्य

ह्वास एक बहुत बड़ा भाग होता है। जावक में तीसरा मद अप्रत्यक्ष कर होते हैं। इस प्रकार एक काल्पनिक प्रदेश के लिए उत्पादन लेखा, लेखा-जोखा के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

तालिका 8.

लेखा एक : उत्पादन लेखा

		आवक जावक			जावक
आय	1.1	उपभोग(2,3)	व्यय	1.5	घिसावट (मूल्य हास) (3.1)
	1.2	विनियोग (3,3)		1.6	अप्रत्यक्ष कर (2.2)
		(अ) वर्तमान उत्पादन		1.7	अन्यउत्पदको से प्राप्त
		(ब) भविष्य उत्पादन		1.8	संसाधनो को देय आय (2.1)
		कुल आवक		कुल जावक	

इन समस्त प्रवाहों को मुद्रा प्रवाहों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उपभोग आवक का एक बहुत बड़ा भाग होता है।

8.3.2 उपभोग लेखा

पिछले भाग में एक प्रदेश को उत्पादक की दृष्टि से देखा जाता है। इस भाग में एक प्रदेश को उपभोक्ता के रूप में माना जाता है। इसका अर्थ यह है कि उत्पादन के साधनों को देय आय जो उत्पादन लेखा में जावक होती है, इस लेखा में आवक होती है। लेखा उद्देश्य से, इस लेखा में मुख्य आवक का स्त्रोत उत्पादन क्षेत्र से प्राप्त संसाधन को देय आय होती है, इसे प्रादेशिक आय के रूप में भी जाना जाता है। आवक का दूसरा मद अनुदान के रूप में होता है जिसे अप्रत्यक्ष करों को निकाल कर सम्मिलित किया जाता है।

उपभोग लेखा के जावक में मुख्य मद उपभोग व्यय होता है, यह मद उत्पादन लेखा में आवक होती है। दूसरा मद बचत के रूप में होता है। यह मद कुल आवक तथा कुल जावक का अन्तर होता है। यह मद लेखा 3 मे, पूँजी निर्माण में प्रयोग होता है।

तालिका 8.2

लेखा दो : उपभोग लेखा

	आवक		जावक
2.1	संसाधन को प्राप्त (1.8)	2.3	उपभोग (1.1)
2.2	अनुदान/अप्रत्यक्ष कर(1.6)	2.4	बचत (3.2)
	कुल आवक	कुल जावक	

लेखा 3 : पूँजी निर्माण लेखा :

इस लेखा में मुख्य रूप से पूँजी निर्माण की प्रक्रिया में होने वाले प्रवाह सम्मिलित किए जाते हैं। इन लेखों में आवक के मुख्य दो स्रोत होते हैं (i) घिसावट अथवा मूल्य ह्यास, जो उत्पादन लेखा से प्राप्त होती है तथा (ii) बचत जो उपयोग लेखा से प्राप्त होती है। इसका मुख्य जावक मद विनियोग होता है।

तालिका 8.

लेखा तीन : पूँजी निर्माण लेखा

	आवक		जावक
3.1	घिसावट (1.5)	3.3	विनियोग (1.2)
3.2	बचत		
	कुल आवक	कुल जावक	

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीन लेखाओं को मिलाकर प्रादेशिक लेखा बनाऐं जाते हैं। इन तीन लेखाओं में प्रथम दो लेखा चालू लेखा कहलाते हैं तथा तीसरा लेखा पूँजी लेखा कहलाता है। यदि अन्त-र्प्रादेशिक प्रवाह पर सूचना उपलब्ध हो तो एक और लेखा जोड़ दिया जाता उसे शेष प्रदेश लेखा कहते हैं।

8.4 प्रादेशिक इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण

पिछले खण्ड में हमने यह देखा था कि एक प्रदेश में जितना वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन होता है उसके दो भाग होते हैं प्रथम उपभोग जो वर्तमान अवधि में होता है तथा द्वितीय उत्पादन का वह भाग जो अन्य उत्पादकों द्वारा अन्य वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में प्रयोग होना है, इसे मध्यवर्ती उपयोग या मध्यवर्ती मांग के नाम से जाना जाता है। प्रादेशिक नियोजन में अन्तिम मांग के साथ-साथ मध्यवर्ती मांग का आकलन करना आवश्यक है। इस प्रकार कुल मांग को दो भागों में विभक्त किया जाता है अन्तिम मांग तथा मध्यवर्ती माँग। अन्तिम माँग, प्रादेशिक आय को प्रदर्शित करती है। इस प्रकार नियोजन में प्रादेशिक आय से मेल खाती कुल माँग का ज्ञान करना आवश्यक है इसके लिए प्रादेशिक इन्पुट-आउटपुट सारिणी का निर्माण करना आवश्यक होता है। इन्पुट-आउटपुट सारिणी के आधार पर इसका विश्लेषण किया जाता है, इस विश्लेषण के जन्म दाता लिओन्टीफ हैं जिन्होंने सर्वप्रथम अमेरिकन अर्थव्यवस्था के लिए इसे प्रतिपादित किया था।

भारत में इन्पुट-आउटपुट का निर्माण केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन द्वारा प्रत्येक पॉच वर्षों के अन्तर पर किया जाता है। राज्य स्तर पर इस प्रकार का विश्लेषण निजी शोधार्थियों द्वारा कुछ राज्यों के लिए ही किया गया है। वे राज्य हैं हरियाणा, पंजाब, गुजरात, कर्नाटक, तथा राजस्थान। राज्य स्तरीय इन्पुट-आउटपुट सारिणीयों का वर्णन इस पाठ्यक्रम की ईकाई - 14 में दिया जाएगा। इस भाग में हम केवल इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण की अवधारणा से ही परिचय करागें।

इस भाग में इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण का प्रारम्भिक परिचय दिया जायेगा। इसका उपयोग प्रादेशिक नियोजन में व्यापक रूप में होने लगा है।

एक प्रदेश की अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों की परस्पर निर्भरता होती है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि क्षेत्र में किसी उद्योग का विकास करने का प्रयोजन हो तो यह आवश्यक है कि इस उद्योग के इन्पुट की पूर्ति करने वाले उद्योग भी इस क्षेत्र में विद्यमान हो। दूसरे शब्दों में इस प्रकार के उद्योगों को पश्चमागी सम्बन्ध (बेकवर्ड लिन्केज) कहते हैं। दूसरी और विकसित करने वाले उद्योग के उत्पादन की अर्न्त-उद्योग माँग तथा अन्तिम माँग दोनों ही इस प्रदेश में विद्यमान हों। इसे अग्रवर्ती सम्बन्ध कहते हैं। इस प्रकार एक प्रदेश में

उन उद्योगों को विकसित करना चाहिए जिनमें दोनों प्रकार के सम्बन्ध अर्थात् अग्रगामी एवं पश्चगामी सम्बन्धों का अस्तित्व इस प्रदेश में हो। इन सम्बन्धों के परिणात्मक अध्ययन के लिए इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण का उपयोग किया जाता है।

8.4.1 इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण

एक प्रदेश के प्रत्येक उद्योग के उत्पादन को दो भागों में बाँटा जाता है (i) अंतर उद्योग माँग तथा (ii) अन्तिम मांग। अन्तर-उद्योग मांग, कुल मांग का मह भाग है जिसे इस प्रदेश के अन्य उद्योग अपने-अपने उत्पादनों में इन्पुट की तरह प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी प्रदेश में सरसों की फसल विकसित करनी हो तो, सरसों पर अश्रारित उद्योग भी इसी प्रदेश में विकसित करने होंगे। यदि सरसों का उपयोग, उपभोक्ता भी करता है तो इसे अंतिम मांग कहते है। इस प्रकार एक प्रदेश में प्रत्येक उद्योग की कुल मांग-अन्तर-उद्योग मांग तथा अन्तिम माँग का योग होती है।

यदि x_1 एक प्रदेश में पहले क्षेत्र की उत्पादन को प्रदर्शित करता है तो-

$$X_1 = ID_1 + FD_1$$

यहाँ आई. डी. 1 (ID_1) पहले क्षेत्र की अर्न्त-उद्योग मांग है।

FD_1 (एफ. डी.$_1$) = पहले क्षेत्र की अन्तिम माँग है।

यदि इस प्रदेश में तीन क्षेत्र उद्योग हो तो तथा X_{11} पहले उद्योग के उत्पादन का वह भाग जो इसी उद्योग में इन्पुट की तरह उपयोग में आती है। X_{12} पहले उद्योग के उत्पादन का वह भाग जो दूसरे उद्योग में इन्पुट की तरह उपयोग मे आती है। इसी प्रकार X_{13} पहले उद्योग के उत्पादन का वह भाग जो तीनों उद्योंगो के उत्पादन में इमुट की तरह प्रयोग किया जाता है।

अत: आई डी 1 (ID_1) = $x_{11} + x_{12} + x_{13}$

इसी प्रकार अन्य उद्योगों के उत्पादन की कुल माँग क्रमश:

$X_1 = x_{21} + x_{22} + x_{23}$

ID_3 (आई.डी.$_3$) = $x_{31} + x_{32} + x_{33}$

तीनों उद्योगों के उत्पादन की कुल माँग क्रमश

$x_1 = x_{11} + x_{12} + x_{13} + F_1$

$x_2 = x_{21} + x_{22} + x_{23} + F_2$ (1)

$x_3 = x_{31} + x_{32} + x_{33} + F_3$

यदि जेड$_1$ (Z_1) ज़ेड$_2$ (Z_2) तथा जेड$_3$ (Z_3) इन तीनों उद्योगों के कुल पूर्ति (उत्पादन) दो तथा कुल मांग एवं कुल पूर्ति में साम्य हो तो -

Z(ज़ेड$_1$) = $x_1 = x_{11} + x_{12} + x_{13} + F_1$

Z(ज़ेड$_2$) = $x_2 = x_{21} + x_{22} + x_{23} + F_2$ (2)

Z(ज़ेड$_3$) = $x_3 = x_{31} + x_{32} + x_{33} + F_3$

अब यदि $\frac{X_{11}}{X_1}$ =Q_{11} माना जाऐ तब

A_{11} = प्रथम उद्योग के उत्पादन का वह भाग जो इसी उद्योग में इन्पुट की तरह उपयोग किया जाता है । इसी प्रकार से हम ऐ$_{12}$ ऐ$_{13}$, ऐ$_{21}$, ऐ$_{23,}$ ऐ$_{31}$, ऐ$_{32}$, एवं ऐ$_{33}$ को परिभाषित कर सकते हैं और यहाँ इन्हें इन्पुट-आउटपुट गुणक मैट्रिक्स कहते हैं और इसे A से सम्बोधित करते हैं। अर्थात

$$A = \begin{bmatrix} Q_{11} & Q_{12} & Q_{13} \\ Q_{21} & Q_{22} & Q_{23} \\ Q_{31} & Q_{32} & Q_{33} \end{bmatrix} \quad (3)$$

इन गणकों को मैट्रिक्स क्रमबद्ध करते समय इस बात का ध्यान रखना है कि ऐ के साथ लिखे अंकों (अनूलग्नों) में पहला अंक पंक्ति को सम्बोधित करेगा तथा दूसरा अंक कॉलम को सम्बन्धित करेगा।

X_{11} का मान ऐ$_{11}$, (a_{11}) के आधार पर

मैट्रिक्स बीजगणित के सिद्धान्त के आधार पर

$$\begin{bmatrix} X_1 \\ X_2 \\ X_3 \end{bmatrix} = \begin{bmatrix} a_{11} & a_{12} & a_{13} \\ a_{21} & a_{22} & a_{23} \\ a_{31} & a_{32} & a_{33} \end{bmatrix} \begin{bmatrix} X_1 \\ X_2 \\ X_3 \end{bmatrix} + \begin{bmatrix} F_1 \\ F_2 \\ F_3 \end{bmatrix} \qquad (4)$$

मैट्रिक्स संकेतों का प्रयोग करने से

$$X = Ax + F \qquad (5)$$

यह एक मैट्रिक्स समीकरण कहलाता है।

प्रादेशिक लेखों के ऑकड़े एकत्रित करते समय उस प्रदेश के लिए अन्तर क्षेत्रीय वस्तुओं एंव सेवाओं के प्रवाह पर आधारित इनपुट-आउटपुट मैट्रिक्स कहते हैं। जैसा पहले बताया जा चुका है इस मैट्रिक्स का आकलन प्रदेश स्तर पर करना सहज कार्य नहीं है इसलिए यह मैट्रिक्स भारत के कुछ राज्यों के लिए ही उपलब्ध है। ये राज्य हैं पंजाब, हरियाणा, गुजरात, तथा राजस्थान।

समीकरण (5) को x के लिए हल करने का उद्देश्य है। अत:

$$x - Ax = F \qquad (6)$$

x को कॉमन लेने पर

$$(I-A)\ x = F \qquad (7)$$

या

समीकरण (6) के दोनों भागों को $(I-A)^{-1}$ सें गुणा करने से

$$(I-A)^1\ (I-A)X = (I-A)^{-1}F \quad (8)$$

अब मैट्रिक्स बीजगणित के अनुसार

$$(I-A)^{-1}\ (I-A) = I$$

होता है जिसे किसी मैट्रिक्स के गुणा करने से मैट्रिक्स के मान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अत: आई x को x ही लिखा जा सकता है।

इस प्रकार $x = (I-A)^{-1}F$ (9)

8.4.2 आदा-प्रदा विश्लेषण की सीमाऐं

एक इन्पुट-आउटपुट सारणी में एक प्रदेश के प्रत्येक क्षेत्र के लिए इसके द्वारा क्रय अथवा विक्रय किए गये मदों को दोहरा लेखा में हिसाब किताब की पद्धति है। इस सारणी की एक पंक्ति में इस क्षेत्र के उत्पादन का अन्य क्षेत्रों के उत्पादन को बताता है। इस प्रकार यह सारणी प्रदेश के क्षेत्रों की आत्मनिर्भरता दर्शाती है। इस सारणी में पंक्तियों तथा कॉलम की संख्या बराबर होती है। प्रादेशिक स्तर पर एक इन्पुट-आउटपुट सारणी के निर्माण में वृहद स्तर पर ऑकड़ो की आवश्यकता होती है। इन्पुट-आउटपुट एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विश्लेषणात्मक साधन है जिसे प्रादेशिक नियोजन में बहुत अधिक उपयोग में लाया जाता है। इस पद्धति से एक प्रदेश की क्षेत्रीय मॉगों के अनुरूप क्षेत्रीय उत्पादन की मात्रा का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। क्षेत्रीय मांग प्रदेश के लिए नीति निर्धारण तत्वों से अथवा भविष्य के अनुमान के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। इन्पुट-आउटपुट वस्तुओं के प्रवाहों से इन्पुट-आउटपुट गुणक सारणी का निर्माण किया जाता है। इस गुणक सारणी को उत्पादन तकनीक का सूचक माना जाता है। और इसको लघु काल में स्थिर भी माना जाता है। यदि उत्पादन तकनीक में कोई परिवर्तन होता है तो इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण का प्रयोग करने में कठिनाई होती है। इसी प्रकार यदि कीमतों में परिवर्तन होता है तो इस विश्लेषण से प्राप्त क्षेत्रीय उत्पादन के अनुमान की विश्वसनीयता कम हो जाती है। समीकरण (9) की व्याख्या करना आवश्यक है यदि ऐ को स्थिर माना जाऐ तो i भी स्थिर होगा क्योंकि सदा स्थिर होता है। यदि एफ दिया हुआ हो तो हम x का मान निकाल सकते हैं। किसी प्रदेश की यदि क्षेत्रीय अन्तिम माँग ज्ञात हो तो हम क्षेत्रीय कुल पूर्ति (और माँग) जिसे x से सम्बोधित किया गया है को ज्ञात कर सकते हैं।

8.5 सारांश

इस इकाई में हमने प्रादेशिक आय लेखा का परिचय प्राप्त किया है। इन आय लेखाओं का प्रादेशिक नियोजन में बहुत महत्व है। एक प्रदेश में किन-किन उद्योगों का विकास किया जाना है इसका अध्ययन इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। एक प्रदेश में उस उद्योग का विकास करना चाहिए जिसके अग्रगामी अथवा पश्चिमी सम्बन्ध महत्वपूर्ण हो। इन दोनों प्रकार के सम्बन्धों का आकलन इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण के आधार पर किया जाता है।

8.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. रिचार्ड एवं गिओवाना स्टोन (1972) नेशनल इन्कम एंड एक्सपेन्डीचर , बावेस एवं बावेस।
2. ए. पी. थर्रवाल (1983) ग्रोथ एंड डेवलपमेंट, मेकमिलन

3. ल. ना. नाथूरामका (1997) प्रारम्भिक अर्थशास्त्र में गणित के प्रयोग, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर।

8.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रादेशिक आय लेखा से आप क्या समझते हैं? इन लेखाओं का उपयोग प्रादेशिक नियोजन में किस प्रकार किया जाता है।
2. प्रादेशिक आय लेखा की व्याख्या कीजिए।
3. इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण का प्रादेशिक नियोजन में क्या उपयोग है।
4. इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण की व्याख्या कीजिए। इस विश्लेषण की मान्यताऐं तथा सीमाऐं भी बताईये।

इकाई 9
वस्तुएँ एवं पूँजी का अन्तर्प्रादेशिक प्रवाह/चालू एवं पूँजी खातों का सन्तुलन

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.1.1 चालू खाता

9.1.2 पूँजी खाते

9.1.3 चालू मद

9.2 प्रादेशिक स्तर पर आय लेखे

9.3 सारांश

9.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.5 निबन्धात्मक प्रश्न

9.0 उद्देश्य

आर्थिक विकास के सन्दर्भ में काल तथा दिक् दोनों का ही महत्व है। प्रादेशिक विषमताओं का अध्ययन राष्ट्रीय विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। आर्थिक विकास प्रादेशिक विषमता में प्रादेशिक लेखा के अन्तर्गत वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रवाह का अध्ययन किया जाता है।

9.1 प्रस्तावना

राष्ट्र के किसी भी भाग को प्रदेश कहा जा सकता है। परन्तु राष्ट्र की लेखांकन प्रणाली को प्रदेश कें लिए उपयोग में नहीं लाया जा सकता है। इसका एक कारण यह है कि प्रादेशिक परिस्थितियों की राष्ट्र से भिन्न होने की सम्भावना रहती है। जैसा कि हम जानते हैं कि वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन, आवंटन तथा जनसंख्या के द्वारा इनके अन्तिम उपभोग को राष्ट्रीय लेखा के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत व्यक्तियों/प्रदेशों के भिन्न-भिन्न समुहों के मध्य वस्तुओं एवं सेवाओं के लेन-देन को मुख्य रूप से दो प्रकार के लेखों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है - (1) चालू खाता (2) पूँजी खाता।

9.1.1 चालू खाता

इन खातों में एक प्रदेश में वस्तुओं एवं सेवाओं के लेन-देन को प्रस्तुत किया जाता है। इन खातों में एक विशेष प्रकार का कारोबार करने वाले व्यक्तियों के समूहों को दो भागों मे विभक्त किया जाता है- आय तथा व्यय। उदाहरण के लिए घरेलू खाते में आय पक्ष में साधनों से प्राप्त आय को अंकित किया जाता है तथा व्यय पक्ष में वस्तु एवं सेवाओं के उपभोग को बचत के साथ सम्मिलित किया जाता है।

इस प्रणाली के अन्तर्गत हम वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रवाह के उस भाग को सम्मिलित करते हैं जो उपभोग में आता है। चालू खातों के अन्तर्गत मुख्य रूप से दो प्रकार की आर्थिक गतिविधियाँ आती हैं (i) उत्पादन (ii) उपभोग।

9.1.2 पूँजी खाते

उत्पादन के उद्देश्य स जिन वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग किया जाता है वे पूँजी खाते में सम्मिलित किए जाते हैं। यहाँ यह महत्वपूर्ण नहीं है कि किन उद्योगों अथवा प्रदेशों में इन सेवाओं एवं वस्तुओं का उत्पादन होता है, क्योंकि इनका महत्व आदान-प्रदान प्रवाहों में होता है। पूँजीगत प्रवाहो को भी चालू खातों की भांति दो भागों में विभक्त किया जाता है। आय पक्ष तथा व्यय पक्ष। आय पक्ष में दो मद होते हैं प्रथम मूल्यह्यास जो उत्पादन प्रवाहों से आता है तथा बचत जो उपभोग प्रवाह से आती है।

व्यय पक्ष में तीन मद होते हैं। प्रथम - घरेलू निवेश, जिसको दो भागों में बांटा जाता है (i) स्थिर पूंजी (ii) स्टॉक में निवेश। दूसरा मद विदेशी निवेश होता है तथा तीसरा मद विदेशों से प्राप्त पूँजीगत हस्तांतरण।

9.1.3 चालू मद

प्रत्येक प्रदेश के लिए चालू मद में उत्पादन तथा उपभोग के लेखा एवं पूँजी खाते में पूंजी निर्माण से संबन्धित मद सम्मिलित किये जाते हैं। राष्ट्रीय खाते की पद्धति को प्रदेश स्तर में उपयोग करने से दो मुख्य समस्याएँ आती हैं। प्रथम वे संस्थाओं जो सम्पूर्ण राष्ट्र में कार्य करती हैं उनके प्रवाहों को प्रादेशिक स्तर पर निकालने की समस्या। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा व्यय तथा केंद्रीय सरकार। दूसरी समस्या प्रादेशिक स्तर पर वस्तुओं के प्रवाहों पर सूचना विश्वसनीय नहीं हो सकती, क्योंकि एक प्रदेश में क्रय की गई वस्तु का उपभोग दूसरे प्रदेश में हो सकता है। इन समस्याओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि सभी प्रदेशों के प्रवाहों को संकलित कर लिया जाए तो यह आवश्यक नहीं है कि वह राष्ट्र के कुल प्रवाहों के बाराबर हो। यद्यपि एक प्रदेश के लिए चालू खाते तथा पूंजीगत खातों में सन्तुलन होना आवश्यक है।

9.2 प्रादेशिक स्तर पर आय लेखे

प्रादेशिक स्तर पर आय लेखों का प्रादेशिक नीति निर्धारण में बहुत महत्व है। इस अवस्था में अत्तर्प्रादेशिक तुलना का महत्व कम हो जाता है। तथा एक प्रदेश में उपयोग आने वाली अवधाणाऐं दूसरे प्रदेश की अवधारणाओं से भिन्न भी हो सकती हैं। यदि प्रादेशिक लेखों का उपयोग प्रादेशिक नियोजन में किया जाता है तो यह आवश्यक है कि प्रयोग में आने वाली अवधारणाऐं सभी प्रदेशों के लिए समान हों अन्यथा राष्ट्रीय स्तर पर उपयोग में आने वाली प्रादेशिक लेखा का कोई महत्व नहीं रह जाएगा।

आर्थिक विकास का तात्पर्य मुख्य रूप से भौतिक उत्पादन में वृद्धि की सामाजिक प्रक्रिया से है। यह वृद्धि की प्रक्रिया भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में समान न होकर स्थानीय होती है अर्थात् आर्थिक विकास में असमानता एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में तथा एक प्रदेश के

अन्दर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भी भिन्न-भिन्न होती है। उत्पादनकारी संसाधनों के विकास की इस प्रक्रिया में स्थानिक विभिन्नता के कारण प्रादेशिक विकास का गहन अध्ययन किया जाना चाहिए। इस प्रकार के अध्ययन के लिए प्रादेशिक स्तर पर उत्पादन की प्रक्रिया के समय आय लेखाओं की आवश्यकता होती है। क्योंकि प्रदेश स्तर पर उत्पादन में प्रयोग आने वाले संसाधनों की उत्पादकता में वृद्धि की दर अत्यन्त धिमी होती है। राष्ट्र स्तर पर आय के लेखा का प्रस्तुतिकरण अनेक वर्षों से किया जा रहा है। परन्तु इस विधि का प्रदेश स्तर पर प्रस्तुतिकरण एक सहज प्रक्रिया नहीं है। राष्ट्रीय आय की आवधारणा को प्रादेशिक स्तर पर परिभाषित करने के लिए इसमें कुछ सुधारों की आवश्कता होती है। इसी प्रकार से आय लेखा में प्रयोग आने वाली कुछ अन्य अवधारणाओं में भी सुधार की आवश्यकता होती है। राष्ट्रीय आय के अनुसार प्रादेशिक आय को भी परिभाषित किया जा सकता है, जिसके अनुसार एक प्रदेश के आवासी की साधारण आय माना जा सकता है।

प्रदेश स्तर पर आय समग्रों एवं लेखाओं की उस प्रदेश से संबंधित व नीति निर्धारण में अत्यन्त महत्व होता है। इस संदर्भ में अर्न्तप्रदेशीय तुलना के साथ इस प्रदेश विशेष से संबंधित नीतियों में भी इसकी आवश्यकता होती है। प्रादेशिक स्तर पर आय लेखा का महत्व आर्थिक समंको के संग्रहण के प्रारूप के लिए भी माना जाता है। जिनकी राष्ट्रीय सरकारों एवं केन्द्रीय संस्थानों को भी प्रादेशिक आयोजन में आवश्यकता होती है। इस प्रकार प्रादेशिक स्तर पर विस्तृत समग्रों की आवश्यकता केन्द्रीय सरकार अथवा नीति निर्धारकों की आवश्यकता होती है। विस्तृत समंको की अनुपस्थिति में प्रादेशिक लेखा को कुछ पहलुओं पर ही ध्यान देकर सरल बनाया जाता है '

प्रादेशिक लेखों में वे समग्र, जिनकी आवश्यकता अधिक रहती है, इनमें स्वतन्त्र रूप से दर्शाया जाता है। उदाहरण के लिए बिक्री कर से प्राप्त होने वाली आय का आंकलन करने के लिए एक प्रदेशिक आदा-प्रदा सारिणी की आवश्यकता होती है। यह सारणी राष्ट्र स्तर पर, प्रत्येक पाँच वर्ष की समयावधि के लिए तैयार की जाती है। प्रदेश स्तर पर यह सारणी कुछ राज्यों के लिए निजी शोधकर्ताओं ने बनाई है। राज्य सरकारों को आर्थिक नियोजन के लिए यदि प्रादेशिक लेखाओं की आवश्यकता पड़ती है।

9.3 सारांश

प्रादेशिक लेखाओं के महत्व को विस्तृत से जानने की आवश्यकता तो है। साधारणतया यह प्रदेश में जीवन स्तर का आकलन करने या उत्पादन स्तर का अनुमान लगाने में अधिक प्रयोग होता है। इन सूचनाओं के आधार पर केन्द्र द्वारा अन्तर्प्रादेशिक असमानता को कम करने के लिए नीति का निर्धारण किया जाता है तथा करों के पुन: वितरणशील प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रदेश में उत्पादन सम्भावनाओं का पता लगाने में भी उपयोग किया जाता है।

भारतीय नियोजन में तृतीय पंचवर्षीय योजना से ही विकास में प्रादेशिक विषमताओं व असमानताओं को कम करने पर बल दिया जाता रहा है। इसका कारण यह है कि राष्ट्र का आर्थिक विकास विभिन्न प्रदेशों में विद्यमान असमानताओं में कमी किये बिना संभव नहीं है। इस प्रकार नियोजन के माध्यम से इस प्रकार की अर्न्तप्रादेशिक असमानता को दूर करणने के

साथ-साथ अन्तर्वर्गीय अथवा अन्तर्क्षेत्रीय असमानता को भी कम करने का प्रयास किया जाता है।

9.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- भारत सरकार (1954) फाइनल रीपोर्ट ऑफ दी नेशनल इन्कम कमेटी, नई दिल्ली
- योजना आयोग (1952) दी फर्स्ट फाईव ईअर प्लान, भारत सरकार,
- केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (1979) नेशनल अकाउन्टस स्टेटिस्टिक्स, भारत सरकार
- नायर के.आर जी. (1982) रीजनल एक्सपीरीयन्स इन ऐ डवलपिंग ईकोनामी वायले इस्टर्न, नई दिल्ली

9.5 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न1. आर्थिक असमानता के विश्लेषण में प्रादेशिक आय लेखाओं का महत्व बताईये।

प्रश्न2. वस्तुओं एवं पूंजी के अन्तर्प्रादेशिक प्रवाह के उपयोग से क्या समस्याऐं आती हैं,बताईये

इकाई 10
प्रादेशिक विकास के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 प्रादेशिक विकास के सिद्धान्त
10.2.1 प्रतिष्ठित सिद्धान्त
10.2.1 नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त
10.2.3 निर्यात आधारित परिकल्पनाऐ
10.3 सारांश
10.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें
10.5 निबन्धात्मक प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप प्रादेशिक विषमताओं के बारे में प्रतिष्ठित सिद्धान्त नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त और निर्यात आधारित सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादित व्याख्या जान पायेंगे।

10.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास को प्राय: भौतिक उत्पादन के सामाजिक विकास की एक प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है। कुछ राष्ट्रों में यह देखा जाता है कि विकास की प्रक्रिया स्थान के सन्दर्भ में समान नहीं होती। यह स्थिति मुख्य रूप से विकासशील राष्ट्रों मे अधिक प्रचलित होती है। एक राष्ट्र मे ही आर्थिक विकास की गति एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में भिन्न होती है। विकास की दर में इस प्रादेशिक असमानता के अनेक कारण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए उत्पादन के संसाधनों की उत्पादकता में असमानता आदि।

10.2 प्रादेशिक विकास के सिद्धान्त

अर्थव्यवस्था में प्रादेशिक विषमताओं को गत कुछ वर्षों से अधिक महत्व दिया जाने लगा है। ये आर्थिक विषमताऐं मुख्य रूप से, प्राकृतिक संसाधनों में असमानता के कारण मानी जाती रही हैं। आर्थिक विकास से इन विषमताओं में वृद्धि को रोकना एक उद्देश्य होता है। प्रादेशिक अर्थशास्त्र में इन विषमताओं की व्याख्या की गई है। मुख्य रूप से इसे तीन सिद्धान्तों द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

(1) प्रतिष्ठित सिद्धान्त
(2) नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त
(3) निर्यात आधारित सिद्धान्त

10.2.1 प्रतिष्ठित सिद्धान्त

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में प्रादेशिक विकास में असमानता अनेक वर्षों से अध्ययन का विषय रहा है। यद्यपि अनेक अर्थशास्त्रियों का यह मत रहा है कि आर्थिक विकास मे प्रादेशिक विषमताओं का सुव्यवस्थित अध्ययन उपलब्ध नहीं है। रिचर्डसन (1969, 1973) एवं नउर्स (1968) का यह मानना है कि आरंभ में प्रादेशिक आर्थिक विकास के अन्तर्गत केवल अवस्थापन सिद्धान्त का ही अध्ययन किया जाना था जिसके अन्तर्गत कुछ आर्थिक गतिविधियों के कुछ क्षेत्र में ही केन्द्रीकरण के कारणों का विश्लेषण किया जाता था। इन उद्योगों को कुछ ही क्षेत्रों में स्थापना वाले तत्वों का परिक्षण किया जाता रहा था। तद्नुसार, कृषि, उद्योग आदि के विकास को प्रभावित करने वाले अन्य आर्थिक चरों के भौगोलिक वितरण को निर्धारित करने वाले तत्वों का अध्ययन किया जाता है। प्रतिस्थापन के सिद्धान्त को प्रतिपादन करने वाले अर्थशास्त्रियों में मुख वोन थ्यूनेन (1826) तथा वेबर (1909) ने कुछ गतिविधियों का कुछ भौगोलिक क्षेत्रों में ही केन्द्रीकरण करने वाले तत्वों का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि परिवहन लागत ही मुख्य रूप से प्रभावित करने वाला है। परिवहन लागत के सन्दर्भ में उद्योग के कुछ क्षेत्रों मे प्रतिस्थापन में आर्थिक क्रिया कलापों की कुछ क्षेत्रों में श्रेणीबद्ध क्रम (हैरारकी) भी कुछ हद तक जिम्मेवार है। क्रीस्टालर (1933) के अनुसार आर्थिक गतिविधियों के क्षेत्र में संचय एवं समूहबद्ध होने में उन क्षेत्रों में विद्यमान श्रेणीबद्ध क्रम में आर्थिक क्रियाऐं एकत्रित हो जाती हैं। आर्थिक विकास में क्षेत्रीय विषमता के इस सिद्धान्त को प्रतिष्ठित सिद्धान्त कहते हैं।

इस सिद्धान्त का मुख्य आधार स्थान निर्धारण का सिद्धान्त है जिसमें एक फर्म या उद्योग एवं कृषि के स्थानिक प्रतिरूप से संबंधित निर्णय लिए जाते हैं। स्थान निर्धारण सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य स्थानिक आयाम को प्रचलित आर्थिक सिद्धान्त के साथ समाकलन करना है। स्थापन सिद्धान्त का उद्गम थ्यूनेन तथा बेबर के स्थापन सिद्धान्त हैं जिसमें पूर्ण प्रतियोगिता के वातावरण में फर्म के स्थापन के मॉडल का अध्ययन किया गया है। इन दोनों की मान्यता थी कि उद्यमकर्ता अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करते हैं। जबकि कीमत निर्धारण बाजार द्वारा होता है। जो कि इनके नियन्त्रण से बाहर है। इन उद्यमकर्ताओं को प्रत्येक स्थान की लागत संबंधित पूर्ण ज्ञान होता है।

इन मान्यताओं के कारण ही स्थापन सिद्धान्त की उत्पादन तथा परिवहन लागत में स्थानिक परिवर्तनों के आधार पर व्याख्या की जाती है। वॉन थ्यूनेन विश्लेषण में एक विशेष स्थान के लिए कृषि उत्पादन से प्रारंभ करके उत्पादन के चयन की व्याख्या करता है जबकि वेबर ने एक उत्पादन के लिए एक उद्यमी द्वारा स्थान संबंधित निर्णय प्रक्रिया का अध्ययन किया है। इस प्रकार के विश्लेषण में यह मान्यता है कि प्रत्येक स्थान के लिए विक्रय से प्राप्त आय समान है तथा लगान को न्यूनतम करने का अध्ययन किया जाता है। इन मॉडलो में सरलतम मान्यता यह है कि उत्पादक अपने उत्पादन का बाजार एक स्थान पर है तथा कच्चे माल का स्त्रोत दूसरे स्थान पर। इस परिस्थिति में फर्म के स्थान का निर्णय लेना ही मुख्य उद्देश्य है। यदि प्रत्येक स्थान के लिए उत्पादन लागत को भी स्थिर मान लिया जाए तो

प्रतिष्ठित सिद्धान्त की समस्या परिवहन लागत को न्यूनतम करने की रह जाती है। इस सिद्धान्त के मुख्य निष्कर्ष निम्न हैं-

(I) यदि उत्पादन प्रक्रिया इस प्रकार की है जिसमें भार ह्यास, परिमाण हास अथवा नश्वरता में कमी आती हो तो फर्म को कच्चे माल के स्थान पर ही उत्पादन करना चाहिए। उदाहरण के लिए धातु शोधक, कपास ओटाई अथवा फलों को डिब्बे में पैकिंग करना कच्चे माल के स्थान पर ही डालनी चाहिए।

(II) यदि उत्पादन प्रक्रिया में भार, परिमाण अथवा नश्वरता में वृद्धि होती है तो फर्म बाजार के निकट होनी चाहिए।

(III) फर्म का स्थान कच्चे माल के स्रोत या बाजार के मध्य नहीं हो सकता क्योंकि ढुलाई दो बार करने की वजह से इसकी दर में वृद्धि हो जाएगी।

इस सिद्धान्त के व्ययिकरण में अनेक बाजार तथा कच्चे माल के अनेक स्रोतों को सम्मिलित करते हुए इस प्रकार के विश्लेषण में उत्पादन लागत को प्रत्येक स्थान पर असमान भी माना जा सकता है।

10.2.2 नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त

नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त आर्थिक संवृद्धि के अन्तर्क्षेत्रीय सिद्धान्त में एक स्थानिक पहलू के बिना ही प्रतिपादित किया गया है। यह सिद्धान्त निम्नलिखित असामान्य मान्यताओं पर आधारित है। ये मान्यताऐं हैं प्रत्येक क्षेत्र में -

1. पूर्ण रोजगार-प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण रोजगार की स्थिति है।
2. पूर्ण प्रतियोगिता-प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण प्रतियोगिता का अस्तित्व।
3. समरूप वस्तुंऐ-प्रत्येक क्षेत्र में समरूप वस्तुओं की उपलब्धता
4. शून्य परिवहन लागत
5. स्थिर श्रमपूर्ति
6. पैमाने का समान प्रतिफल
7. तकनिकी प्रगति रहित
8. समान उत्पादन फलन

रिचार्डसन (1969) ने इस सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या की है। जिसमें यह बताया गया है कि विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादनों के साधनों का प्रतिफल समान हो जाता है।

मार्क्सवादी अर्थशास्त्रीयों ने असमान क्षेत्रीय आर्थिक विकास की सम्भावना को स्वीकारा है। लेकिन ने इस परिस्थिति का रूस के सन्दर्भ में वर्णन किया है। इस परिप्रेक्ष में समीर अमीन (1974) ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर में केन्द्र-परिधि अवधारणा का विकास किया जिसमें विकसित राष्ट्रों को केन्द्र तथा विकासशील राष्ट्रों को परिधि बताया। भारत के सन्दर्भ में राजकृष्ण (1984) का अध्ययन जिसमें भारतीय राज्यों को दो समूहों में होना बनाया गया है। पहले समूह को केन्द्र कहा गया जिसमें विकसित राज्य जैसे- महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक आदि

रखे गये हैं तथा दूसरे समूह को परिधि कहा गया है जिसमें अन्य राज्य सम्मिलित किए गए हैं।

10.2.3 निर्यात आधारित परिकल्पनाएं

अन्तर्प्रादेशिक विकास में विषमता का कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार माना गया है। इस व्याख्या में वस्तुओं एवं उत्पादन के संसाधनों को पूर्ण रूप से एक प्रदेश में गतिशील माना गया है। कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रीयों का मानना है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया में प्रादेशिक विषमता का एक कारण उत्पादन तथा रोजगार की अन्तर्क्षेत्रीय संरचना में परिवर्तन होना है। कोलिन क्लार्क (1940), कुजनेंटस (1966) तथा मिर्डल (1969) द्वारा प्रतिपादित किए गए इस सिद्धान्त की वैधता विकासशील राष्ट्रा के सन्दर्भ में बैरोच (1975) ने परखी है। होफमैन (1958) ने इस प्रकार का अध्ययन औद्योगिक क्षेत्र के लिए किया। चैनरी (1960) तथा चैनेरी-टेलर (1968) के अध्ययनों में कुजनेटस तथा होफमेन के सिद्धान्तों का अर्थमिति के आधार पर यह निष्कर्ष निकला कि प्रादेशिक विषमताओं को प्रदेश का आकार, निर्यात की सापेक्ष भूमिका आदि अधिक प्रभावित करते हैं।

इससे पहले हूवर तथा फिशर (1949) के एक अध्ययन में प्रादेशिक आर्थिक विकास के इतिहास को उत्पादन की क्षेत्रीय संरचना में होने वाले परिवर्तन के आधार पर अनेक अव्यवस्थाओं में विभक्त किया गया है। यह शैली कुजनेटस की शैली से मिलती हुई अवश्य थी परन्तु इसमें कृषि एवं अन्य पूरक क्षेत्रों कें विकास का गहन अध्ययन किया गया था।

नोर्थ (1955) ने प्रादेशिक आर्थिक विकास का एक वैकल्पिक सिद्दान्त प्रतिपादित किया जिसके माध्यम से निर्यात को अधिक महत्व दिया गया। इनके अनुसार भूगोलवेत्ताओं के आर्थिक आधारित अवधारणा के समान निर्यात आधारित सिद्धान्त की व्याख्या की। इस सिद्धान्त के अनुसार, आर्थिक गतिविधियों को दो भागों मे बाँटा गया - आधारभूत तथा आवासी। आधरभूत गतिविधियां वे हैं जिनका उत्पादन निर्यात के लिए है तथा आवासी वे हैं जिनका उपभोग क्षेत्र में ही होता है। इन दोनों प्रकार के उत्पादन को एक स्थिर अनुपात मानते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि क्षेत्रीय विकास, क्षेत्रीय निर्यातों पर निर्भर करता है। स्टेबलर (1970) ने इस सिद्धान्त का अधिक गहनता से अध्ययन करके यह बताया कि इस प्रकार का विश्लेषण मुख्य रूप से केन्ज के सिद्धान्त के समान हो जाता है जहाँ पर निर्यात का मांग पर प्रभाव निकाला जा सकता है।

इस सिद्धान्त की एक प्रशाखा यह है कि इस प्रकार के विश्लेषण की सहायता से प्रादेशिक गुणांक का समाकलन किया जा सकता है। हारमन (1969) अथवा गारनिक (1969) ने प्रादेशिक गुणांक तथा इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण में समानता सिद्ध कर दी। टाईबूट (1957), इसार्ड (1960) तथा रिचार्डसन (1972) ने निर्यात आधारित सिद्धान्त की व्याख्या प्रादेशिक गुणांक के सन्दर्भ में दी है। इस प्रकार का विश्लेषण गहन आकड़ों पर निर्भर तो करता है। परन्तु यह प्रादेशिक नियोजन में परिणात्मक विश्लेषण में बहुत सहायक सिद्ध हुआ है।

10.3 सारांश

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में विकास के अन्य पहलुओं में वृहत विकास का महत्व है। जिस प्रकार आर्थिक विकास के अध्ययन में जितना महत्व काल का है, उतना ही महत्व विकास के विस्तार का है। आर्थिक विकास में काल तथा विस्तार दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। राष्ट्रीय विकास के आरम्भ के वर्षों में क्षेत्रीय विषमताओं का अध्ययन भी अतिआवश्यक है। मिर्डल (1957) तथा काल्डोर (1970) के अनुसार आर्थिक विकास के सन्दर्भ में प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय पहलुओं के अध्ययन में दो प्रभाव महत्वपूर्ण हैं। प्रथम प्रतिक्रिया प्रभाव तथा विस्तार प्रभाव। इनमें से प्रतिक्रिया प्रभाव, विस्तार प्रभाव सें अधिक शक्तिशाली होते हैं। हर्षमैन (1959) के सिद्धान्त में ध्रुवण प्रभाव तथा क्षीण धारा प्रभाव का बहुत महत्व है। प्रतिष्ठित सिद्धान्त में मुख्य रूप से लोकेशन (प्रतिस्थापन) सिद्धान्त का अध्ययन किया गया था। नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अन्तर्गत यह बताया गया है कि विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादनों के साधनों का प्रतिफल समान हो जाता है। मार्क्सवादी असमान क्षेत्रीय आर्थिक विकास की सम्भावना को स्वीकार करते हैं। कुजनेट्स तथा होपमैन के अनुसार प्रादेशिक विषमताओं को प्रदेश का आकार, निर्यात की सापेक्ष भूमिका आदि अधिक प्रभावित करते हैं।

नोर्थ (1955) ने आर्थिक गतिविधियों को आधारभूत तथा आवासी दो भागों में बाँटकर यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि क्षेत्रीय विकास, क्षेत्रीय निर्यातों पर निर्भर करता है। टाईब्रूट (1957) इसार्ड (1960) तथा रिचार्डसन (1972) ने निर्यात आधारित सिद्धान्त की व्याख्या करके बताया है कि यह सिद्धान्त प्रादेशिक नियोजन में परिणात्मक विश्लेषण में बहुत सहायक, सिद्ध हुआ है।

10.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. रिचार्डसन एच० डब्ल्यू० (1969) रीजनल इकनोमिक्स, लंदन
2. " " (1973) एलीमेन्टस ऑफ रीजनल एकनोमिक्स पेन्विन
3. " " (1973) रीजनल ग्रोथ थ्योरी, लंदन
4. नउर्स एच० ओ० (1968) रीजनल एकनोमिक्स , न्यूयार्क
5. वान थ्यूनेन (1826) दी ऐसोलेटेड स्टेट, पर्गामोन
6. वेबर, ए० (1909) थ्योरी आफ लोकेशन आफ इन्डस्ट्रीज, युनिवर्सिटी आफ शिकागो,
7. क्रीस्टालर, डब्ल्यू (1933) सेन्ट्रल प्लेसेज इन साउर्थन जर्मनी, न्यूयार्क
8. नायर के आर. जी. (1994) रीजनल इकनोमिक्स, आई० सी० सी० आर०
9. राजकृष्णा (1980) टी सेन्टर एन्ड दी पेरिफेरी : इन्टर स्टेट पेरीटीज इन इकोनामिक
10. डवलपमेंट, बम्बई, सेन्टर आफ मोनिटरिंग इन्डियन इकोनोमी"

10.5 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. प्रादेशिक असमानताओं का आर्थिक विकास पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है? उदाहरण देकर समझाइये।

प्रश्न 2. राजकृष्ण के केन्द्र-परिधी परिकल्पना का भारतीय आर्थिक विकास में क्या महत्व है?

प्रश्न 3. प्रादेशिक विकास के प्रतिष्ठित एवं नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्तों में क्या अन्तर है? भारत के संदर्भ में इसकी व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 4. निर्यात का प्रादेशिक विकास पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है? समझाइये।

प्रश्न 5. भारत के आर्थिक विका स में प्रादेशिक विकास के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 11

क्षेत्रीय संवृद्धि के सिद्धान्त-मिर्डल और हर्षमैन के सिद्धान्तों का समीक्षात्मक मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 मिर्डल का स्प्रेड और बैकवाश प्रभावों का सिद्धान्त

11.2.1 व्यापार और साधन गतिशीलता के ब्रेकवॉश और स्प्रेड इफेक्टस

11.3 हर्षमैन का ध्रुवीकरण और नीचे रिसाव प्रभाव सिद्धान्त

11.3.1 रिसन और ध्रुवीकरण प्रभाव

11.3.2 रिसाव और ध्रुवीकरण प्रभाव की रोक

11.4 मिर्डल और हर्षमैन के सिद्धान्तों में समानताएं और असमानताएं

11.5 सिद्धान्तों की समालोचना

11.6 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम प्रयास करेंगे-

(अ) मिर्डल और हर्षमैन के सिद्धान्तों में मुख्य प्रतिस्थापनाओं के विवेचन करने का।

(ब) इन सिद्धान्तों में समानताओं और असमानताओं का विवेचन करने का

(स) विवेचन करने के सिद्धान्तों का समालोचनात्मक मूल्यांकन करने का

11.1 प्रस्तावना

1950 के दशक के अन्त में दो पुस्तकें प्रकाशित हुई जिन्होंने आगामी दो दशको में क्षेत्रीय विकास और नियोजन के मार्ग को निर्धारित किया। ये अपने समय के दो प्रसिद्ध लेखक गुन्नार मिर्डल और अलबर्ट ओ-हर्शमैन के द्वारा लिखी गई थी। उस समय गुन्नार मिर्डल यूरोप के लिए संयुक्त राष्ट्रीय आयोग के निदेशक थे और यूरोप में क्षेत्रीय असमानताओं के लिए उत्तरदायी कारणों को समझने का प्रयास कर रहे थे ताकि युद्धोत्तर पुनर्निर्माण के लिए समुचित व्यूह रचना बनाई जा सके। दूसरी और हर्षमैन याले (Yale) विश्वविद्यालय में अध्यक्ष थे और कोलम्बिया में अपने अनुभवों के आधार पर आर्थिक विकास के सिद्धान्त के निर्माण का प्रयास कर रहे थे। यह ध्यान देना रूचिकर है कि परस्पर स्वतंत्र रूप से अलग-अलग कार्य करते हुए भी मिडल और हर्षमैन ने जिन सिद्धान्तों का निर्माण किया था वे कई पहलुओं में समान थे।

11.2 मिर्डल का स्प्रेड और बैकवाश प्रभावों का सिद्धान्त (Theory of Spread and Back Wash effects

मिर्डल ने 1957 में प्रकाशित ''आर्थिक सिद्धान्त और अर्द्धविकसित क्षेत्र" नामक एक पुस्तक में अपने सिद्धान्त को रेखांकित किया। उनके सिद्धान्त का आधारभूत विचार यह है कि निर्हस्तक्षेप मुक्त अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास निम्न दो नियमों से शासित होता है-

(अ) बाजार की शक्तियों का स्वतंत्र संचालन क्षेत्रीय असमानता का सृजन करता है।

(ब) जितना देश निर्धनतम होता है यह प्रवृत्ति उतनी ही अधिक बलवती होती है।

मिर्डल ने इन नियमों को वृत्ताकार ओर संचयी कार्य कारण संबन्ध की अवधारणा के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है जिसे उन्होंने उस समय विकसित किया था जब वे संयुक्त राष्ट्र में काले रंग की जनसंख्या के सामाजिक स्तर का विश्लेषण कर रहे थे, उनका विचार था कि अर्द्धविकसित देशों या राष्ट्रों में और इसी प्रकार वंचित जन समुदायों में वार्ताकार और संचयी कार्य-कारण संबन्ध की प्रक्रिया संचालित होती है और निर्धनता के दुष्चक्र को जन्म देती है। यह धारणा परम्परागत सिद्धान्त के इन दो 'स्थिर संतुलन; और आर्थिक विकास की प्रक्रिया में गैर आर्थिक तत्वों के ऊपर आर्थिक तत्वों की महत्ता के दो विचारों के विरूद्ध है।

मिर्डल ने तर्क प्रस्तुत किया है कि जब एक सामाजिक प्रणाली में एक परिवर्तन के सिद्धान्त को बनाया जा रहा हो तो चयन के लिए स्थिर संतुलन का विचार एक असत्य समानता है। उनका मत था कि सामाजिक प्रणाली में किसी चर में परिवर्तन, ऐसे क्षति पूरक बदलाव को प्रोत्साहन नहीं देते हैं जो प्रणाली को पुन: संकुलन की और बढ़ाते हैं। किन्तु इसके बजाय प्रारंभिक प्रवृत्ति के सहायक परिवर्तनों को जन्म देते हैं जो उस प्रणाली को प्रारम्भिक स्थिति से और दूर की स्थिति की ओर ले जाते हैं। इस प्रकार सामाजिक प्रणालियाँ स्वयं संतुलनकारी या समानता स्थापित करने वाली नहीं होती हैं अपितु वृत्ताकार एवं संचयी कारण-परिणाम की प्रव्रत्ती वाली होती हैं । उदाहरणार्थ एक निर्धन क्षेत्र में सामाजिक और आर्थिक ऊपरी पूंजी (Over head Capital) जैसे परिवहन एवं संचार सुविधाएं, बैकिंग एवं विपणन प्रणालियाँ, तकनीकी और अनुसंधान संस्थायें आदि नहीं होती हैं और यह क्षेत्र आर्थिक गतिविधियों को आकर्षित नहीं कर पाता है। उत्पादक आर्थिक क्रियाओं की अनुपस्थिति के कारण यह क्षेत्र रोजगार सृजन और अपनी प्रतिव्यक्ति आय या इसकी सकल उत्पत्ति को बढ़ाने में असमर्थ होता है। यह सब उस क्षेत्र को निर्धन बनाये रखता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि "निर्धन क्षेत्र निर्धन होते हैं क्योंकि वे निर्धन हैं "

परम्परागत आर्थिक सिद्धान्त की दूसरी मान्यता जो मिर्डल के अनुसार गलत है वह यह है कि इसमें गैर आर्थिक तत्वों को मान्यता नहीं दी गई है। मिर्डल के अनुसार ये आर्थिक परिवर्तन की संचयी प्रक्रिया में वृत्ताकार कार्य-करण के मुख्य वाहक हैं।

उन आधारभूत उपकल्पन गृहीत पक्षों का वर्णन करते हुए जिन पर उनका सिद्धान्त आधारित है, मिर्डल आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया और उस प्रक्रिया का विश्लेषण करने का प्रयत्न करते हैं जिसके कारण आर्थिक असमानतायें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उत्पन्न होती हैं। ऐसा करने के लिए वे बैकवाश और स्प्रेड इफेक्ट्स (Back wash and spread effects) के

विचार को प्रस्तुत करते हैं। वे यह रेखांकित करते हैं कि किस प्रकार किसी विशेष केन्द्र पर विकास की प्रक्रिया एक बार प्रारम्भ हो जाने पर चाहे वह किसी कारण से हुई हो, संचयी कार्यकारण के द्वारा वृद्धि की गति सृजित करती है। इस प्रकार उदाहरणार्थ X क्षेत्र में स्थापित नया उद्योग ऐसे प्रभावों की श्रृंखला प्रारम्भ कर सकता है जिससे यह केन्द्रीयता या पिण्डन के कारण इस क्षेत्र में नये उद्योगों को आकर्षित करेगा। अंत में X क्षेत्र का विस्तार अन्य क्षेत्रों में निम्न दो प्रकार के प्रभाव उत्पन्न करेगा ।

(1) बैकवाश इफेक्ट्स (Back Wash effects) : इसका तात्पर्य X क्षेत्र में विस्तार का अन्य क्षेत्रों पर विपरीत प्रभाव है। इनमें देशान्तर निवास, पूँजी आवागमन और व्यापार के प्रभाव और साथ ही साथ समस्त आर्थिक और गैर आर्थिक घटकों के बीच में वृत्ताकार कार्य कारण की प्रक्रिया से होने वाले कुल संचयी प्रभाव सम्मिलित हैं।

(2) स्प्रेड इफैफ़ेक्टस (Spread effects): अर्थात् धनात्मक विकास जो X क्षेत्र के विस्तार के कारण अन्य क्षेत्रों में प्रेरित होता है। मिर्डल की धारणा है कि क्षेत्रीय असमानतायें उत्पन्न होती हैं। और जारी रहती हैं क्योंकि निर्हस्तक्षेप युक्त अर्थ व्यवस्थाओं में बैकवाश इफेक्ट्स, स्प्रेड इफेक्ट्स की अपेक्षा अधिक सबल होते हैं।

बैकवाश और स्प्रेड इफेक्ट्स व्यापार और साधन गतिशीलता के माध्यम से संचालित होते हैं।

11.2.1 व्यापार और साधन गतिशीलता के बैकवाश और स्प्रेड इफेक्ट्स (The Back Wash and Spread effects of Trade and Factor Mobility)

मिर्डल देशांत र निवास, पूंजी चलन और व्यापार के अर्द्धविकसित क्षेत्रों पर बै कवाश इफेक्टरा का विश्लेषण करते हुए बताते है कि देशांतर निवास (Migration) से निर्धन क्षेत्र अपने सर्वाधिक जोखिम उठाने वाले उपक्रमियों और युवा कार्यकर्ताओं को खो देते हैं क्योंकि पिछड़े क्षेत्रों में उन्हें रोकने के लिए कुछ नहीं होता है। बैकिंग प्रणाली निर्धन क्षेत्रों के लोगों की बचतों को बाहर भेजती है (siphons off) और धनी क्षेत्रों में पुनर्निवेश करती है। स्वतंत्र व्यापार लघु और परम्परागत अद्योगों को नष्ट कर देता है क्योंकि वे विकासमान क्षेत्रों के उद्योगों की प्रतिस्पर्द्धा में इसलिए नहीं टिक पाते क्योंकि ये उद्योग वृद्धिमान प्रतिफल के नियमों की स्थितियों में होते हैं। इस प्रकार मिडिल का विचार है कि किसी एक क्षेत्र में निरंतर आर्थिक वृद्धि अन्य स्थानों और क्षेत्रों की लागत पर होती है।

व्यापार और साधन गतिशीलता के प्रसार प्रभाव (the Spread effects of Trade and Factor Mobility)

आर्थिक विस्तार के केन्द्रों में आर्थिक वृद्धि की प्रवर्तक शक्ति, गति अन्य क्षेत्रों की अर्थ व्यवस्थाओं को धनात्मक रूप से भी प्रभावित करती है। ऐसा उनके कच्चे माल और श्रमशक्ति की बढ़ती हुई मांग के कारण हो सकता है। एक विकास मान केन्द्र के चारों ओर का समस्त क्षेत्र इसके कृषि उत्पादकों के वढ़ते हुए बाह्य प्रवाहों से लाभान्वित होता है और तकनीकी प्रगति के लिए उत्प्रेरित होता है। विस्तार के केन्द्रों में बढ़ते हुए उद्योगों के लिए कच्चा माल उत्पादक स्थानों पर भी प्रसार-प्रभाव कार्य करता है।

बैकवाश बनाम स्प्रेड इफेक्ट्स (Back Wash versus Spread effects)

मिर्डल का मत है कि दोनो प्रभाव संतुलन की दशा में हों ऐसा संभव नहीं होता है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि,

(अ) क्षेत्रीय विषमतायें धनी क्षेत्रों की अपेक्षा निर्धन क्षेत्रों में अधिक गहन होती है।

(ब) क्षेत्रीय विषमतायें निर्धन क्षेत्रों में बढ़ रही हैं और संपन्न देशों में घट रही है।

बैकवाश और स्प्रेड इफेक्ट्स की सापेक्षिक शक्ति एक देश के विकास के स्तर के साथ बदलती रहती है और यह स्पष्ट होता है कि स्प्रेड इफेक्ट्स अधिक विकसित देशों में अधिक सशक्त होते हैं। इसका श्रेय शिक्षा के, उच्च स्तर तथा परिवहन और संचार के उन्नत साधनों को है जिनके साथ विकास होता है और जो स्प्रेड इफेक्ट्स के संचलन में आने वाली बाधाओं को घटाते हैं। निर्धन देशों में बाजारी शक्तियों का स्वतंत्र संचलन क्षेत्रीय विषमताओं को उत्पन्न करने और जो मौजूद हैं उन्हे और अधिक चौड़ा बनाने में अधिक शक्तिशाली ढंग से कार्य करता है अत: अर्द्धविकसित देशों में सरकारों को बैकवाश इफेक्ट्स को निर्बल करने और स्प्रेड इफेक्टस को सशक्त बनाने की समानता पर आधारित नीतियों को अपनाना चाहिए। जितनी प्रभावकारी ढंग से एक राष्ट्र राज्य एक कल्याण कारी राज्य बनेगा उतनी ही शक्तिशाली अंधी बाजारी शक्तियों की प्रतिरोधक उत्कंठा उत्पन्न होगी और आर्थिक विकास की गति तेज होगी।

11.3 हर्षमेन का ध्रुवीकरण और नीचे रिसाव प्रभाव सिद्धान्त (Hirsch main Theory of Polarisation and Trickle down effects)

हर्षमेन ने भी पूंजीवादी प्रक्रिया के क्षेत्रों में आर्थिक संवृद्धि के प्रभाव का विश्लेषण किया है। उन्होंने अपने सिद्धान्त में ध्रुवीकृत और असंतुलित संवृद्धि की कल्पना सृष्ठि को नियोजित किया है। और इस बात की जाँच की है कि एक क्षेत्र या देश ने दूसरे क्षेत्र या देश में आर्थिक संवृद्धि कैसे संचरित की जा सकती है। उनका तर्क है कि आर्थिक प्रगति सर्वत्र एक साथ नहीं प्रकट होती है। यदि अर्थव्यवस्था को उच्च स्तर पर उठाना है तो इसे अपने अन्दर एक या कई आर्थिक संवृद्धि केन्द्रों को विकसित करना चाहिए। एक बार ये केन्द्र प्रकट हुए और शक्तिशाली शक्तियाँ संचलन में आ जाती हैं और प्रारंभिक केन्द्रों के चारों ओर और संवृद्धि को केन्द्रित करती जाती हैं। इस प्रकार से भौगोलिक दृष्टि से संवृद्धि अनिवार्य रूप से असंतुलित होती है। एक बिन्दु पर प्रगति अन्य बिन्दुओं पर विकास के लिए दबाव, तनाव और अनिवार्यतायें उत्पन्न कर देती है। अत: हर्षमेन के अनुसार विकास की प्रक्रिया को "असंतुलन की श्रृंखलाओं के रूप में अच्छी प्रकार समझा जा सकता है जिसमें किसी विशेष उद्योग में विनियोग लाभों का सृजन करता है। और अन्य उद्योगो में निवेश को प्रेरित करता है। जो अपनी बारी मे पुन: निवेशों को प्रेरित करते हैं और अर्थव्यवस्था के अन्य भागों में लाभों को बढ़ाते हैं।

हर्षमैन एक काल्पनिक मॉडल की सहायता से विकसित से अविकसित राष्ट्रों में आर्थिक विकास के संप्रेषण की विवेचना करते हैं जिसमें वे विकासशील क्षेत्र को "उत्तर" और पिछड़े क्षेत्र को "दक्षिण" कहते हैं। इसके पश्चात उन्होंने उत्तर में संवृद्धि की प्रक्रिया के "दक्षिण" पर पड़ने वाले अनुकूल और प्रतिकूल प्रभावों को रेखांकित किया है।

11.3.1 रिसन और ध्रुवीकरण प्रभाव (Trickle down and Polarisation effects)

उत्तर' की प्रगति के 'दक्षिण' पर अनुकूल प्रभाव, उत्तरी प्रगति के दक्षिण में रिसाव में निहित है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है उत्तर द्वारा दक्षिण में खरीददारी ओर निवेशों का बढ़ना। यदि दोनों क्षेत्रों की अर्थव्यवस्थायें अनुपूरक हैं तो ऐसा होना सुनिश्चित है। उत्तर दक्षिण की कुछ छिपी हुई बेकारी का भी उपयोग करता है। इससे दक्षिण में श्रम की सीमान्त उत्पादकता और प्रति व्यक्ति उपभोग स्तर में वृद्धि होती है।

ध्रुवीकरण के कुछ प्रतिकूल प्रभाव भी संचलित होंगे। उत्तर की प्रतिस्पर्धा दक्षिण के निमार्णी उद्योग की आय सृजन को कम कर सकती है। ओर वहाँ से निर्यातों को घटा सकती है। एक गंभीर ध्रुवीकरण प्रभाव आन्तरिक देशांतर निवास होगा जो कि उत्तर की प्रगति का अनुगमन करेगा। उत्तर की प्रगति दक्षिण को अपने आधार-भूत तकनीशियनों और प्रबन्धकों के साथ-साथ अधिक जोखिम उठाने वाले युवा उपक्रमियों से विहीन कर देगी। दक्षता और उपक्रम के साथ-साथ वह थोड़ी सी पूँजी जिसे दक्षिाण सृजित करने में समर्थ है, वह भी उत्तर में लाभ की ऊँची दरों के कारण बाहय गमन करेगी।

11.3.2 रिसाव और ध्रुवीकरण प्रभावों की रोक (Checks to Trickle down and Polarisation)

हर्षमैन की मान्यता है कि उत्तर में आर्थिक संवृद्धि का संचयी केन्द्रीयकरण प्रारंभ में क्षेत्रीय असमानतायें उत्पन्न करेगा किन्तु दीर्घ काल में भौगोलिक दृष्टि से नीचे की ओर। रिसाव के प्रभाव ऐसी विषमताओं को कम करने के लिए पर्याप्त होंगे। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि केन्द्रीयकरण की अमितव्ययताये विकासमान क्षेत्रों में होगी। प्रदूषण, भीड़-भाड़, श्रम और भूमि की ऊँची लागते आदि पिछड़े क्षेत्रों की ओर उद्योगों के छितराव को प्रोत्साहित करेगी।

रिसाव प्रभावों की रूकावटें भी उत्पन्न होंगी और इनके परिणाम स्वरूप दक्षिण अधिक खराब स्थिति में भी पहुँच सकता है। यदि उत्तर स्वयं अपने आप में विशाल और उत्पादक कृषि क्षेत्र रखता है या अपनी कच्चे उत्पादों की अपनी माँगों को विदेश से खरीद कर पूरी करने में समर्थ होता है तो दक्षिण उत्तर की संवृद्धि के लाभकारी संपर्क से अलग पड़ जायेगा। तथापि यह ध्रुवीकरण के प्रभावों से प्रभावित होता रहेगा।

जब कभी भुगतान संतुलन या आपूर्ति कठिनाईयां यह स्पष्ट करेगी कि देश इसके दक्षिणी संसाधनों को पूर्ण रूप सें उपयोग करने में असफल रहकर स्वयं का नुकसान कर रहा है तो दक्षिण का दीर्घकालीन पिछड़ापन इसके नीति निर्धारकों को इसकी विकास संभावनाओं की नजदीक से समीक्षा करने को बाध्य करेगा।

हर्षमैन का यह आशावादी निष्कर्ष कि अंत में दक्षिण विकास करेगा राज्य हस्तक्षेप की नीति पर आधारित है, जो कि उसकी असन्तुलित संवृद्धि सिद्धान्त का अनन्य भाग है। राज्य को एक तुल्य कारक संयंत्र के रूप में माना गया है।

हर्षमैन का दृष्टिकोण था कि विकासशील देशों द्वारा सामना की जा रही मूल आर्थिक समस्यायें संसाधनों के अभाव के कारण नहीं थी अपितु इस कारण उत्पन्न हुई थी कि उत्पादन के साधन और योग्यतायें या तो अनजानी थी या छितरी हुई थी ओर उनका दुरूपयोग किया

गया था। अत: विकास की सर्वोत्तम व्यूह रचना यह है कि जिसमें दबाव और तनाव प्रारंभ हो जो संसाधनों को गतिशील बनाये और विकास निर्णयों को प्रेरित करे। दुषैला चक्र जो कम विकसित क्षेत्रों को घेरे हुए रहता है केवल निवेश के अनुपूरक प्रभावों से ही तोड़ा जा सकता है ये प्रभाव ऊर्जाओं के विकास प्रक्रिया की तरफ प्रवाहित करते हैं आर्मेन मध्यवर्ती और आधारभूत उद्योगों को प्राथमिकता देते है जो बड़े "पीछे की ओर और आगे की ओर" श्रृंखला गत प्रभावों को उत्प्रेरित करते हैं। उन्होनें यह भी सुझाव दिया कि ऐसे उद्योग छोटे कस्बो के स्थान पर बड़े नगरों में स्थापित किये जाने चाहिए क्योंकि यदि वहाँ नये उद्योग को लगाना है तो अतिरिक्त पूँजी निर्माण आवश्यक होगा।

11.4 मिर्डल और हर्षमेन के सिद्धान्तों में समानतायें और असमानतायें

मिर्डल और हर्षमेन के सिद्धान्त पूर्ण रूप से भिन्न अनुसंधान प्रश्नों की ओर निर्देशित थे। उनमें अंतर उनके मूल्यों और राजनैतिक परंपराओं के कारण थे। यूरोपीय मानसिकता से सिद्धान्त स्थिर करने हुए मिर्डल ने आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया को एक ऐसे कोण से विवेचन किया है जहाँ कुशलता के प्रश्न, समान वितरण के प्रश्नों से सार्थक रूप से अलग नहीं किये जा सकते थे। दूसरी और हर्षमैन अमेरिकन अनुभवों के साथ थे जहाँ अवसादोत्तर सापेक्षिक तेजी की अवधि ने प्रकट किया था कि दीर्घकाल में नीचे की ओर रिसाव के प्रभाव क्षेत्रीय अन्तरो को समानीकृत करना प्रारंभ कर देंगे।

इन विचारधारात्मक अन्तरों ने मिर्डल को पूँजीवादी असमानताओं को जन्म देने की सामान्य प्रवृत्ति को बदलने के लिए सशक्त राज्य हस्तक्षेप की वकालत करने को प्रेरित किया। दूसरी ओर हर्षमैन का विश्वास था कि पूँजीवादी विकास की स्वत: प्रक्रिया सुनिश्चित कर देगी कि संवृद्धि प्रेरक उद्योग, अपने लाभों को बढ़ाने के लिए पिछड़े क्षेत्रों की ओर लग जायेंगे। अत: राज्य की भूमिका प्रेरणा देने की है जो कि स्थानीय संतुलन को पुन: प्राप्त कर लेगी।

विकास योजना कारों ने हर्षमेन को सहयोग देते हुए तर्क दिया है कि सिद्धान्त को सत्य सिद्ध होने के लिए तीन शर्ते आवश्यक हैं-

(i) उच्च श्रम गतिशीलता

(ii) कृषि का जीवनयापन से संयुक्त स्कंध कृषि में रूपान्तरण और

(iii) पूँजी के राष्ट्र में गतिशीलता के कृत्रिम अवरोधकों का अभाव

अत: विकास नीति का मुख्य उद्देश्य उपरोक्त तीन दशाओं की उपस्थिति को सुनिश्चित करना है।

11.5 सिद्धान्तों की समालोचना

मिर्डल और हर्षमेन के दोनों सिद्धान्त अर्द्ध विकसित देशों में आर्थिक विकास की प्रक्रिया को रेखांकित करने के व्यापक प्रयास हैं। इन दोनों सिद्धान्तों ने अपनी व्याख्या में पूर्ण होने का उद्देश्य रखा है और विकासात्मक नियोजन के लगभग सभी पहलुओं पर विचार करने का प्रयास किया है। तथापि इन सिद्धान्तों द्वारा प्रस्तुत सैद्धान्तिक निष्कर्षों की कुछ सीमायें हैं जो निम्न हैं-

1. हर्षमैन के सिद्धान्त ने असंतुलित संवृद्धि की दिशा और समय को बहुत स्पष्ट रूप से निर्देशित नहीं किया है संवृद्धि को वेग प्रदान करने वाले असंतुलन के अनुकूलतम अंश भी स्पष्ट नहीं है।
2. मिर्डल ने विकास को उत्तेजना देने वाले तत्वों का कम मूल्यांकन किया है जबकि वे उन घटकों के बारे में बहुत स्पष्ट और दृढ़ है जो संवृद्धि के अवरोधक हैं। हर्षमैन ने ठीक इसका विपरीत किया है। अत: दोनों सिद्धान्त उन विभिन्न परिदृष्यों को जैसे वे वास्तविकता में विद्यमान होते हैं, रेखांकित नहीं करते हैं।
3. इन दोनों सिद्धान्तों में व्यापार और साधन गतिशीलता को निर्धन और धनी राष्ट्रों के मध्य अन्तर्क्रिया के प्रमुख अभिकर्ता या उत्प्रेरणा के प्रमुख संयंत्र समझा गया है। इस गतिशीलता के अस्तित्व को मान लिया गया है जब कि वास्तविकता में विकासशील देशों में संसाधनों को एक परिक्षेत्र से दूसरे में या एक क्षेत्र से दूसरे में देशी स्थानान्तरित करना कठिन और कभी-कभी असंभव होता है।
4. ये दोनों ही सिद्धान्त प्रयोग सिद्ध अनुसंधानों पर आधारित नहीं है।

इन कमजोरियों के बावजूद इन सिद्धान्तों ने एक देश के स्वयं के अन्दर या विभिन्न देशों में विकसित और कम विकसित क्षेत्रों के संरचनात्मक संबन्धों को बहुत स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है। उन्होंने तृतीय विश्व के अर्द्ध विकास की प्रक्रिया के व्यवस्थित अनुसंधान को भी प्रारंभ किया है और प्रथम बार गैर आर्थिक परीमितियों को वह महत्व प्रदान किया है जिसके वे विकास प्रक्रिया की किसी बहस-विवेचन के पात्र हैं।

11.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्षेत्रीय संवृद्धि के मिर्डल हर्षमैन के सिद्धान्त की मुख्य प्रतिस्थापनाओं की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. स्प्रेड तथा बैकवाश इफैक्ट पर एक टिप्पणी लिखिए।

इकाई 12
केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.2 केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त
12.3 माँग एवं आपूर्ति
12.3.1 वस्तुएं तथा सेवायें
12.3.2 मांग व आपूर्ति रेखा में दूरी (भौगोलिक) कारक
12.4 वस्तुओं तथा सेवाओं की सीमा, प्रभाव सीमा एवं क्रम वरीयता
12.5 बाजार की ज्यामिति (आकार स्वरूप)
12.6 श्रेणी शृंखला के कार्य
12.7 केन्द्रीय स्थलों का भौगोलिक मॉडल
12.8 केंद्रीय स्थल तथा योजना
12.9 सारांश
12.10 शब्दावली
12.11 निबन्धात्मक प्रश्न
12.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

आप जानना चाहेंगे कि केन्द्रीय स्थल सिद्धांत क्या है एवम् अर्थशास्त्र में इसका क्या महत्व है? इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे कि -

(i) केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त क्या है?
(ii) क्षेत्रीय आयोजन में इसका महत्व क्या है?
(iii) व्यापारिक संस्थानों के प्रबन्धकों के कुशल निर्णय लेने में इस सिद्धान्त का उपयोग।
(iv) मांग एवं आपूर्ति के नियम में इसका महत्व
(v) श्रेणी शृंखला के कार्य
(vi) बाजार की ज्यामिति के प्रभाव के बारे में जान पायेंगे।
(vii) केन्द्रीय स्थलों के भौगोलिक मॉडल के बारे में जान पायेंगे।

12.1 प्रस्तावना

इस विश्लेषण के दो प्रमुख उद्देश्य हैं (1) केन्द्रीय स्थल के सिद्धान्त एवं (2) क्षेत्रीय आयोजन में इन सिद्धान्तों के उपयोग की मीमांसा करना। प्रमुख तौर पर यह मानना जरूरी है कि किस प्रकार मानव आर्थिक व्यवहार एवं आर्थिक इकाईयाँ जैसे- कारखाने, व्यावसायिक संस्थान समयानुसार भौगोलिक परिस्थितियों से सामंजस्य रखती है। इस विश्लेषण के लिए हमें आर्थिक संस्थानों तथा भौगोलिक तत्वों से संबंधित कुछ धारणायें ध्यान में रखनी जरूरी है।

दूसरे शब्दों में भूगोल (Geographical space) तथा आर्थिक इकाईयों का अपना एक स्वभाव होता है जो एक दूसरे को प्रभावित करनें में सक्षम होती हैं। यहाँ यह समझना आवश्यक है कि धरातल, स्थान, दूरी तथा अन्य संबोधित तत्व भौगोलिक सिद्धान्त के भाग हैं जिन्हें मोटे तौर पर पर्याय रूप में देखा जा सकता है। केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त (Central Place Theory:CPT) के ज्ञान के आधार पर संसाधनों, आयोजन तथा व्यापारिक संस्थानों के प्रबन्धक अच्छे निर्णय ले सकते हैं, जैसे - नई इकाईयों के लिए प्रारम्भिक स्थानों का तथा पुरानी इकाईयों के लिए अगर आवश्यक है तो, दूसरे नये स्थान, का चुनाव करना ताकि इन्हें चलाने में लाभ ज्यादा तथा खर्चा कम करना पड़े। आर्थिक निर्णयों में मानवीय बसावट (गॉव, कस्बे तथा शहर) का आकार तथा उनकी जनसंख्या, सुविधायें, सेवायें आदि आर्थिक इकाईयों को गति प्रदान करने वाले प्रमुख तत्व हैं।

12.2 केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त

एक साधारण व्यक्ति की दृष्टि में जनसंख्या, शहर एवं कस्बे, सुविधायें (Infrastructure) तथा आर्थिक गतिविधियों का भूमि पर वितरण का स्वरूप अनियमित हो सकता है पर ऐसा नहीं है। इन तत्वों के वितरण में एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था का निर्धारण नियमानुसार होता है। केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त इन नियमों की खोज है जो मानवीय स्थलों के वितरण की व्यवस्था को बाँधे हुए है। केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त का प्रतिपादन जर्मन विद्वान वॉल्टर क्रिस्टालर ने अपनी किताब "Central Places in southern Germany" में किया है जिसका प्रमुख सारांश है कि "क्या ऐसे कोई नियम है जो कस्बों की संख्या, वितरण एवं आकार को निर्धारित करते हैं। लेखक का प्रमुख उद्देश्य निगमानात्मक (डिडक्टिव) सिद्धान्त की स्थापना करना था ताकि शहरों कस्बों के क्रमानुसार वितरण के स्वरूप को स्पष्ट किया जा सके। इस विवरणात्मक क्रम का स्वरूप जनसंख्या, भौगोलिक स्थिति एवं समय के आपसी सम्बन्धों के आधार पर विकसित होता है। क्षेत्रीय विज्ञान इन आपसी सम्बन्धों (Interactions) का अध्ययन करता है तथा आर्थिक इकाईयों के व्यवहार के पूर्वानुमानों (Predictions) को बतलाता है। उदाहरण के तौर पर, कई प्रकार की आर्थिक तथा भौगोलिक परिस्थितियों में एक औद्योगिक या व्यवसायिक इकाई अपने स्थान (Location), नये स्थान, विस्तार तथा सीमित आकार के बारे में जो सम्भावित निर्णय ले सकती है उसका पूर्वानुमान क्षेत्रीय विज्ञान करता है। इसलिए क्षेत्रीय विज्ञान धरातल पर मनुष्य के आर्थिक व्यवहार को समझने की कला है।

क्षेत्रीय विज्ञान मानवीय एंव आर्थिक संसाधनों को सुचारु रूप से बेहतरीन तरीके से उपयोग करने की एक विधि है। फर्म एक आर्थिक इकाई होती है जो धरातल की विशेषताओं (दूरी, किराया, स्थिति आदि) से प्रभावित होती है। यह भी कहा जा सकता है कि इन धरातलीय विशेषताओं को (विशेषकर जमीन की कीमत) आर्थिक इकाईयाँ भी प्रभावित करती है (जहाँ दुकानें या सड़कें होंगी वहाँ भूमि के भाव ऊँचे हो जाते हैं) एक आदर्शात्मक भू योजना तभी संभव है जब भौगोलिक तत्व तथा आर्थिक तत्वों में योजना के दौरान सन्तुलन रखा जाता है ताकि आर्थिक विकास पर्यावरण के लिए हानिकारक नहीं हो।

ऐसी आर्थिक स्थिति कभी प्राप्त नहीं की जा सकती। यद्यपि सरकारी नीतियाँ तथा विकासात्मक ऐसे नुस्खे (Prescription) हैं जो अर्थव्यवस्था तथा पर्यावरण में साम्यता बनाये रखने वाले प्रयास के संकेत हैं। परम्परागत अर्थशास्त्र में भौगौलिक तत्वो को मानकर चला जाता है, अर्थात् उनके प्रभाव व स्वभाव का विश्लेषण निर्णयों में सम्मिलित नहीं किया जाता है। केवल भौगोलिक दूरी को मान्यता दी जाता है क्योंकि यह यातायात किराये को प्रभावित करती है। यातायात किराया वस्तुओं की कीमत को प्रभावित करता है यह सभी को ज्ञात है। इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। पर जब हम यातायात खर्च तथा दूरी के बीच सैद्धान्तिक संबंधों का विश्लेषण करते हैं तभी इनके बीच को प्रक्रिया के बारे में हमारी ज्ञान वृद्धि होती है। दूरी लागत को निर्धारित करती है। पर इस संबंध में कई परोक्ष अन्तर पाये जाते हैं। विशेषकर लागत की मात्रा में ज्ञातव्य है कि रेल या सड़क निर्माण लागत पहाड़ी तथा पठारी क्षेत्रों में मैदानी भागों की तुलना में ज्यादा होती है। कारण स्पष्ट है कि पहाड़ी क्षेत्रों में यातायात मँहगा होता है क्योंकि ऊँचाई चढ़ने में वाहनों में ईधन भी ज्यादा खर्च होता है, मशीनों एवं पुर्जो की टूट फूट भी ज्यादा होती है, तथा ड्राइवर पर भी मानसिक जोर पड़ता है। वे सभी बातें लागत पर प्रभाव डालती हैं।

ज्यों-ज्यों हम योजना की समीकरण में एक-एक करके भौगोलिक तत्वों का समावेश करते जाते हैं, विश्लेषण जटिल पर वास्तुपरिस्थितिक (realistic) होता जाता है अर्थात् हमारे सामने सही स्थिति स्पष्ट होती जाती है। आर्थिक-मानव (homo-economics) के बारे में हमारे ज्ञान को विकसित करने में केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त तथा इसके अन्य रूप महत्वपूर्ण मॉडल या विधि है। केंद्रीय स्थल सिद्धान्त कुछ मुख्य धारणाओं पर आधारित है जिसमें प्रमुख धारणा समतल धरातल, समान जनसंख्या घनत्व, दूरी, मानवीय व्यवहार, प्रकृति तथा संस्कृति आदि है। यद्यपि इन धारणाओं को कई विद्वानों ने अपने गहन तर्कों के आधार पर नहीं स्वीकारा है फिर भी केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त एक आकर्षक मॉडल माना जाता है।

12.3 मांग व आपूर्ति (Demand and Supply : D&S):

12.3.1 वस्तुएँ तथा सेवायें (Goods and Services)

अर्थशास्त्र के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों में मॉग व आपूर्ति का संबंध सर्वोच्च है। वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग एक लिस्ट होती है जिन्हें ग्राहक बाजार में समय-समय पर भावों के उतार-चढ़ाव के सन्दर्भ में खरीदने को इच्छुक रहता है। आपूर्ति भी एक लिस्ट है, जिन्हें, बाजार में समयानुसार भावों के उतार-चढ़ाव के सन्दर्भ में, दुकानदार या औद्योगिक इकाईयाँ बेचने को तैयार रहती हैं। माँग व आपूर्ति की लिस्टों को एक ग्राफ रेखा या तालिका के रूप में दर्शाया जा सकता है। (रेखाचित्र 12.1) इसमें वस्तुओं की मात्रा (Q) सम धरातल रेखा (X) से तथा रेखा (Y) कीमत

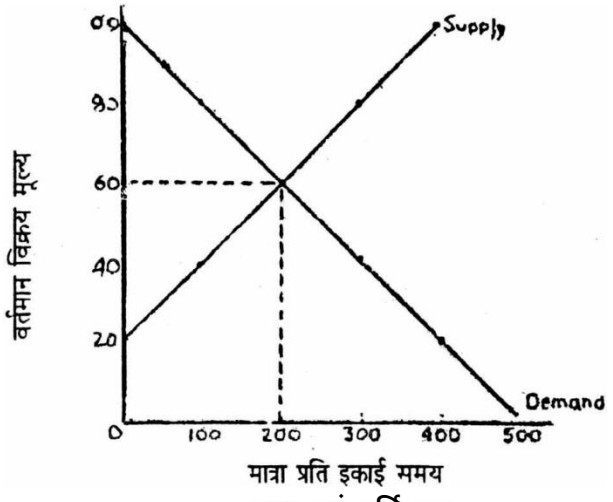

मात्रा एवं पूर्ति वक्र

रेखाचित्र 12.1

को बतलाती है। जहाँ D तथा S रेखाऐं आपस में मिलती हैं P+60, Q+200 वह बिन्दु P&Q के बीच सन्तुलन का संकेतक है। यह सन्तुलन स्थिरात्मक है परन्तु, जैसा कि हम अपने अनुभव से जानते हैं, माँग व आपूर्ति लम्बे समय तक एक ही स्थिति में स्थायी नहीं रहती है। इसके कई कारण हैं। ग्राहकों की पसन्द बदलती रहती है। उत्पादन कर्ता हमेशा नई वस्तुओं तथा उनको बेचने के तरीके की तलाश में रहते हैं। कभी वे एक वस्तु का उत्पादन बन्द कर दूसरी वस्तु का उत्पादन शुरू कर देते हैं। वस्त्र उत्पादन की जगह उद्योगपति साबुन या तेल उत्पादन या भवन निर्माण क्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसी स्थिति में माँग व आपूर्ति में परिवर्तन संभव है। अत. माँग व आपूर्ति हमेशा एक गतिशील स्थिति में रहती है। (रेखाचित्र 12. 2)

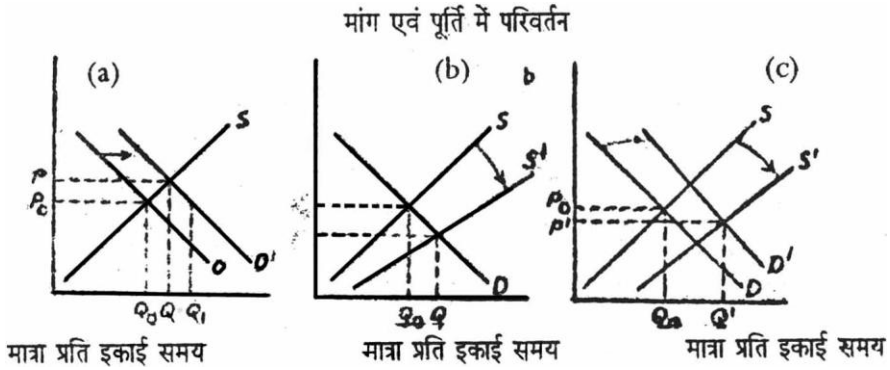

रेखाचित्र 12.2

12.3.2 मांग व आपूर्ति रेखा में दूरी (भौगोलिक) कारक

भूगोल शास्त्री माँग व आपूर्ति मॉडल में सन्तुलन की महत्ता को समझते हैं पर उनकी दुविधा यह है कि इस मॉडल में माँग व आपूर्ति के बाजार क्षेत्र को विश्लेषण में समावेश नहीं कर पाते हैं। दूसरे शब्दों में क्षेत्रीय फेक्टर माँग व आपूर्ति रेखा मॉडल में फिट नहीं होता है। हम सब जानते हैं कि माँग व आपूर्ति बाजार की देन है। बाजार एक भौगोलिक इकाई है -- लम्बाई, दो दुकानें/बाजारों के बीच की दूरी, आदि। अर्थात बाजार एक भौतिक इकाई है। इस प्रकार

भौगोलिक विश्लेषण में मॉग व आपूर्ति मॉडल (चित्र 1) राष्ट्रीय या क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में एक साधारण (नारमेटिव) स्थिति को बताता है, पूर्ण स्थिति को नहीं। संतुलित कीमत FOB दुकान या कारखाने की कीमत को बताता है। जो ग्राहक दुकान से दूर रहते हैं उनको सन्तुलित मूल्य से ज्यादा कीमत देनी पड़ती है। कारण स्पष्ट है कि कारखाने तथा दुकान की दूरी यातायात खर्च का भार स्वयं ग्राहक को वहन करना पड़ना है।

कुल क्रय मूल्य = लागत खर्च + दुकान किराया + वहन किराया

माना कि माँग व आपूर्ति राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसे बिन्दु पर मिलते हैं जो कि राष्ट्रीय कीमत को निर्धारित दर्शाता है। रु 10/- बाल काटने के तथा रू 100/- आठ किलो आटे के। प्रचलित कीमत से अभिप्राय है कि अगर ग्राहक नाई की दुकान व चक्की के पास उसी भवन के ऊपर की मंजिल पर या पास के मकान में रहता है तो उसे केवल न्यूनतम कीमत 100 रुपये प्रति आठ किलो आटा के लिए तथा रु 10/- बाल कटवाने के लिए देने पड़ते हैं तो उसकी कीमत में यातायात का किराया जोड़ने से बाल कटवाने की कीमत बढ़ जाती है। (रेखाचित्र 12.3)

माना कि चित्र 12.3a राष्ट्रीय बाजार में गर्म समोसे की कीमत दर्शाता है तथा 12.3b एक कॉलेज में छात्रों की समोसे की माँग को आधार मानकर समुचित मूल्य समूह को प्रदर्शित करती है जिसे प्रति व्यक्ति प्रतिसमय वहन करता है। समोसे की कीमत में। यातायात का किराया भी जोड़ना जरूरी है चाहे ग्राहक स्वयं दुकान पर जाकर उसे खरीदे या दुकानदार उसके घर समोसा

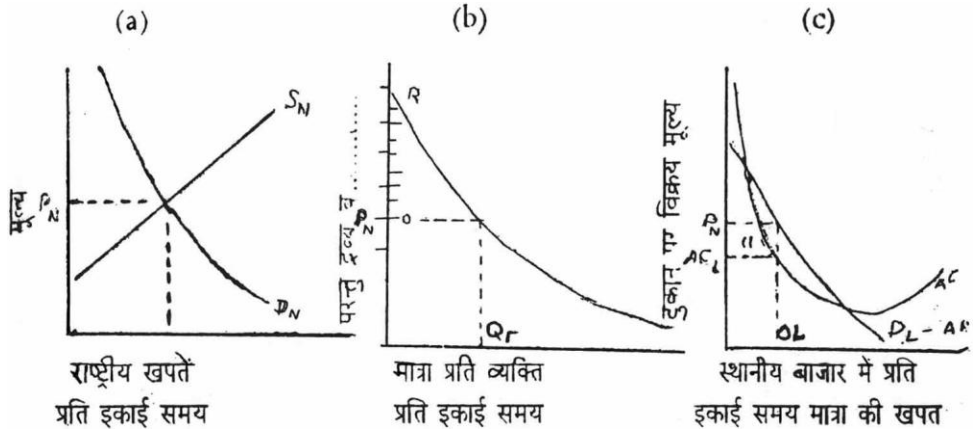

रेखाचित्र 12.3

भिजवाये। दूरी पर रहने वाले ग्राहक को समोसे को लाने या मंगवाने में यातायात वहन का खर्चा पड़ता है। इन धारणाओं के आधार पर, जो छात्र समोसे की दुकान के ऊपर की मंजिल में रहता है, वह निर्धारित मूल्य में समोसा खरीद सकता है उसे दुकान स्थित क्रय मूल्य कहते है। इसके विपरीत, जो लोग दुकान से दूर रहते हैं उन्हें यातायात व्यय के कारण ऊँची कीमत देनी पड़ती है। फलत उनके समोसे की खपत गिर भी जायेगी। स्पष्ट है कि अगर समोसे की दुकान बहुत दूर होगी तो हमारी खपत कई कारणों से कम हो जाती है। जिसमें यातायात का खर्चा एक महत्वपूर्ण कारण है। अगर यह दूरी इतनी हो कि यातायात का खर्चा बहुत हो जाये-दुकान स्वयं

पर खरीद की कीमत से ज्यादा-तो अन्ततः प्रति व्यक्ति उस समय समोसे की माँग शून्य हो जाती है। इस प्रकार दूरी समोसे की दुकान के बाजार के विस्तार या प्रभाव क्षेत्र को दर्शाती है । इसे त्रिज्या या रेडियस भी कहते हैं।

किसी भी लाभ कमाने वाली इकाई (फर्म या दुकान) के लिए आवश्यक है कि कम से कम एक निश्चित मात्रा में उसका सामान एक दी हुई अवधि (महीना या साल) में अवश्य बिके। उस सामान की मात्रा, जिसका बिकना जरूरी है, को प्रभाव सीमा या थ्रेसहोल्ड कहते हैं। अगर एक दी हुई दूरी सीमा R के भीतर जहाँ समोसे की एक निर्धारित कीमत है, तो क्या वहाँ समोसे की दुकान सफलतापूर्वक चल सकती है? यह इस तथ्य पर निर्भर करता है कि उस दूरी R या सीमावृत्त के भीतर कितने ग्राहक रहते हैं। सड़क/गली के किनारे या घनी आबादी क्षेत्र में दुकानों की कीमत से आप परिचित ही होंगे। चित्र 12.3 b में प्रति व्यक्ति प्रति समय विभिन्न दूरियों पर समोसे की खपत को दर्शाया गया है। स्पष्ट स्थिति जानने के लिए शून्य (वृत्त का मध्य केन्द्र) तथा R दूरी (वृत्त सीमा) के बीच जनसंख्या घनत्व का जानना जरूरी है। चित्र 12.3b में दुकान से एक किलोमीटर की दूरी के बीच 3.14 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल आता है। अगर इस वृत्ताकार क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व 4000 व्यक्ति प्रति किलोमीटर है तो कुल जनसंख्या 12560 व्यक्ति होगी। अगर R-15 कि० मी० तब वृताकार क्षेत्रफल 706.5 व० कि० मी० होगा। प्रति वर्ग किलोमीटर में संभावित मांग का अनुमान लगाया जा सकता है। अगर हम माने कि प्रतिवर्ग किलोमीटर क्षेत्र में Pn दुकान पर देय क्रय मूल्य है। पर Q-1 माँग की मात्रा है तो क्या समोसे की दुकान स्थापित की जा सकती है? चित्र 12.3 C विभिन्न स्थानीय उत्पादक के लिए औसत आय दर्शाती है। प्रश्न अगर औसत कीमत प्रति व्यक्ति है तशा स्थानीय बाजार में समोसे की मांग Q-1 मात्रा है तो औसत लागत मूल्य कितना होगा? औसत खर्च हर हालत में दुकान पर क्रय मूल्य के बराबर या कम होना चाहिए जिसके आधार पर दुकान लाभ कमा सकती है।

$$P \times Q = \text{Revenue} = \text{Market}$$

अर्थात् विक्रय मूल्य गुणा मात्रा-कुल आय जिसे बाजार भी कहा जा सकता है। प्रभाव सीमा एक न्यूनतम बाजार या आय सीमा है जो, बाजार में प्रचलित लागत के आधार पर किसी वस्तु या सेवा को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। समोसे के उदाहरण में अगर व्यक्ति कीमत है तो उत्पादित मात्रा Q-1 होगी। जिसकी बाजार में माँग है। यह एक दुकान की स्थिति का विश्लेषण है जो एक आदर्श स्थिति में है। क्योंकि औसत लागत Ac-1 के बराबर है। अगर दो दुकानें, एक दूसरे के आमने-सामने हों तो क्या स्थिति होगी? अगर वे एक ही प्रकार की हैं तो उनको लाभ आधा-आधा विभाजित करना पड़ेगा तथा उनके उत्पादन का औसत खर्च प्रति इकाई अधिक होगा। दोनों दुकानों में प्रतिस्पर्धा के कारण उनका लाभांश विभाजित होकर कम हो जायेगा। (रेखाचित्र 12.4)

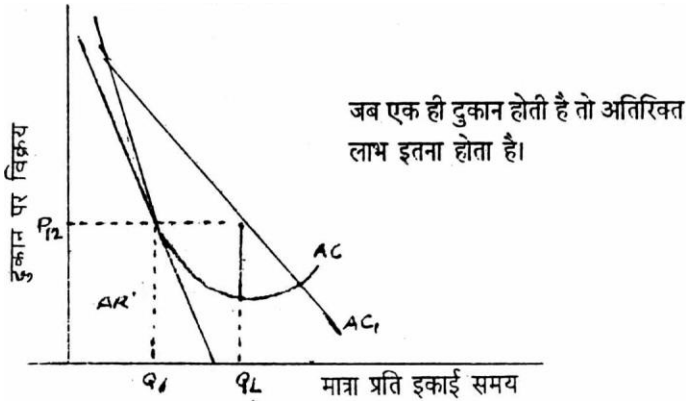

रेखाचित्र 12.4

एक या दो दुकानों के वर्तमान सीमा प्रभाव दो दुकानों की स्थिति में प्रत्येक दुकान का मांग वक्र विक्रय मूल्य P12, तथा QL मात्रा प्रति इकाई समय में बेची जाती है।

12.4 वस्तुओं व सेवाओं की सीमा, प्रभाव सीमा एवं क्रम वरीयता

किसी आर्थिक इकाई को पनपने के लिए सेवा एवं वस्तुओं का जो न्यूनतम विक्रय (P&Q) होना जरूरी है उसे थ्रेसहोल्ड या बाजार कहते हैं। प्राय: प्रभाव सीमा का प्रभाव ग्राहकों की संख्या होती है। जो कि दुकान के लिए वस्तुओं की प्रभावी माँग को दर्शाती है। दूसरे शब्दों में अगर दुकान पर जितने ज्यादा ग्राहक आयेंगे उतना ही दुकानदार का लाभांश उसे होगा। पर हर दुकान के लिए न्यूनतम ग्राहक या वस्तुओं की माँग अर्थात् विक्रय स्तर होना आवश्यक है। उसे ही प्रभाव सीमा कहते हैं। दूध, ब्रेड, सब्जी, माचिस, नमक, तेल, पान आदि के लिए ग्राहक शहर के एक छोर से दूसरे छोर तक नहीं जाते हैं। हम अपना अनाज अपने मोहल्ले ही की चक्की पर पिसवाते हैं। सिगरेट या पान के लिए हम एक दो किलोमीटर से ज्यादा नहीं जाते हैं। अत: दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं/सेवाओं का सीमान्त बहुत छोटा होता है।

प्रत्येक वस्तु व सेवा का सीमान्त भिन्न होता है। अगर यात्रा करना आसान है (कम व्यय व समय) तो ग्राहक दूर तक जा सकते हैं। महंगी चीजें जो जीवन में एक दो बार ही खरीदी जाती हैं जैसे टी. वी., स्कूटर, कार, आभूषण आदि के लिए अपेक्षाकृत लम्बी यातायात अपेक्षित है। परन्तु ब्रेड तथा दूध के लिए न्यूनतम दूरी अपेक्षित है। फलत: टी. वी. व कारों की सीमान्त बड़ी तथा ब्रेड व दूध की छोटी होती है। इसी प्रकार हृदय शल्य चिकित्सा तया पेट के दर्द या जुकाम के लिए क्रमश: बड़ी व न्यूनतम सीमान्त होती है।

12.5 बाजार की ज्यामिति (आकार स्वरुप)

हम न्यूनतम दूरी पर सभी सुविधायें व वस्तुयें चाहते हैं। यह साधारण बात है। अगर विक्रेता बाजार के केन्द्र में है और न्यूनतम दूरी का सिद्धान्त ग्राहक पर लागू होता है तो हर बाजार का ज्यामिति स्वरूप वृत्ताकार होगा। दूसरे शब्दों में अगर जनसंख्या तथा उसकी क्रय शक्ति समान रूप से वितरित है, तो विक्रय एवं सेवा केन्द्र साधारणतया सम दूरी पर होंगे। इस प्रक्रिया में एक ही श्रेणी वाले शहर तथा कस्बे एक दूसरे (शहर-शहर से, कस्बे-कस्बे से) समान दूरी पर होगें। जब क्रय वस्तु तथा सेवाओं की सीमा को आधार पर बाजार क्षेत्र निर्धारण करते

हैं तो उसकी आकृति वार्ताकार होती है अर्थात् सीमांकन आधार पर बाजार का प्रभाव क्षेत्र गोलाकार होगा। अगर सम धरातल, समान आबादी, क्रय विक्रय आदि को तटस्थ मानें तो वृत्ताकार बाजार एक आदर्श या आप्टीमल बाजार कहा जायेगा। क्योंकि जब बाजार ग्राहकों से समान दूरी पर होता है तो सभी को चीजें या, सेवायें समान कीमत (क्रम मूल्य+यातायात भाड़ा :P&T) पर मिलेगी।

बाजार के प्रभाव क्षेत्र में रहने वाले सभी ग्राहकों की आवश्यकता पूर्ति करना जरूरी है। हर ग्राहक किसी न किसी दुकान पर जरूर खरीददारी करता है। अगर सभी वृत्ताकार बाजारों की सीमाओं को आसपास रखकर जोड़ा जाय तो स्पष्ट है कि सारे गोलाकार क्षेत्र आपस में फिट नहीं होते। तीन वृत्तों में जगह खाली (असेवित) रहती है (रेखाचित्र 12.5)

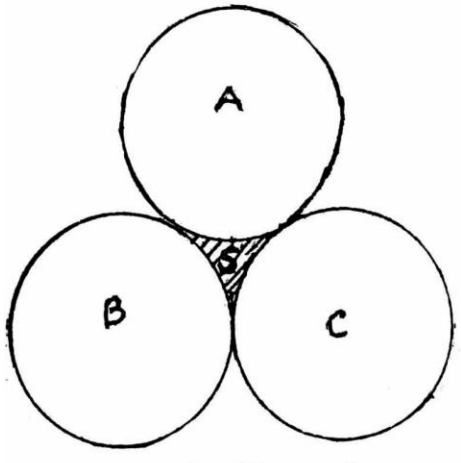

छाया क्षेत्र अरोधित बाजार है

रेखाचित्र 12.5 (a)

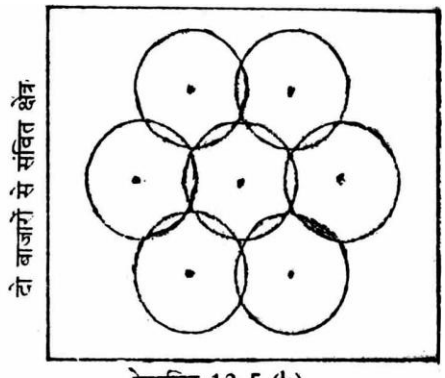

रेखाचित्र 12.5 (b)

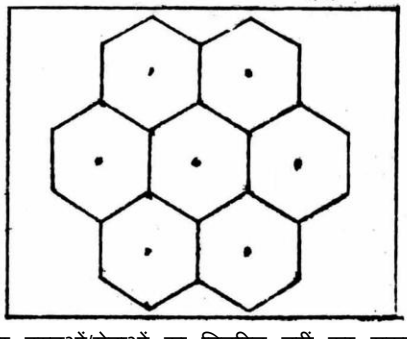

रेखाचित्र 12.5 (c)

एक केन्द्रीय स्थल अपने ग्राहण क्षेत्र (Tributary) से बाहर वस्तुओं/सेवाओं का वितरित नहीं कर सकता और इसके व्यापार की सीमांत दूरी (रेडियस) केन्द्रीय स्थान के क्रियाकलापों (Functions) की सीमा (Range) पर निर्भर करती है (बीच में) प्रतिस्पर्धा वाले केन्द्रीय स्थलों की वाह्य आपसी सीमाएं जब षट्कोणीय होती हैं तभी वे ज्यादा कुशल होती है। (नीचे)

ग्राहक किसी भी वृत्ताकार बाजार से नहीं जुड़े हुए हैं। ऐसा असम्भव है। अगर वृत्तों को इस प्रकार जोड़ा जाये कि उनके बीच में खाली स्थान न रहे तो आप देखेंगे कि ये वृत्त आपस में एक दूसरे को काट रहे हैं। अर्थात् दो या तीन वृत्ताकार बाजार क्षेत्र आपस में स्पर्धा कर रहे हैं। इसे ओवरलेपिंग कहते हैं। व्यापार में ऐसा भी सही नहीं है। क्योंकि इस प्रकार की स्पर्धा में विक्रय मूल्य तथा लागत मूल्य बढ़ेगा। फलत: लाभांश की मात्रा न्यूनतम या इतनी कम होगी कि दुकानदार को घाटा ही होगा। चूंकि बाजार एक धरातलीय प्रक्रिया व संरचना है, इनका क्षेत्र एक आदर्श वृत्ताकार ज्यामिति नहीं हो सकती। तो प्रश्न उठता है कि इनका धरातलीय ज्यामितिक स्वरूप फिर क्या होना चाहिए।

क्रिस्टालर के अनुसार बाजार क्षेत्र का स्वरूप षट्कोणीय होगा। षट्कोण एक ऐसा स्वरूप है जो वृत्ताकार बाजार के स्वरूप से मेल भी खाता है साथ ही, उसमें न तो बाजार के खाली क्षेत्र की ओर न ही स्पर्धा वाले क्षेत्र की समस्या रहती है। आगस्त लास की तरह क्रिस्टालर का मानना है कि किसी भी वास्तविक तथा कुशल बाजार प्रणाली के लिए षट्कोणीय स्वरूप ही एक उपलब्ध उत्तर है। षट्कोण क्षेत्र एक ऐसा बहुकोणीय इकाई है जो कि स्वरूप में वृत्ताकार क्षेत्र से बहुत मिलता जुलता है। इस आकृति के बावजूद भी षट्कोण की विशेषता है कि इसके व दूसरे षट्कोण के बीच का क्षेत्र न तो ओवरलेप (दो या अधिक बाजारों से सेवित) होता है और न ही अनसर्वड (कोई ग्राहक असेवित) रहता है। दो वृत्ताकार के विपरीत षट्कोणों की वाह्य सीमायें आपस में एक ही होती हैं। अगर एक सीमान्त में सीमा प्रभाव की दशायें अनुकूल होती है तो षट्कोणीय व्यापार क्षेत्र के केन्द्र में एक व्यापारी लाभ अर्जित कर सकता है। इस बिन्दु तक हमने व्यापार क्षेत्र की आकृति का विश्लेषण किया है।

अब दूसरा प्रश्न उठता है कि प्रत्येक सेवा तथा वस्तु के लिए षट्कोणीय व्यापार का कितना क्षेत्रफल होना चाहिए? यह निश्चित करने हेतु दो बातें जरूरी हैं : (अ) प्रत्येक विक्रेता का व्यापार क्षेत्र इतना बड़ा होना चाहिए कि उसका धंधा चलता रहे। (ब) व्यापार क्षेत्र उतना बड़ा (फैला हुआ) भी नही होना चाहिए कि सीमान्त क्षेत्र में रहने, वाले ग्राहकों को वस्तुओं/सेवाओं की इतनी बड़ी कीमत (हद से ज्यादा यातायात व्यय के कारण) देनी पड़े कि उनकी खरीदने की शक्ति ही समाप्त हो जाये। अगर ग्राहक की क्रय शक्ति सीमा के भीतर सीमा प्रभाव का स्तर बना रहे तो विक्रेता व्यापार क्षेत्र में एक दूसरे के आसपास अधिकतम घनत्व में स्थापित हो जायेंगे। (अगर सभी विक्रेता लाभ कमाने में सफल होते है तो वे एक दूसरे के नजदीक ही अपनी दुकानें स्थापित करते हैं। यही बाजार बनने व उसके विस्तार की प्रक्रिया है।) अगर सीमा प्रभाव की दशा नहीं बनती है तो ग्राहकों को वस्तु/सेवा उपलब्ध नहीं हो सकती (छोटे गॉवों में मेडीकल स्टोर, उदाहरण तौर पर नहीं चल सकते।)

वस्तुएं/सेवायें महत्व में दो प्रकार की होती हैं उच्च श्रेणी (विश्वविद्यालय) तथा निम्न श्रेणी (प्राइमरी स्कूल या परचून की दुकान) वाली। उच्चतम श्रेणी वाली वस्तुओं/सेवाओं के लिए चलने के लिए पूरा देश सीमान्त प्रभाव में होता है। जैसे एक हृदय विशेषज्ञ या बहुकीमती प्राचीन पॉडुलिपियों के विक्रेता के लिए पूरा देश व्यापार क्षेत्र होता है। तभी उनका धन्धा चल सकता है। जयपुर का राजमन्दिर सिनेमा हॉल स्थानीय ग्राहकों पर निर्भर रहता है लेकिन, जैसा कि आप सम्भवत: जानते हैं कि जयपुर में आने वाला देशी या विदेशी पर्यटक, मेहमान, व्यापारी आदि जब पहली बार आते हैं तो विशिष्ट भीतरी साजसज्जा की खूबसूरती के कारण राजमन्दिर को अवश्य देखने जाते हैं। विशेषत: इसलिए कुछ सेवाओं का व्यापार क्षेत्र स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भी होता है। अमेरिका की स्वतंत्रता की मूर्ति तथा जयपुर का हवामहल सभी स्तर के लोगों के लिए आकर्षण के बिन्दु हैं।

जैसे ग्राहक बाजार जाते हैं, उसी प्रकार आजकल, विक्रेता भी ग्राहकों के पास जाने लगे हैं। आपने देखा ही होगा कि साबुन, घरेलू सफाई की मशीनें, आदि के लिए विक्रेताओं के ऐजेन्ट घर-घर जाने लगे हैं। पुराने समय में मनिहार तथा नमक विक्रेता गाँव-गाँव जाकर चूड़ियाँ व

नमक बेचते थे। गली-गली में ठेले वाले सब्जी बेचने जाते हैं। रेखाचित्र 12.6(a), (b), (c) दूसरे शब्दों में बाजार ग्राहकों के पास स्वयं जाने लगा है। फलत: वस्तुओं का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है।

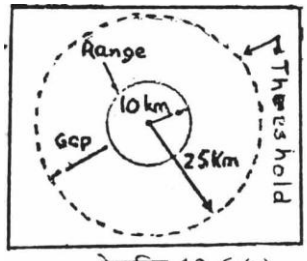

रेखाचित्र 12.6 (a)

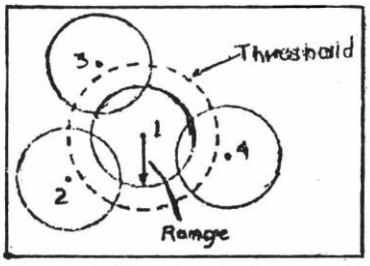

रेखाचित्र 12.6 (b)

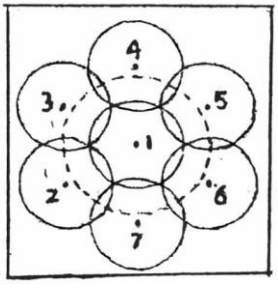

रेखाचित्र 12.6 (c)

जब किसी केन्द्रीय कार्य (Function) के प्रभाव क्षेत्र (Threshold) का शर्त कार्य की सीमा (Range) के भीतर पूर्ण नहीं होती है तो वह कार्य उस केन्द्रीय स्थल पर सम्भव नहीं है। कई बार विक्रेता संभव क्षेत्र व सीमा के अन्दर को कम करने हेतु स्वयं ग्रामीण हाट बाजारों में जाकर अपनी वस्तुएं बेचता है ताकि उसका व्यापार क्षेत्र बड़ा हो जाये। वस्तुओं के प्रभाव व सीमा क्षेत्रों में जितना अन्तर होगा उतना ही कम समय व्यापारों को मात्रा में खर्च करना पड़ेगा।

एक वस्तु की व्यापारिक सीमा छोटी होती है परन्तु जब दुकानदार के पास विभिन्न प्रकार की वस्तुएं होती हैं तो उसकी व्यापार सीमा भी बड़ी होती है। ग्राहक भी एक वस्तु (जैसे ब्रेड या माचिस) के लिए ज्यादा दूर नहीं जाता परन्तु जब ग्राहक को कई वस्तुओं (जैसे शादी में) खरीदनी होती है तो उसे दूर स्थित मण्डी में खरीदना सस्ता पड़ता है। अत: कई वस्तुओं के समूह (सेट) की सीमा बड़ी होती है।

अब हम सीमा प्रभाव क्षेत्र व सीमा सिद्धान्तों के अन्तर्गत वार्षिक/मासिक मेलों का विश्लेषण करें। विकासशील देशों, जैसे भारत में, अगर विक्रेता एक ही पर दुकान स्थापित कर व्यापार करता तो 10 किलोमीटर की दूरी तक के ग्राहक उसके पास आ सकते हैं क्योंकि वहाँ यातायात की असुविधा होती है। परन्तु अपने व्यापार को लाभपूर्वक तरीके से चलाने हेतु उसे सम्भवत: 25 किलोमीटर की दूरी तक के सभी ग्राहक चाहिए।

12.6 निम्न श्रेणी श्रृंखला के कार्य : (The market Principles & Lower order of Functions)

माना कि दो उच्च श्रेणी श्रृंखला के केन्द्रीय स्थल A-B रेखा पर काफी दूरी पर हैं तथा वहाँ कई प्रकार की वस्तुएँ तथा सेवायें उपलब्ध हैं। (रेखाचित्र 12.7) प्रत्येक केंद्र से ज्यों-ज्यों

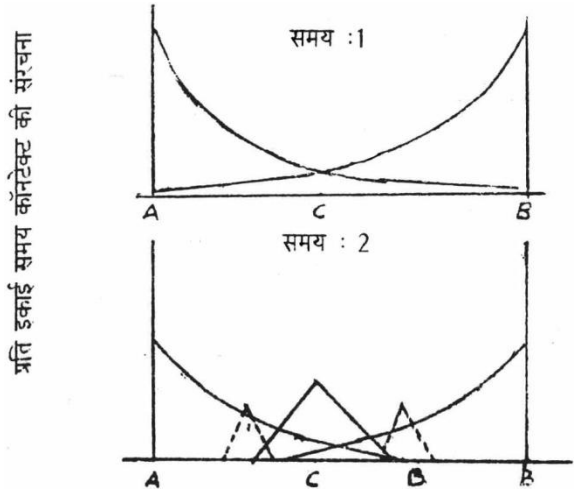

रेखाचित्र 12.7

ग्रामीण क्षेत्रों में दो स्थानों के मध्य की दूरियां

बाजार के सिद्धान्त के आधार पर आस-पास के दो वर्तमान केन्द्रीय स्थलों (A,B) के मध्य में छोटे केन्द्रीय स्थलों जैसे (A, B के बीच 'C' तथा C, B के बीच D) का उद्भव? वर्तमान केन्द्रीय स्थलों (A, B) वे मध्य में छोटे केन्द्रीय स्थलों (जैसे A, B के बीच 'C' तथा C, B के बीच D) का उद्भव।

हम दूर जाते हैं, ग्राहकों की संख्या कम होती जाती है। अर्थात् केन्द्रीय स्थल से ज्यों-ज्यों हम दूर जाते हैं, ग्राहकों की संख्या व लाभ की मात्रा कम तथा यातायात यातायात वहन अधिक होता जाता है। इसे हम डिस्टेन्स डिके फंकशन (Distance Decay Function) भी कहते हैं। जो ग्राहक केन्द्रीय स्थल से जितने दूर रहते हैं उनको उतना ही अधिक यातायात वहन करना पड़ता है तथा उसी अनुपात में उनकी क्रय शक्ति क्षीण हो जाती है। दूसरे शब्दों में, जितना विक्रय मूल्य ज्यादा होता है उतनी ही ग्राहकों की क्रय शक्ति क्षीण हो जाती है। फलत: बिन्दु C पर A व B केन्द्रीय स्थलों का व्यापारिक प्रभाव न्यूनतम है। अगर बिन्दु C पर A व B केन्द्रों पर मिलने वाली वस्तुएं व सेवायें भी स्थापित कर दी जाये तो C, A व B से प्रतिस्पर्धा कर सकता है। अगर इन सेवाओं/वस्तुओं का सीमा प्रभाव C बिन्दु पर उत्पन्न हो जाता है तो वहाँ नया केंद्र पनप सकता है। बिन्दु C का प्रभाव क्षेत्र A व B की ओर कुछ दूरी तक फैल जायेगा। अगर ऐसा नहीं होता है तो C बिन्दु का व्यापार क्षेत्र पनप नहीं सकता। अगर A, B, C के लिए न्यूनतम व्यापार (ग्राहकों की संख्या तथा लाभ) नहीं है तो C या A व B में से एक केन्द्र असफल हो जायेगा।

कोई उत्पादकर्ता किसी वस्तु का विक्रय तभी कर सकता है जब किसी वस्तु/सेवा से प्राप्त औसत राजस्व औसत लागत से ज्यादा होती है। अगर कई दुकानें या संगठन बिन्दु C पर स्थापित होकर फलने-फूलने लगते हैं तो वहाँ एक नया केन्द्रीय स्थल उभर सकता है। इसी प्रक्रिया के माध्यम से बड़े शहरों के बीच में छोटे शहर, कस्बे एवं गाँव उद्भवित हुए। इस प्रकार कृषि प्रधान क्षेत्रों में मानवीय आवासों की स्थापना व विकास हुआ। बिन्दु C जैसे केन्द्रीय स्थलों पर उद्भव तभी सम्भव हुआ जब वे माध्यमिक श्रृंखला स्तर की सेवाऐं व कार्य जैसे मिडिल स्कूल, मेडिकल स्टोर, प्राईमरी स्वस्थ्य केन्द्र, आदि-प्रदान करने लगे। वहाँ के निवासियों को

फलत: A व B केन्द्रों पर उक्त सेवार्थ नहीं जाना पड़ा। इसी प्रकार की प्रक्रिया की पुनरावृत्ति मध्यम स्तर के कस्बों व बड़े गाँवों के बीच हुई जब वस्तुओं व सेवाओं का सीमाप्रभाव क्षेत्र व सीमायें होती गई। उदाहरणार्थ प्राईमरी स्कूल, परचून की दुकान, स्थानीय वैद्य, तेली, नाई, खाती आदि की जीविका के लिए स्थानीय आबादी में सीमाप्रभाव क्षेत्र व सीमायें लाभप्रद रही। जब तक किसी वस्तु/सेवा के लिए व्यापार क्षेत्र की सीमा इतनी छोटी व सीमित हो जाये कि उनकी प्रभाव क्षेत्र की शर्त पूरी न हो सके। संक्षेप में लाभांश की जगह घाटे की प्रक्रिया वस्तु विक्रय या बाजार के पनपने में बाधा बन जाती है।

उच्च श्रेणी श्रृंखला के व्यापार क्षेत्रों के सीमान्त पर निम्न श्रेणी श्रृंखला की वस्तुओं व सेवाओं को स्थापित होने को ही केन्द्रीय स्थल व भौगोलिक स्पर्धा व व्यापारिक सिद्धान्त कहा जाता है।

मानवीय बसावट स्थलों के वितरण में एक स्पष्ट क्रम श्रृंखला का सिद्धान्त लक्षित होता है जिसके अनुसार प्रत्येक केन्द्रीय स्थल अपने प्रभाव क्षेत्र (हिन्टरलेण्ड) की सेवायें प्रदान करने के अतिरिक्त उससे निम्न स्तर के दो केन्द्रीय स्थलों के प्रभाव क्षेत्रों को भी सेवाऐं प्रदान करता है। फलत: इसे "तीन का नियम" या K = 3 भी कहते हैं। यहाँ K से अभिप्राय: तटस्थता है। केन्द्रीय स्थलों के प्रभाव क्षेत्रों की षट्कोणीय ज्योमिति को ध्यान में रखते हुए क्रिस्टालर ने दो और प्रभाव करने वाले कारक सिद्धान्तों यातायात व प्रशासन को सम्मिलित किया है। (रेखाचित्र 12.8 (a), (b), (c)

बाजार सिद्धांत

रेखाचित्र 12.8 (a)

प्रशासकीय सिद्धांत

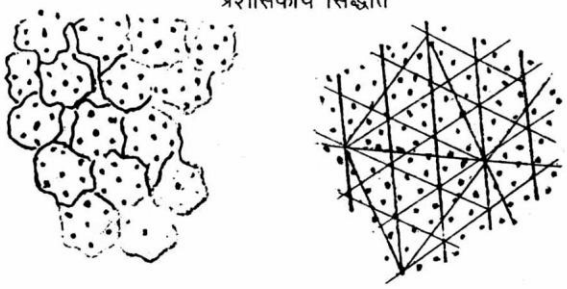

रेखाचित्र 12.8 (b)

यातायात का सिद्धांत

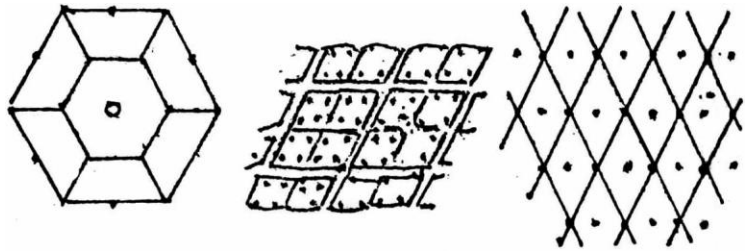

रेखाचित्र 12.8(c)

तीन छोटे बसावट सिस्टम के अनुरूप क्रिस्टल के तीन प्रमुख प्रभावित करने वाले सिद्धांत

इस प्रकार क्रिस्टालर ने तीन प्रमुख सिद्धान्तों को बताया है जिन से स्थलीय आकृति प्रभावित होती है :

(1) मार्केटिंग सिद्धान्त : K = 3 वे समस्त क्षेत्र जिन्हें न्यूनतम स्तर केन्द्रीय स्थल सेवा प्रदान करते हैं।

(2) यातायात सिद्धान्त : K = 4 इसके अनुसार अधिकांश केन्द्रीय स्थलों का वितरण उस प्रमुख यातायात मार्ग पर होता है जो दो उच्चस्तर के केन्द्रीय स्थलों को जोड़ता है।

(3) प्रशासकीय सिद्धान्त : K = 7 चूंकि इसके अनुसार कुशल प्रशासन जरूरी होता है, दो प्रभाव क्षेत्रों की सीमायें स्पष्टरूप से अंकित होनी चाहिए। अर्थात्, कोई एक क्षेत्र दो प्रशासकीय व्यवस्थाओं से शासित नहीं हो सकते।

केन्द्रीय स्थल श्रृंखला मे चार प्रकार के केन्द्र होते हैं : ढाणी, गॉव, कस्बा तथा शहर। प्रत्येक स्तर के केन्द्र पर उनके अनुरूप विशिष्ट वस्तुऐं व सेवाऐं उपलब्ध होती हैं जिसके बारे में पूर्व में बताया गया है। जब हम दो शहरों के बीच के कृषि क्षेत्रों (उदाहरणार्थ, अलवर व भरतपुर के बीच, या कोटा व जयपुर के बीच) से गुजरते हैं तो हमें जिस प्रकार के केंद्रीय स्थल मिलते हैं उ उनका साधारण क्रम स्पष्ट होता है। (रेखाचित्र 12.9) दो शहरों के बीच कुछ कस्बे एवं

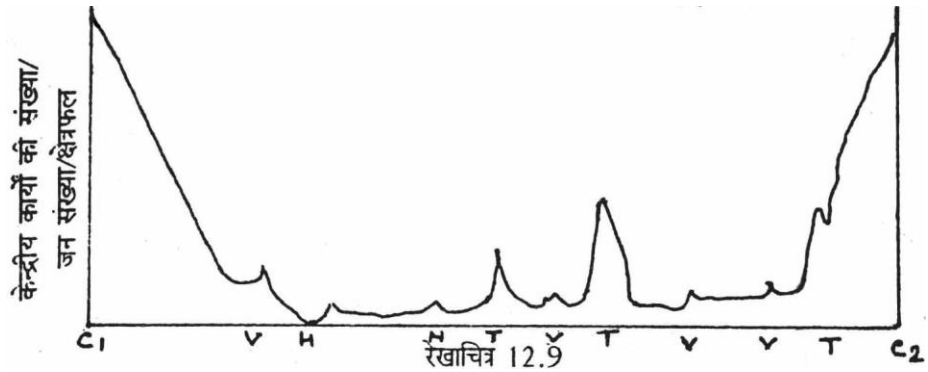

रेखाचित्र 12.9

C: City, V: Village, H: Hamlet, T: Town

दो शहरों (C_1 C_2) के मध्य कस्बों (T) गावों (V) तथा ढाणियों (H) का उद्भव। केन्द्रीय स्थलों की आबादी, क्षेत्रफल तथा कार्यों के अनुपात में उनके बीच की दूरी।

उनके मध्य में बड़ी संख्या में गाँवों के बीच ढाणियाँ मिलती हैं। निर्धारण में सिद्धान्तों तथा दो केन्द्रों की प्रतिस्पर्धा का प्रमुख योग रहता है। उदाहरणार्थ दो गाँवों के मध्य में इतनी क्रय शक्ति नहीं होती कि जिसके आधार पर एक अन्य गाँव स्तर की बसावट पनप सके।

केन्द्रीय स्थल श्रृंखला क्रम में प्रत्येक केन्द्र में पाये जाने वाले यातायात के स्तर, यातायात रूकने के संकेतों की संख्या आदि उन केन्द्रों के स्तर के अनुपात में होते हैं। बड़े शहरों में इसका घनत्व, गाँवों व कस्बों की अपेक्षा, ज्यादा सघन होता है। पचास वर्ष पूर्व यातायात सुविधाओं की कमी के कारण ग्रामीण लोग थोड़ी दूरी तक ही यात्रा कर पाते थे। उनकी आवश्यकताऐं भी अपेक्षाकृत सीमित होती थी। वर्तमान में ग्रामीण ग्राहक पशुचालित वाहनों पर निर्भर नहीं है। बसे, जीपें, कारें, तथा रेलवे की सुविधाऐं उन्हें उपलब्ध हैं। गाँवों में रेडियो, टेलीविजन, कारों, सिगरेट, बिस्कुट, काँफी, पान आदि आधुनिक चीजों का प्रचलन भी बढ़ गया है। अब ग्रामीण उन्नत सुविधाओं की वजह से आसानी से उच्च स्तरीय केन्द्रीय स्थलों (जयपुर, दिल्ली, बम्बई आदि) तक आवागमन कर सकते हैं। फलत: उनकी दैनिक आवश्यकताओं की सूची भी जटिल व लम्बी हो गयी है। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि केन्द्रीय स्थल के सिद्धान्त का प्रभाव बड़े शहरों के केन्द्रों (Cores) से लेकर गाँवों की सीमा तक मिलता है क्योंकि, दो से अधिक व्यापारी, आर्थिक इकाईयां, बाजार, शहर या गाँव आर्थिक प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त (लाभांश) पर ही आधारित होते हैं।

12.7 केन्द्रीय स्थलों का भौगोलिक मॉडल

केन्द्रीय स्थलों के भौगोलिक वितरण में एक नियमबद्धता पाई जाती है। क्रिस्टलर के अनुसार अगर (1) समतल धरातल (आइसोटोपिक सरफेस) हो (2) जिसमें आवागमन एक ही गति में चारों तरफ पाया जाता हो, (3) समान जनसंख्या तथा क्रय शक्ति का वितरण हो एवं (4) सपाट भू-धरातल जहाँ पर प्राकृतिक स्त्रोतों का वितरण भी समान हो तो इन दशाओं में, मानवीय बसावट-शहर, कस्बे व गाँव-अपने अपने, स्तर पर एक समान दूरी पर उभरेंगे तथा अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों को वस्तुयें/सेवायें प्रदान करेंगें। एक विहंगम दृष्टि से देखा जाये तो ऐसी बसावट मजदूरी पर होगी। उनकी स्थितियों का भौगोलिक स्वरूप त्रिकोणात्मक जालीनुमा (ट्राइंगुलर लेटिश) होगा। प्रत्येक केन्द्रीय स्थल का षट्कोणात्मक (वृत्ताकार नहीं) बाजार होगा। स्थानीय ग्रामीण आबादी की वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग पूर्ति हेतु गॉवों का एक समूह उभर जाता है। वस्तु तथा सेवा का ग्रामीण स्वरूप इतना न्यूनतम होता है कि ढाणी स्तर की बसावट उनकी पूर्ति नहीं कर सकते। अर्थात् व्यापारिक लाभांश इतना कम होता है कि गाँव के स्तर से नीचे के स्थानों में व्यापारिक संस्था विकसित नहीं हो सकती। आप जानते है कि 3-4 घरों वाली ढाणी में कोई दुकान या स्कूल नहीं चल सकता। केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है -

1. सेवाओं तथा कार्यों का विस्तृत स्वरूप (काम्फ्रीहेन्सिव)

उच्च श्रेणी श्रृंखला वाले केन्द्रीय स्थल (जैसे जयपुर) न केवल अपने स्तर की सेवायें तथा वस्तुऐं-विश्वविद्यालय, हृदय शल्य चिकित्सा, मारूति कार का शोरूम प्रदान करने के

अतिरिक्त अपने से नीचे की श्रेणी के स्तर के केन्द्रीय स्थलों के स्तर पर मिलने वाली सुविधायें भी प्रदान करता है।

2. स्वरूप, क्रियाकलाप एवं सेवाओं में विभिन्नता (डाइवर्सिटी)

उच्च श्रेणी स्तर के केन्द्रीय स्थलों में पायी जाने वाली आबादी, सेवायें, गतिविधियाँ एवं आन्तरिक बसावट का स्वरूप न केवल विशाल पर भिन्न एवं जटिल भी होता है। ऐसा छोटे कस्बों व गाँवों में नहीं होता है। जयपुर की आबादी करीब 20 लाख, इसका क्षेत्रफल 200 वर्ग कि०मी०, तथा यहाँ कई आलीशान अद्वितीय सिनेमाघर, मेडिकल कालेज, विश्वविद्यालय, संस्कृतकालेज, जवाहर कला केन्द्र है जो राजस्थान में अद्वितीय है। संक्षेप में अधिक आबादी के साथ-साथ आबादी में व उसकी गतिविधियों में विविधता आन्तरिक अन्तर पाये जाते हैं। न्यूयार्क शहर की सांस्कृतिक व संस्थागत विभिन्नता व क्षेत्रफल विशालकाय होने का कारण उसकी जनसंख्या है।

3. केन्द्रीय स्थलों के वितरण में नियमबद्धता

निम्न श्रेणी स्तर के केन्द्रीय स्थलों की अपेक्षा उच्च श्रेणी के केन्द्रीय स्थल समान दूरी पर एक दूसरे से बहुत दूर-दूर पाये जाते हैं। जयपुर, कोटा, अजमेर, बीकानेर, उदयपुर व जोधपुर के बीच की दूरी उनसे छोटे शहरों व कस्बों के मध्य की दूरी से ज्यादा होती है।

4. सुनियजित नीड्स्थ क्रम श्रृंखला (नेस्टेड मार्केटिंग आर्डर)

उच्च श्रेणी श्रृंखला वाले शहरों के बाजार न केवल स्वयं के प्रभाव क्षेत्र की वस्तु व सेवा संबंधित मॉगपूर्ति करते हैं परन्तु अपने से सभी नीचे स्तर की श्रेणी वाले केंद्रीय स्थलों की भी आवश्यकता पूर्ति करते हैं। (रेखाचित्र 12.10) तभी तो जयपुर जैसे बड़े शहर में पान व परचून की दुकान, प्राइमरी स्कूलों, दूध व ब्रेड की दुकानें भी पायी जाती हैं जो कि छोटे शहरों या कस्बों में पायी जाती हैं।

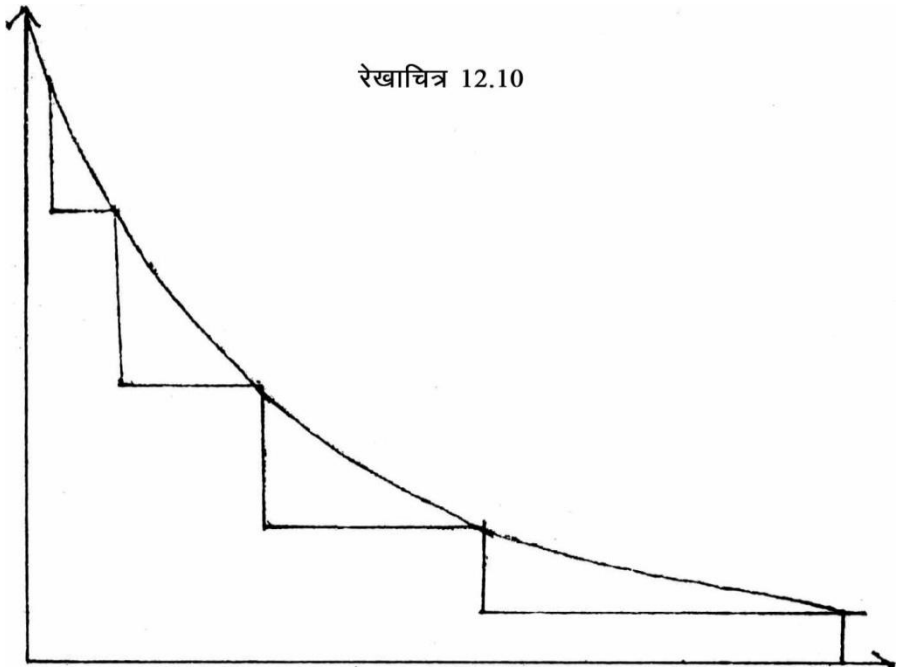

रेखाचित्र 12.10

क्रिस्टालर का केन्द्रीय स्थल मॉडल शहर व कस्बों आदि का एक समुचित क्रमबद्ध श्रेणी श्रृंखला (हारकर) को प्रतिपादित करता है, जिसमें प्रत्येक केन्द्रीय स्थल एक नियमित शहरी गतिविधियों की क्रम श्रृंखला का भाग होता है। प्रत्येक गतिविधियों का समूह निहित होता है। और प्रत्येक श्रेणी के केन्द्रीय स्थल की आबादी, क्षेत्रफल तथा सीमा निश्चित होती है अर्थात् हर वर्ग के शहर व कस्बों की आबादी, उनमें पाये जाने वाले व्यापारिक व औद्यौगिक एवं क्षेत्रफल में परिभाषित अनुरूपता पाई जाती है। संक्षेप में, बड़े शहर तथा छोटे कस्बों की आबादी यह निर्धारित करती है कि उनका क्षेत्रफल, व्यापारिक प्रभाव क्षेत्र तथा धन्धों का प्रकार व आकार कैसा होगा। केन्द्रीय स्थलों की कुछ जनसंख्या तो रोजगार के लिए स्थानीय संसाधनों व आर्थिक इकाईयों पर निर्भर करती है तथा कुछ आबादी वाह्य प्रभाव क्षेत्र पर निर्भर करती है। प्रत्येक केन्द्रीय स्थल कई प्रकार की वस्तुऐं व सेवायें प्रदान करते हैं। इसके दो कारण हैं एक, जब आर्थिक इकाईयाँ या फर्म एक दूसरे के नजदीक (जैसे मुख्य बाजार या औद्यौगिक क्षेत्रों में) स्थित होती हैं तो उनका उत्पादन खर्च कम हो जाता है क्योंकि कच्चे माल या संबंधित सेवा जैसे पैकेजिंग आदि के लिए ज्यादा दूर नहीं जाना पड़ता। फलत: यातायात वहन कम हो जाता है। दूसरे, जब आर्थिक इकाईयां एक जगह एकत्रित होती हैं तो ग्राहक को भी वस्तुएं/सेवायें सस्ती मिल जाती हैं क्योंकि वहाँ पर वह एक ही यात्रा में एक साथ कई चीजें क्रय कर सकता है। फलत: स्वयं का यातायात खर्च प्रति इकाई कम हो जायेगा। मानवीय गतिविधियों - उत्पादन तथा विक्रय - का वितरण एक वक्र के रूप मे न होकर सीढ़ीनुमा रूप में होती है। यही स्वरूप शहरों की आबादी, क्षेत्रफल तथा व्यापारिक संस्थानों के वितरण में भी पाया जाता है अर्थात, एक अवस्था से दूसरी अवस्था (स्टेज) के बीच में रेखा वक्र न होकर सीढ़ीनुमा रेखात्मक स्वरूप बनता है (रेखाचित्र 12.11)

स्तरानुसार मानवीय बसावटों की तुंगबद्ध श्रृंखला

National Capital/Highest Order City

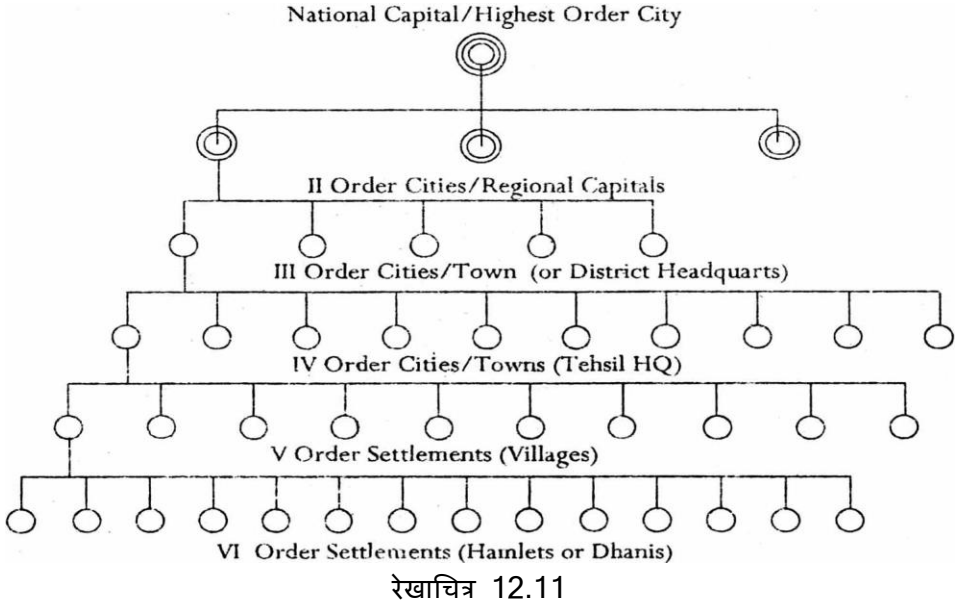

रेखाचित्र 12.11

आप जानते हैं कि दिल्ली-बम्बई-कलकत्ता-मद्रास-हैदराबाद (उच्च श्रेणी के शहर) जयपुर-लखनऊ-अहमदाबाद-भोपाल (दूसरी श्रेणी के शहर), बून्दी-चुरु-झुन्झुनू-टोंक (तीसरी श्रेणी के शहर/कस्बे) तथा गाँवों के बीच आबादी, क्षेत्रफल तथा व्यवसायों की प्रकृति व आकार में बहुत बड़ा अन्तर होता है। यह अन्तर सीढ़ीनुमा (निश्चित पद) क्रम या लेखा से समझा जा सकता है। चूंकि सामाजिक व्यवस्था भी सीढीनुमा व्यवस्था है। केन्द्रीय स्थल भी उसका अनुसरण करते हैं। अगर हम ध्यान दें तो स्पष्ट होगा कि परिवार, मोहल्ला, कस्बा तथा शहरों का आन्तरिक व बाह्य स्वरूप व संरचना उपरोक्त तरीके से श्रृंखलाबद्ध, सीढ़ीनुमा तथा क्रम से है। ज्यों-ज्यों हम उच्च श्रेणी श्रृंखला (हायर आर्डर) की ओर बढ़ते हैं तो उस क्रम के शहरों में पूर्णरुपेण सभी वस्तुएं व सेवाऐं उच्च व निम्न स्तर की उपलब्ध होती हैं तथा उन केन्द्रों का स्वरूप भी जटिल व विशाल होता है।

12.8 केन्द्रीय स्थल योजना

आबादी तथा प्राकृतिक स्त्रोत का भूतल पर वितरण विषम व असमान होता है। प्राकृतिक स्वरूप को मानवीय दृष्टि प्रत्यक्ष व पूर्णरूप से नहीं समझ सकती। हम कुछ स्वरूपों (पेटर्न) का अस्पष्ट अन्दाज मात्र लगा सकते हैं परन्तु उनमें निहित नियमों को स्पष्ट करना कठिन है। सुविधाओं व प्राकृतिक स्त्रोंतो की असमानता को कुछ सीमा तक दूर करने हेतु सरकारी नीतियों तथा विकास कार्य किये जाते हैं ताकि लोगों (विशेषकर गरीब ग्रामीण) तक पानी, स्वास्थ्य, रोजगार, अनाज, तेल, शिक्षा, यातायात, सड़क तथा आवासीय सुविधायें उपलब्ध करायी जा सके। इसके लिए राज्य सरकारों को प्राकृतिक व सामयिक व्यवस्था में परिवर्तन करना पड़ता है। इस योजना का प्रमुख व नीतिगत उद्देश्य यह है कि सुविधायें किस प्रकार वस्तुगत (ऑबजेक्टिव) तरीके से - बिना उनकी राजनीतिकरण के - लोगों तक पहुँचाई जा सकती है। अर्थात् भौतिक योजना में तकनीकी तथा सामाजिक बिन्दुओं का ध्यान रखा जाना चाहिए तभी वह निरपेक्ष व उद्देश्यात्मक हो सकती है। यह सिद्धान्त एक कलात्मक औजार है जिसके द्वारा उद्देश्यात्मक योजना तैयार की जाती है। क्षेत्रीय योजना में निर्देशात्मक सिद्धान्त यह है कि आर्थिक क्षमता की सीमा के अर्न्तगत, जनता की आधारभूत आवश्यकताओं जैसे जल, यातायात, स्वास्थ्य, शिक्षा, आदि की अधिकतम पूर्ति की जाय। जन कल्याणकारी राज्यों में इस प्रकार की योजना में शुद्ध बाजार प्रधान लाभों (मार्केट प्रोफिट) को कई बार नजरन्दाज किया जाता है। भारत जैसे देश में जहाँ जनजातियों, अनुसूचित जातियों, पिछड़ी जातियों, महिलाओं आदि जैसे कमजोर वर्गों तक इन सुविधाओं को पहुँचाने हेतु पूंजीवादी व्यवस्था या बाजार शक्तियों की अपेक्षा सामाजिक न्यायार्थ सामाजिक योजना (सोसियल प्लानिंग) को अपनाया जाता है ताकि संविधान के निर्देशों का पालन अधिक से अधिक किया जा सके। परन्तु यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि व्यक्तिगत व्यापार की दुनिया में धन एक मुख्य निर्धारक शक्ति है। अर्थव्यवस्था का दिनोंदिन विश्वीकरण होता जा रहा है। माल या सेवा की लागत को पूर्णतया नजर अन्दाज भी नहीं किया जा सकता। अर्थात् सुविधायें मुफ्त में या दान में नहीं दी जा सकती। वस्तुओं व सेवाओं को प्रदान करने में प्रमुख खर्चा यातायात है जो कि केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त में योजनार्थ एक प्रमुख निर्धारक शक्ति का काम करता है। सारांश में यातायात खर्च,

(भौगोलिक दूरी) आर्थिक इकाईयों, संसाधनों, सुविधाओं तथा वस्तुओं के उत्पादन (लागत) में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फलत: यह क्षेत्रीय योजना तथा केन्द्रीय स्थल सिद्धातों की रूपरेखा भी निर्धारित करता है।

12.9 सारांश

पूर्व में हमने केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त का विवरण प्रस्तुत किया है। यह सिद्धान्त यातायात, बाजार तथा प्रशासकीय नियमों के आधार पर, मानवीय बसावटों (शहरों, कस्बों तथा गाँवों) के भौगोलिक वितरण की व्याख्या करता है। इस सिद्धान्त के प्रमुख अंश निम्न हैं : वस्तुओं/सेवाओं की सीमा (रेंज), क्षमता स्तर (थ्रेसहोल्ड), क्षेणी स्तर (बॉर्डर या रेंक), मध्यवर्ति अवसर, आदि हैं। यह सिद्धान्त कुछ धारणाओं पर आधारित है जिसमें से प्रमुख धारणा धरातल तथा मानवीय क्रियाकलापों की समतलता (यूनीफोरमिटी) हैं। कई विद्वानों ने इन धारणाओं की विभिन्न संस्कृतियों/स्थानों (अमेरिका, यूरोप, भारत, अफ्रीका) में एक सी उपयोगिता को सही नहीं माना है। यह सिद्धान्त तथा उसके अंश प्रमुखतया यातायात के नियमों से प्रभावित होते हैं। अर्थात् शहरों, गाँवों, कस्बों का वितरण, लाभांश का स्वरूप, बाजारों की संरचना, वस्तुओं व सेवाओं की लागत व विक्रय मूल्य तथा ग्राहकों की क्रय शक्ति के पीछे यातायात पर होने वाली लागत, एक प्रमुख निर्धारक है। मानवीय बसावटों, जनसंख्या व सुविधाओं के वितरण में एक अन्तर्निहित नियमबद्धता तथा सामंजस्य पाया जाता है। जैसे वस्तुओं व सेवाओं का स्तर व आकार मानवीय बसावटों के स्तर व आकार से, प्रभावित होता है। मानवीय बसावटों में एक निश्चित श्रेणी श्रृंखला व स्तर पाया जाता है। जो कि वस्तुओं व सेवाओं में परिलक्षित होता है जिसके अनुसार उच्च स्तर के शहर/कस्बों में निम्न स्तर के शहर/कस्बों में मिलने वाली सभी वस्तुयें व सुविधायें पायी जाती हैं। इसके साथ-साथ उनमें अपने उच्च स्तर की कुछ विशेष सुविधायें पायी जाती हैं। उच्च स्तरीय बसावटें जटिल, विशाल व विभिन्न होती हैं। निम्न स्तर वाली बसावटें (गाँव व ढाणी) सरल तथा छोटी होती हैं। संक्षेप में केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त भौतिक योजना बनाने का एक महत्वपूर्ण साधन है जिसके माध्यम से जनसंख्या को सुविधायें प्रदान की हैं। सुविधाओं तथा व्यापारिक वस्तुओं की माँग व पूर्ति में यातायात वहन (जो कि दूरी का पर्याय है) एक प्रमुख निर्धारक कारक है। फलत: क्षेत्रीय योजना में भौगोलिक स्वरूप व दूरी प्रमुख निर्णायक होते हैं।

12.10 शब्दावली

सेवाओं एवं वस्तुओं की मांग व पूर्ति, क्रय विक्रय लागत, समस्थिति, दूरी, समय, केन्द्रीय स्थल, बाजार क्षेत्र (वृत्ताकार एवं षट्कोणाकार), हिण्टरलैण्ड (प्रभाव क्षेत्र), आर्थिक फर्म, मानवीय बसावट, क्षमता स्तर (थ्रेसहोल्ड) एवं सीमा, सेवाओं एवं वस्तुओं की श्रेणी श्रृंखला, मध्यवर्ती अवसर, सीढ़ीनुमा वक्र (डिस्क्रीट), प्रमुख शहर, कस्बे, गाँव, वितरण, यातायात, बाजार एवं प्रशासकीय सिद्धान्त, नियम। K=3, K=4, K=7

12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

2. बाजार में मांग एवं पूर्ति पर दूरी का प्रभाव स्पष्ट कीजिए।
3. निम्न श्रेणी श्रृंखला के कार्य बताइए।
4. क्षेत्रीय योजना एवं केन्द्रीय स्थल सिद्धान्त के बीच संबंध समझाईए ।

12.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. डब्लू० क्रिस्टालर (अनुवादक सी० डब्लू० बासकिन) 1966 सेंट्रल प्लेसेज इन साउदर्न जर्मनी ऐन्गलवुड क्लिफ, एन० जे०

ए. वेबर (सम्पादक सी० जे० फ्रेडरिक) 1929 थ्योरी ऑफ दी लोकेशन ऑफ इंडस्ट्रीज शिकागो

2. बी० जे० एल० बेरी एवं डब्लू० गैरीसन 1958. ए नोट ऑन सेन्ट्रल प्लेस थ्योरी एंड दी रेंज ऑफ गुड इकोनोमिक ज्योग्राफी . 34
3. हेरोल्ड कार्टर 1976 दी स्टडी ऑफ अरबन ज्योग्राफी. जॉन विले एण्ड सन्स, न्यूयार्क
4. रोनाल्ड एबलर, जॉन एस० एड्म एण्ड पीटर गूड. 1977 स्पेशल ऑर्गनाइजेशन: दी ज्योग्राफर, व्यू दी वर्ड प्रेन्टिस हॉल इंटरनेशनल लंदन।

इकाई 13

प्रादेशिक आगत-निर्गत (Input-Output) विश्लेषण : इन्पुट आउटपुट विश्लेषण का परिचय : भारत में प्रदेश स्तरीय सारणियाँ

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 इन्पुट-आउटपुट सारिणी

13.2.1 अन्तर्प्रादेशिक इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण

13.3 प्रादेशिक स्तर की इन्पुट-आउटपुट सारणियाँ

13 4 सारांश

13.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.6 निबन्धात्मक प्रश्न

13.0 उद्देश्य : -

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पायेंगे -

(1) हर्षमैन द्वारा प्रस्तुत इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण

(2) इन्पुट-आउटपुट सारणी का प्रयोग

(3) प्रादेशिक स्तर की इन्पुट-आउटपुट सारणियाँ

13.1 प्रस्तावना

प्रादेशिक नियोजन में इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण का प्रयोग व्यापक रूप में होने लगा है। सर्वप्रथम इसकी अवधारणा एफ० क्वेजन नाम के एक अर्थशास्त्री ने दी थी लेकिन इसके आधुनिक स्वरूप के लिए लिओन्तीफ नाम के अमेरिकन अर्थशास्त्री को इसका जनक जाना जाता है जिन्होंने 1941 में परस्पर सम्बन्ध उद्योगों के कार्य संचालन का एक मॉडल विकसित किया था। इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की परस्पर निर्भरता के आधार पर, प्रत्येक उद्योग के लिए सकल उत्पादन का आकलन किया गया। सकल उत्पादन में, एक उद्योग का उत्पादन अन्य उद्योगों के उत्पादन में इन्पुट के रूप में प्रयुक्त होता है। इस विश्लेषण में दसों उद्योगों के लिए इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण की व्याख्या की गई है। प्रदेशों के लिए इसका प्रयोग अन्त में बताया जाएगा इसके अन्तर्गत एक अर्थव्यवस्था को प्रदेशों में बॉट कर प्रत्येक प्रदेश के लेखाओं के अध्ययन को आधार बनाया जाता है। इन्पुट-आउटपुट सारणी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए, एक अर्थव्यवस्था में एक प्रदेश के लिए अथवा अन्तर्प्रदेशीय वस्तुओं के प्रवाह को दर्शाती है। सारणी का आकार प्रदेशों अथवा क्षेत्रों की संख्या के आधार पर निर्भर करता है।

हर्षमैन ने इस विश्लेषण का प्रयोग क्षेत्रों अथवा प्रदेशों की परस्पर निर्भरता व आगे-पीछे की कड़ियों के अध्ययन में किया था। इस विश्लेषण को तीन चरणों में बांटा जाता है।

प्रथम चरण में एक इन्पुट-आउपुट सारणी का निर्माण किया जाता है जिसमें एक अन्तर उद्योगों अथवा अन्तरप्रदेशीय वस्तुओं के प्रवाहों को अंकित किया जाता है।

द्वितीय चरण में इन प्रवाहों की सहायता से इन्पुट-आउटपुट गुणांक तैयार किये जाते हैं। अन्तिम चरण में इन्पुट-आउटपुट मैट्रिक्स की सहायता से व्यापक हल प्राप्त किया जाता है।

अत: एक इन्पुट-आउटपुट सारणी एक प्रकार की दोहरा लेखा प्रणाली के समान होती है जिसमें हिसाब-किताब में एक प्रदेश के प्रत्येक क्षेत्र के द्वारा क्रय-विक्रय का लेखा होता है। इस सारणी की प्रत्येक पंक्ति आवंटन बताती है जबकि प्रत्येक कॉलम क्षेत्रीय क्रय बताती है।

13.2 इन्पुट-आउटपुट सारणी

इन्पुट-आउटपुट प्रवाहों के विन्यास में उद्योगों, क्षेत्रों तथा प्रदेशों को दर्शाया जाता है। जिसमें क्रय करने वाली ईकाई को समस्त में प्रस्तुत किया जाता है तथा विक्रय करने वाली इकाईयों को लम्बवत् प्रस्तुत किया जाता है। इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण को अधिक सरलता से समझने के लिए अंकन पद्धति अधिक सहायक होती है। तद्नुसार यदि इन्पुट का प्रयोग वे क्षेत्र/प्रदेश/उद्योग में उत्पादन के लिए किया जाए। उसका प्रयोग उन क्षेत्र/प्रदेश/उद्योग के उत्पादन को उस मात्रा के लिए जिसे क्षेत्र/प्रदेश/उद्योग में इन्पुट के रूप में उपयोग किया जाता है जिनसे प्रथम क्षेत्र/प्रदेश/उद्योग इन्पुट क्रय करता है। इस प्रकार पंक्तियाँ एक क्षेत्र/प्रदेश/उद्योग को बेचा गया माल प्रदर्शित करती हैं। इसी प्रकार प्रथम कॉलम की प्रविष्टियाँ यह दर्शाती हैं कि प्रथम क्षेत्र/प्रदेश/उद्योग ने किन किन क्षेत्रों/प्रदेशों/उद्योगों से उनका कितना-कितना उतादन क्रय किया है। दूसरे शब्दों में एक कॉलम की प्रविष्टियों का योग उस क्षेत्र/प्रदेश/उद्योग के कुल इन्पुटों का योग बताता है ठीक उसी प्रकार जैसे एक पंक्ति एक क्षेत्र/प्रदेश/उद्योग के उत्पादन का आवंटन बताती है।

13.2.1 अन्तर्प्रदेशिक इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण : इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण का अन्तर्प्रदेशीय अध्ययन में गत 40 वर्षों से प्रयोग होता रहा है। सर्वप्रथम मोसेस (1955) एवं आईसाई (1953, 1960) ने इसका उपयोग अन्तर्प्रदेशिक नियोजन के लिए औद्योगिक स्थिति ज्ञात करने के लिए किया था।

अन्तऔद्योगिक मॉडलों का प्रयोग अन्तर्प्रदेशिक अध्ययनों के लिए मुख्य रूप से दो प्रकार से किया जाता है। प्रथम विभिन्न प्रदेशों में उद्योगों को स्थापन करने के लिए द्वितीय - एक प्रदेश विशेष में अन्य प्रदेशों से आने वाले या अन्य प्रदेशों को इस प्रदेश से जाने वाले संसाधनों के इस प्रदेश के विकास के लिए नियोजन करने के लिए प्रदेश के मॉडल का निर्माण करना। प्रादेशिक नियोजन के सन्दर्भ में प्रदेश की अवधारणा अनेक प्रकार से की गई है। इसके अर्न्तगत एक प्रदेश को समान विशेषताओं के आधार पर परिभाषित किया जाता है। वर्तमान विश्लेषण में इस गहन वर्णन की आवश्यकता नहीं है, परन्तु हमारे उद्देश्य की पूर्ति तो प्रदेश को मात्र राजनैतिक अथवा प्रशासनिक ईकाई के रूप में ही मानना काफी होगा। इस उद्देश्य से एक

प्रादेशिक ईकाई मात्र वह है जो केन्द्रीय नियोजन विभाग से विचारों का आदान-प्रदान करने की स्थिति में हो तथा प्रशासनिक निर्णय लेने के लिए प्रादेशिक संस्था भी हो।

इस सन्दर्भ में हमारी मान्यताऐं निम्नलिखित हैं -

** इसे आगत-निर्गत विश्लेषण, अथवा आदान-प्रदान विश्लेषण के नाम से भी जाना जाता है

(1) तकनिकी विकल्प उपलब्ध नहीं है, अर्थात् प्रत्येक उद्योग के लिए स्थिर गुणक होगा।

(2) अन्तरप्रदेशिक व्यापार में विकल्प की संभावना नगण्य है। अर्थात् प्रत्येक प्रदेश सभी वस्तुओं की आवश्यकता एक स्थिर पूर्ति के आधार पर करता है। प्रादेशिक लेखा का निर्माण करते समय इस प्रदेश को समस्त गतिविधियों को क्षेत्र मानकर वस्तुओं एवं सेवाओं के अन्तरक्षेत्रीय प्रवाहों पर भी ऑकड़ों का संकलन किया जाता है। इसका अर्थ यह है कि आर्थिक लेखा बताते समय अन्तरक्षेत्रीय प्रवाहों का भी निर्माण कर लिया जाता है।

एक प्रदेश में उत्पादन करने हेतु अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इन वस्तुओं को आगत कहा जाता है। जिन वस्तुओं का उत्पादन होता है तथा विक्रय किया जाता है उसे आउटपुट या निर्गत कहा जाता है। उदाहरण के लिए जिस प्रकार पैट्रोलियम उद्योग में स्टील का उपयोग किया जाता है तथा स्टील उद्योग में पेट्रोलियम का उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक उद्योग के लिए आदा-प्रदा दोनों प्रकार से ही विचार किया जाता है। इस अवस्था में एक उद्योग में काम आने वाले अन्य उद्योगों का उत्पादन उस उद्योग के लिए व्यय होता है जिसको एक कॉलम में प्रस्तुत किया जाता है। दूसरी ओर इस उद्योग का उत्पादन जब अन्य उद्योगों में इन्पुट की तरह उपयोग होता है, तो यह उस उद्योग के लिए आय होती है तथा इसे पंक्ति में प्रस्तुत किया जाता है। इस दृष्टिकोण के अर्न्तगत एक उद्योग में प्रयोग आने समस्त इन्पुटों का मुद्रा मूल्य इस उद्योग की कुल लागत होती है। जबकि इस उद्योग के उत्पादन का अन्य उद्योगों में इन्पुट करने वाले भाग का मौद्रिक मूल्य इस उद्योग के कुल आउटपुट के मूल्य का एक बहुत बड़ा भाग है।

इसलिए इस प्रकार के विश्लेषण को इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण कहा जाता है। इसके तहत प्रत्येक उद्योग के उत्पादन का इन्पुट तथा आउटपुट की तरह विचार किया जाता है। यह विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है।

(1) सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को सामान्यत: कई क्षेत्रों में इस प्रकार विभाजित किया जाता है। कि प्रत्येक क्षेत्र में केवल एक प्रकार की ही वस्तु का उतादन किया जाता है।]

(2) प्रत्येक उद्योग के उत्पादन का एक निश्चित अनुपात ही अन्य उद्योग में इन्पुट की तरह प्रयोग होता है। इसे इन्पुट-आउटपुट गुणक कहते हैं तथा इसे स्थिर माना जाता है। इस मान्यता के दो अर्थ होता हैं।

(I) अर्थव्यवस्था में स्थिर प्रतिफल की स्थिति विद्यमान है।

(II) प्रत्येक उद्योग का एक समघातीय उत्पादन फलन होता है।

(3) उत्पादन की तकनीक अपरिवर्तनीय होती है।

(4) आगत (इन्पुट) तथा निर्गत (आउटपुट) को मुद्रा मूल्य के रूप में लिया जाता है।

(5) उत्पादन सम्बंधों को एक घातीय माना जाता है।

इन्पुट-आउटपुट सारणी द्वारा हम आदा-प्रदा के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करते हैं। इन्पुट-आउटपुट सारणी को आदान-प्रदान मैट्रिक्स भी कहते हैं। इस प्रकार की मैट्रिक्स प्रादेशिक लेखांकन का आधार भी है।

प्रादेशिक लेखांकन की रचना करते समय एक प्रदेश के लिए किसी निश्चित समयावधि में वस्तुओं के अर्न्तक्षेत्रीय प्रवाह के विषय में विस्तृत सूचनाऐं एकत्रित की जाती हैं। इस समयावधि को आधार वर्ष कहा जाता है। आधार वर्ष में प्रत्येक उद्योग के उत्पादन का एक भाग तो अन्य उद्योगों में इन्पुट की तरह प्रयोग होता है। जिसे अर्न्तक्षेत्रीय माँग कहा जाता है। इसका दूसरा भाग अन्तिम माँग होता है। जो उपभोक्ताओं द्वारा उपभोग किया जाता है।

(1) यदि प्रदेश के कुल उत्पादन को n क्षेत्रों में विभाजित किया जाऐ तो X_1, X_2,.....,X_n प्रत्येक क्षेत्र का आधार वर्ष में उत्पादन माना जाता है।

(2) यदि प्रथम क्षेत्र के उत्पादन का X_{11}, भाग इसी क्षेत्र में इन्पुट की तरह प्रयोग होता है X_{12}, भाग प्रथम क्षेत्र के उत्पादन का द्वितीय क्षेत्र में इन्पुट की तरह प्रयोग होता है, इसी प्रकार यदि X_{1n} इस क्षेत्र के उत्पादन का वह भाग जो n वे क्षेत्र में इन्पुट की तरह प्रयोग होता है तो प्रथम पक्ष की अन्तर्क्षेत्रीय कुल माँग = $X_{11} + X_{12} + \ldots\ldots + X_1n$

इसी प्रकार दूसरे क्षेत्र के लिए अन्तर्क्षेत्रीय मांग = $X_{21} + X_{22} + \ldots\ldots + X_{2n}$ तीसरे क्षेत्र के लिए अन्तर्क्षेत्रीय मांग = $X_{31} + X_{32} + \ldots\ldots + X_{3n}$ इस प्रकार अन्य क्षेत्रों की अन्तर्क्षेत्रीय मांग निकाली जा सकती है। तथा अन्तिम क्षेत्र की अन्तर्क्षेत्रीय मांग = $X_{n1} = X_{n2} + \ldots + X_{nn}$

सामान्यता i क्षेत्र के लिए अन्तर्क्षेत्रीय मांग = $X_{i1} + X_{i2} + \ldots\ldots + X_{in}$

(3) यदि F_1 प्रथम क्षेत्र की अन्तिम मांग का मौद्रिक मूल्य, F_2 द्वितीय क्षेत्र की अन्तिम मांग का मौद्रिक मूल्य, इसी प्रकार अन्तिम क्षेत्र की अन्तिम मांग का मौद्रिक मूल्य F_n होगा। सामान्यत: i क्षेत्र की अन्तिम मांग F_i होगी-

(4) इस प्रकार प्रथम क्षेत्र के उत्पादन की कुल मांग $X_i = X_{11} + X_{12} + \ldots\ldots + X_{1n} + F_1$ दूसरे क्षेत्र की कुल माँग $X_2 = X_{21} + X_{22} + \ldots\ldots + X_{2n} + F_2$ तथा अन्तिम क्षेत्रों की कुल माँग $X_n = X_{n1} + X_{n2} + \ldots + X_{nn} + F_n$ सामान्यत: $X_i = X_{i1} + X_{i2} + \ldots\ldots + X_{in} + F_i$ प्रत्येक $\geq X_{ij} \geq O$ इसका अर्थ यह है कि X_{ij} या तो शून्य होगा या धनात्मक होगा।

(5) प्रथम क्षेत्र के उत्पादन (X_1) का वह भाग जो इसी क्षेत्र में इन्पुट की तरह प्रयोग होता है स्थिर है अर्थात् $\frac{X_{11}}{X_{12}} = a_{11}$ इसी प्रकार $\frac{X_{12}}{X_2} = a_{12}$ $\frac{X_{13}}{X_3} = a_{13}$

हो तो सामान्यत $\frac{X_{ij}}{X_j} = a_{ij}$

इन a_{ij} को इन्पुट-आउटपुट गुणक अथवा तकनीकी गुणक कहते है तथा हमारी मान्यता के अनुसार ये स्थिर गुणक हैं।

(6) यदि प्रत्येक उद्योग के आउटपुट वितरण को पंक्तियों में तथा इसके इन्पुटों को स्तम्भों के रूप में प्रदर्शित किया जाए तो एक आधार वर्ष के लिए उत्पादन संरचना को सार के रूप में प्रस्तुत किया जा सकत है।

आगत \ उद्योग	1 2 3 ----- n	अंतिम माँग
1	X_{11} X_{12} X_{13} -----X_{1n}	F_1
2	X_{21} X_{22} X_{23} -----X_{2n}	F_2
3	X_{31} X_{32} X_{33} -----X_{3n}	F_3
.	. . . .	.
.	. . . .	.
.	. . . .	.
n	X_{n1} X_{n2} X_{n3}----- X_{nn}	F_n

(7) इस प्रकार

$X_1 = X_{11} = + X_{22} + \ldots\ldots\ldots\ldots + X_{1n} + F_1$

$X_2 = X_{21} = + X_{22} + \ldots\ldots\ldots\ldots + X_{2n} + F_2$ (1)

. . . . . .

. . . . . .

$X_n = X_{n1} = + X_{n2} + \ldots\ldots\ldots\ldots + X_{nn} + F_n$

एक प्रदेश की अन्तर्क्षेत्रीय निर्भरता बताता है।

(8) यदि $X_{11} = a_{11} X_1$

$X_{12} = a_{12} X_2 \ldots\ldots$

समीकरण (1) में मान रख दिया जाए तो

$X_1 = a_{11} X_1 + a_{12} X_2 + \ldots\ldots + a_{1n} X_n + F_1$

$X_2 = a_{21} X_2 + a_{22} X_2 + \ldots\ldots + a_{2n} X_n + F_2$ (2)

. . . . . .

. . . . . .

$X_n = a_{n1} X_1 + a_{n2} X_2 + \ldots\ldots + a_{nn} X_n + F_n$

(9) यदि $X = \begin{bmatrix} X_1 \\ X_2 \\ . \\ . \\ . \\ . \\ X_n \end{bmatrix}, F = \begin{bmatrix} F_1 \\ F_2 \\ . \\ . \\ . \\ F_N \end{bmatrix}$

तथा $A = \begin{bmatrix} a_{11} & a_{12} & \dots\dots\dots & a_{1n} \\ a_{21} & a_{22} & \dots\dots\dots & a_{2n} \\ \dots\dots & \dots\dots\dots & \dots\dots\dots & \dots\dots \\ \dots\dots & \dots\dots\dots & \dots\dots\dots & \dots\dots \\ a_{n1} & a_{n2} & \dots\dots\dots & a_{nn} \end{bmatrix}$

द्वारा प्रस्तुत करे जहां X एक nX1 वैक्टर, F एक nX1 वैक्टर तथा nxn मैट्रीक्स हो तो समीकरण (2) को मैट्रीक्स में X = AX + F (3)

समीकरण समूह (2) के n समीकरणों का वैकल्पिक रूप है। इन n समीकरणों को X_1, X_2, ...,X_n के लिए हल करने पर

$XA - AX = F$ (4)

$(I - A)X = F$ (5)

का मान निकालने के लिए समीकरण (5) के दोनों और $(I-A)^{-1}$ से गुणा करने पर $(I-A)^{-1}$ $(I-A)X = (I-A)^{-1}F$ क्योंकि $(I-A)^{-1}$ तथा (I-A) का गुणनफल इकाई मैट्रीक्स (1) होती है इसलिए

$X = (I-A)^{-1} F$ (6)

इस प्रकार यदि A तथा F का मान ज्ञात हो तो प्रत्येक क्षेत्र के सकल उत्पादन का मान ज्ञात कर सकते हैं। इन्पुट आउटपुट गुणक मैट्रीक्स आधार वर्ष के यदि ज्ञात हो तथा F क्षेत्रीय अन्तिम माँग योजना के अन्तिम वर्ष के लिए पूर्वानुमान के संगत क्षेत्रीय उतादन ज्ञात किया जा सकता है।

इस विश्लेषण का प्रयोग करने के लिए एक प्रदेश में प्रत्येक आर्थिक गतिविधि को क्षेत्र मानते हुए वस्तुओं एवं सेवाओं के अर्न्तक्षेत्रीय प्रवाहों पर विस्तृत आंकड़े एकत्रित किए जाते हैं। यह सबसे कठिन तथा महत्वपूर्ण कार्य है। प्रदेश में प्रत्येक क्षेत्र के लिए अन्तिम माँग अथवा आय लेखा का अनुमान लगाया जा सकता है।

13.3 प्रादेशिक स्तर की इन्पुट-आउटपुट सारणियाँ

प्रादेशिक स्तर की इन्पुट-आउटपुट सारणियाँ भारत में इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण प्रादेशिक स्तर पर सर्वप्रथम धर (1967) में अर्न्तप्रादेशिक इन्पुट-आउटपुट का निमार्ण 1953-54 वर्ष के लिए किया गया था। इसके अर्न्तगत भारत को पांच प्रदेशों में बांटा गया था।

पूर्वी प्रदेश	(I) पश्चिम बंगाल
	(II) उड़ीसा
	(III) आसाम
उत्तर-पूर्वी प्रदेश	(I) बिहार
	(II) उत्तर प्रदेश
उत्तर-पश्चिम प्रदेश	(I) पंजाब
	(II) दिल्ली

	(III) केन्द्रीय प्रान्त
	(IV) राजस्थान
	(V) पेप्सू
	(VI) हिमाचल प्रदेश
	(VII) विन्ध प्रदेश
	(VIII) अजमेर
दक्षिणी प्रदेश	(I) मद्रास
	(II) आन्ध्रा
	(III) मैसूर
	(IV) ट्रावन्कोर कोचीन
पश्चिम प्रदेश	(I) बम्बई
	(II) सौराष्ट्र

अर्थव्यवस्था को 18 क्षेत्रों में बाटा गया था। ये थे-

(1) प्राथमिक क्षेत्र (2) कोयला (3) अन्य खनिज (4) खाद्य पदार्थ (5) सीमेन्ट (6) चीनी (7) चीनी मिट्टी (8) कागज (9) जूट वस्त्र (10) अन्य वस्त्र (11) रसायन (12) लोहा तथा स्टील (13) अलौह धातु (14) अभियांत्रिक (15) विद्युत (16) अ-फैक्ट्री उद्योग (I7) तृतीय क्षेत्र (18) अन्य।

प्रत्येक प्रदेश के लिए अर्न्त-क्षेत्रीय प्रवाह मैट्रीक्स 1953-54 वर्ष के लिए प्रस्तुत की गई है।

केरल प्रान्त की औद्योगिक अर्थ व्यवस्था के अध्ययन हेतु इन्पुट-आउटपुट ढांचे की संरचना, 1964 वर्ष के लिए पिल्लई (1976) द्वारा की गई थी। अर्थव्यवस्था को 24 उत्पादन क्षेत्रों में विभक्त किया गया था।

(1) वृक्षारोपण (2) खाद्यान्न (3) मछली उद्योग (4) पशुपालन (5) अन्य कृषि उद्योग (6) खाद्य उद्योग (7) काजू उद्योग (8) तेल उद्योग (9) वस्त्र उद्योग (10) लकड़ी तथा कार्क उद्योग (13) रसायनिक पदार्थ (14) औषधि उद्योग (15) साबुन तथा ग्लिसरीन (16) धातु तथा धातु निर्मित वस्तुएं (17) यन्त्र (18) परिवहन उपकरण (19) विद्युत (20) रबर तथा रबर निर्मित वस्तुओं (21) विद्युत उपकरण (22) विविध उपयोग (23) परिवहन निर्माण (24) गुजरात, पंजाब तथा हरियाणा के लिए इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण अलघ, भल्ला तथा कश्यप (1980) द्वारा प्रस्तुत की गई है। गुजरात में आधार वर्ष, 1964-65 के लिए यह विश्लेषण वर्ष 1971 में तथा हरियाणा में एवं पंजाब में आधार वर्ष 1969-70 के लिए वर्ष 1972 में किया गया था। क्षेत्रों की संख्या पंजाब के लिए 36, हरियाणा के लिए 32 तथा गुजरात के लिए 26 थी।

गुजरात का क्षेत्रीयकरण का आधार लघु क्षेत्र उद्योगों एवं व्यापार का सर्वे था राज्य के 24 क्षेत्रों में से 21 संगठित क्षेत्रों के थे। शेष तीन क्षेत्र थे कृषि, खनिज तथा निर्माण कार्य

पंजाब तथा हरियाणा में कृषि क्षेत्र को पंजाब व उप-क्षेत्रों तथा हरियाणा में 8 क्षेत्रों में विभाजित किया गया था। औद्योगिक क्षेत्रों को पंजाब में 24 क्षेत्र तथा हरियाणा में 21 क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। दोनों ही राज्यों के निर्माण कार्य तथा विद्युत क्षेत्रों को भी सम्मिलित किया गया है।

राजस्थान के लिए मेहता (1983) ने आधार वर्ष 1970-71 के लिए, एक 49 क्षेत्रीय इन्पुट-आउटपुट मैट्रिक्स की रचना की थी। इससे पूर्व पंचमुखी (1975) ने कर्नाटक के लिए, श्री प्रकाश तथा पटनकर (1975) ने मध्य प्रदेश के लिए तथा सिंह (1972) ने पश्चिम बंगाल के लिए कोटी (1963) ने महाराष्ट्र के लिए इन्पुट-आउटपुट मैट्रिक्स का निर्माण किया था।

13.4 सारांश

राज्य स्तरीय इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण के लिए अत्यधिक आकड़ों की आवश्यकता होती है। अधिकांश आकड़े इनमें से उपलब्ध नहीं होते हैं। अधिकांश सारणियाँ, निजी शोधकर्त्ताओं के ही द्वारा निर्माण की गई हैं। राज्य की अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित आवश्यक तथा महत्वपूर्ण आकड़ों के अभाव का ज्ञान उस समय होता है जबकि अन्वेषण कर्त्ता द्वारा संख्यात्मक प्रयोग प्रारम्भ किया जाता है। भारतीय सांख्यिकी तब में अधिकांश आकड़े राजकीय संस्थाओं द्वारा संकलित होते हैं। अत: इन आकड़ों को एक विशेषज्ञ की देखरेख में उपलब्ध करा दिए जाऐं तो उचित इन्पुट-आउटपुट सारणी का निर्माण हो सकता है।

13.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

पिल्लई पी. पी. (1976) इन्पुट-आउटपुट स्ट्रक्चर ऑफ केरला इन्डस्ट्रीयल इकोनोमिक टाईम्स, जनवरी 6, 1976

धर, रंजीत (1967) दी स्टडी ऑफ इन्टर-रीजनल इन्टर सेक्टोरल रीलेशन्स ऑफ दी इन्डीयन इकोनोमी, 1953-54, अर्थ विज्ञान, खण्ड 9

अलघ, वाई. के, जी.एस. भल्ला तथा एस. पी. कश्यप (1980) स्ट्रक्चरल अनालिसिस ऑफ गुजरात, पंजाब एण्ड हरियाणा इकॉनोमीज, अलाईड पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

मेहता बी.सी (1983) स्ट्रक्चर ऑफ राजस्थान्स इकानॉमी रिसर्च बुक्स, जयपुर।

प्रसाद के.एन. तथा एम.क्यू. दाल्वी (1986) रीजनल इन्पुट-आउटपुट टेबल्स इन इण्डिया : ए सर्वे, इन्टरनेशनल जरनल ऑफ डवलपमेन्ट प्लानिंग, खण्ड एक (संख्या 2)

13.6 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण की व्याख्या कीजिए।

(2) आउटपुट विश्लेषण के अन्तर्गत मान्यताऐं तथा नियोजन में उपयोग बताईये।

(3) प्रादेशिक इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण में क्या समस्याऐं आती हैं; उदाहरण सहित समझाईये?किन राज्यों के लिए इस प्रकार का विश्लेषण किया गया है।

(4) प्रादेशिक इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण पंजाब, हरियाणा, गुजरात व राजस्थान का तुलनात्मकविवरण दीजिऐ।

इकाई 14

अन्तर-अंचल क्षेत्रीय व्यापार एवं अंचल क्षेत्रीय गुणक

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 अन्तर-अंचल क्षेत्रीय व्यापार

14.2.1 अंचल क्षेत्रीय निर्यात-आधार सिद्धान्त

14.2.2 सूत्र

14.2.3 अंचल क्षेत्रीय गुणक

14.3 गुणक सूत्र व चित्र निरूपण

14.4 सारांश

14.5 शब्दावली

14.6 स्वअध्ययन अभ्यास, प्रश्न व उत्तर

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

गुणक एक ऐसा सिद्धान्त है जो यह बतलाता है कि जब सफलता आती है तो वह और लाती है" (Nothing Suceeds Like Success) तथा जब अवनति होती है तो और अद्योपतन होता है (Nothing fails like a failure), इस पाठ के निम्न उद्देश्य हैं।

1. हम जानें कि अंचल क्षेत्रीय व्यापार क्यों होता है तथा उसका आर्थिक महत्व क्या है?
2. अंचल क्षेत्रों के "निर्यात'' कैसे बढ़ें व उनका क्या महत्व है?
3. अंचल क्षेत्रीय ''आयात" क्या वास्तव में झिरन है अगर नहीं तो क्या महत्व है?
4. निर्यात आधार सिद्धान्त Export-base Theory क्या है तथा आधारभूत (Basic) उद्योग किन्हें कहेंगे, इसके सूत्र क्या हैं?
5. अंचल क्षेत्रीय व्यापार चक्र क्या है व उसके क्या प्रभाव हैं?
6. गुणक क्या है? तथा
7. क्या ये सभी सिद्धान्त व्यवहारिक महत्व के भी हैं, सभी का आलोचनात्मक परीक्षण।

14.1 प्रस्तावना

अलग-अलग अंचल क्षेत्रों का प्राकृतिक संसाधन आधार व मानवीय क्रियाओं की, प्रकृति व मात्रा अलग-अलग होती है। इससे अंचल क्षेत्र के रोजगार व आय सृजन अन्य अंचल क्षेत्रों से अलग होते हैं। अंचल क्षेत्र गरीबी व समृद्धि गहनता में विलग होते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त में निर्यात वर्द्धन तथा आयात संकुचन पर जोर रहता है। अर्थशास्त्री व देश भुगतान संतुलन के घाटे के विपक्ष में होते हैं व उससे डरते हैं। परन्तु सभी

देश तो ऐसा नहीं कर सकते, एक देश का घाटा दूसरे देश की वेशी, तथा एक देश का वेशी भुगतान दूसरे देश का घाटा होता है। आयात भी उपभोग व उत्तम उत्पादन संभव बनाते हैं।

अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र में इस सिद्धान्त का प्रवेश ठीक तो है परन्तु अन्य अंचल क्षेत्र विदेश नहीं हैं। एक सी मुद्रा प्रयोग होती है, देशवासी आते जाते हैं, अत: नीति यह नहीं बनानी है कि अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र अन्य अंचल क्षेत्रों से कम "आयात" करे।

Daly, Hoyt, North, Tiebout, Perloff, Dunn, Muth तथा Batten ने इस पर अंचल क्षेत्र के संन्दर्भ में लिखा परन्तु वे सब Keynes (केन्स,) के सिद्धान्त पर आधारित विचार थे।

14.2 अन्तर-अंचल क्षेत्रीय व्यापार

जैसा कि हम जानते हैं व्यापार होता ही इसलिए है कि सभी अंचल क्षेत्र सब कुछ पैदा नहीं कर सकते इसके लिए संसाधन ही नहीं होते। इसके अतिरिक्त हर व्यक्ति किसी एक कार्य को करके ही तो आय कमाता है। अन्य वस्तुओं व सेवाओं को क्रय करने के लिए हर व्यक्ति कुछ वस्तुयें या कोई एक सेवा सृजन कर आय कमाता है।

Trade is the exchange of the super -flows with the necessary. It increase the exchange values for the producers and the use values for the consumers. It enables marshalling of inputs and failures and disposal of the output for final Consumption or to be used an intermediate goods. All persons, factor, commodity-relations, service-relations and regions are inter-dependent.

व्यापार में पहले वेशी उपज चाहिए, यह उत्पादनकर्ता की जरूरत से ज्यादा होती है अगर न बिके तो हानि होगी, या कम उपयोगिता मिलेगी या फिर उत्पादन कम करना होगा, बिकने पर जिसके पास वह पहुंचती है उसके लिए जरूरी होती है। व्यापार न होने पर व्यक्ति वंचित रहेंगे। अत: उत्पादनकर्ता/विक्रेता अपने विक्रय मूल्य में वृद्धि करता है तथा उपभोक्ता/क्रेता अपनी उपयोगिता में वृद्धि करता है।

अगर व्यापार हो तो आदान व घटक क्रय होते हैं व फिर जब वस्तुयें बन जाती हैं तो उनका विक्रय होता है अन्य स्थानों पर आदान या, अन्तिम वस्तु के रूप में उपभोग होती है।

व्यापार से ही आदान क्रय-विक्रय, उपयोग, घटक क्रय विक्रय, उत्पादन तथा अन्तत: वितरण संभव है। व्यापार में पूंजीगत वस्तुओं का व तकनीक का क्रय-विक्रय शामिल है। व्यापार (Truch, barter and exchange) सर्वाधिक स्वतंत्र बाजार पद्धति में अच्छा पनपता है। सबसे सस्ता क्रय क्रेता चाहते, सबसे महंगा विक्रय विक्रेता चाहते हैं। अन्तत: साम्य स्थापित जहां होता है दोनों संतुष्ट होते हैं।

14.2.1 अंचल क्षेत्रीय निर्यात-आधार सिद्धान्त

एक देश "बन्द" हो सकता है जो कि न आयात करे और न निर्यात करे (बहुत उग्र तानाशाही में ही सम्भव है) परन्तु एक अंचल क्षेत्र हमेशा "खुला" रहता है। अंचल क्षेत्रीय

अर्थशास्त्र में basic आधारभूत उद्योग उन उद्योगों को कहते हैं जो "निर्यात" उद्योग हो, अर्थात जिनके उत्पाद अन्य अंचल क्षेत्रों में जाते हों अन्य सभी क्रियायें व उद्योगों को non-basic या गैर आधारभूत उद्योग कहते हैं।

The ratio of basic employment (or income) to the non-basic employment (or income) is called basic ratio, हम आधार-अनुपात उस अनुपात का कहेंगे जो गैर आधारभूत उद्योग के रोजगार, आय (जो भी हम लें) उसका अनुपात हो, अगर आधार उद्योग की एक नौकरी से गैर आधार उद्योग में 3 नौकरियां (रोजगार) खुलती हैं तो एक आधार उद्योग की नौकरी/कार्य समाप्त होने से कुल चार कार्य/नौकरी जायेंगी - गुणक 4 हुआ।

आधार उद्योग में एक अच्छी मात्रा (size) भी होनी चाहिए एक कबीट फल दूसरे जिले में बेचने ले जाने से कबीट वृक्ष के फल लेना आधार उद्योग नहीं कहायेंगे।

अर्थशास्त्र में विश्वविख्यात वाक्य है International trade is a special case of inter-regional Trade (Ohlin, ओलीन, अंचल क्षेत्रीय व्यापार भी लाभ कमाने व जरूरतें पूरी करने के आधार पर होता है मांग पक्ष यह बतलाता है कि हम/अन्य कोई चीज तब क्रय करते हैं जब हम जरूरत के अनुसार मात्रा में नही बना पाते या अच्छी किस्म की नहीं बना पाते या फिर बना ही नहीं पाते हैं। पूर्ति पक्ष यह बतलाता है कि व्यापार लागतों के (मूल्यों के) कम होने व किस्म के अच्छे होने पर निर्भर है।

अंचल क्षेत्रीय व्यापार में विदेशी विनिमय की व मुद्रा क्रय शक्ति में उच्चावचन की कोई समस्या नहीं है। मुद्रा, वस्तु व सेवाओं (घटकों) की निकासी पर कोई प्रतिबंध नहीं होता है। अंचल क्षेत्रीय व्यापार भी संसाधनों (endowments) व विशिष्टीकरणों के अन्तरों का प्रतिफल है। सरकारी प्रतिबन्ध होते नहीं हैं।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीतियाँ ऐसी नहीं हो सकती कि मध्य प्रदेश व राजस्थान या, राजस्थान व गुजरात के बीच व्यापार का कोई प्रतिबंध लग सके। मात्र गैर कानूनी व्यापार नहीं हो सकता। कभी अंचल क्षेत्रीय संरक्षण पर सोचा भी नहीं गया। अंचल क्षेत्रीय सिद्धान्त भी वही है कि अगर बाहर से अच्छा/सस्ता मिले तो घर में न बनाओ, जब तक कि वही आर्थिक क्रिया रोजगार के लिए जरूरी न हो, उन्नत से उन्नत मालदार जिला खाने की वस्तुओं के लिए पास के कम विकसित जिलों/अंचल क्षेत्रों पर निर्भर रहेगा।

तालिका 14.1

	उद्योग	रोजगार	आय	निर्यात
1	छतरी	2000	10 करोड़	10 करोड़
2	गेहूं	25000	9 करोड़	6 करोड़
3	कपास	4000	6 करोड़	6 करोड़
4	हैंडलूम कपड़ा	2000	1 करोड़	1 करोड़
5	अन्य			
6	अन्य			

7	अन्य	40000	1 करोड़	नहीं
8	अन्य			

इस तरह उपरोक्त में हमने आय के आधार पर आधारभूत उद्योग लेकर फिर निर्यात देखे। छोटे उद्योग वे हैं जो निर्यात नहीं करते चाहे आय देते हों।

तुलना का आधार चाहें तो रोजगार भी बना सकते हैं, तब उसके व निर्यात को उनके महत्व के अनुसार रख कर तालिका बना सकते हैं।

14.2.2 सूत्र : जो अंचल क्षेत्रीय गुणक के आधार हैं

आधार-उद्योग जिसके ऊपर आगे का विश्लेषण आधारित है इस प्रकार हैं

$$K = \frac{\Delta Eb + \Delta Ea - - - n}{\Delta Eb}$$ रोजगार आधार

$$K = \frac{\Delta Yb + \Delta Ya - - - n}{\Delta Yb}$$ आय आधार

सरल रूप में $K = \frac{\Delta Ty}{\Delta By} \; or \; \frac{\Delta Te}{\Delta Be}$

K = गुणक Δ परिवर्तन E रोजगार y आय

B = आधार उद्योग a - - -n अन्य सभी उद्योग (कार्य)

T = सकल

सकल रोजगार 15 लाख हो तथा "आधार" उद्योग में वह 7.5 लाख हो तो आधार उद्योग गुणक 2 हुआ 15 ÷ 7.5 यह गुणक Incremental या वृद्धिमान आधार पर भी निकाल सकते हैं जैसे सकल रोजगार में 1 लाख की वृद्धि तथा आधार उद्योग में 60 हजार की वृद्धि तो 10/6 = 1.67 अर्थात अब गुणक कम हो रहा है।

अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र में इस गुणक को time series या समय शृंखला के लिए भी निकाल सकते हैं। हम उस उद्योग को आधार उद्योग मानते हैं जिसके Location Quotient सबसे ऊंचे होते हैं (देखिये तत्सम्बन्धी अध्याय)। यहां पर मात्र यह लिख सकते हैं कि रोजगार के सन्दर्भ में LQ इस तरह निकाल सकते हैं।

$$X = \frac{NEI.RET}{TNE}$$

X = LQ

NEI = National Employment in Industry

किसी उद्योग में राष्ट्रीय रोजगार

RET = Total Regional Employment

सकल अंचल क्षेत्रीय रोजगार

TNE = Total National Employment

उद्योग / आर्थिक आधार, सिद्धान्त के अनुसार "सकल रोजगार बराबर है = आधार रोजगार x आधार-उद्योग-गुणक के

The total employment is equal to the base multiplier multiplied by the base employment.

हर अंचल क्षेत्रीय आर्थिक क्रिया का इस पद्धति से महत्व जाना जा सकता है।

14.2.3 अंचल क्षेत्रीय गुणक

गुणक यह नापता है कि किसी एक खास चल घटक से कोई अन्य घटक कितना गुणा परिवर्तित होता है। उदाहरणतया: केन्स का गुणक यह बतलाता है कि अगर उपभोग 10% बढ़ता है और रोजगार 15% तो गुणक 1.5 (15/10) हुआ। रोजगार के स्थान पर हम प्रभाव आय पर भी नाप सकते हैं। यह बात सही है कि आय या रोजगार की वृद्धि मात्र किसी एक चल राशि पर निर्भर नहीं होती है। गुणक की अवधारणा में अन्य बातें समान रहें की शर्तें शामिल हैं।

इसी तरह अंचल क्षेत्र के विकास के लिए हम किसी prime mover या प्रमुख कार्यकारक का प्रभाव जान सकते हैं। अंचल क्षेत्रीय गुणक में भी कतिपय प्रेरक तथा कतिपय अवरोधक-झिरने हैं।

प्रेरक जो गुणक को बढ़ाते हैं वे हैं उपभोग, निवेश व "निर्यात" जो कम करते हैं वे हैं बचतें तथा "आयात"

अंचल क्षेत्रीय गुणक में Base industry/Activity आधार उद्योग/क्रिया से होने वाले निर्यात ही गुणक मूल्य बढ़ाते हैं अत: यह सिद्धांत हर अंचल क्षेत्र में आधार आर्थिक क्रिया बढ़ाने व उससे निर्यात करने पर जोर देता है।

केन्स के अर्थशास्त्र में अति बचतें (over savings) बुरी हैं। बचतें सभी निवेशित होनी चाहिए जो न हो पायें वे अतिरेक बचते हैं, जरूरत से ज्यादा माल्थस ने अमुकूलतम बचतों के लिए कहा था वहीं अर्थशास्त्र केन्स ने दुहराया।

The basic difference between Economic Base Theory and Regional Multiplier Theory is that the multiplier, calculated in money terms (as compared with employment in the Economic Base Theory) is much more akin to the short-run keynesian income type multiplier of macro-economics. It incorporates the effects of imports and taxation also, which are leakages, along with savings.

अंचल क्षेत्रीय गुणक में प्रभाव तो रोजगार पर तथा कार्यकारण आधार उद्योगों के निर्यात को माना है।

$$K = \frac{1}{S + M + t} \quad \text{या} \quad \frac{1}{1-(c-m).(1-t)}$$

K = गुणक अंचल क्षेत्रीय

s = बचतें सीमान्त क्षमता

c = उपभोग सीमान्त क्षमता

m = आयात सीमान्त क्षमता

t = कर, सीमान्त दर

अंचल क्षेत्र में बढ़ना चाहिए आय, उपभोग, निवेश, निर्यात (आधार उद्योग से) बचतें उतनी कि निवेश हो अधिक अंचल क्षेत्र में घटे "आयात", उनके सिवाय जो "निर्यात" के आदान हों तब ही अंचल क्षेत्र में रोजगार बढ़ेगा।

y (आय) तथा c (उपभोग) सभी बिन्दुओं पर बराबर है, converge करते हैं

* उपभोग की लाइन 0 आय पर भी धनात्मक है। लोग भीख मांगेंगे, उधार लेंगे, चुरायेंगे पर खायेंगे तो।

यहाँ पर यह बात व्यक्ति के लिए ठीक है परन्तु सम्पूर्ण अंचल क्षेत्र या देश के लिए तो नहीं है फिर भी उपभोग लाइन एक Intercept पर आधारित है। सूक्ष्म अर्थशास्त्र की बात वृहद में कैसे? डायाग्राम तो बस एक समझाने का जरिया है।

14.3 गुणक सूत्र व चित्र निरूपण

* रेखा चित्र 14.1 में उपभोग की सीमान्त क्षमता की लाइन 60% है। इन्टरसेप्ट रु0 50 पर है। इसे निकलने के लिए 120^0 का कोण बना जो दूसरी तरफ 60^0 (सकल = 180^0) छोड़ता है।
* यह लाइन, 45^0 वाली लाइन को, B बिन्दु पर काटती है, जो 125 की आय (माना करोड़ रु०) को सृजित करती है। यहाँ के बाद बचतों को धनात्मक बतलाते हैं, अर्थात अभी तक वे नकारात्मक से शून्य थीं।
* रु0 30 करोड़ के निवेश जोड़ने से फलन लाइन C+I+X की होती है। यह 45^0 लाइन को E पर काटती है और अब साम्य आय 200 है - गुणक 30 के कारण 75 अर्थात 2.5 हुआ।

गुणक आय के बारे में हो तो बतलाता है कि The equilibrium level of Income is equal to a multiplier times autonomous consumption plus investment. उपभोग + निवेश × गुणक = साम्य आय।

हम निम्न रेखाचित्र द्वारा गुणक को समझा सकते हैं। इसी प्रकार का चित्र कतिपय परिवर्तनों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय (खुली अर्थव्यवस्था) उपभोग + निवेश + निर्यात व राष्ट्रीय (बन्द व्यवस्था) के लिए प्रयोग हो सकता है। अंचल क्षेत्रीय गुणक सर्वथा खुला गुणक होता है।

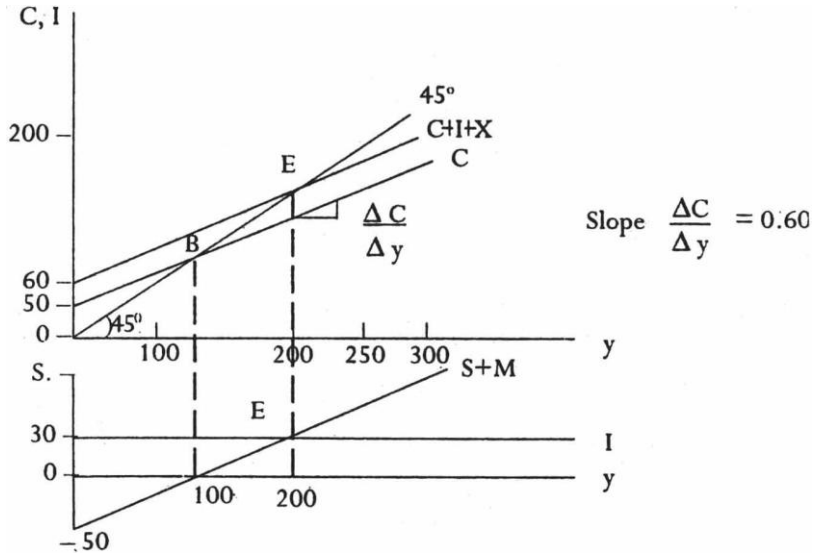

रेखा चित्र 14.1

उपरोक्त चित्र में 45° की लाइन यह बतलाती है कि जितनी आय होते है उतनी उपभोग हो जाती है।

मेक्रो अर्थशास्त्र में अधिक व्यापक रूप से समझाते हैं।

रेखा चित्र 14.2 में अन्य रूप से गुणक प्रस्तुत करते हैं

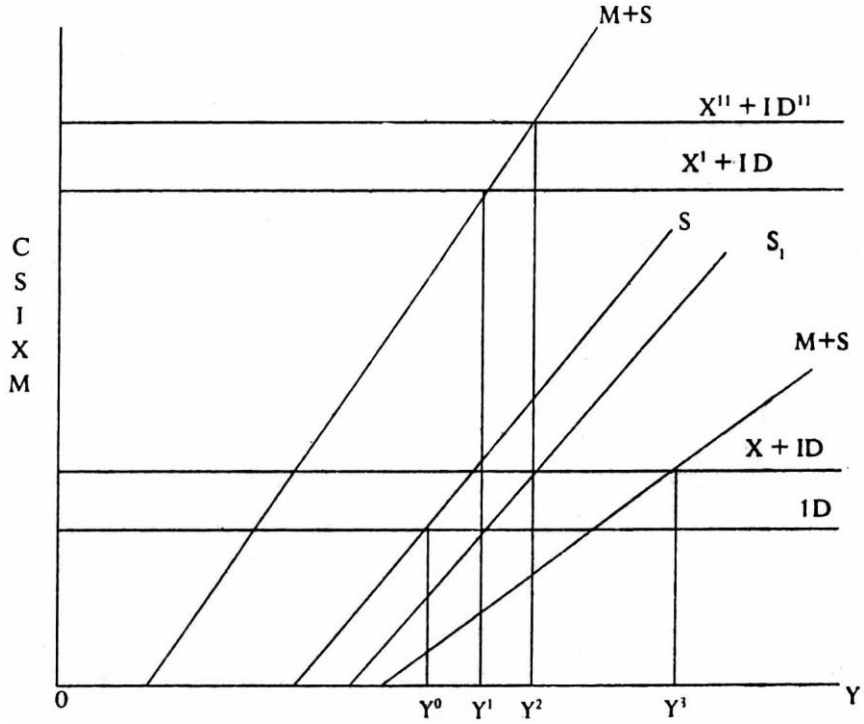

रेखा चित्र 14.2

* The open country/regional multiplier is the reciprocal of the slope of the sum of two functions My and Sy, and will be the same for an

increase in exports of basic industries and / or increase in investment. जितना अधिक C+I+X होंगे तथा जितना कम S तथा M होंगे उतना गुणक ऊंचा होगा। My आय में आयात का अनुपात है Sy बचत-आय अनुपात है इनके ढाल जितने होंगे उसके उल्टा गुणक होगा। M+S का ढाल चपटा (flute) अर्थात कम तो आय सृजन अधिक

* S के ID के Interaction पर आय Y°
* X+ID बढ़ने व S_1 फलन पर आय ज्यादा Y_2
* S वही पर X^1 + ID^1 पर आय Y^1
* M + S बढ़ जाये तो Y^2 आय के लिए X^{11} + ID^{11} चाहिए
* अगर M+s घट जायें तो मात्र X+ID पर Y^3 आय

14.4 सारांश

* जैसा कि हमने ऊपर देखा है अंचल क्षेत्रीय व्यापार एक गुणक प्रभाव छोड़ता है। अगर आधार उद्योगों से निर्यात बढ़ता है तो अन्य गतिविधियों पर भी अच्छी प्रतिक्रिया होती है। परन्तु न तो दो देशों के बीच तथा न दो अंचल क्षेत्रों के बीच 'आयात' कर सकते हैं आयात ''झिरन'' है। परन्तु एक अंचल क्षेत्र के आयात दूसरे अंचल क्षेत्रों के निर्यात हैं। यह सिद्धान्त ऐसी कोई नीतिपरक सलाह नहीं देता कि शासन को आयात कम करना है वह तो यह सलाह देता है कि प्रत्येक अंचल क्षेत्र में आधार आर्थिक क्रियाएं हों तथा उनके उत्पाद अधिक मात्रा में बाहर जायें।
* अंचल क्षेत्रीय उच्चावचनों को अवश्य रोकना चाहिए। बहुत अधिक मात्रा में वास्तविक आय व उत्पादन गिरने से सभी को हानि होती है। ऐसा अति उत्पादन भी ठीक नहीं कि उससे इतने मूल्य गिरें कि आय ही कम हो जाये (Growth should not lead to immiserisation).
* जहां अंचल क्षेत्र का आधार उद्योग होना चाहिए वहां विशिष्टीकरण ऐसा भी न हो कि उस क्रिया के एकदम ठप हो जाने से समस्त अंचल क्षेत्र खतरे में आ जाये।
* अनुदान, सहायता, करों में रियायतें, सिरोपरी सुविधाओं के बढ़ाने व साख से अंचल क्षेत्र का रोजगार, आय, उत्पादन बढ़ते व उच्चावचन रोके जा सकते हैं।
* एक बात ध्यान में रखने की यह है वे आर्थिक क्रियाएं जो अंचल क्षेत्र की खाने, पहनने व रहने की आवश्यकताएं पूरी करें चाहे "निर्यात" न बढ़ाएं वे भी महत्वपूर्ण हैं।
* एक अंचल क्षेत्र की झिरने दूसरे क्षेत्र में गुणक प्रभाव देते हैं परन्तु "आयात" करने वाले अंचल क्षेत्र की balance of indebtedness या ऋण स्थिति नहीं बढ़ती क्योंकि ऐसे पिछड़े अंचल क्षेत्र में सरकारी व्यय व अनुदान आते हैं। अगर अंचल क्षेत्रों में गुणक प्रभाव है तो reversal effects या प्रतिकूल गुणक प्रभाव भी होते हैं अन्त में साम्य आते रहते हैं।
* सही गुणक प्रभाव का गणितीय माप कठिन है अगर निकालने बैठे तो "आयात'', "निर्यात'',"उत्पादन'', "बचतों" "निवेश", "पूंजीनिर्माण", "अंतर अंचल क्षेत्रीय ऋण खाते", "प्रभाव कड़ियां",प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष लाभ-लागतें कुछ न निकाल पायेंगे, फिर इतने आँकड़े

इकट्ठा करने की लागतें ऊंची होगी। कतिपय बातें तो बगैर आकड़ों के ही सिद्ध होती हैं। अगर एक अंचल क्षेत्र संतरे व अंगूर उगा रहा है व उन्हें खूब अधिक मात्रा में बाहर भेज रहा है तो विकास गुणक समृद्धि प्रभाव खुली आंख से दिखते हैं।

* अचल क्षेत्र के ऐसे "निर्यात" जो उपभोग घटा दें अंचल क्षेत्र का विकास नहीं करते।

14.5 शब्दावली :

Economic Base Theory : अंचल क्षेत्र से "निर्यात" करने के अन्तिम प्रभावों (रोजगार पर या आय पर) के अध्ययन को "आर्थिक आधार सिद्धान्त" कहते हैं।

Regional Multiplier : यह मापता है कि सकल रोजगार या आय पर अंचल क्षेत्र के निर्यातों का कितना गुणनफल रहा। यह base theory को नाप का रूप देता है।

Regional Exports : इन्हें अन्य देशों की ओर जाना जरूरी नहीं है। अगर जिलों को ही Micro-region मानें तो एक जिले से दूसरे जिले में व्यापार "आयात-निर्यात" मान लेते हैं।

Basic Industry : अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र में इसका कारखाना होने की जरूरत नहीं, कृषिगत वस्तुएं अगर प्रमुख निर्यात हैं तो वह कार्य भी basic कहायेगा।

14.6 स्व अध्ययन अभ्यास प्रश्न व उत्तर

1. क्या basic industry या आधारभूत अंचल क्षेत्रीय उद्योग जीवन स्तर बढ़ाता है?

यह जरूरी नहीं है। माना कि एक अंचल क्षेत्र में Polypropalene का कारखाना स्थापित हुआ उसका कच्चा माल पूरी तरह जापान से आता है। उसकी समस्त मशीनें व संयंत्र जापान से आते हैं। वह कारखाना अन्दर ग्रामीण क्षेत्र में स्थापित किया गया जहां धूल व धुआं न हों, ऐसे कारखाने में अन्दर जाने से पूर्व, पूरी तरह से airbath जाती है। एक स्थान पर सम्पूर्ण शरीर पर ऊपर से बहुत तेज हवा का jet फैंका जाता है ताकि धूल के सारे कण नीचे चले जायें, छोटा सा कण भी पालीप्रोपेलीन का bubble फोड़ देता है इस कारखाने के सारे कर्मचारी शहर से बसों द्वारा लाये व छोड़े जाते हैं। इसका कच्चा माल hinterland या अन्दरूनी इलाके से नहीं आता। यह कारखाने के इलाके से लोगों को कार्य पर नही लेता इसका सारा उत्पादन अन्य क्षेत्रों में जाता है, जहां माल बनता है वहां वह उपभोग या आदान नहीं बनता। आय सृजन Value-adding से अंचल क्षेत्र के व्यक्तियों को कोई लाभ नहीं होता। उद्योग भले ही basic माना जाये परन्तु रोजगार व आय सृजन तो non-basic क्रियाओं से हो रहा है। अत: कल्याण या विकास दोनों से इसका सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न: On the upturns the expanding regions usually lead and contracting regions laq. On the downturns the contracting ones lead and expanding ones laq.

अंचल क्षेत्रीय अर्थशास्त्र का गुणक सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि उन्नत अंचल क्षेत्र तेजी के समय तेजी से बढ़ते है परन्तु मंदी के समय मंद गति से नीचे आते हैं, पिछड़े अंचल क्षेत्र तेजी के समय पीछे व मंदी के समय आगे रहते हैं।

गुणक कोई बहुत महत्वपूर्ण सिद्धान्त नहीं है।

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Isard Regional Economics
2. Rechardson Regional Economics
3. O.S. Srivastava Regional Economics

इकाई 15

औद्योगिक काम्पलेक्स विश्लेषण - अंचल क्षेत्रीय उत्पादन काम्पलेक्स के स्थानों की पहचान तथा स्थापना

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 औद्योगिक काम्पलेक्स : अर्थ, कार्यकारीकारण, स्थापना के पक्ष व विपक्ष में तत्व

15.2.1 औद्योगिक काम्पलेक्स तथा फैलाव की नीतियाँ

15.2.2 अंचलक्षेत्रीय उत्पादन काम्पलेक्स के स्थानों की पहचान तथा स्थापना

15.3 ''ग्रोथ पोल" तथा 'विकास केन्द्र' तथा औद्योगिक काम्पलेक्स

15.4 सारांश

15.5 शब्दावली

15.6 स्वअध्ययन प्रश्न व अभ्यास

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत अध्याय में यह जानेंगे कि Industrial complex या औद्योगिक पिंड क्या हैं (हम शब्द स्टेशन की भांति "औद्योगिक काम्पलेक्स" शब्द ही प्रयोग करेंगे) प्रस्तुत अध्याय में निम्न को परिभाषित कर उनकी विशेषतायें देखेंगे :

1. औद्योगिक काम्पलेक्स Complex / Agglomeration
2. अंचलक्षेत्रीय औद्योगिक विशिष्टीकरण Territorial Production Complexes
3. काम्पलेक्स के स्थान के चयन व उनकी उपयुक्तता पहचान Identification and Location of Complexes
4. काम्पलेक्स के स्थानीयकरण के कारण,
5. उनके ग्रोथ पोल तथा ग्रोथ सेन्टर से सम्बन्ध
6. काम्पलेक्स पद्धति के गुण व दोष

15.1 प्रस्तावना (Agglomeratin and complex lead to divergence; Deagglomerations and dispersals lead to convergence)

* औद्योगिक काम्पलेक्स अनेक उद्योगों का एक स्थान पर पिंडीभूत होना है जिसमें पूरक व सहयोगी उद्योग ज्यादा होते हैं। इनसे असंतुलित विकास होता है और आय में विभिन्नता व असमानतायें होती हैं (divergence)। यह पद्धति आर्थिक रूप से सूक्ष्म अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से सस्ती पड़ती है क्योंकि मित्व्ययिताओं के कारण काम्पलेक्स बनते हैं तथा फिर वे अमितव्ययिताओं को सृजित करते हैं।

जब मित्व्ययिताओं से ज्यादा अमित्व्ययितायें हो जाती हैं सभी सुविधायें अपर्याप्त हो जाती हैं। प्रदूषण बढ़ने लगता है, जमीन बचती नहीं है तो काम्पलेक्स की वृद्धि रुकती है। तथा अन्य स्थानों पर नये काम्पलेक्स पनपते हैं। पाँच दशक लग जाते है ऐसा होने में तब बिखराव से संतुलित विकास व आय में समानता (Convergence) आती है।

15.2 औद्योगिक काम्पलेक्स अध्ययन

पुराने समय में तुलनात्मक लाभों के एक शहर में उपलब्ध होने व वर्तमान में उन्हें शासन द्वारा एक जगह उपलब्ध कराने से अनेक स्थानों पर औद्योगिक काम्पलेक्स हैं ज्यादातर ये काम्पलेक्स दो प्रकार के होते हैं:

(अ) एक प्रमुख बड़े उद्योग के (ancillary) उद्योग तथा पूरक complementary व आधारित supplementaru उद्योगों का एक साथ होना। (ancillary) उद्योग एक बड़े एक उद्योग के कलपुर्जे या कतिपय ऑफ-loaded कार्य अर्थात कार्य का अंश जो सुदुर्प कर दिया जायें करते हैं। अगर एक बड़ा लकड़ी उद्योग है तो उसकी बर्बाद सामग्री जैसे बुरादे से गुड़िया भरना supplementary उद्योग होगा)

(ब) कालान्तर में मुख्य लाइन से अलग अनेकानेक उद्योगों का भी वहां स्थापित होना। औद्योगिक काम्पलेक्स में भौगोलिक निकटता भी होती है। वे सभी एक औद्योगिक नगरी के रूप में आते हैं औद्योगिक काम्पलेक्स में centripetal forces प्रबल होते हैं ये वे तत्व हैं जो चारों तरफ से केन्द्र की ओर आते हैं।

कतिपय औद्योगिक काम्पलेक्स वास्तव में Locational Constants के कारण उत्पन्न होते हैं। Locational Constants वे होते हैं जो कि किसी स्थान पर कोई उद्योग शुरु हो जाता है तो वहाँ वह और पुष्ट होता रहता है मुरादाबाद में पीतल के कार्य व फीरोजाबाद में चूड़ी उद्योग Locational Constants के उदाहरण हैं।

एक स्थान पर पिंडीभूत होना औद्योगिक काम्पलेक्स की विशेष बात है और यह काम्पलेक्स तब तक पनपता रहता है जब तक कि मितव्ययितायें > अमितव्ययितायें अर्थात मितव्ययितायें अमितव्ययिताओं से अधिक रहती हैं काम्पलेक्स में snowballing effect होता है अर्थात एक बर्फीले क्षेत्र में अगर बर्फ का छोटा गोला ऊपर से नीचे लुढके तो वह बड़ा गोला बनता जायेगा। काम्पलेक्स तब तक बढ़ते रहते हैं जब तक कि अमितव्ययितायें बढ़ न जायें, जैसे

* जमीन का भाव बहुत महंगा हो जाये,
* पानी व बिजली मिलना कठिन हो जाये
* आवास की तंगी हो जाये कि बढ़ाना संभव न हो
* यातायात की गलियाँ ठस हो जायें
* संचार की लाइनें लोड न ले सकें अर्थात व्यस्त रहें,

कतिपय काम्पलेक्स के उदाहरण ये हो सकते हैं

* वनस्पति तेल, उनकी केक-खली, जमा वनस्पति तेल (डालडा, साधारण भाषा में), साबुन
* जिनिंग, सूती धागा, सूती कपड़ा,टेक्सटाइल मशीने बने बनाये (रेडीमेड) कपड़ों के कारखाने, स्टॉफ गुडियाँ

* दवायें, केमीकल्स, उनकी मशीनें संयंत्र
* स्पात, बड़ी मशीनों के कारखाने, पंप इंजिन
* काँच, काँच के बर्तन, कांच के उपकरण, बिजली का सामान
* वैगन, पटरी, रेल एंजिन, सवारी डिब्बे वातानुकूल उपकरण

औद्योगिक काम्पलेक्स ऐसे कहीं नहीं होते कि एक ही जगह सभी शक्कर के कारखाने हों।

राज्य द्वारा जो आर्थिक, सामाजिक सिरोपरी सुविधायें सृजित की जाती हैं वे उद्योगों के लिए वाह्य मितव्ययिताएं होती हैं। यह तो लेकिन सभी को प्राप्य है जो उद्योग इन्हें Internatise कर लेते हैं अर्थात् आन्तरिक मितव्ययिताएं में परिणित कर लेते हैं वे economies of state तथा economies of scope आकार की मितव्ययिताएं व बहुरुप उत्पादन की मितव्ययिताओं को भी प्राप्त करने लगते हैं। ये है बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लाभ तथा उत्पादन में विविधता या broad-banding लाने के लाभ। अगर एक उद्योग 10000 टी. वी. के स्थान पर 40000 बनाये तो यह scale में वृद्धि है अगर साथ साथ VCR, VCP computers, calculator भी बनाने लग जाये तो यह scope में वृद्धि है। औद्योगिक काम्पलेक्स में ये दोनों बढ़ते हैं।

Industrial Complexes overcome indivisibilities and the clustering first because of the external economies, till diseconomies overwhelm the economies and lead to de-agglomeration.

अर्थात उत्पादन में जो अविभाजनशीलतायें[1] होती हैं वे औद्योगिक काम्पलेक्स द्वारा विजित हो जाती हैं बाह्य मितव्ययिताओं के होने से ये काम्पलेक्स बनते हैं फिर ये काम्पलेक्स मितव्ययिताओं को जन्म देते हैं जब सभी मितव्ययितायें मिलना बन्द हो जायें व वे महंगी पड़े तो उद्योग अन्य स्थानों पर जाते हैं और पिंडीभूत नहीं होते।

15.2.1 औद्योगिक काम्पलेक्स तथा फैलाव की नीतियाँ :

औद्योगिक काम्पलेक्स 60 से 90 के दशकों में भारत सरकार व राज्य सरकारें स्वयं बनवाती रही हैं। राज्यों में औद्योगिक विकास केन्द्र बनाने के निगम बनाये। ये ऐसे स्थानों पर बनाये जहाँ से बड़े राजमार्ग गुजरते हों। जहाँ कृषि भूमि की हानि कम से कम हो, जहाँ रेलमार्ग हों या लाइनें बढ़ाई जा सकें तथा जहाँ पर पास में नदी बाँध से भरपूर पानी की व्यवस्था हो सके यहाँ पर बड़े प्लाट कम दाम पर देने के पश्चात सेल्स टेक्स रियायतें, कम ब्याज पर उधार पूंजी व्यवस्था तथा सुनिश्चित बिजली की व्यवस्थायें हों।

किसी भी राज्य में इन औद्योगिक काम्पलेक्स के आस पास उच्चतर शिक्षा (कालेज) व मेडीकल सुविधायें शासन नहीं जुटा पाया अत: बहुत ही बड़ी कम्पनियाँ तो अपने अस्पताल ICU सहित खोल पाये परन्तु सभी इकाईयाँ नहीं अत: ये काम्पलेक्स बड़े शहरों के आस पास रहे।

बाद में इन काम्पलेक्स में भी hazardous या खतरनाक उद्योगों की या प्रदूषणकारी

1. अविभाजनशीलतायें वे निवेष है जो एक मुश्त होते है टुकड़ो में नहीं ये बड़े उद्योग है वे ही पिंडीभूत होते है

उद्योगों की मौजूदगी को हटाया जाने लगा दिल्ली में ही सैकड़ों उद्योगों का relocation या पुर्नस्थापना का हुक्म सुप्रीमकोर्ट ने दिया।

औद्योगिक काम्पलेक्स आदान प्रयोग सम्बन्धी सहूलियतें जुटाते हैं तथा न्यून व्यक्तिगत व सामाजिक लागतें सुविधाजनक बनाते हैं। परन्तु वे बाजार को निकट नहीं लाते, सक्षमता से बाजार सृजन दूर-दूर तक कर सकते हैं। मध्यप्रदेश में इन्दौर व रतलाम के पास दवाओं के औद्योगिक काम्पलेक्स बने, परन्तु मान (Standard) का ध्यान न रखने के कारण अनेकानेक इकाइयाँ बन्द करानी पड़ीं या उनके उत्पाद बन्द कराये क्योंकि दवाइयाँ वास्तव में घटिया या झूठे दावे करने वाली या नकली थीं। अन्यथा काम्पलेक्स तो वे ही ठीक माने जाते है जो Good Will या ख्याति अर्जित कर पायें। अत: खतरनाक उद्योगों को विलग रूप से स्थापित किया जाने लगा है।

औद्योगिक काम्पलेक्स सर्वथा नगरीकरण को बढ़ाते है, urbanization से जनसंख्या बढ़ती जाती हैं। urbanity से वहाँ के लोगों में शहरीयत या उच्च rationality व विवेक आता है। वे अन्धविश्वासों मे मुक्त तथा समृद्धि के लिए उन्मुख होते हैं। आसपास के लोगों में urbanism या शहरी उपभोग की नकलची प्रवृति उत्पन्न करते हैं। कालमार्क्स के शब्द अगर उधार लें तो कह सकते हैं कि इन सब से Idiocy of Country life से मुक्ति मिलती है।

औद्योगिक काम्पलेक्स के लिए जरूरी है कि -

(1) उत्पादन लागतें, अन्तिम उत्पाद के वजन का न्यूनतम अनुपात हों, तथा

(2) धीरे-धीरे औद्योगिक काम्पलेक्स में आने वाले भार व जाने वाले भार की तुलना में मूल्य सृजन बढ़ता जाये।

A high co-efficient of manufacture efficiency encourages agglomeration and fortifies the industrial complexes. This co-efficient is related to index of manufacture which is the ratio of manufacturing cost to the final weight of the product. The locational weight has to be lower and lower for higher and higher value-adding. Locational weight is the total weight to be transported during the process of production. Higher weight handled at low cost also increases the manufacturing efficiency.

औद्योगिक काम्पलेक्सों में निम्न उपलब्ध रहते हैं

1. सार्वजनिक सेवायें
2. विपणन नेटवर्क
3. कन्सलटेन्सी सेवायें
4. विज्ञापन सेवायें
5. सुलभ यातायात
6. सुलभ यात्रा
7. सामाजिक सांस्कृतिक मनोरंजन

8. ट्रेनिंग सुविधायें
9. स्वास्थ्य व शिक्षा सुविधायें
10. संचार सुविधाऐं
11. बढ़ता हुआ नगरीकरण
12. तकनीक सुलभता

औद्योगिक काम्पलेक्सों के लाभ नापे नहीं जा सकते फिर भी उद्योग दर उद्योग लाभ आंके जा सकते हैं, कि यहाँ न होकर और कहीं होते तो लागत-लाभ विश्लेषण क्या होता? परन्तु समस्त लाभ -लागतें मात्र स्थानीयकरण की नहीं होती हैं वे आन्तरिक कुशलताओं का भी परिणाम होती हैं। उद्योगों के पिंड वास्तव में सामाजिक पिंड आर्थिक परिवार पिंड भी बनाते है। इनमें उन्नत आचरण, आय, उपभोग, बचतें, पूंजी निर्माण, मानवपूंजी निर्माण, वित्तीय निवेश व्यवस्था आदि का पनपना बहुत महत्वपूर्ण होता है।

15.2 अंचल क्षेत्रीय उत्पादन काम्पलेक्स के स्थानीयकरण तथा स्थानीयकरण पूर्व उनकी पहचान

Identification and location of territorial production complexes

Territorial division of labour या अंचलक्षेत्रीय श्रम विभाजन मुख्य रूप से दो तरह के होते हैं सर्वप्रथम तो वे जो specific resources या विशिष्ट संसाधनों की विशिष्टता पर आधारित हैं। तथा दूसरे वे जो कि महज इत्तेफाक या संयोग से बन जाते हैं चाहे ubiquitous या सर्वत्र पाये जाने वाले प्राकृतिक साधनों पर ही आधारित क्यों न हों।

सीमेन्ट का पत्थर जहाँ पाया जायेगा वही सीमेन्ट के कारखाने लगेंगे। सीमेन्ट के कारखाने लगभग 100 वर्षों के लिए आसपास के पत्थर अपने लिए सुरक्षित करेंगे उनके संसाधनों की हद बन जाती है। अत: अगर उसी समय भी दूसरा सीमेन्ट का कारखाना लगेगा तो वह काफी दूर होगा। अत: कई सीमेन्ट के कारखाने तो एक काम्पलेक्स में न बने परन्तु सीमेन्ट की चादरें, रेलवे स्लीपर, टंकी आदि अनेक कारखाने आसपास लग सकते हैं।

जूट का अपना agro-climatic कृषि मौसम क्षेत्र है अत: जूट के कारखाने एक स्थान पर लग सकते हैं। जैसे कलकत्ता में या सूती वस्त्रों के बम्बई, सूरत व अहमदाबाद में कपड़े के कारखानों के काम्पलेक्स।

कतिपय कच्चे माल सर्वत्र होते हैं परन्तु कम्प्यूटर व इलेक्ट्रानिक्स में बंगलौर या चूड़ी में फीरोजाबाद, पीतल के बर्तन में मुरादाबाद पीथमपुर में या पुणे में यातायात कारखाने बने यह संयोग से हुआ।

औद्योगिक काम्पलेक्स का बड़े-बड़े उद्योगों की इकाइयों का काम्पलेक्स होना जरुरी नहीं है। चंदेरी की साड़ियाँ, उदयपुर-जोधपुर-जयपुर की बंधेज की साडियाँ, धौलपुर में काँच के कार्य, सूरत में हीरों को तराशने व जेवर बनाने व कुछ हद तक जयपुर में उन्हें बनाने के

काम्पलेक्स हैं। फरीदाबाद का औद्योगिक काम्पलेक्स बाहर 'स्पेयर पार्ट' के काम्पलेक्स के रूप में ज्यादा प्रसिद्ध है।

स्थान की उपयुक्तता आर्थिक प्रणाली, सरकारों व अन्य स्थितियों पर भी निर्भर हो जाती है। पुराने जुमाने में (1921 -1991) में ये काम्पलेक्स स्थापित इस तरह हुए।

1.	यू.एस.ए	जहाँ न्यूनतम लागत थी
2.	यू.एस.एस.आर.	जहाँ उन्हें स्थापित करने का हुक्म मिला
3.	भारत 1921 - 1951	बन्दरगाहों व बड़े शहरों में, जैसे (कानपुर, दिल्ली बडे शहर) (बम्बई, मद्रास व कलकत्ता बन्दरगाह)
	भारत 1951 - 1991	बड़े राजनेताओं के चुनाव क्षेत्र में!
4.	हॉक-काँग या सिंगापुर	जहाँ जगह खाली मिली

कृषिगत वस्तुओं के Concern (कन्सर्न हम उसे कहेंगे जिसमें कि अगर सेव के बाग है, उनको उगाने की समस्त क्रियाओं के आदान एक ही फर्म बनाये, सेव के बागान भी उसी के ही, उसी के ट्रक हों जो फलों को ले जायें, उसी के कोल्ड स्टोरेज हों, उसी के रस, मुरब्बा व जैम के कारखाने हों, वही फर्म शीशी व डिब्बे बनाये आदि) भी औद्योगिक काम्पलेक्स बनाते हैं।

कतिपय काम्पलेक्सों में यातायात लागतें ज्यादा महत्वपूर्ण होती हैं जैसे

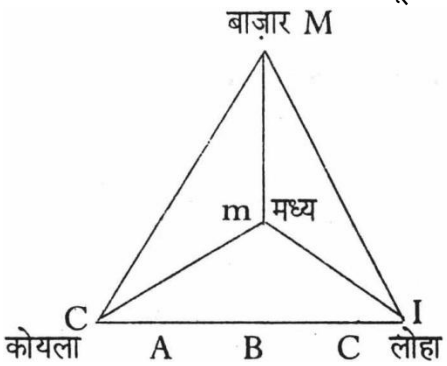

रेखा चित्र 15.1

माना कि कोयला मिलता है C स्थान पर, लोह अयस्क I स्थान पर, बाजार है M स्थान पर। इन तीनों के लगभग बराबर दूरी पर m स्थान बसा हुआ है। तीन अन्य शहर हैं जो लोहा व कोयले की दूरी के लगभग बीच में पहले से ही बसा है। C लोहे के निकट तथा A कोयले के निकट है।

ऐसे में लोहा उद्योग काम्पलेक्स A पर उपयुक्त रहेगा क्योंकि कोयला वैगनों का ढुलाई भार वजन अनुसार लोहे के बराबर हो। परन्तु मूल्यानुसार उसमें परिवहन लागतें उठाने की क्षमता कम है। इसीलिए ईंटों व घास के बाजार दूर नहीं होते। C पर जगह और खनन को छोडना होगा M सबसे महँगा m उससे कम B उससे कम तथा C उससे कम महँगा होगा ये सब A की तुलना में अनुपयुक्त हैं :

साधनों की बात अगर छोड़कर देखें तो औद्योगिक काम्पलेक्स तीन सिद्धान्तों पर स्थापित होते हैं जहाँ ये मिलें वह स्थान उचित माना जायेगा :

1. न्यूनतम लागतें - सभी तरह की; कच्चा माल, यातायात, परिवहन, श्रम, ऊर्जा, पूंजी व कुशल श्रम
2. बाजार लाभ सिद्धान्त तथा
3. अधिकतम लाभ सिद्धान्त जो वास्तव में उपरोक्त दोनों सिद्धान्तों का समावेश कर लेता है

तृतीय सिद्धान्त Umbrella या छाता सिद्धान्त हुआ। ख्याति अर्जन सिद्धान्त, आजकल का behavioural सिद्धान्त बना है, दवाइयाँ कहीं पर भी बनें परन्तु अगर कम्पनी का हैड ऑफिस मुम्बई (बम्बई) बतलायें तो दवा के नकली न होने का ग्राहकों को विश्वास बनता है जैसा कि इसी अध्याय में है न्यूनतम के साथ

यातायात/परिवहन लागतें	–	समस्त Locational weights
श्रम लागतें	–	कार्य दक्षता कम न हो
कच्चा माल	–	किस्म खराब न हो
ऊर्जा	–	सुनिश्चित हो
पूंजी	–	पूंजीगत भी उपलब्ध हो
कुशल श्रमिक	–	तकनीक तथा प्रेरणा सहित हो

कच्चे माल : में अगर सकल वजन Gross weight > pure weiggt ज्यादा है शुद्ध वजन से तो अनेक स्थानों पर प्रोसेसिंग काम्पलेक्स बनते हैं जैसे फिनोल-रुई अलग करने के काम्पलेक्स। अगर कच्चा माल शुद्ध है अर्थात् वैसा का वैसा ही प्रयोग हो सकता है तो वह बाजार के निकट काम्पलेक्स बनायेगा।

ऊर्जा : अब यह ग्रिड प्रणाली से उपलब्ध है किसी एक स्थान पर ऊर्जा बिजली निर्मित कर उसे कहीं भी पहुँचाते हैं अत: यह अब, उपलब्ध होने पर, तटस्थ घटक बन गया है।

परिवहन/यातायात का व्यय एक त्रिज्या देता है उसके बाहर दूसरा काम्पलेक्स है, अन्य बातें समान रहें तो प्रतियोगी हो सकता है।

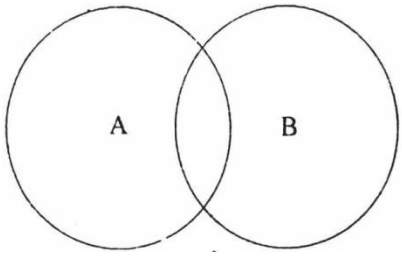

समान स्पेस न मानने से पूर्ण गोल नहीं

रेखा चित्र 15.2

'ए' (A) स्थान का काम्पलेक्स का वृत छोटा है अर्थात उसकी यातायात लागतें अधिक हैं ब (B) स्थान का वृत्त बड़ा है। शेड वाले हिस्से में तो दोनों बेच सकते हैं अन्यथा उनके बाजार अलग होंगे अगर चीज एक जैसी हो।

अगर अलग-अलग प्रकार की कारें है तो cross-transport होगा। जहाँ 'A' कार बनती है वहाँ से हजारों मील दूर बनने वाली दूसरी कार लाकर बेची जा सकती है। अलग अलग किस्म की, कीमत की वस्तुओं के काम्पलेक्स अलग ही रहते हैं। वैसे भी उन्हें अधिक जगह चाहिए। अगर यातायात/परिवहन लागतें (discriminatory) या भेदभाव पूर्ण हो जिनमें कहीं लागत से कम मूल्य लिया जाये तो (tied and specific industries become foot loose) विशिष्ट उद्योग जो कच्चे माल के निकट स्थापित होते हैं वे कहीं भी स्थापित हो सकते हैं। \

मजदूरी लागतें आजकल उद्योगों के स्थानीयकरण व औद्योगिक काम्पलेक्स के पनपने को उतना प्रभावित नहीं करती हैं। बड़े उद्योगों के अपने मजदूरी व वेतन ग्रेड होते हैं। श्रम संघों ने formal या संगठित बाजारों में मजदूरी दरें व सभी अन्य लाभों में एक रूपता लायी है। आजकल उद्योग श्रमिकों के पास नहीं जाते बल्कि श्रमिक उद्योगों के पास जाते हैं।

If market mechanism is allowed to rule or if the state intervention and direction are total, then the commulative causation makes agglomerations and complexes gain strength.

स्वतन्त्र बाजार या पूर्ण सरकारी हस्तक्षेप या हिदायत निर्देशन से ''संचयी कार्यकारण" से औद्योगिक काम्पलेक्स इसलिए पनपते जाते हैं कि वे काम्पलेक्स हैं।

15.3 ग्रोथ पोल तथा औद्योगिक काम्पलेक्स

विकास स्तम्भ नाम से ग्रोथ पोल हिन्दी में बोले जा सकते है परन्तु ग्रोथ पोल अब हिन्दी में ग्राह्य हैं

जहाँ बहुत बड़े उद्योग जो कि पिछली व अगली आर्थिक कड़ियों के कारण समस्त आस पास के अंचल क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं वे दो तरह के हो सकते हैं

Locational तथा functional : Locational poles या स्थानीयकृत बड़े उद्योग निश्चित ही अधिक उत्पादन करते हैं, रोजगार देते हैं, आय सृजन करते है और प्रभाव की कड़ियाँ बनाते हैं परन्तु अगर ऐसा एक बड़ा "स्थानीयकृत पोल'' समस्त सामान विदेशों में निर्यात करता हो तो जरुरी नहीं कि वह अन्य उद्योगों को पनपाये।

परन्तु अगर यह बहुत बड़ा उद्योग, अंचल क्षेत्र से आदान लेता है, वहाँ से घटक लेता है, वहाँ के लोगों को रोजगार देता है, उसके द्वारा निर्मित सामान उसी अचल क्षेत्र में भी उपभोग होता है तथा वह अन्य उद्योगों में आदान प्रदान करता है तो वह functional बन जायेगा।

औद्योगिक काम्पलेक्स पनपते हैंfunctional poles से या "कड़ियों के प्रभावकारी उद्योगों" से, चाहे वह आकार में locational poles से छोटे हों। प्रमुख उद्योग जो key

उद्योग कहलाते हैं वे autonomous स्वपूर्त निवेश के स्त्रोत होते हैं उनसे ही बाद में पूरक व नकल के उद्योग पनपते हैं।

औद्योगिक काम्पलेक्स जो "ग्रोथ गोल" के कारण होते हैं उन्हें industrie motrice (फ्रेंच भाषा में उद्योगों को गति देने वाला) मानते हैं औद्योगिक काम्पलेक्स की भौगौलिक सीमा चाहे छोटी हो, उसकी आर्थिक सीमा बड़ी होती है।

औद्योगिक काम्पलेक्स जो इस आधार पर बनते हैं उन्हे development axis या विकास का अक्ष मानते हैं। ये औद्योगिक काम्पलेक्स "असंतुलित विकास" को जन्म देते हैं परन्तु धीरे धीरे विकास diffuse या पिछड़े क्षेत्रों तक फैलता है। इन्हें Spreedeffects या फैलने वाले प्रभाव मानते हैं। अगर औद्योगिक काम्पलेक्स क्षेत्रों में प्रदूषण न फैलायें, Wasteland बर्बाद भूमि को जन्म न दें तथा आसपास की अर्थ व्यवस्था कर शोषण न करें तो trickle down effect होंगे, अर्थात अंचल क्षेत्र से सभी छोरों तक सुप्रभाव पहुँचेंगे अगर इसका उल्टा हुआ तो अंचल क्षेत्र में backwas effects या कुप्रभाव होंगे। औद्योगिक काम्पलेक्स ग्रोथ पोल के लिए निम्न जरुरी हैं

1) उद्योग बड़े व बहुत संख्या में हों,
2) उद्योग प्रावैगिक (dynamic) व विकासोन्मुख (sunrise) हों
3) उद्योगों के उत्पादों की आय-मांग लोच ऊंची हो
4) उद्योगों की अगली (downstream) तथा पिछली (upstream) कडियाँ सबल हों
5) नव प्रवर्तन का पिंडीकरण जारी रहे
6) विकास दर तथा स्तर (rate and levels) उँचे हों।

औद्योग़ीक काम्पलेक्स तथा ग्रोथ सेन्टर अंचल क्षेत्रों में यथा स्थिति इस तरह होती है

1. गांवों के समूह में केन्द्रीय गांव
2. अति सूक्ष्म अंचल क्षेत्र में सर्विस केन्द्र
3. सूक्ष्म अंचल क्षेत्र में ग्रोथ नोड (Growth Node)
4. बड़े अंचल क्षेत्र में विकास केन्द्र
5. वृहद अंचल क्षेत्र में ग्रोथ पोल व औद्योगिक काम्पलेक्स

Growth nodes को जो जाल मिलाता है वह growth foci बनता है। विकास केन्द्रों में ही औद्योगिक काम्पलेक्स पनपते हैं।

भारत सरकार की नीतियों के अनुसार लक्ष्य तो यह है कि हर जिला मुख्यालय में एक ग्रन्थों सेन्टर या विकास केन्द्र हो। विकास केन्द्र मात्र औद्योगिक नहीं होता, यहाँ पर साख, उत्पादन के आदान, संचार, यातायात, परिवहन, प्रशासन सम्पर्क, भंडारण व विपणन की सेवायें भी मिलती हैं यहाँ पर extension technology भी मिलती है।

औद्योगिक पोल हर जिले में सम्भव नहीं है। परन्तु हर कमिश्नरी में एक होना चाहिए। एक बड़ा काम्पलेक्स जरुरी नहीं कि जिला या कमिश्नरी मुख्यालय में हो वह किसी अन्यत्र स्थान पर भी हो सकता है।

An industrial complex must not act as a suction pump of the hinterland but as a “guide post” of development.

औद्योगिक काम्पलेक्स ज्यादातर निजी व सहकारी क्षेत्र के होते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग काम्पलेक्स के रूप में विकसित नहीं होते हैं वे अपने आप में एक स्क्यूरिटी जोन बन जाते हैं। अधिकतर सार्वजनिक उद्योग, एकाधिकारी उद्योग के रूप में ही पनप पाते हैं। औद्योगिक काम्पलेक्स में तो प्रतियोगी औद्योगिक इकाइयाँ रहती हैं।

औद्योगिक काम्पलेक्स के पनपने का मुख्य कारण सभी सिरोपरी सुविधाओं का एक जगह होना है। इन सुविधाओं का विस्तार जहाँ अमित्व्ययी होता है वहाँ dispersal या बिखराव नहीं होता। जैसे पानी की लाइनें बहुत दूर-दूर लम्बी (शहरों के अतिरिक्त) ही ले जायी जाती है औद्योगिक काम्पलेक्स में एक ही लाइन के उद्योग या एक ही आकार के उद्योग होना जरूरी नहीं है।

> ऐसे अनेक औद्योगिक काम्पलेक्स आज अनेक राज्यों में हैं जो कि शहर नहीं बन पाये हैं उन industrial estates में कारखाने हैं, बैक हैं, उन्नत संचार व भंडारण सुविधायें हैं परिवहन व यातायात के साधन आते हैं तथा उनकी मरम्मत की वर्कशाप हैं। होटल, गेस्ट हाउस व केन्टीन होते है परन्तु उस क्षेत्र से बाहर निकलो तो आस पास गाँव होते हैं ऐसे औद्योगिक काम्पलेक्स ग्रोथ सेन्टर नहीं होते।

15.4 सारांश

* कतिपय प्राकृतिक कारण (कच्चे माल का एक अंचल क्षेत्र में ही प्राप्त होना) ऐसे होते हैं कि औद्योगिक काम्पलेक्स विशिष्ट अंचल क्षेत्रीय ही रह जाते हैं जैसे प. बंगाल में जूट के काम्पलेक्स जो औद्योगिक एस्टेट जैसे न हों परन्तु हैं काम्पलेक्स प्रकृति के।
* काम्प्लेक्स में अनेक अलग प्रकार के उद्योग होते हैं परन्तु कभी-कभी एक ही प्रकार के प्रतियोगी उद्योग हो सकते हैं। सूरत में डायमंड कटिंग का काम्पलेक्स माना जा सकता है।
* अधिकतर औद्योगिक काम्पलेक्सों में कतिपय बड़े और अनेक पूरक तथा सहायक उद्योग होतेहैं।
* औद्योगिक काम्पलेक्स आजकल सरकारी नीति के अन्तर्गत औद्योगिक एस्टेट्स में स्थापितहोते हैं। पुराने जमाने में वे स्वत: "तुलनात्मक लागत लाभ" के कारण स्थापित होते हैं। हर स्थिति में वे असंतुलित विकास को जन्म देते हैं।

  मित्व्ययिताओं का होना औद्योगिक काम्पलेक्सों को जन्म देता है और जब ये सिरोपरी सुविधा मित्व्ययितायें, अमित्व्ययिताओं में बदलने लगाती हैं तो अन्य स्थानों पर काम्पलेक्स उभरते हैं। अगर सम्पूर्ण भौगोलिक स्पेस/अंचल क्षेत्र मे dotted हो जायें या स्थापित हो जायें तो संतुलित विकास की तरफ अग्रसर होते हैं।

जब औद्योगिक काम्पलेक्स बहुत कम स्थानों में केन्द्रीयकृत रहते हैं तो आय में असमानतायें, जिसे अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र में divergence कहते हैं होती है। जब इनका बिखराव होता है अर्थात संख्या बढ़ती जाती है तो आय में अन्तर कम होते हैं व बराबरी आती है यह convergence होती है।

"Locational Constant" तथा "centripetal forces" (जिनको समझाया गया है) औद्योगिक काम्पलेक्सों को जन्म देते हैं व पुष्टिकृत करते हैं। काम्पलेक्स के समस्त सुप्रभाव व कुप्रभाव snowballing effect होते हैं।

औद्योगिक काम्पलेक्स में "आकार" व "प्रकार" की मितव्ययितायें/लाभ (economies of scale and economies of scope) सृजित होती है। खतरनाक उद्योगों के काम्पलेक्स नहीं बनते काम्पलेक्स के उद्योग ख्याति प्राप्त करते हैं। कुछ, काम्पलेक्स, घटिया चीजें बनाने से टूट गये हैं।

यातायात, परिवहन, कच्चा माल, साख, श्रम, तकनीक, संचार सुविधा, शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य सेवायें, प्रशासनिक तन्त्र की उपलब्धि इन काम्पलेक्सों को जन्म देते हैं। ये काम्पलेक्स ubiquitous या specific (सर्वत्र पाये जाने वाले या एक ही स्थान पर पाये जाने वाले) कच्चे माल किसी के हो सकते हैं। कृषि-मौसम कच्चे माल के काम्पलेक्सों भी बन सकते हैं।

जो कच्चे माल कम मूल्य के व भारी होते है काम्पलेक्स उनके पास बनते हैं। आजकल umbrella सिद्धान्त (समझाया गया) भी इनको जन्म दे रहा है। यातायात व्यय इन काम्पलेक्स की वस्तुओं के बाजार की परिधि बनाते हैं।

ग्रोथ पोल से काम्पलेक्सों का जन्म होता है तथा काम्पलेक्सों में से ग्रोथ पोल का उदय हो सकता है। काम्पलेक्स के सुप्रभाव अगर अंचल क्षेत्र के अन्दर अगली व पिछली कड़ियों के रूप में जायें तो अंचलक्षेत्रीय विकास होगा। कतिपय "ग्रोथ सेन्टर" स्थानों पर भी औधोगिक काम्पलेक्स बन जाते हैं और कालान्तर में ग्रोथ पोल बन सकते हैं, आधी सदी में तो growth nodes भी काम्पलेक्स में बदल सकते हैं।

15.5 शब्दावली

1) Ancillary Industries	अन्य मुख्य उद्योगों के लिए उप उत्पादन बनाने वाला उद्यम जिस पर off load होता है या कार्य दिया जाता है।
2) Agglomeration	उद्योगों का एक स्थान पर पिंडीभूत होना
3) Complementary Industries	जैसे कपड़े के लिए धागा उद्योग।
4) Concern	ऐसी खड़ी मालकियत-उत्पादन व्यवस्था जिसमें किसी कार्य की पिछली व अगली कड़ियाँ सुनिश्चित व समन्वित एक ही मालकियत में हों।

5) Convergence	आय के अन्तर कम होना तथा उनके एकरूपता की ओर आना।
6) Deagglomeration	उद्योगों का पिंडीभूत अवस्था से विकेन्द्रित होना या दूर दूसरी जगह नया पिंडीभूत औद्योगिक काम्पलेक्स बनना।
7) Divergence	आय का असमान होना।
8) External economies and Diseconomies	बाह्य मितव्ययितायें (सामाजिक/आर्थिक सिरोपरी सुविधायें) वे हैं जो उद्योग को स्वयं के व्यय के बगैर मिलती हैं सड़कें,संचार सुविधायें, बैंकिंग सेवा, बिजली, पानी, शिक्षा व स्वास्थ्य संस्थायें इनसे उद्योग का उत्पत्ति नियम (लागतों का नियम) प्रभावित नहीं होता क्योंकि वे सबको एक समान प्राप्त हैं परन्तु अगर अलग उद्योगों के process of external economies भिन्न हैं तो फर्क पड़ेगा अगर सड़क इतनी congested या ट्राफिक अवरुद्ध हो जाये कि निकासी दुर्लभ हो तो मित्व्ययिता का परिवर्तन अमितव्ययिता में हो जायेगा।
9) Industrial Complex	ये एक वस्तु, अनेक वस्तुओं, पूरक व सम्बंधित वस्तुओं के पिंड अनेक उद्योगों का एक औद्योगिक बस्ती में या शहर में या क्षेत्र में होना अधिकतर ये उद्योग पूरक व सहयोगी होते हैं।
10) Locational Constant	पुराने औद्योगिक स्थान पर ही नये उद्योग लगना।
11) Locational pole	बड़ा उद्योग जो भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हो परन्तु अगर उसके अगले व पिछले प्रभाव व कड़ियाँ (रोजगार, व आय पर) अधिक हो तो वह functional pole भी होगा।
12) Locational triangle	एक तरफ बाजार दूसरी तरफ महंगा आदान, तीसरी तरफ सस्ता परन्तु भारी आदान हो तो तीसरे स्थान के निकट उद्योग स्थापना का चित्र निरुपण।
13) Supplementary industries	सहायक उद्योग जो सामान्यतया: एक उद्योग के waste पर भी आधारित होते हैं।
14) Snowballing effect	एक छोटी शुरुआत बलवती होती रहे।
15) Territorial complex	जैसे बंगाल में जूट के कारखानों का पिंड जैसे बंगलौर

and territorial division of labour	में एलेक्ट्रानिक उद्योगों का पिंड।
16) Ubiquitous resources	इनको सभी जगह पाते हैं ऐसे उद्योग पिंडीभूत न होकर footloose या कहीं भी स्थापित हो सकते हैं।

15.6 स्वअध्ययन प्रश्न व अभ्यास

1. आप अपने राज्य में या अपने अंचल क्षेत्र के आसपास के औद्योगिक काम्पलेक्स की औद्योगिक इकाइयों का आकार व प्रकार व उनके सह सम्बन्धों पर स्वयं देखकर समालोचना लिख सकते हैं।

   कार्यकारक घटक जिन्होंने औद्योगिक काम्पलेक्स को शुरू किया व रखा उन पर लिख सकते हैं।

   औद्योगिक काम्पलेक्स के spread effects सुप्रभाव विकासकारी व दुष्प्रभाव अध्ययन कर सकते हैं।

   इन्हीं को प्रश्न रूप में पूछ सकते हैं।

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Richardson : Regional Economics Reader
2. International Economic Association
   "Regional Policy for Ever"
3. Vickerman : Spatial Economic Behaviour
4. Richardson : Regional Growth Theory.
5. Weber : Location Theory
6. O.S.Srivastava : Regional Economics

इकाई 16
बहुस्तरीय नियोजन : इंटेरेटिव प्रक्रम का उपयोग लांगे के मॉडल का परिचय

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 नियोजन
16.3 लांगे का मॉडल
16.4 सारांश
16.5 शब्दावली
16.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
16.7 निबन्धात्मक प्रश्न

16.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य बहुस्तरीय नियोजन से आपका परिचय कराना है।

16.1 प्रस्तावना

आर्थिक नियोजन कई प्रकार का होता है। उसका मूल अभिप्राय राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके सामान्य जीवन स्तर में सुधार करना है। यह प्रति व्यक्ति की वास्तविक आय से आंकी जाती। समय बद्ध नियोजन के द्वारा देश अथवा प्रदेश में उपलब्ध साधनों का विकास, उनका उचित उपयोग व उत्पादन में वृद्धि करके सामान्य जीवन स्तर में सुधार करना है। यह मात्र गुणाक क्रिया नहीं है बल्कि स्वाभाविक वृद्धि का विकासोन्मुखी नियन्त्रण है। इसमें अर्थव्यवस्था की उन्नति के साथ-साथ सामाजिक न्याय, कल्याणकारी राज्य व प्रादेशिक सन्तुलन की समन्वयता निहित है।

यह एक अनवरत प्रक्रिया है जिसमें बारम्बार जांच व भूल-सुधार विधि द्वारा नियोजन के आकार, संरचना, अवधिःप्रबन्धन के परिणामों का पुनरावलोकन होता है। इस प्रक्रिया को इंटरेटिव प्रकार या दुहराने की क्रिया कहते हैं। यह क्रिया नियोजन में व्यय व लोगों के विश्लेषण से होती है। वृद्धि का मॉडल, समिष्ट, क्षेत्रीय, अन्त:-उद्योगी व सन्तुलित होता है।

16.2 नियोजन

एक सन्तुलित नियोजन में सभी क्षेत्रों व सामाजिक स्तरों में समान अनुपात में विकास के लिए निवेश उपभोग व आय समान दर से बढ़ाती है। यह निर्धनता के कुचक्र को दूर करता है । मुख्य सन्तुलन घरेलू व विदेशी निवेश व व्यापार में रखा जाता है। सरकार के हस्तक्षेप द्वारा केंद्रीय व क्षेत्रीय निगमन, उत्पादन, संसाधन उपयोग व उपलब्धता पर पूर्ण रूप से नियंत्रण रहता है। भारतीय योजना आयोग के अनुसार आर्थिक नियोजन सामूहिक उद्देश्यों के हितार्थ उपलब्ध संसाधनों के संगठन तथा लाभजनक रूप से उपयोग करने का एक ढंग है।

इसमें समन्वित विकास एक पूर्व निश्चित सामाजिक, प्रादेशिक, राष्ट्रीय, पर्यावरणीय, सांस्कृतिक परम्पराओं व जीवन वैभव इतिहास के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होता है। सामाजिक कल्याण की भावना जनता के अधिकतम सहयोग के लिए होती है। समयबद्ध नियोजन आय, अवसर, रोजगार व समृद्धि की समानता लाती है।

3. बहुस्तरीय नियोजन :

जब नियोजन का मूल दृष्टिकोण प्रादेशिक स्तरों में आका जाता है तो उसे बहुस्तरीय नियोजन कहते हैं। इसमें मुख्य तीन स्तर होते हैं -

1. राष्ट्रीय या केन्द्रीय स्तर :

इसमें सम्पूर्ण देश का राष्ट्रीय स्तर पर नियोजन किया जाता है। छोटे व सामाजिक-सांस्कृतिक एकीकृत राज्यों में केन्द्रीय स्तर की पद्धति अपनाई जाती है जैसे पोरोध (लक्जेम वर्ग) एशिया (सिंगापुर) व अफ्रीका (ट्यूनीसिया) के नवविकसित छोटे देश।

2. प्रादेशिक-बहुस्तरीय नियोजन :

देश को अनेक प्रादेशिक इकाईयों में विभाजित करके प्रत्येक, इकाई के लिए अलग-अलग नियोजन उद्देश्यों, प्राथमिकताओं, क्रियान्वयन विधि और संसाधन वितरण द्वारा बहुस्तरीय नियोजन होता है, भारत इसका मुख्य उदाहरण है, भारत में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक साधन-उपलब्धता व रीतिरिवाजों में इतनी असमानतायें है कि सभी क्षेत्रीय इकाईयों के लिए एक योजना उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती है। यह नियोजन क्षेत्र की विशेष समस्याओं, स्थानीय आवश्यकताओं एवं जनमत की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए होता है। प्रादेशिक स्तर क्रमशः- सम्पूर्ण देश, प्रान्त, जनपद, जिला-तहसील, परगना, ब्लॉक व ग्राम है। नियोजन का कार्यान्वयन उपर से नीचे या नीचे से उपर दोनों ही सम्भव है।

बहुस्तरीय नियोजन के मुख्य लक्षण :

(i) राष्ट्रीय नियोजन का एक अंग होता है।

(ii) आय-व्यय व संसाधन का आवन्टन स्वतंत्र रूप से होता है।

(iii) सभी खण्ड की योजनाओं में खण्डीय (सेक्टोरल) प्रावधान समानता व आवश्यकता के सिद्धान्त पर होता है।

(iv) योजनाओं के निर्माण, संचालन, व कार्यान्वयन नीति एकीकृत व समन्वित होती है।

3. सूक्ष्म - स्तरीय क्षेत्र विकास नियोजन:

(माइक्रो - लेवल एरिया डेवलपमेन्ट प्लान) जब किसी सूक्ष्म प्रदेश के विकास में कोई धरातलीय या सामाजिक समस्या होती है तो उसका नियोजन मूल रूप से उस समस्या को दूर करने का होता है। ऐसे नियोजन जड़-स्तरीय (ग्राम-रूट लेवल) के होते हैं। उदाहरण स्वरूप कमाण्ड एरिया विकास नियोजन में मुख्य समस्या किसी नदी घाटी से प्राप्त जल व विद्युत के नियोजित वितरण की होती है। भारत में दामोदर घाटी योजना, भाखड़ा-नांगल योजना, हीराकुण्ड योजना, नर्मदा घाटी योजना, तुंगभद्रा योजना, इन्द्रागांधी नहर परियोजना आदि में मूल समस्या

नहरों द्वारा नियमित सिंचाई करना है। इसी प्रकार विश्व में अमेरिका की टेनेसो घाटी परियोजना भी एक सूक्ष्म स्तरीय क्षेत्र विकास योजना है।

सिंचाई के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी सूक्ष्म-क्षेत्रीय समस्यायें होती हैं। उनके लिए योजना का उद्देश्य समस्या निवारण होता है, उदाहरणार्थ मण्डी नगरों के लिए मार्केट प्लान, नगर वृद्धि नियोजन (मेट्रोपॉलिटन प्लानिंग) जन जातीय क्षेत्र नियोजन, पुनर्वास नियोजन (जैसे दण्डकारण्य प्रोजेक्ट), कृषि-भूमि-उपयोग नियोजन, औद्योगिक अन्त: संरचना (इन्फ्रा स्ट्रक्चर) नियोजन, राष्ट्रीय प्रदेश नियोजन (जैसे दिल्ली और लन्दन के नेशनल कैपिटल रीजन प्लान) नगर-ग्राम उपान्त नियोजन (अरबन फ्रिज प्लानिंग), विकास ध्रुव (प्रमुख नगर), विकास केन्द्र (प्रादेशिक नगर), विकास बिन्दु (उपप्रादेशिक नगर), सेवा केन्द्र (सर्विस सेन्टर), केन्द्रीय ग्राम अथवा ग्राम का नियोजन।

4. अन्य प्रकार के नियोजन :

1. अवधि के अनुसार नियोजन अल्पकालीन, दीर्घकालीन तथा दृश्य मूलक (पर्सपेक्टिव प्लान) होती है। अल्पकालीन नियोजन किसी तत्कालीन समस्या के निवारण के लिए की जाती है। इसमें सामाजिक या आर्थिक संरचना में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती जैसे सितम्बर 1998 में उत्तरी भारत में मिलावटी तेल से उत्पन्न समस्या का निवारण। दीर्घकालीन नियोजन में किसी पूर्व निश्चित, आर्थिक व सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति हेतु संस्थागत परिवर्तन अवश्य होता है। जैसे जमीन्दारी-उन्मूलन के द्वारा दलितों और पिछड़े वर्गों का विकास। दृश्यमूलक नियोजन अन्तिम उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए दिशा निर्देशात्मक होता है। जैसे बीस वर्षीय समन्वित नियोजन।
2. अतंरवस्तु के अनुसार नियोजन, आर्थिक अथवा विकासोन्मुख होता है। जो देश आर्थिक दृष्टि से समृद्धशाली होते हैं वहां सामाजिक पूंजी व औद्यौगिक आधार के सभी साधन उपलब्ध होते हैं। वहां मात्र आर्थिक नियोजन किया जाता है। जैसे यूरोप व अमेरिका में। विकासोन्मुख नियोजन की आवश्यकता अन्त:संरचना व सामाजिक आधार को मजबूत बनाने के लिए होती है। देश में अर्थव्यवस्था के सर्वोमुखी विकास, सामाजिक समानता, क्षेत्रीय सन्तुलन व गरीबी निवारण के कार्यक्रम बनाये जाते हैं।
3. संगठनात्मक दृष्टिकोण से नियोजन निर्देशक (इन्डीकेटिव) अथवा नियोजक (इम्पेरेटिव) होता है। निर्देशक नियोजन में वृद्धि स्वत: बाजार की शक्तियों, मांग व पूर्ति द्वारा सन्चालित होती है। जैसे अमेरिका व यूरोप की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था। नियोजक नियोजन में राज्य द्वारा पूर्ण अथवा पार्थिव नियन्त्रण रहता है जैसे रूस, चीन व भारत में।
4. उपागम (एप्रोच) के दृष्टिकोण से नियोजन मानकी (नॉर्मेटिव) अथवा तंत्रीय (सिस्टम) होता है। मानकी नियोजन एक मौखिक कार्यक्रम की आदर्श अवस्था है। योजना का कार्यान्वयन कार्य पालिका पर रहता है। तंत्रीय नियोजन एक सामाजिक प्रक्रिया है। कार्यक्रम की व्यवहारिक उपादेयता का भी पूर्ण ध्यान रखा जाता है। देश की सामाजिक समर्थता के अनुसार नियोजन होता है।

5. क्षेत्रानुसार नियोजन खण्डीय (सेक्टोरल) अथवा स्थानिक (स्पेशियल) होता है। खण्डीय नियोजन में सभी आर्थिक क्षेत्रों का सन्तुलित विकास होता है जैसे कृषि, व उद्योग, यातायात, व्यापार, संचार, शक्ति व जल साधन तथा शिक्षा व सेवायें। स्थानिक व नियोजन में विकास के साथ-साथ प्रादेशिक सन्तुलन, पर्यावरण विचार तथा भौतिक व सांस्कृतिक कारकों का भी ध्यान दिया जाता है।
6. कार्यान्वयन स्तर के अनुसार नियोजन केन्द्रीय अथवा विकेन्द्रीय होता है जिसे क्रमश: ऊपर से क्रियान्वित और नीचे से क्रियान्वयन की पद्धति कहा जाता है। जो कार्यक्रम आधारतल से बनकर आते हैं उनका समायोजन नीचे से ही उचित होता है।

16.3 लांगे का मॉडल :

नियोजन में सामाजिक समानता के सिद्धान्त का समावेश आस्कर लांगे ने अपनी पुस्तक "एकोनोमिक्स ऑफ सोशलाईजेशन" में किया था। एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतिस्पर्धा की प्राप्ति राज्य द्वारा की जाती। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा से यह भिन्न है, अधिक उत्पादन व तकनीकी विकास के लिए प्रतिस्पर्धा आवश्यक है। परन्तु एक व्यक्ति या समूह विशेष में आय का संग्रहण न करके लांगे के मॉडल में समूर्ण देश की कुल आय राज्य को प्राप्त होती है। राज्य नियोजन के द्वारा उस आय का पुनर्वितरण करता है। यह आय के खर्च का सामाजिक पहलु है। पुनर्वितरण के कुछ सिद्धान्त है जैसे विभिन्न स्तर की टैक्स प्रणाली, उपभोग में नियंत्रण, विनाशकारी प्रतिस्पर्धा में रोक, मूल्य व सेवाओं में आर्थिक सहायता, राशन व्यवस्था, मुफ्त शिक्षा, स्वास्थ्य सेवायें व मूल आवश्यकता (बेसिक नीड) की राज्य द्वारा उपलब्धता।

लांगे का सामाजिक-आर्थिक सिद्धान्त मार्शल व पींगू के कल्याणकारी अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त के समरूप है, लांगे ने कल्याणकारी राज्य (वेल्फेयर स्टेट) के लिए निम्नलिखित उपाय बतलाये हैं -

1. जनता में अधिकतम सामाजिक कल्याण।
2. सामुहिक मानव शक्ति का विकास।
3. पदार्थों व सेवाओं का समन्वय।
4. पारितोषिक व हर्जाना देने का सिद्धान्त।
5. उपयोगिता की अन्तः व्यक्तीय तुलना।
6. पूँजी व सम्पत्ति का पुनर्संगठन।
7. मूल्य-सूचि-निर्देश-कसौटी (प्राइस वं इन्डेक्स-क्राईटेरिया) का प्रयोग। एक ही वस्तु अमीरों को महंगी और गरीबों को सस्ती मिलने का निर्देश (विभेदीय मूल्य प्रणाली)
8. उत्पादन में स्थानापन्नता की दर का न्यूनतम प्रयोग।
9. लांगे के मॉडल को पैरेन्टो, बैरोन, व डिकिन्सन व टेलर ने एक राज्य स्तरीय पूर्ण स्पर्धा का प्रतिरूप माना है।
10. राज्य द्वारा पूर्ण आर्थिक नियंत्रण जिसमें उत्पादन, उपभोग, वितरण व विनिमय सभी तत्व सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

11. पदार्थों की अधिकतम गतिशीलता।
12. उत्प्रेरकों व अनउत्प्रेरकों (डिसइन्सेन्टिव) द्वारा उत्पादन-व्यापार प्रभावित करना।
13. सब के लिए पूर्ण लाभ कारी नियोजन।
14. आय का पुनर्वितरण।
15. अवसर की समानता।
16. व्यापारिक प्रतिबन्ध का विद्यान।
17. लाइसेन्स का विद्यान।
18. व्यापार में राज्यं का नियंत्रण।
19. अहितकारी "प्रतिस्पर्धा में" रोक।
20. प्रादेशिक असन्तुलन में कमी।
21. रोजगार के अवसरों में वृद्धि।
22. व्यक्तिगत भौतिक अवस्था में सुधार।
23. प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि।
24. प्रति व्यक्ति उपभोक्ता पदार्थों व सेवाओं में वृद्धि।
25. सामाजिक सन्तोष में वृद्धि।
26. पदार्थों का अन्तर-प्रादेशिक पुनर्स्थापन।
27. एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना।

16.4 सारांश

बहुस्तरीय नियोजन आर्थिक संगठन की एक पद्धति है। यह राष्ट्रीय संसाधनों का तांत्रिक समन्वय है। सामाजिक प्राथमिकताओं के अनुसार साधनों का विवेकपूर्ण वितरण है। सभी साधनों का परीक्षण, लक्ष्य निर्धारण और आर्थिक-सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति एक निश्चित अवधि में की जाती है। राष्ट्र के समस्त वर्तमान और सम्भाव्य साधनों के कुशल उत्पादन और उपभोग से आर्थिक दशा में सुधार होता है। देश के सभी निवासियों से पूर्ण समर्थन मिलता है। इसके द्वारा वे सभी आर्थिक उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते हैं। जो पूँजीवादी उार्थव्यवस्था की देन हैं जैसे अधिकतम उत्पादन, वैज्ञानिक व तकनीकी प्रयोग, श्रमिक कुशलता, नवीनतम तांत्रिक ज्ञान, योग्य और साहसी कार्य प्रणाली, श्रमिक प्रबन्धन, पूर्ण-प्रतिस्पर्धा, बड़े पैमाने की उत्पादन मितव्ययता, नवीन उद्योगों का सृजन, मौद्रिक स्थिरता, विनियोग की वृद्धि, घरेलू बचत, विदेशी मुद्रा, आगमन, सरकारी बचत, मुद्रा प्रसार, विवेकीकरण और वैज्ञानिक प्रबन्धन। इन लाभों के अतिरिक्त जन शक्ति का भी उचित अवशोषण होता है। अविकसित या अर्धविकसित क्षेत्रों की समस्यायें सुलझती हैं, विदेशी बाजारों व साधनों के प्रभुत्व की समाप्ति होती है। बिना विदेशी सहायता के आर्थिक स्वावलम्बन व सुरक्षा का वातावरण बनता है। सामाजिक उद्देश्यों के कारण आय व रोजगार के अवसर समान हो जाते हैं। सामान्य जीवन स्तर में सुधार होता है। सामाजिक सुरक्षा, वृद्धावस्था, मृत्यु व बीमारी में पूर्ण-क्षतिपूर्ति होती है। इसमें सामाजिक सुधार, देशव्यापी शिक्षा का प्रसार, रूढ़िवाद की समाप्ति मलिन बस्तियों की समाप्ति, साफ सुथरे

निवास गृहों की वृद्धि होती है। भारतीय नियोजन में भी इन सिद्धान्तों का समावेश किया गया है। फलत: सभी खण्डीय खर्चों में एक सन्तुलन रखा जाता है। निम्नलिखित आंकड़ों से आठवीं पंच वर्षीय योजना (1992-97) के क्षेत्रवार उद्देश्यों का आभास मिलता है।

भारत की आठवी पंचवर्षीय योजना मे विभिन्न क्षेत्रों में व्यय (1992-97)

क्र.सं	सेक्टर खण्ड क्षेत्र	सकल मूल्य वृद्धि 1992-97	सकल घरेलू उत्पादन में खण्ड का प्रतिशत 1996-97	खण्डवार पूंजी निवेश का प्रतिशत 1992-97
1.	कृषि	3.1	24.6	18.6
2.	खनन	8.0	2.3	5.0
3.	विनिर्माण	7.3	23.3	23.6
4.	विद्युत गैस, जल	7.8	2.7	12.8
5.	निर्माण	4.7	4.9	2.6
6.	परिवहन	6.7	6.2	11.0
7.	संचार	6.1	1.2	3.3
8.	सेवायें	6.0	34.8	23.1
	योग	5.6	100	100

16.5 शब्दावली

राष्ट्रीय आय – नेशनल इनकम
स्वाभाविक वृद्धि – ग्रोथ
विकास – डेवलेपमेण्ट
गुणांक – मल्टीप्लायर
सामाजिक न्याय – सोशल जस्टिस
क्षेत्रीय सन्तुलन – रीजनल बैलेंस
समष्टि मॉडल – एग्रीमेंट मॉडल
खण्डीय मॉडल – सेक्टोरल मॉडल
अन्त: उद्योग मॉडल – इन्टर-इण्डस्ट्री मॉडल
सन्तुलित वृद्धि – बैलेन्स्ड ग्रोथ
सन्तुलित विकास – बैलेन्स्ड डेवलपमेन्ट
निर्धनता का कुचक्र – पॉवरटी-सिन्ड्रोम
केन्द्रीय नियोजन – सेन्ट्रल प्लानिंग
क्षेत्रीय नियोजन – रीजनल प्लानिंग
आर्थिक नियोजन – एकोनोमिक प्लानिंग
आर्थिक प्राथमिकता – सोशल प्रापरटी

बहुस्तरीय नियोजन	–	मल्टी-लेवेल प्लानिंग
मूल्य नियंत्रण	–	प्राईस कन्ट्रोल
खर्च	–	इन्वेस्टमेण्ट
विनाशकारी प्रतिस्पर्धा	–	वेस्टफुल कम्पटीशन
कल्याणकारी राज्य	–	वेलफेयर स्टेट
क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त	–	प्रिन्सिपुल ऑफ कम्पेन्सेशन
मूल्य सूचनाक कसौटी	–	प्राईस इन्डेक्स क्राईटेरिया
विभिन्न मूल्य दर	–	डिफरेंशियल प्राईसिंग
स्थानान्तरण की न्यूनतम दर	–	मार्जिनल रेट ऑफ सबस्टीच्यूशन
पूर्ण-स्पर्धा	–	परफेक्ट कम्पटीशन
जीवन स्तर	–	स्टैण्डर्ड ऑफ लिविंग
प्रति व्यक्ति आय	–	पर-कैपिटा इन्कम
मौद्रिक स्थिरता	–	मौनीटरी स्टेबिलिटी
विवेकीकरण	–	रैशनलाईजेशन
मुद्रा-प्रसार	–	इन्फलेशन
विनियोजन वृद्धि	–	ग्रोथ ऑफ इनवेस्टमेंट
संवृद्धि	–	प्रोस्पेरिटी
आधुनिकीकरण	–	मॉडर्नाईजेशन
आत्म निर्भरता	–	सेल्फ-सफीसियेन्सी
अल्पकालीन नियोजन	–	शॉर्ट-टर्म-प्लानिंग
दीर्घ कालीन नियोजन	–	लांग-टर्म प्लानिंग
दृश्य मूलक नियोजन	–	पर्सपेक्टिव प्लानिंग
विकासशील नियोजन	–	डेवलॉपमेन्टल प्लानिंग
नियोजक नियोजन	–	इम्परेटिव प्लानिंग
निर्देशक नियोजन	–	इन्डिकेटिव प्लानिंग
मानकी नियोजन	–	नार्मेटिव प्लानिंग
तंत्रीय नियोजन	–	सिस्टेम्स प्लानिंग
खण्डीय नियोजन	–	सेक्टोरल प्लानिंग
स्थानीय नियोजन	–	स्पेशियलप्लानिंग
सूक्ष्म स्तरीय नियोजन	–	माइक्रोप्लानिंग
क्षेत्र विकास	–	ऐरिया डेवलॉपमेण्ट
संसाधन-नियोजन	–	रिसोर्स डेवलॉपमेण्ट
संस्थानिक नियोजन	–	इन्स्टीच्यूशनल प्लानिंग
अन्त: संरचना नियोजन	–	इन्फ्रास्ट्रक्चरल प्लानिंग

वृहद नगर नियोजन	–	मेट्रोपॉलिटन प्लानिंग
राष्ट्रीय राजधानी प्रदेश	–	नेशनल कैपिटल रीजन

16.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Bhandari,K.G. and S.P. Jauhari	Bharat Men Arthic Niyojan evam Pragati Ke Sidhant. Laxmi Narain Aggarwal,. Agra, 1990
Lange, Oskar and D.M. Tylor	On the Economic Theory of Socialization New Delhi, Tata Mac-Graw, 1979
Shrivastava, O.S.	The Economics of Development and Planning,Vikas, Delhi. 1988
Lewis, W. Arthor	Principles of Economics Planning, George Allen and Unwin, New York, 1971
Misra, R.P.	K.V. Sundaram and V.L.S. Prakasa Rao- Regional Development Planning in India. Vikas New Delhi, 1990
Mahalanobis, P.C.	Talks on Planning, New Delhi, 1950
Rao, V.K.R.V.	Essays in Economic Development, New Delhi,1960
Timbergen, John	Economic Planning New York, 1970

16.7 निबन्धात्मक प्रश्न :

1. विभिन्न प्रकार के आर्थिक नियोजन का विश्लेषण करते हुए बहुस्तरीय नियोजन की समीक्षा कीजिये।
2. लांगे के सामाजिक नियोजन की विवेचना कीजिए।
3. इंटेरेटिव प्रक्रम क्या है? राष्ट्रीय नियोजन में इसकी भूमिका की समीक्षा कीजिए।

इकाई 17

ग्रेविटी (गुरूत्वाकर्षण) मॉडल तथा अन्तर अंचल क्षेत्रीय प्रवाह का निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 ग्रेविटी मॉडल

17.3 अन्तर अंचलक्षेत्रीय वस्तु बहाव

17.4 अन्तर-अंचल क्षेत्रीय सेवाओं के प्रवाह

17.5 सारांश

17.6 शब्दावली

17.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.0 उद्देश्य

ग्रेविटी मॉडल, प्रवास आकर्षण का मॉडल है। यह बतलाता है कि प्रवासी क्यों प्रवास करते हैं। इसमें उन कारणों का उल्लेख है जो प्रवासी को "खींचते" हैं, उनका नहीं है जो धकेलते हैं। इस अध्याय का प्रमुख उद्देश्य यह बतलाना है कि

1. इस मॉडल ने क्या व्याख्या की है।
2. अन्य मॉडलों की तुलना में यह कितना महत्वपूर्ण है और कितना नहीं है। अन्य मॉडलों को समझाना।
3. कतिपय प्रवास मापों से उदाहरण भी प्रस्तुत करना।
4. अन्तर अंचलक्षेत्रीय वस्तुओं के प्रवाह या आने-जाने का अर्थशास्त्र अध्ययन करना।
5. अन्तर अंचलक्षेत्रीय सेवाओं का प्रवाह अध्ययन करना।
6. परिणामों से कैसे नीति परक बिन्दु निकालें।

17.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र में उपभोग व उत्पादन के बीच विनिमय, व्यापार तथा प्रवाहों से बीच की कड़ियाँ बनतीं हैं तथा वितरण संभव होता है तथा दिशा लेता है। प्रवाहों की निम्न बातें प्रमुख होती हैं-

1. कोई भी अंचल क्षेत्र सारी वस्तुऐं नहीं बना सकता है क्योंकि प्रकृति ही कहीं-कहीं Trritorial division of labour या "आंचलिक अन्तर/विभाजन" करता 'है। विशिष्टीकरण को व्यक्ति अंचल क्षेत्रीय स्थितियों के अनुसार अपनाते हैं। (There are personal and regional specialisations)

2. Specialisation leads to trade. विशिष्टीकरण से व्यापार को जन्म मिलता है। हर व्यक्ति किसी एक कार्य में लगता है, अन्य सभी वस्तुओं व सेवाओं को क्रय करता है। अत: विशिष्टीकरण से प्रवास को जन्म मिलता है। वास्तव में यह एक गोलमाल सम्बन्ध है जो देखने में विरोधाभासी है परन्तु सत्य है।

   A. Immobilities leads to specialisation.

   B. Specialisation leads to trade.

   C. Trade leads to mobilities.

   (अ) अगतिशीलताओं से विशिष्टीकरण पनपता है।

   (ब) विशिष्टीकरण से व्यापार पनपता है।

   (स) व्यापार से गतिशीलतायें पनपती हैं।

तो विरोधाभास का समाधान कहाँ है? स्थिति यह है कि व्यापार से जो गतिशीलतायें पनपती हैं वे इतनी नहीं होती कि अगतिशीलताओं को पूर्णतया समाप्त कर दें।

हम अब उन सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे जो प्रवास/प्रवाहों को पनपाते हैं उकसाते हैं तथा जो अवरोधों का अध्ययन करते हैं। हम ग्रेविटी मॉडल का अध्ययन करेगें।

17.2 ग्रेविटी मॉडल उदाहरण सहित

हम जानते है कि पृथ्वी में गुरूत्वाकर्षण है अत: समुद्र का पानी या हम अन्तरिक्ष में नहीं जाते। ऊपर फैंकी चीज वापिस आ जाती है। अगर उससे बाहर जाना हो तो फैंकने की गति, गुरूत्वाकर्षण की गति से अधिक होनी चाहिए। अन्तरिक्ष में इसी गुरूत्वाकर्षण से दूरियाँ बनी हुई हैं।

मनुष्यों/श्रमिकों के प्रवास को प्रोत्साहित करने वाले तत्व हैं (Pulls factors) इन्हें ही ग्रेविटी मॉडल में अध्ययन किया है। मनुष्य/श्रमिक किन्हीं आकर्षणों से ही एक स्थान से दूसरे स्थान को गतिशील होता है।

(1) Every region has a “mass”, that induces mobility.

(2) The “distance” between two regions acts as friction.

(1) ग्रेविटी मॉडल में हर अंचलक्षेत्र का एक mass या पिंड होता है। यह पिंड भौगोलिक नहीं बल्कि आर्थिक होता है। एक जिला अगर रेगिस्तानी हो परन्तु आकार में चार गुना हो तो उस जिले में प्रवास कम ही होगा। वनस्पति उस जिले के जो आकार में एक चौथाई हो परन्तु जहाँ औद्योगिक, कृषि व सेवा क्षेत्र के उत्पादन 10 गुने हों। जाहिर है यहाँ रोजगार के अवसर बहुत अधिक होंगे। पहले क्षेत्र से तो लोग बाहर निकलेंगे। वे इस क्षेत्र में आयेंगे क्योंकि यहाँ का "आकर्षण" या "गुरूत्वाकर्षण" या ग्रेविटी अधिक है। अगर हम तीन जिले लें तो

(अ) बीकानेर (ब) जोधपुर (स) जयपुर

अन्य बातें समान रहें तो हम जयपुर का ''पिंड/mass" जो जोधपुर से अधिक व उसका बीकानेर से अधिक है ले सकते हैं जो एक सत्य भी है।

- इस आलेख में ग्रेविटी मॉडल का हिन्दी अर्थ नहीं लिया बल्कि अंग्रेजी नाम ही रखा गया है। नाम तो नाम है।
- Region को क्षेत्र न कह कर (Sector = क्षेत्र) अंचलक्षेत्र का प्रयोग किया है।

पिंड का अनुसार प्रवासी होने में मजबूरी का ध्यान नहीं रखेंगें जैसे एक शासकीय कॉलेज के प्राचार्य का स्थानान्तरण।

(2) Friction या अवरोध का अर्थ है दो अंचलक्षेत्रों के बीच दूरी, अधिक दूरी से अवरोध बढ़ता है तथा पिंड का आकर्षण क्षीण होता है।

The influence of an economic force at any point of time or space is directly related to the size of the force or "mass" and it is inversely related to the distance between its source and the point in question.

अत: पिंड खींचता है, दूरी अवरोध उत्पन्न करती है। पिंड का प्रभाव सकारात्मक है। अवरोध का प्रभाव नकारात्मक है। प्रवास व प्रवाह के लिए जरूरी है कि पिंड अधिक बलवान हो तथा अवरोध क्षीण। अगर अवरोध अधिक हो तो पिंड बहुत अधिक शक्तिशाली होना चाहिए। लोग राजस्थान से कनाडा चले जाते हैं जो अत्यन्त ठंडा है परन्तु यह तब ही होगा जबकि वहां आय का स्तर बहुत ऊँचा हो तथा सभी प्रकार की सुविधायें (शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, यातायात, संचार, रोजगार व सम्पत्तिधारण) बहुत ही ऊँची हो।

ग्रेविटी मॉडल वैसा ही है जैसे कि हम न्यूटन के नियम को सामाजिक-आर्थिक रूप दे दें। Mass attracts; distance dispets. प्रवास दो अंचल क्षेत्रों से उस अनुपात में हतोत्साहित होता है या विपरीत है जो कि "दूरी का वर्ग" हो, जब तक कि पिंड अधिक प्रभावी न हो। Mobility is in inverse proportion to the square of the distance separating the individual from centre and the resistance can be overcome by the size of the mass.

ग्रेविटी मॉडल को ऊंचा नाम मिला परन्तु वह मौलिक न था।* ग्रेविटी मॉडल आशिक रूप से संभावनाओं को व्यक्त करता है। (Probabilistic Model) तथा आंशिक रूप से अवश्यंभावी प्रवृति को दर्शाता है (deterministic elements).

---

1. रेवेन्स्टीन (revenstein) ने 1885 में अर्थात् सौ वर्षों से भी पहले चार बातें लिखी थी कि प्रवास (अ) दूरी के विपरीत (ब) बड़े व्यापार के अनुरूप बढ़ता है (स) ग्राम से ग्राम; शहर से शहर; ग्राम से शहर तथा शहर से ग्राम के चार प्रकार होते हैं तथा (द) प्रवास यथासंभव अवस्थाओं में होता है।
2. Blanco ब्लेन्को ने प्रवास को रोजगार गहनता के अन्तरों से उत्पन्न होने वाला माना । बेरोजगारी का "धक्का" (Push) प्रभाव है तथा "उत्तम रोजगार गहनता" का खींचने का (Pull or gravitation) प्रभाव है।
3. Raimon रैमन ने रोजगार के अन्तरों से ज्यादा आय के अन्तरों को कारक माना।
4. Lowery लावरी ने लिखा

$$Mij = f = \frac{Ui, Wi, Lilj}{Ui, Wj, Dij}$$

Mij = प्रवास i व j अंचल क्षेत्रों के बीच Migration

U = अकृषि श्रम के बेरोजगार का प्रतिशत Unemployment

W = कारखानों की मजदूरी Wages

L = श्रमशक्ति जो अकृषि कार्यो में हो Labour force

D = दूरी Distance

यह गणितीय सूत्र नही है बल्कि functional या संबंधों पर प्रकाश डालता है। आकर्षण होगा जबकि दूसरे क्षेत्र का D कम, W अधिक U कम L कम हो।

ग्रेविटी मॉडल में निम्न प्रवास कारक व प्रवास अवरोधों की व्याख्या भी निहित है

कारक आकर्षण	अवरोध व धक्का देने वाले
1. भूमि/रोजगार/अधिक आय की उपलब्धता जो mass बढ़ाते है।	1. सम्पत्ति विहीनता Assetlessness * पुरानी जगह धक्का। * नयी जगह पर हो तो अवरोध
2. उत्तम शिक्षा व स्वास्थ्य सेवायें संचार, यातायात व अन्य सेवा पिंड बढ़ाती है	2. खराब संचार, यातायात व अन्य शिक्षा व स्वास्थ्य सेवायें पुराने स्थान पर धक्का, नये पर अवरोध
3. खाद्य सुरक्षा व अन्य सुरक्षायें पर्यावरण साफ, कानून व्यवस्था व न्याय प्रजातन्त्र, विवाह साथी (पिंड में वृद्धि)	3. दुर्भिक्ष व भेदभाव, पर्यावरण * पुराने स्थान पर धक्का * नये स्थान पर अवरोध इनकी कमी से अवरोध नये स्थान पर कम

(Mass)

व्यक्ति	**आकर्षण केन्द्र**
1. लड़कियाँ शादी के समय	* पति का घर/शहर/अंचलक्षेत्र
2. शरणार्थी	* कोई भी जगह
3. बंजारे	* कहीं भी जहाँ काम मिले
4. पुरूषार्थी खजाने की खोज मे	* जहाँ हीरे, सोना व अन्य मूल्यवान चीजें मिलती हों
5. ठेका श्रम	* कार्य स्थान जैसे रेलवे में जहाँ पटरी डल रही हो या बांध/सड़क बन रही हो

इस तरह से हर व्यक्ति के आकर्षण के कारण व जाने के स्थान अलग होते हैं। हर व्यक्ति के लिए उसी स्थान पर Mass या पिंड अलग होता है। जैसे दो व्यक्ति प्रवासी होकर बांसवाड़ा से अजमेर जायें तो नये स्थान पर अलग-अलग आय प्राप्त करेंगे। कोई अजमेर से बांसवाड़ा भी प्रवासी हो सकता है।

5. Zipt जिप्ट ने बताया कि धक्के के बगैर भी आकर्षण से प्रवास होता है।

6. Lee ली : अगर आकर्षण सकारात्मक संख्या है तो घर्षण (friction) नकारात्मक है परन्तु अनेक प्रवास कारक तत्व तटस्थ होते हैं, अर्थात प्रवासी के लिए यहाँ भी तथा वहाँ भी होते हैं। एक परियोजना का प्रमुख अभियन्ता तो दोनों जगह अच्छा आवास पायेगा जो तत्व किसी एक के लिए सकारात्मक है (mass) दूसरे के लिए नकारात्मक (negative) तथा तीसरे के लिए तटस्थ (Neutral) होता है।
7. Todaro टोडारो का भी प्रसिद्ध मॉडल था। बहुत लिखा परन्तु सार संक्षेप यह है कि आकर्षण की अपेक्षायें ही होती हैं। (expected income) एक व्यक्ति की अपेक्षाओं का प्राप्त होना व न होना दूसरों को प्रभावित करता है। यह एक सोच प्रक्रिया है।
8. Lewis लुइस के मॉडल में शहरों को पूंजीवादी क्षेत्र व गांवों को जीवन निर्वाह क्षेत्र। आकर्षण स्वभावतया शहरों का होगा। यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए लाभकारी भी है क्योंकि जनसंख्या प्रवासी होकर अपनी सीमान्त उत्पादकता बढ़ाकर पूंजी निर्माण में सहायक होती है।

17.3 अन्तर-अंचल क्षेत्रीय वस्तु बहाव

ग्रेविटी में मनुष्यों के प्रवासों का अध्ययन था। अन्तरक्षेत्रीय वस्तु-प्रवाह भी कतिपय सिद्धान्तों के अनुसार ही होते हैं, या दूसरे रूप में यह कहना उचित होगा कि वस्तुओं के अन्तर-अंचलक्षेत्रीय क्रय विक्रयों के प्रवाहों को अध्ययन करके कुछ सिद्धान्त बनाये जा सकते हैं। हुआ भी यही।

(1) वस्तुओं का उत्पादन वहाँ के संसाधनों पर निर्भर है। अगर कोई क्षेत्र अर्धसूखा (semi-arid) है तो वहाँ कृषि उत्पाद से अधिक महत्वपूर्ण पशु उत्पाद हो जाते हैं, जैसे बीकानेर से रसगुल्ले व नमकीन भारत के अनेक दूर दराज स्थानों में जाते हैं। संसाधनों में पत्थर संगमरमर (मार्बल) या अन्य प्रकार के जैसे कुड्डप्पा (आन्ध्रप्रदेश) कोटा (राजस्थान) आदि तक शामिल हैं। खनिज व वनोपज के बारे में भी यही बात है। अत: किसी भी अंचलक्षेत्र का संसाधन व उत्पादन आधार तथा उसके उपरान्त उन उत्पादों का बेशी (आवश्यकता/उपयोग से अधिक) होना (marketable surplus) जरूरी है।

(2) उपरोक्त आधार बनने से पूर्व उस अंचलक्षेत्र में पूंजी का आना जरूरी है। यह उसी क्षेत्र से या अन्य अंचलक्षेत्रों से आ सकती है या राज्य के निवेश से आ सकता है। इनसे आदान क्रय होते हैं, जिन में कच्चा माल, मशीन व तकनीकी सेवायें शामिल हैं।

(3) फिर अंचल क्षेत्रीय वस्तुऐं जाहिर है वहाँ जाती हैं जहाँ उन्हें सबसे अच्छे मूल्य मिलते हैं या जहाँ मांग है। कभी-कभी एक सा ही मूल्य पर कम/ज्यादा मांग के अनुसार अन्य अंचलक्षेत्रों में निकासी होती है।

अंचल क्षेत्रों के बीच कितना प्रवाह है यह जानना अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाहों के अध्ययन से ज्यादा कठिन है। अंचलक्षेत्रीय सामान ट्रकों, टेम्पो, बैलगाड़ियों, ट्रेन, सायकिल और यहाँ तक कि सर पर रखकर ले जाया जाता है और उसका कोई पूरा रिकार्ड नहीं होता। इसकी जरूरत भी नहीं समझी जाती है। इसके आंकड़े इकट्ठें करना महंगा पड़ता है। फिर भी अगर प्रवाहों के बारे में आँकड़े इकट्ठें करना ही हो तो ट्रक कम्पनियों, रेलवे के सामान बुक करने वाले कर्मचारी तथा कतिपय "चैक पुआइन्ट" जो एक जिले से दूसरे जिले की "सीमा" पर हों, प्राप्त कर सकते हैं। बहुत दूर के अंचल क्षेत्रों में जाने वाला सामान बीच के कई जिलों से

गुजरता है। सभी सामान की "बिल्टी" या रसीद नहीं बनती है, अधिकतर कर बचाने के लिए अनेक प्रवाहों का हिसाब नहीं रखते। फिर भी उपरोक्त सभी रीतियों से काफी अच्छा अन्दाज लग जाता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में इनका हिसाब में ज्यादा ध्यान रहा और उत्पादन पर कम।

- अंचल क्षेत्रों में जो प्रवाह होते हैं उनके मूल्य व आय भी बहुत महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि भौतिक मात्रायें अन्ततः मौद्रिक मूल्यों में ही व्यक्त करते हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों से जाहिर है कृषि जनित प्रवाह जाते हैं तथा औद्योगिक वस्तुओं के प्रवाह आते हैं।
- अंचल क्षेत्रीय प्रवाहों में Monetary flows are opposite of the goods and service Flows, unless they are unilateral and unrequited, अर्थात मौद्रिक प्रवाह, वस्तुओं व सेवाओं के विपरीत होते हैं। वस्तुयें बेची तो मुद्रा आती है, क्रय की तो जाती है। एक तरफा व समानता का अदला-बदला न हो, ऐसे मौद्रिक प्रवाह वे हैं जो शासन द्वारा अनुदान, सब्सिडी-सहायता या निवेश के रूप में या व्यय के रूप में आते हैं। यह वस्तुओं के उत्पादन में सहायता देते हैं या अगर अंचल क्षेत्र में उत्पादन क्षमता ध्वस्त हुई हो (भूकंप, बाढ़, सूखा, ओलावृष्टि) तो उसे पुनः स्थापित करते हैं।
- अतः कई अंचल क्षेत्र जितनी आय वे सृजन करते हैं (generate) उससे ज्यादा उनमें प्राप्त हो जाती है (accrues) और यह पिछले अंचल क्षेत्रों में होता है।
- अर्थव्यवस्था में आदा-प्रदा (Input-Output) संबंध बाजार के माध्यम से स्थापित होते हैं। अगर किसी क्षेत्र में कपास होता है तो उसके लिए कीट-नाशक, सिंचाई यंत्र से लेकर उसे ले जाने के लिए दुलाई ट्रक सब आयेंगें। पिछली व अगली कड़ियाँ स्वयं बनती रहती हैं। कितनी चाहिए, कहाँ कम है, कहाँ पर ज्यादा यह स्वयं बाजार निर्धारित करता रहता है। वितरण कड़ियाँ, व्यापार कड़ियाँ, वित्तीय कड़ियाँ, प्रशासनिक सेवा कड़ियाँ व तकनीकी कड़ियाँ वस्तु प्रवाहों को पुष्ट करती हैं तथा उनसे पुष्ट होती हैं।
- पूंजी प्रवाह भी वस्तुगत होते हैं। पूंजीगत मशीनें जैसे ट्रेक्टर या औद्योगिक मशीनें, या पत्थर काटने की मशीनें, या सामान ढोने के ट्रक सब वस्तुगत पूंजी हैं जो पहले अंचल क्षेत्रों में लाये जाते हैं। इनका क्रय अंचल क्षेत्र के लोग देश में पूंजी उठाकर (शेयर बेचकर, बैक से उधार या सार्वजनिक निवेश से या पुरानी आर्थिक क्रियाओं के लाभ/बचतों से) लेते हैं। शुरू-शुरू में ऐसे प्रवाह अंचलक्षेत्रों के बीच असमानतायें बढ़ाते हैं (Divergence)

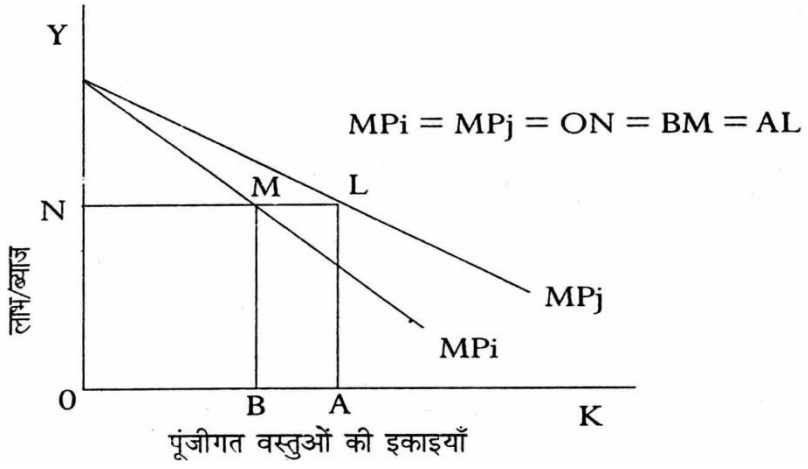

रेखाचित्र 17.1

फिर अन्ततः समानता ला देते हैं (Convergence) चाहें इसमें दशकों लग जायें। पूंजीगत वस्तुओं व पूंजी का यह बंटन नवक्लासिकल सिद्धान्त के अनुरूप होता है कि पूंजीगत वस्तुओं की उत्पादकता समान होगी।

- अंचल क्षेत्रीय वस्तु प्रवाहों में लाभ महत्वपूर्ण है परन्तु लाभ की आशा उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण होती है। जोखिम व अनिश्चिततायें प्रवाहों को मोड़ देती हैं। वस्तुओं के प्रवाह आदान लाते हैं तथा आदान ले भी जाते हैं। उसी तरह हर अंचल क्षेत्र में दूसरे क्षेत्रों से प्रदाआते हैं व जाते हैं। यह प्रवाह intermediate goods या दोनों के बीच की वस्तुओं के भी होते हैं।

17.4 अन्तर-अंचल क्षेत्रीय सेवाओं के प्रवाह

- सामाजिक सेवाओं में हम मोटे-मोटे रूप से स्वास्थ्य, शिक्षा व विपणन योग्य योग्यतायें (tradeable skills) लेते हैं। प्रवाहों में हम शिक्षकों व डाक्टरों के आने को तो प्रवास कहेंगें, ब्लेक बोर्ड व पुस्तकें या दवाओं के आने को वस्तु प्रवाह कहेंगें। साधारणतया सेवा का प्रवाह वह होगा जो करने के बाद चलीं जाये । एक ट्रक द्वारा सामान छोड़ जाना सेवा है। संचार की सुविधाओं, बैकों की सुविधाओं के बारे में भी यही कहा जा सकता है।
- सेवा प्रवाहों का अध्ययन वास्तव में घटकों के प्रवाहों के ही अध्ययन का भाग है। श्रम घटक है, श्रम घंटे सेवा आदान हैं। मशीन वस्तु है, पूंजी घटक भी है परन्तु मशीन के घंटे आदान हैं।
- किसी भी अंचलक्षेत्र में सेवाओं का होना, बाहर जाना व बाहर से आना मिश्रित होता है। उदाहरण

नाई का कार्य : व्यक्ति + उसके औजार + प्रसाधन वस्तुऐं मकान जहाँ कार्य हो रहा हो। हुनर होना।

डाक्टर : डाक्टर, कम्पाउन्डर का होना। दवायें, उपकरण, मकान, व ज्ञान का होना।

यातायात : सड़क/रेल मार्ग होना। ट्रक या ट्रेन होना, समस्त रेलमार्ग की पूरकतायें जैसे पुल, सिगनल, संचार..... आदि आ होना। उनमे कार्यरत व्यक्ति होना तथा उनमें ज्ञान होना उदाहरण बढ़ाये जा सकते हैं।

अन्तर्राज्यीय या अन्तर्राष्ट्रीय या अंचल क्षेत्रीय सेवायें भी मांग व पूर्ति के अनुसार प्रवाहित होती है। उच्चवर्ग की सेवायें (high order functions) छोटी जगहों (Low in the order of hierarchy of settlements) पर नहीं हो सकती है। परन्तु बड़े शहरों में छोटी-छोटी सेवायें भी उपलब्ध हो जाती हैं। उच्च प्रकार की सेवाओं के उच्चमूल्य मिलते हैं या देने पड़ते हैं। इनको सभी लोग नहीं दे सकते हैं। अत: सेवा से वंचित होना पड़ता है। भारत के गांवों में अनेकानेक गांव ऐसे हैं जहाँ पर कि फोन कोई नही लगवा सकता है। ऐसे में भारत ने 2002 तक सभी गांवों में जहाँ पंचायत भवन हैं वहाँ एक फोन बगैर तार पद्धति की तकनीक से लगाया जायेगा ताकि आग लगने, हत्या होने, चिकित्सक को बुलाने, प्राकृतिक दुर्घटना होने पर सम्पर्क स्थापित हो सके। अत: सेवाओं के ऐसे अनेक प्रवाह शासकीय Welfare mode या कल्याणकारी कार्यों से भी प्राप्त होते हैं।

हर वस्तु के क्रय विक्रय में भी सेवायें निहित हैं उसके बनाने में भी निहित होती है। सम्पूर्ण प्रशासन सेवा है। अत: पिछड़े या उन्नत अंचल क्षेत्रों में जो भी सेवायें आती हैं वे प्रवाह हैं। ये प्रवाह Poles→Centres→Nodes अर्थात बड़े शहरों या औद्योगिक केन्द्रों से विकास केन्द्रों (जिला मुख्यालय) से और छोटे स्थानों तक आते हैं और पहुँचते हैं।

- ऊपर से नीचे जाने वाली सेवायें उच्च स्तर की होती हैं, जैसे इन्जीनियर hinterland में बांध बनवा कर चला जायेगा।
- नीचे से ऊपर जाने वाली सेवायें निम्न स्तर की होती हैं जैसे मकान बनाने वाले सहायकों की सेवा।

17.5 सारांश

(1) ग्रेविटी मॉडल रीली (Reilly) के Law of Retail Gravitation का विस्तृत रूप है। यह नियम बतलाता है कि अन्दरूनी क्षेत्रों से (hinterland) लोग एक केन्द्र बिन्दु की तरफ आते हैं। यहाँ को तथा यहाँ से मनुष्यों, वस्तुओं व सेवाओं के प्रवाह होते हैं।

(2) ग्रेविटी मॉडल में दो तत्वों से प्रवास को प्रभावित होना बतलाया है। Mass पिंड तो खींचता है और नये स्थान में रोजगार गहनता, ऊँची आय की सम्भावना, शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाओं, संचार, आवास व यातायात की अच्छी व्यवस्था, आधुनिक सभ्यता आदि की अधिकता Mass को बढ़ाती है। Mass attracts.

(3) ग्रेविटी मॉडल में distance या दूरी dispel करता है। अगर दूरी अधिक होती है तो अनिश्चिततायें व जोखिम तथा यातायात व्यय बढ़ते हैं। "Mass" लाभ का प्रमाण है, तो Distance लागत का प्रमाण है। जाहिर है कि पिंड का आकर्षण दूरी के घर्षण (friction

or speed breaker) से ज्यादा होना चाहिए। अलग-अलग व्यक्तियों को पिंड (mass) का आकर्षण व दूरी (distance) का घर्षण का अलग-अलग आँकलन होगा।

ग्रेविटी मॉडल वास्तव में प्रसिद्ध ज्यादा हुआ। यद्यपि उसकी सबसे बड़ी सीमा यह रही कि उसमें Pull factors प्रवास को खींचने वाले तत्व का तो जिक्र है परन्तु Push factor या प्रवास के लिए मजबूर करने वाले तत्वों का जिक्र नहीं है। फिर सभी Pull factors में समायोजित कर लिया।

(4) वस्तुओं के प्रवाह (flows) वास्तव में उपभोग व उत्पादन की वस्तुओं के प्रवाह होते हैं। उत्पादन के आदान आते हैं और अन्तिम उपभोग या अन्य उत्पादन में आदान बनने के लिए प्रदा जाते हैं। ये प्रवाह अंचलक्षेत्र के अन्दर व बाहर होते हैं। इनकी गणना दुष्कर है।

(5) सेवाओं के प्रवाह वास्तव में वस्तुओं व घटकों के प्रवाह से सम्भव है। घटक व वस्तुओं में तकनीक निहित होती है। उदाहरणत मरीज की टूटी हड्डी का 'एक्सेस' मशीन की सहायता से होता है परन्तु रेडियोलाजिस्ट की दक्षता व जाँच से भी है। सेवा प्रवाह एक तरह से अदृश्य है जो दिखता है वह तो वस्तु व घटक प्रवाह है। सिलाई सेवा है परन्तु कार्यरत दिखते हैं मशीन व दर्जी। अत: घटकों व वस्तुओं के अन्तर अंचल क्षेत्रीय प्रवाह वस्तु, व्यक्ति व तकनीक प्रवाह है।

(6) मौद्रिक प्रवाह (पूंजी प्रवाह शामिल) वस्तुओं, घटकों व सेवाओं के स्थानीय व दूर के प्रवाहों के प्रतिफल हैं। अनुदान, सहायता व निवेश एक तरफा प्रवाह हैं। कर भी एक तरफा है। प्रवाहों के बगैर अर्थव्यवस्था जड़वट है। विकास सम्भव ही न होगा। घर के अन्दर, मुहल्ले में, गाँव में, अन्तर गाँव, अन्तर जिला, अन्तर्राज्यीय, व अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह सब प्रवाहों के रूप हैं व अवस्थायें हैं।

प्रश्न : क्या अंचलक्षेत्रीय अर्थशास्त्र के agglomeration economies पिंडी भूतीकरण की मितव्ययितायें ग्रेविटी मॉडल से सम्बंधित हैं?

उत्तर : वास्तव में ग्रेविटी मॉडल स्थानीयकरण के लाभों को ही mass की संज्ञा देता है। स्थानीयकरण की हानियाँ, mass को कम करती हैं। ग्रेविटी मॉडल में शब्द नये हैं, सार नया नहीं है, जैसे मॉडल को Social Physics की संज्ञा देना। आय denisty (मात्रा) व आय की सम्भावनायें, income frontiers अधिकतम आय की सीमायें ये सब mass बढ़ाते हैं।

कतिपय माप

Pt = Po + BD + Mi - Mc

Pt = नयी जनसंख्या = Po पुरानी जनसंख्या = B जन्म
- D मृत्यु + Mi प्रवास आना
- Mc प्रवास जाना

इसमें अगर 6 में से 5 आँकड़े उपलब्ध हों तो छठवाँ आँकड़ा निकल आयेगा। अंचलक्षेत्रीय प्रवास का स्वतन्त्र समाज में रिकार्ड नहीं रखा जाता है। अगर जन्म व मृत्यु तथा दो जनगणनाओं का हिसाब पक्का सही हो तो शुद्ध प्रवास (जाना-आना) =

Mn = Pt - Po - B + D

जनगणना के समय जन्म स्थान की जानकारी भी प्रवास को बतलाती है अगर व्यक्ति अपने जन्म स्थान पर नहीं है तो प्रवासी है बशर्ते कि यह न होना मात्र एक यात्रा या घूमने/अन्य कार्य के लिए आना व जाना न हो कि 0-4 वर्ष की आयु की जनसंख्या 1991 में 654534 थी इसे 1998 में वर्ष 2001 के लिए प्रक्षेपित किया 765607 इसे 2001 की जनगणना में पाया 787775 तो प्रवासी बच्चे 22168

17.6 शब्दावली

1. Immigration	दूसरे अंचल क्षेत्र से आना
2. Outmigration	रहसरे अंचल क्षेत्र जाना
3. Immigration	अन्य देश से आना
4. Emigration	अन्य देश जाना
5. Migration Streams	(1) शहर से शहर (2) गाँव से गाँव (3) शहर से गाँव (4) गाँव से शहर
6. Stages	'अ' शहर से एकदम 'द' में न पहुँचना बल्कि कई शहरों से होते हुए पहुँचना
7. Migrant Selectivity	कौन लोग प्रवासी हैं वधुयें, विद्यार्थी, अकुशल श्रमिक, बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरूष। (सबसे अधिक लड़कियाँ प्रवासी होती हैं जो पति के घर जाती हैं)
8. Counter migration	वापिस शहर से गाँव

17.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Isard	Regional Analyses
2. International Economic Association	Regional Policy for Ever
3. Richardson	Regional Economics, Reader
4. W. Warntz Ronald Artle	On Gravity Models
5. O.S. Shrivastava	Regional Economics Anmol Publishers, New Delhi-2
6. A. Jackson (ED)	Migration, Tambridgeuni
7. EG Ravenstein	The Laws of Migration, Journal of Royal Statistical Society
8. MP Todaro	Internal Migration in Developing Countries, ILO

इकाई 18

क्षेत्रीय विकास के सूचक : आँकड़ों के स्रोत एवं बाधाएं

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.1.1 अविकसित क्षेत्र

18.1.2 अल्पविकसित क्षेत्र

18.1.3 विकसित क्षेत्र

18.1.4 आर्थिक विकास और इसके कारक

18.2 क्षेत्रीय विकास के सूचक

18.2.1 भारतीय आर्थिक एवं वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान

18.2.2 पाण्डे समिति

18.2.3 चक्रवर्ती समिति

18.2.4 पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए राष्ट्रीय समिति

18.2.5 प्रो० राजकृष्ण का लेख

18.2.6 कृषि क्षेत्र के विकास के सूचक

18.2.7 औद्योगिक विकास के सूचक

18.2.8 बैंकिंग विकास के सूचक

18.2.9 परिवहन एवं संचार विकास कें सूचक

18.2.10 सामाजिक विकास के सूचक

18.2.11 शिक्षा के विकास कें सूचक

18.2.12 स्वास्थ्य विकास के सूचक

18.2.13 राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय विकास के सूचक

18.3 विकास कें सूचकों को बनाने की क्रिया विधि

18.4 निबन्धात्मक प्रश्न

18.5 सारांश

18.6 शब्दावली

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तके

18.0 उद्देश्य

सामान्यतया विभिन्न देशों कें, एक ही देश के (Same Country) विभिन्न भागों (Parts) के या एक ही देश के समान भाग के विभिन क्षेत्रों (Different regions) के औसतन व्यक्तियों के जीवन निर्वाह स्तर (Levels of living) कभी भी बहुत ज्यादा समान नहीं रहे है।

उनमें आज भी उतनी ही विभिन्नताएं है जितनी पहले थी । यद्यपि अल्पविकसित क्षेत्रों (Underdeveloped regions) या अल्पविकसित देशों (Underdeveloped Countries) में दोनों ही स्थितियों में कम या अधिक समान विशेषताएं पाई जाती है चूकि पूर्व की स्थितियो के आंशिक चित्रण के कारण एक अल्पविकसित देश का क्षेत्र एक अल्पविकसित क्षेत्रफल (Underdeveloped area) या राष्ट्र से भिन्न है जबकि बाद कि स्थितियों में एक देश की सम्पूर्ण घटनाक्रम (Phenomenon) को प्रस्तुत करती है । कई देश जिन्होंने अल्पकाल में ही आर्थिक विकास (Development) को एक स्पष्ट लक्ष्य माना एवं प्राप्त भी किया इससे यह बात एक प्रमाण के रूप मे सामने आई है कि विकास के अर्थशास्त्र की आवश्यकता है । और इसकी और भी ज्यादा आवश्यकता क्षेत्रीय विकास के संबंध (Regional consideration) में है, यद्यपि क्षैत्र जो, कि आर्थिक विकास में न केवल सैद्धांतिक (Theoretical) वरन् व्यावहारिक (Practical) रूप से भी आवश्यक है । अभी तक इस दिशा में उपेक्षित (neglected) होता रहा है क्षेत्रीय अध्ययन किसी भी देश की चाहे वो भारत हो या अन्य दूसरा राष्ट्र, उस देश की भौगोलिक विशेषता (Geographical Characteristics) एवं राजनीति शास्त्र (Political philosophy) की स्थानीय (Local) एवं राष्ट्रीय (National) योजनाओं कें लिए न केवल महत्वपूर्ण है वरन् आवश्यक (essential) भी है । क्षेत्रीय विकास के अध्ययन का महत्व निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु महत्वपूर्ण है : –

विकास योजनाओं के लिए मार्ग दर्शन हेतु (Guidelines for Development Plans)

किसी राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के आर्थिक विकास में क्षेत्रीय विषमताओं (Regional disparities) का अध्ययन हमें उस विशेष क्षेत्र (Particular Region) की क्षमताओं (Capacities) के साथ उन परिस्थितयो (Circumstances) एवं वातावरण (environment) को स्पष्ट करता है जिससें कि उस राज्य या देश के नियोजकों (Planners) या सरकार को उस राज्य या देश के संतुलित आर्थिक विकास की एक विशिष्ट क्षेत्र की विकास योजनाएं बनाने में मदद मिलती है ।

शहरीकरण की समस्याओं से छुटकारा पाना (Overcoming the Problems of Urbanization)

देश का असंतुलित विकास (Unbalanced development) अवसरो (opportunities) की समस्या विकसित एवं औद्यौगिक क्षेत्रों (Developed industrial Regions) की ओर पलायन करना (Migrate) जो कि ज्यादा बड़े शहरो में जाकर केन्द्रित होते है और घनी आबादी (extreme congestion) व स्थानीयकरण (Localization) और शहरीकरण (Urbanization) से संबंधित सभी प्रकार की बुराइयों में वृद्धि करता है । एक प्रकार से यह समस्या इन क्षेत्रों कें लिए एक विकृति या तनाव (Strain) पैदा करती है तो दूसरी ओर यह एक प्रकार से योग्यता को बाहर (ability drain) करती है और नियमित रूप से गरीबी को बढ़ाता है जो कि प्रभावित क्षेत्र के व्यक्तियों द्वारा पलायन (Migrating) करने से होती है ।

आंतरिक संघर्षो को दूर करने के लिए (For avoiding internal conflicts)

जब तक किसी देश का संतुलित विकास (balanced development) नहीं होता तब तक उस अर्थव्यवस्था पर क्षेत्रीय असमानताएं (Regional disparities) इसके विपरीत प्रभाव डालते है। एक असंतुलित अर्थव्यवस्था में विकसित क्षेत्र (Developed regions) अविकसित क्षेत्र (Underdeveloped regions) को ढक लेता है और अविकसित क्षेत्र पिछड़ेपन में चला जाता है और आर्थिक विकास का नियमित भाग होने के बावजूद भी उपेक्षित (Neglected) रह जाता है। और उपेक्षित भावना के कारण ही यहां के क्षेत्रों कें व्यक्तियों के अन्दर निकृष्टता की भावनाएं या निम्न स्तरीय भावनाएं (inferiority complex) उत्पन्न हो जाती है। वे या तो बहुत ही नम या आज्ञापरायण (mild or decide) हो जाते हैं या फिर अत्यन्त असाधारण आश्चर्यजनक रूप से विरोध (Hostile & decide) करने वाले हो जाते है। यही स्थिति या दशा देश मैं संघर्ष (Struggle) और अंतरिक द्न्द (Internal disputes) को उत्पन्न करती है।

बेरोजगारी की समस्या से छुटकारा पाने के लिए (For overcoming Unemployment Problems)

अविकसित देशों में बेरोजगारी (Unemployment) एवं छिपी हुई बेरोजगारी (disguised unemployment) विस्तृत रूप से फैली हुई है। शहरी बेरोजगारी शहरीकरण और शिक्षा (Urbanization and Education) के बढ़ने सें बढ़ती है। लेकिन औद्योगिक क्षेत्र (Industrial regions) श्रमशक्ति (labour force) के विकास की वृद्धि में असफल रहा है जिससे शहरी बरोजगारी बढ़ रही है। शिक्षित बेरोजगारी तभी बढ़ी है जबकि शिक्षित व्यक्ति संरचनात्मक अनम्यताओं (Structural rigidities) एवं जन–शक्ति नियोजन (Man–Power planning) की कमी सें कार्य या रोजगार पाने में असफल रहते है। यह समस्या सभी क्षेत्रों (Regions) की विकास की भावी संभावनाओं (Potentialities) के अध्ययन के आधार पर दूर की जा सकती है।

क्षेत्रीय एवं राष्टीय ध्येयों (लक्ष्यों) में समन्वय (Coordination between regional and National ends)

सभी विकास कार्य क्रम चाहे वे स्थानीय (Local), हो क्षेत्रीय (Regional) हो या राष्ट्रीय (National) स्तर पर नियोजित हो, सभी एक दूसरे से संम्बन्धित (Correlated) है तथा आपस मैं एक दूसरे से जुड़े हुए (interlinked) होते है। तीनों स्तर आपस में एक दूसरे के पूरक (Complimentary) एवं सह–अस्तित्व (Co–existence) के होने चाहिए। विकास की समस्या से संम्बन्धित राष्ट्रीय दृष्टिकोण (National approach) क्षेत्रीय नियोजन (regional Planning) पर आधारित होना चाहिए। इस तथ्य पर अब इसलिए जोर दिया जाने लगा है क्योंकि यह माना जानें लगा हें कि क्षेत्रीय दृष्टिकोण राष्ट्रीय योजनाओं के लिए केवल विकास संसाधनों को ही नहीं बल्कि चक्रीय (Cyclical), मौद्रिक (Monetary) एवं राजकोषीय नीतियों (Fiscal Policies) को भी बनाती है।

समाज का अध्ययन (Study of Society)

क्षेत्रीय विकास के लिए समाज का अध्ययन एक अर्थव्यवस्था की आवश्यकता है सामाजिक विचारधार क्षेत्रीय एवं उपक्षेत्रीय (Sub Regional) असंतुलन को संशोधित करती है एंव समायोजित करनी है। पिछड़े क्षेत्रों में यह भावना बढ़ रही हें कि विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन में (Implementation) या लागू करने में उन्हें ज्यादा प्राथकिता नहीं दी जाती है। ना तो सार्वजनिक क्षेत्र मे सरकार ने और ना ही निजी क्षेत्र ने इस और कोई जिम्मेदारी ली है। क्षेत्रीय विकास की योजनाएं बिना किसी व्यापक धारणा के बना ली जाती है। और इन विकास योजनाओं के क्रियान्वयन को निश्चित रूप से लागू किया जाता है जो कि पिछड़े क्षेत्रों को जरा तसल्ली या संतोषजनक स्थिति प्रदान नहीं करती। लेकिन यदि इन विकास योजनाओं का सही तरह सें विश्लेषण करके और कम विकसित या धीमी गति से विकास कर रहे क्षेत्रों की सही पहचान कर नियोजन किया जाता है तो नि:सन्देह इस समस्या को दूर किया जा सकता है । इन क्षेत्रो, में कल्याणकारी व्यय (Welfare expenditure) में आरोही वृद्धि (Progressive increase) करना इस दिशा में संतोषजनक कदम होगा जो इन क्षेत्रों को राहत भी दे सकता है। लेकिन अर्थव्यवस्था में इस दिशा में एक स्थायी सुधार (Permanent improvement) तभी हो सकता है जब इन क्षेत्रों के व्यक्तियों की मूलभूत आवश्यकताओं के अनुसार प्रभावित क्षेत्रों में पर्याप्त व प्रचुर मात्रा में उद्योगों को स्थापित किया जाये ।

जनजातीय क्षेत्रों का अध्ययन (Study of Tribal areas)

किसी भी देश का विकास बहुत कुछ वहाँ कि जनसंख्या की प्रकृति (Nature of Population) व स्वभाव पर निर्भर करता है । पिछड़ी जनसंख्या व जनजातीय जनसंख्या (Tribal Population) का उच्च प्रतिशत पाया जाना भी विकास की दर को प्रभावित करता है। उनकें जीवन जीने का तरीका, रहन–सहन का तरीका, सोचने–विचारने का तरीका पूर्ण–रूपसे भिन्न होता है । वे आज भी वैसे ही है जैसे वर्षो पूर्व थे । अर्थात् बिना रहन–सहन सुधारे, खान–पान, सोच की दिशा भी वैसे ही रखें, यथावत् है अत : क्षेत्रीय अध्ययन के द्वारा इन जनजातिय क्षेत्रों (Tribal) को देखना एक आवश्यकता बन गई है ।

अर्थव्यवस्था का तेजी से एवं निर्बाध गति से विकास (To develop the economy rapidly and smoothly)

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्रगति उस राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों की प्राप्त वृद्धि दर से परिलक्षित होती है । यदि सभी क्षेत्र समान रूप से विकसित हो और एक दूसरे क्षेत्रो की मदद करते रहे तो अर्थव्यवस्था रूपी नाव बिना किसी बाधा के निरन्तर आगे बढ़ सकती है । लेकिन यदि एक क्षेत्र विकसित है दूसरा पिछड़ा हुआ है तो पिछड़े क्षेत्र उत्तरोतर काल में उत्पादो की पर्याप्त मांग कें अभाव में (lack of adequate product) दूसरे क्षेत्रो के विकास को भी शिथिल (retard) कर देते है या कुचल देते है ।

संसाधनों का विकास एवम् संरक्षण करना (To develop and conserve resources)

क्षेत्रीय विकास का लक्ष्य उपलब्ध संसाधनों (available resources)को अधिकतम् कुशलता के साथ दोहन करने या प्रयोग मे लाने (Utilization) का लेना चाहिए । एक देश के साधनों मे खनिजों (minerals), वन–सम्पदा (Forests), कृषि (Agricultural), और मानवीय

संसाधनों (Human resources) का पूर्ण रूपेण, उपयोग एवम् संरक्षण (Conservation) होना चाहिए ।

औद्योगिक विकास के अध्ययन मे महत्वपूर्ण (Important in the study of industrial development)

भारत एक कृषि प्रधान देश है, वह विश्व के विकासशील देशो मे से एक देश है यदि हम विकसित राष्ट्रों (developed countries) की श्रेणी में आना चाहते है तो भारत को अपना औद्योगिक रूप से विकास करना होगा । अर्थव्यवस्था के मुख्य भाग प्राथमिक (Primary) और सामाजिक क्षेत्र (Social Sector) है । ये सभी क्षेत्र एक देश की विकास योजनाओ का निर्माण करते है । आर्थिक योजना में मुख्य रूप से औद्यौगिक विकास के बिना आर्थिक विकास की बात भी नही की जा सकती । अत : यह भाग विकास के अध्ययन में विशेषतया महत्वपूर्ण है ।

इस प्रकार के अध्ययन की कर्मी (Lack of such studies)

क्षेत्रीय विकास का अध्ययन और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इस दिशा मे अध्ययन अति महत्वपूर्ण होने के बावजूद भी इस विषय के साहित्य की कमी है। अधिकांश शिक्षक और शिक्षार्थी जो कि सम्पूर्ण देश से सम्बंधित आर्थिक समस्याएं जो देश के लिए चिन्ता जनक है, के बारे में बहुत कुछ जानते है, लेकिन हम हमारे क्षेत्र या देश के किसी एक विशेष क्षेत्र के बारे मैं पर्याप्त भी नहीं जानते (not sufficiently) क्योंकि इस ओर जानकारी प्राप्त करने के लिए ना तो पर्याप्त विषय वस्तु ही उपलब्ध है, ना ही इस विषय पर पर्याप्त साहित्य है। विकास के इस महत्वपूर्ण भाग के लिए समंको (data) एवं सूचनाओं (informations) की अत्यंत कमी है डा. वी. के. आर. वी. राव (DR.V.K.R.V.) के शब्दों मे, आर्थिक विकास के क्षेत्रीय अध्ययन की अनुपस्थिति या न पाया जाना भारतीय आर्थिक साहित्य या ज्ञान मे एक गम्भीर कमी है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों में समपूर्ण भारत की दशाओं के बारे में सोचने व लिखने की प्रवृति है जबकि निःसन्देह सम्पूर्ण भारत का अध्ययन आवश्यक भी है, यहाँ तक कि यह क्षेत्रीय अध्ययनों के लिए और भी महत्वपूर्ण बन गया है। यदि हम समपूर्ण देश के संतुलित विकास की समस्या को हल करना चाहते है तो क्षेत्रीय अध्ययनो की आवश्यकता और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है।

18.1 प्रस्तावना

सूचक (संकेत), अध्ययन की आवश्यकता व उददेश्य के अनुसार सूचना दर्शाने वाला, सूचना बताने वाला या जलवायु या भौगोलिक अवयवों को दर्शाने की विधि है। भारतीय संदर्भ में एक क्षेत्र (region) का अर्थ भारतीय संघ मे एक राज्य या प्रान्त (State) से है, प्रान्त या राज्य के संदर्भ में यह एक जिला (District) भी हो सकता है। और अग्रिम स्थितियों में यह एक देश के राज्य का पिछड़ा या अग्रणी (backward or forward) क्षेत्रफल (area) भी हो सकता है।

क्षेत्रीय विभिन्नतायें प्रत्येक देश व राज्य के लिए भौतिक प्राकृतिक दृश्य (Physical Land scape) के कारण अपरिहार्य (inevitable) हो जाती है क्षेत्रीय असमानताऐं (regional

disparities) इसलिए भी पाया जाती है क्योंकि विभिन्न राज्यो और देशो का विकास भिन्न होता है। यद्यपि क्षेत्र और देश की दशाओ मे अन्तर पाया जाता है। परन्तु फिर भी कुछ समान विशेषताऐं दोनो पर समान रूप से लागू होती है अर्थात् विभिन्नताओं के बावजूद भी किन्ही विशेषताओं या लक्षणों मे वे समान पाए जाते है। क्षेत्रों को उनके विकास स्तरो के आधार पर तीन मुख्य श्रेणियों (Categories) मे वर्गीकृत किया जा सकता है।

इन विभिन्न श्रेणियों के विकास के स्तरों को निर्धारित करने से पूर्व इन विभिन्न श्रेणियों के अर्थ एवंम विशेषताओ की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

18.1.1 अविकसित क्षेत्र (undeveloped Regions)

एक अविकसित क्षेत्र या भाग वह है जो पूर्णतया पिछड़ा हुआ है और आर्थिक (economically), सामाजिक (Socially) एवं राजनैतिक (Politically) रूप से अविकसित है।

ये अविकसित दशाऐं पूंजी संसाधनों (Capital resources) की कमी या मानवीय संसाधनों की कमी (Lack of human resources) से हो सकती है। यह भी हो सकता है कि ये क्षेत्र विकास की जिम्मेदारी की सामर्थ्य ही नही रखते हो और इसीलिए अविकसित रहें हो या पर्याप्त पनप नहीं पाए हों। एक समय था जबकि सभी क्षेत्र अविकसित थे परन्तु उनमें से कुछ विशेष निश्चित क्षेत्र ही आज अविकसित रह गए है।

18.1.2 अल्पविकसित क्षेत्र (Underdeveloped Regions)

अल्पविकसित क्षेत्र की परिशुद्ध या यथार्थ (Precisely) परिभाषा देना सरल नहीं है । जैसा कि डब्ल्यू–डब्ल्यू, सिंगर (W.W.Singer) का मत है– "एक अल्पविकसित या अर्धविकसित राष्ट्र एक जिराफ की भाँति है..... जिसका वर्णन करना कठिन है परन्तु उसको देखकर ही उसे जाना जा सकता है " अर्द्धविकसित या अल्पविकसित राष्ट्रों की दशाओं के आधार पर कई परिभाषाएं दी गई है । यहाँ उनमें से केवल पूँजीगत आय को दिया गया है । अल्पविकसित देशों के लिए हम निम्न शब्दावली (term) प्रयोग में लाते है । ऐसे देश जिनकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय (per capital real income) संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, और पश्चिमी यूरोप (Western Europe) की तुलना में कम है :

यूजेन स्टेले (Eugene Staley) ने अल्पविकसित राष्ट्रों को परिभाषित करते हुए लिखा हैं कि, "एक देश या राष्ट्र जहाँ की मानवीय गरीबी (Human Poverty) शुरू से ही चली आ रही है केवल अस्थाई कालिक दुर्भाग्य (temporary misfortune) का परिणाम नही है । और जो उत्पादन ओर सामाजिक संगठन (Social organisation) की निरपेक्ष विधियों द्वारा होती है तथा जिसका अर्थ यह है कि राष्ट्र प्राकृतिक संसाधनों की निम्न्ता के कारण पूर्ण रूप सें पिछड़े नहीं हैं बल्कि वहाँ प्राकृतिक संसाधन तो प्रचुर मात्रा मे है परन्तु वे अन्य देशों द्वारा अपनाऐं गए तरीकों को काम में नही ला रहे है अर्थात् प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण रूपेण कुशलता से विदोहन (Fully Utilisation) नहीं कर पा रहे है । अत : उनमें विकास की संभावनाएं (Potentialities) है ।

अल्पविकास की विशेषताऐं (Characteristics of under developed regions)–

एक अल्पविकसित देश की बहुत सी विशेषताऐं अल्प विकास के आधार पर किण्डलबर्गर (Kindle berger), मेयर (Meire), बाल्डविन (Baldwin), एल. डब्ल्यू. शेनन (L.W.Shenon), लीबीन्सटीन (Leibenstin), और अन्य कई लेखको ने दी है । उनमे में कुछ या सभी विशेषताए अल्पविकसित क्षेत्रों में वर्तमान मे पायी जाती है एवं ये ही अल्पविकास को मापती है । सुविधा के लिए इन्हें निम्न शीर्षक या बिन्दुओं में क्रमबद्ध किया जा सकता है–

(1) भूमि और कृषि से संबंधित विशेषताऐं (Concerning land and agriculture)

(2) श्रम एवं जनांकिकी से संबंधित विशेषताऐं (Concerning labour and demography)

(3) पूजी से संबंधित (Concerning Capital) विशेषताऐं

(4) संगठन (Organisation), तकनीकी (Technique) एवं उपक्रम (Enterprise) से संबंधित विशेषताऐं ।

(5) व्यापार (Trade) एवं बाजार (विपणन) (Marketing) से संबंधित विशेषताऐं ।

(6) आर्थिक (Economic) सामाजिक (Social) एवं राजनीतिक व्ययों (Political overheads) सें संबंधित विशेषताऐं ।

(7) अन्य विशेषताएं (other characteristics)

इन विशेषताओं पर निम्न बिन्दुओं के आधार पर सविस्तार विचार किया जा सकता है–

1. **भूमि एवम् कृषि से संबंधित विशेषताऐं (Characteristics concerning land and agriculture) –** प्रो० किण्डलबर्गर (Kindleberger) के शब्दों में "अल्पविकसित देशों में पूँजी व नयी तकनीकीय कुशलता की कमी (lack of capital and innovational skills)के कारण भूमि विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है "

1.1 अल्पविकसित प्राकृतिक संसाधन (Underdeveloped Natural Resources) – एक अल्पविकसित क्षेत्र में सामान्यतय : प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources) जैसे भूमि, जल, खनिज, वन–सम्पदा, ऊर्जा के स्रोतो आदि की कमी होती है जबकि विकास की संभावनाएं (Potentialities) विद्यमान रहती हैं । भारत में प्राकृतिक संसाधनों का एक बहुत बड़ा भाग अप्रयुक्त किया हुआ रहता है । भारत में प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा मे है यदि उनका दोहन पूर्ण कुशलता से किया जाये तो इस विशिष्ट क्षेत्र के विकास को एक नयी दिशा मिल सकती है ।

1.2 कृषि उन्मुख एवं प्राथमिक उत्पादन (Agricultural Oriented and Primary Production) – अल्पविकसित क्षेत्रों के व्यक्तियों का मुख्य व्यवसाय कृषि है, इन क्षेत्रों मे व्यक्ति खोज करने का स्थिति (hunting stage) में नहीं होते क्योंकि बहुत ज्यादा विकसित नहीं है परंतु वे कृषि उपज की स्थिति में होते है और कच्चेमाल (raw material) एवं खाद्य पदार्थ (food stuffs) में प्रभुत्व रखते हुए उत्पादन की संरचना मे अपना योगदान देते है । कई अल्पविकसित क्षेत्र अकृषि क्षेत्र के प्रमुख उत्पादन (non

agricultural primary production) जैसे– खनिज या वन संसाधनों पर अत्यधिक निर्भर रहते है । औद्यौगिक उत्पादनों में मुख्यतया कृषि उत्पाद (Agricultural Products), कृषि उपकरणों (Agricultural equipments) का उत्पादन, कम महत्वता वाले पारंपरिक हस्तशिल्प उद्योग (minor importance and traditional handicrafts) और हल्के उद्योगों को सम्मिलित किया जाता है ।

1.3 कृषि उपज कम होना (Low Agricultural Yield) – विकसित क्षेत्रों की तुलना मे इन क्षेत्रों में प्रति एकड़ कृषि उत्पादकता या उत्पादन क्षमता (Productivity) कम पायी जाती है । प्रति व्यक्ति उत्पादन भी कम होता है क्योंकि प्रति एकड़ जमीन पर काम करने वाले श्रमिकों की मात्रा कम होती है । कुछ श्रम जो उत्पादन में लगा है शून्य के बराबर उत्पादन करता है । प्रति एकड़ कम उत्पादन के लिए जो कारक जिम्मेदार है जैसे– भूमि का श्रम से कम अनुपात मे होना अर्थात् अतिरिक्त श्रम का पाया जाना, भूमि के प्रयोग करने की अकुशलता (inefficient land use patterns) पूँजी की कमी, खेती (farming) पारंपरिक एवम् अकुशल तकनीक (Primitive and ineffective technique) उत्पादन की आधुनिक विधियों को प्रयोग मे लाने हेतु शिक्षा एवम् प्रशिक्षण का अभाव, कृषि उत्पादन संगठन (Organising agricultural product)का अकुशल तरीका, भूमि स्वामित्व प्रणाली (Land ownership system) आदि इन सभी कारकों के कारण अल्पविकसित देशों मे कृषि / खेती ही एक मात्र विकापार्जन का साधन है जो कि लाभदायक व्यवसाय (Profitable occupation) नही है ।

1.4 छिपी हुई बेरोजगारी व कृषकों की ऋण ग्रस्तता (Disguised unemployment and debtness of agriculturists)– अल्पविकसित क्षेत्रों में कृषि स्थाई धन्धा न होकर मौसमी (Seasonal) व्यवसाय है। कृषक एक वर्ष में लगभग छः माह रोजगार रहित रहता है। भूमि पर जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण भूमि के एक टुकड़े पर कार्य करने वाले श्रमिकों की संख्या बहुत ज्यादा होती है। वास्तव में जितनी श्रम शक्ति चाहिए उससे ज्यादा श्रम शक्ति कार्य में लगी रहती है। अर्थात् लगे श्रमिकों का उत्पादन शून्य होता है। उन्हें यदि कृषि कार्य से हटा भी दिया जाये तों उत्पादन प्रभाव रहित रहता है, और वास्तव में यही छिपी हुई बेरोजगारी है। लुईस (A.W.Lewis) ने अपने परिक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि कृषि जनसंख्या का कम से कम एक चौथाई भाग अतिरिक्त श्रम के रूप में कृषि में लगा रहता है ओर जिन्हें कोई कृषि आय नहीं होती और यह कृषि आय में कमी ही कृषकों को ऋण ग्रस्तता के जाल में (clutches of debts) धकेलती है।

1.5 कृषि उत्पाद की अनिश्चितता (Uncertainty of agricultural Products) – अल्पविकसित क्षेत्रों में कृषि प्रमुख रूप से मानसून पर निर्भर रहती है उपयुक्त सिंचाई सुविधाओं (Proper irrigation) एवंम् अन्य सुविधाओं के अभाव में, मानसून के असफल होने, या अन्य रूप से दूसरे प्राकृतिक प्रकोपों के कारण कृषि उत्पादकता तेजी से घटती है। जो पहले से चले आ रहे निम्न जीवन निर्वाह स्तर के लिए और भी खतरनाक या नुकसान देह हो जाती है।

1 श्रम एवं जनांकिकी (जनसांख्यिकी) से संबंधित विशेषताऐं (Characteristics concerning Labour and demography)

2.1 जनसंख्या दबाव (Population Pressure) – अल्पविकसित देशों में भूमि पर जनसंख्या का दबाव इतना बढ़ गया है कि उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों एवं पूंजी की उपलब्धता जो कि दी हुई रहती है पर व्यक्ति केवल मात्र जीवित रहने योग्य ही उत्पादन कर पाता है। और यहाँ तक कि यदि उत्पादन बढ़ता भी है तो जीवन निर्वाह स्तर को बढ़ाने में पर्याप्त नही रहता क्योंकि जनसंख्या और बढ़ जाती है। अर्थात् बढ़ा हुआ उत्पादन बढ़ी हुई जनसंख्या के कारण श्रमिकों के जीवन –निर्वाह स्तर को नहीं सुधार पाता।

2.2 आधारिक (अपरिपक्व) विशाल आयु संरचना (Bottom Heavy age Structure)– अल्पविकसित क्षेत्रों की जनांकिकी प्रारूप की एक मुख्य विशेषता यहाँ की निम्न (आधारिक) आयु संरचना का पाया जाना है। इसका अर्थ यह है कि कुल जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग अनुभवहीन / कच्ची / अल्पवयस्क आयु समूह (Younger age group) का पाया जाना है। अर्थात कुल जनसंख्या में अपरिपक्व (immature) जनसंख्या का भाग अधिक है जिसके परिणामस्वरूप आश्रितों की संख्या निरंतर बढ़ रही है जो कि उत्पादक जनशक्ति (man power) मे सापेक्षिक कमी (relative deficiency) ला रही है। आर्थिक रूप से सक्रिय (active) जनसंख्या का प्रतिशत कम होना पूर्व के जीवन निर्वाह स्तर को और भी निम्म बना देता है।

2.3 उच्च प्रजनन एवम् मृत्यु दरें (High fertility and high mortality rates)– अल्प विकसित राष्ट्रो में जन्म एवं मृत्यु दरें (Birth and death rates) विकसित राष्ट्रों की तुलना में ऊँची पाई जाती है। यहां जनसंख्या वृद्धि की संभावना अधिक है, क्योंकि अल्प विकसित राष्ट्रों में जन्म दरें कितने ही प्रयासों के बावजूद कोई अनुकरणीय या प्रशंसनीय (appreciable) कमी नहीं दिखा पाई है। लेकिन मृत्यु दरें (death rate) वर्तमान समय में प्रभावोत्पादक दवाईयों के विकास व खोज के कारण, सार्वजनिक स्वच्छता एवं स्वास्थ्य (Public sanitation and Health) के कारण निरन्तर कम होती जा रही है। इन क्षेत्रों में जन्मदर प्रति हजार चालिस या इससे अधिक है व मृत्यु दर प्रति हजार पर अड़तीस या इससे अधिक है और इसी कारण शुद्ध विकास दर वास्तव में अधिक रहती है।

2.4 पिछड़ा मानव संसाधन (Backward Human Resource) – अल्प विकसित क्षेत्रों में पिछड़ी जनसंख्या सामान्यत: पाई जाती है। व्यक्तियों के स्तर उत्पादक एजेन्ट की तरह कम है क्योंकि यहाँ पर निम्न श्रम कुशलता पाई जाती है। निम्न कार्य कुशलता, साधन गतिहीनता (factor immobility) उपक्रमियों का सीमित प्रशिक्षण एवं विशिष्टीकरण, मूल्य संरचना और सामाजिक संरचना यहाँ आर्थिक परिवर्तन के प्रोत्साहन को कम (minimize) करती है।

2.5 कुशलता मे कमी (Low efficiency) – अल्प विकसित क्षेत्रों में अपर्याप्त पोषण (inadequate nutrition) एवं खुराक की कमी के कारण श्रमिकों की कार्यकुशलता में कमी पाई जाती है। स्वास्थ्य विज्ञान एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य का निम्न स्तर (Low standard

of Hygienic and Public health), अशिक्षा, (illiteracy), प्रशिक्षण की कमी, व्यावसायिक गतिशीलता में अवरोध (obstacles of occupational mobility) और कम मूल्य का कार्य आदि भी कम कार्य कुशलता को बढ़ाते है।

2.6 साधन अगतिशीलता (Factor immobility) – उत्पादन के कारकों में मुख्य रूप से श्रम इन क्षेत्रों में भौगोलिक व व्यावसायिकता के आधार पर, क्षैतिजीय या समानान्तर या उदग्र रूप से अपना स्थान आसानी से नहीं त्यागते अर्थात् वे जहाँ कार्य कर रहे है उसी स्थान पर रह कर कार्य करना चाहते है। श्रम साधन की अगतिशीलता में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक कारण मुख्यत: अवरोध उत्पन्न करते है।

2.7 बाल श्रम का व्यापक रूप से प्रचार प्रसार (Extensive prevalence of child labour)– सरकारी क्रिया विधियो, निर्देशों व सामाजिक सुरक्षा अधिनियमों के बावजूद अल्पविकसित देशों में बाल श्रम अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। इसका कारण श्रमिकों की निर्धनता, बाल श्रम का सस्ते में सुलभ होना और उन पर आसानी से नियंत्रण पाया जाना है।

2.8 महिलाओ की स्थिति एवं दशा में निम्नता (Inferiority of women's status and position) – समाज मे महिलाओं की स्थिति अत्यन्त पिछड़ी हुई है। इसका कारण महिलाओं की शारीरिक सामर्थ्य व क्षमता का कम होना और समाज के कुछ प्रचलित नियमों का पाया जाना है। लेकिन महिलाओं की स्थिति व महत्व अब धीरे–धीरे बढ़ रहा है। और वे उत्पादक व्यवसायों में बढ़ रही है।

2.9 प्राथमिक शिक्षा एवं अज्ञानता (Rudimentary education and illiteracy) – अर्द्धविकसित देशों की एक अन्य प्रमुख विशेषता है, इन देशों के लोगों में ज्ञान की कमी होना उन्हें न केवल तकनीकी ज्ञान (Knowledge of technology) की कमी है बल्कि उनमें सामाजिक संबंधों के ज्ञान की कमी भी रहती है वे प्राकृतिक संसाधनों की अपर्याप्तता (Inadequacy of Natural) वैकल्पिक उत्पादन संभावनाओं (alternative production possibility) तकनीक एवं बाजार की दशाओं से अनभिज्ञ (ignorant) हैं ।

2.10 धार्मिक जनसंख्या (Religious minded population) – अल्प विकसित देशों में समाज में भावनात्मक कल्याण अर्थात् धार्मिक भावनाओं को प्राथमिकता दी जाती है । व भौतिक (materialistic) व भौतिकीय कल्याण द्वितीयक माना जाता है । यहाँ पर यह भावना मुख्यतया से पाई जाती है कि मनुष्य का भाग्य ईश्वर की देन है । और ज कुछ ईश्वर करता है या जो भाग्य में लिखा होता है वही होता है । मानवीय प्रयासों या स्वयं प्रयत्नों से कुछ नहीं होता । अत: व्यक्तियों में उस स्थिति को स्वयं के प्रयासों से बदलने के स्थान पर स्वीकारने की प्रवृत्ति पाई जाती है ।

3 पूंजी से संबंधित विशेषताएं (Characteristics concerning capital)

3.1 पूंजी की कमी (lack of capital) – अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में उनकी विकास आवश्यकताओं के अनुरूप जो पूंजी स्टॉक उपलब्ध है वह अपर्याप्त है । यहां उत्पादन की अपर्याप्तता, निम्न राष्ट्रीय आय का स्तर, जनसंख्या की अधिकता, प्रति व्यक्ति आय का

स्तर कम होना, बचतें कम होना, अपसंचय की प्रवृति (nature of dishoarding)होना, अतिव्यय उपभोग होना और अल्पकालीन सटटा विनियोग (Speculative) के कारण है । पूँजी की कमी के कारण मुख्य कृषक पुँजीगत उद्योगों में उपलब्ध (available) पूंजी को विनियोग करने की बजाय हल्के उपभोक्ता (consumer) वस्तुओं के उद्योगों में विनियोग करते है ।

3.2 पूंजी के लिए– अकुशल श्रमिकों का स्थानापन्न (Substitution of Unskilled labour for capital) – पूंजी की अपेक्षा अकुशल श्रम ज्यादा सस्ता होता है । अत: उत्पादकों में श्रमिकों को पूंजी के स्थान पर प्रयुक्त करने की प्रवृति होती है । परिणाम स्वरूप खेती की तकनीकें, कारखानों, व्यापार व विपणन में और घरेलू कार्य उन्हीं पारंपरिक तरीकों से किया जाता है जैसे कि पूर्व में किया जाता था जो विकसित देशों को तुलना में पुरानी रीति के होते है ।

3.3 पूंजी का कम उपयोग (Under Utilisation of Capital) – अल्पविकसित देशों में जो भी विद्यमान है उसका पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है । यह कृषि (Agriculture) में विशेष रूप से विचारणीय है कृषि जोतों (Agricultural holdings) का एक बहुत बड़ा भाग उपलब्ध उपकरणों के प्रयोग के लिए बहुत छोटा पड़ता है । कृषि क्षेत्र का एक बहुत बड़ा भाग एक ही फसल उगाने के कारण शेष समय या पूरी काल अवधि में बेकार पड़ा रहता है।

3.4 कम साख सुविधाऐं (Credit facilities) – अल्पविकसित देशों मे साख सुविधाए बहुत ही कम, अपर्याप्त (inadequacy of credit facilities), असुविधाजनक (inconvenience) और अनियमित (irregular) होती है । उदाहरण के लिए भारत में 70% प्रतिशत साख सुविधाऐं असंगठित मौद्रिक बाजार (unorganized monetary market) द्वारा उपलब्ध कराई जाती है यह पूंजी बाजार, वस्तु क्रय विक्रय बाजार (Commodity Market or good market) उत्पादन और निवेश पर बुरा प्रभाव डालती है ।

3.5 असंगठित मौद्रिक बाजार (Unorganized Monetary Market) – अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में मौद्रिक बाजार संगठित नहीं है । इस पर राजकीय नियंत्रण (Control of government) एवं नियमन (Regulation) नहीं है इसके परिणामस्वरूप देश की ग्रामीण संरचना पर बुरा प्रभाव (bad effect) डालते है । और ग्रामीण क्षेत्र जो कि कुल जनसंख्या का 70 प्रतिशत से भी अधिक है अत्यधिक प्रभावित होता है । देश में निर्धन व्यक्ति जो कि (already poor) पहले से ही निर्धनता से ग्रसित है उनमें वृद्धि करता है और विकास (development) कार्यक्रमों की जगह विषाद या कठिनाईयाँ जन्म लेती है ।

4 संगठन, उपक्रम और तकनीकी से संबंधित विशेषताऐं (Characteristics Concerning to organization, Enterprise and technology)

4.1 उपक्रमों एवं संगठनात्मक क्षमता की कमी (Lack of Entrepreneurship and organizational capacities) –, अल्पविकसित राष्ट्रों में अग्रसर होकर कार्य करने की

भावना प्राय: नही पायी जाती है । इसलिए निजी क्षेत्र (Private) या उद्यम इन क्षेत्रों की आर्थिक स्थिति में कभी कभार ही विकास कर पाते है। राज्य की नई–नई तकनीक या रीति–चलाने वाले या प्रारंभिक कर्ता के रूप में प्रवेश करते है और यहां तक कि यह ऐसा क्षेत्र होता है जिन्हें निजी क्षेत्र (Private sector) सामान्य रूप से कार्य करके भी विकसित कर सकते है । संगठनात्मक कुशलता और क्षमता की कमी के कारण, कारखानें और संस्थान जो कि आधुनिक (advanced) तकनीकें रखते है वे भी अनुभवहीन व अकुशल प्रबंधकों के द्वारा संचालित किए (managed) जाते है इसका परिणाम यह होता है कि संसाधनों का गलत आवंटन होता है । (misallocation of resources) और अकुशलताओं या साधनों का पूर्ण उपयोग न होने के कारण विकास में बाधक बनते है ।

4.2 धीमी तकनीक (Lagging technology) – अल्पविकसित देशों में तकनीकी स्तर की कमी पाई जाना भी एक विशेष लक्षण है । शताब्दियों से उत्पादन की तकनीकी में गतिहीनता (Stagnation) आई हुई है । उत्पादन में स्थिरता है और कुछ स्थितियों में तो यह वास्तव मे बिगड़ भी गई है ।

जबकि विकसित देशों में विज्ञान एवं तकनीकी में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है और इस प्रकार विकसित एवं अल्पविकसित देशों के बीच का अन्तराल बढ़ता ही जा रहा है । उत्पादन की घटिया व अपरिपक्व (Poor and crude) तकनीकी गुणवत्ता की दृष्टि से निम्न किस्म की होती है जो कि उच्च लागतों (Higher costs) को बढ़ाती है

5 व्यापार और विपणन से संबंधित विशेषताऐं (Characteristics concerning to trade and marketing)

5.1 विदेशी व्यापार के अभिमुख अनुकूल होना (Foreign Trade Oriented) – अल्पविकसित देशों को बाह्य व्यापार (External trade) पर बहुत अधिक निर्भर रहना पड़ता है । तथ्यों व प्रमाणों से यह स्पष्ट हो (Facts) चुका है कि इन देशों का निर्यात अनुपात राष्ट्रीय आय का लगभग 20 प्रतिशत होता है । निर्यातों पर अत्यधिक निर्भरता अल्पविकसित देशों के व्यापार चक्रों (Business Cycles) को दूसरे देशों में उत्पन्न करती है ।

ये देश कारखानों व निर्माण से संबंधित प्रारंभिक उत्पादों, वस्त्रों, हल्की उपभोग वस्तुओं, खाद्य पदार्थों, पूंजीगत उपकरणों और आवश्यक कच्चेमाल के आयात के लिए भी अत्यधिक निर्भर रहते है । आयात करने की यह प्रवृति प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration effect) के कारण उत्पन्न होती है ।

5.2 विपणन (बाजार) की अपूर्णताऐं (Market imperfections) – अल्पविकसित देशों के बाजार, छोटे, अपूर्ण और असंगठित होते है । इन देशों में मजदूरी, व्याज व कीमतों की दरें अवास्तविक (unrealistic) एवं बहुगुणी (multiple) होती है । आय कम होने के कारण यहाँ की क्रय क्षमता (Purchasing Power) भी कम होती है । बाजार का आकार एवं उत्पादन का पैमाना (Scale of Production) सीमित होता है । अत : ये उत्पादन संयंत्रों

के पूर्ण उपयोग (full Utilization of Production plants) मे बाधा डालते है और उत्पादन की लागतों को बढ़ाते है । बाजार की असंगठित प्रवृति को बढ़ाने में बाजार में पाई जाने वाली कई परम्परायें व यातायात की कमी भी मुख्य रूप सें जिम्मेदार है ।

6 आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिव्ययों से संबंधित विशेषताऐं (Characteristics concerning economic, social and political overheads)

6.1 सामाजिक संरचना (Social Structure) – आर्थिक विकास का सामाजिक दृष्टिकोण अपने आप में ही एक विस्तृत विषय है, अल्पविकसित देशों की सामाजिक दशा में सामाजिक पिछड़ेपन, धार्मिक अंधानुकरण प्रवृत्ति एवं अंधविश्वास (blind religious attitudes and beliefs) दृढ़ जाति व्यवस्था (rigid caste system), संयुक्त परिवार, पैतृक संपत्ति एवं उत्तराधिकार (inheritance and succession) दृढ़ पुरानी परम्पराओं का पाया जाना स्पष्ट रूप से प्रकट होंती है ।

अधिकांश अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाऐं बहुत कुछ एक लम्बे समय तक साम्राज्यवाद व उपनिवेषवाद के प्रभाव में रही हैं विदेशी शासन पिछड़ी अर्थव्यवस्था पर कुछ अच्छे बुरे प्रभाव छोड़ते है । जिन देशों ने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है ये नियोजन के माध्यम से विकास के लिए संघर्ष कर रहे है । इस परिपेक्ष्य में विकास की क्रिया में नि : सन्देह सार्वजनिक क्षेत्र बहुत बड़ी भूमिका अदा कर सकता है ।

7 अन्य विशेषताऐं (Other Characteristics)

7.1 प्रारंभिक आर्थिक विकास (Incipient economic growth)

अल्पविकसित देश में एक स्थिर राज्य निकट ही रहता है अल्पविकसित देशों मे जीवन निर्वाह स्तर कम और प्रतिव्यक्ति आय कम व स्थिर विनियोग एवं बचतों की दरों का निम्न होना और सरकारी राजस्व का कम होना पाया जाता है । बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक प्रगति को असंतुलित करती है । जिसके परिणाम स्वरूप अर्थव्यवस्था एक निश्चित या स्थिर स्थिति को प्राप्त करने के लिए दौड़ती है ।

7.2 संरचनात्मक एवं विभागीय असंतुलन (Structural and Sectoral imbalances)

अल्पविकसित क्षेत्रों में उपभोक्ता वस्तुओं और लघु उद्योगों के साथ कृषि क्षेत्र की प्रभुता रहती है । इन देशों की उत्पादकता कम होती है । यहाँ पर औद्यौगिकीकरण और विकास किससे किया जाए, इस की कमी होंती है क्योंकि यहाँ पर परिवहन संचार माध्यमों व ऊर्जा की सुविधाऐं सीमितता में होती है ।

संरचनात्मक व क्षेत्रीय असंतुलन इसलिए भी होता है क्योंकि साधन गहनता / संपन्नता उचित अनुपात में नही पाया जाता। एक साधन श्रम जो कि अत्यधिक मात्रा में है व अतिरेक के रूप में होता है जबकि दूसरा सह साधन पूंजी बहुत ही कम मात्रा में पाया जाता है। इसके कारण साधन अगतिशीलता या साधन स्थिरता मे उच्च श्रेणी की बाधा उत्पन्न होती है और औद्योगिकीकरण व विशिष्टीकरण को रोकती है और इस प्रकार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अधिकतम कुशलता और उत्पादन संसाधनों के अनुकूलतम आबंटन (Optimum Allocation) में अवरोध उत्पन्न करती है।

7.3 अत्यधिक आय असमानता और उच्च उपभोग (Extreme income inequality and high consumption) – अल्पविकसित देशों में केवल प्रति व्यक्ति औसत आय ही कम नही हैं एक वर्ग तो अत्यधिक निर्धन व्यक्तियों का है जों अपने लक्ष्यों को भी बड़े संघर्षों के साथ प्राप्त करता है जब कि दूसरी और ऐश्वर्य पूर्ण जीवन जीने वाले (lavish living) व (Direct) प्रत्यक्ष उपभोग करने वालों का एक वर्ग है। आय की यह असमानता या निर्धनता व सम्पन्नता की यह खाई (अंतराल) ही पूंजी निर्माण को रोकती है क्योंकि बहुत से व्यक्ति बिलकुल बचत नहीं कर पाते और जो थोड़ा बहुत बचत कर (उपभोग कम कर बचा) सकतें है वे भी उस बचे हुए द्रव्य का उपभोग करना पसंद करने है। अल्पविकसित देशों में उपभोग और व्यय करने की लगभग प्रतिस्पर्द्धा बनी रहती है। निर्धन जनसंख्या अपनी निर्धनता के कारण अपनी जीविका पर खर्च करती है जबकि मध्यम वर्ग उच्च वर्ग के जीवन निर्वाह तक पहुँचने के लिए खर्च करता है और इसके बाद की परिस्थितियाँ पश्चिमीकरण को, जन्म देती है ।

7.4 द्वैत प्रकृति या दोहरी प्रकृति (Dualistic Nature) अर्थव्यवस्था की दोहरी सरंचना के कारण आय के वितरण में असमानता आती है। एक तरफ आधुनिक नागरिक सुविधाओं से युक्त बड़े महानगरों में रहने वाले व्यक्तियों का वर्ग है वही दूसरी ओर निर्धन, प्रदूषित, अस्वास्थ्य कारी (Unhygienic) ओर पिछड़े क्षेत्रों में रहते है। जिन्हें सामान्यत: झुग्गी झोंपड़ियां (Slums) या गंदी बस्तियां कहा जाता है। इन दोनों में संप्रेषण और सहयोग (Communication and cooperation) की कमी है।

ठीक उसी प्रकार की द्वैत नीति (Dualism) उत्पादन व यातायात के क्षेत्र में भी पाई जाती है। इसलिए हाथ करघा (Hand loom) स्वचालित लूमों (automatic looms) के साथ एवं बैलगाड़ी (Bullock Carts) जुम्बो–जेटविमान (Jumbo Jet) के साथ–साथ अस्तित्व रखती है।

7.5 विषैले चक्र (Vicious Cycle) एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में नकारात्मक कारक (negative factor) दुसरे नकारात्मक कारक की प्रतिक्रिया को उत्पन्न करता है जो और दूसरे नकारात्मक कारक हेतु अपनी प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है और इस प्रकार एक ऋणात्मक कारक एक देश में कारण और परिणाम दोनों को क्रियान्वित करता है और इसलिए एक गरीब देश गरीब होने के कारण और गरीब रह जाता है ।

18.1.3 विकसित क्षेत्र (Developed Regions)

विकसित क्षेंत्र को उपयुक्त या सारगर्भित परिभाषा देने की अपेक्षा विकसित क्षेत्र की अविकसित क्षेत्र से तुलना करना ज्यादा सरल रहता है । विकसित क्षेत्र या अर्थव्यवस्था वह नहीं है जिसका सम्पूर्ण विकास हो गया हो और भविष्य में प्रगति हेतु कोई क्षेत्र (Scope) नहीं रहा हो, कोई भी देश पूर्ण रूप से विकसित नहीं है, सभी देश विकास की विभिन्न स्थितियों या अवस्थाओं में हैं और यह अंतर केवल कुछ अंशों का है । प्रत्येक देश विकास की दिशा में सतत् रहता है अत : इन देशों के विकास के स्तरों को निश्चित करना एक समस्या है । विकास की

गति (Speed of growth) इन देशों का निर्णायक बिन्दु (decisive point) नहीं होती बल्कि विकास का वह स्तर है जो एक देश प्राप्त करता है, अर्थात् विकसित देशों के लिए यह विषय विचारणीय नही है कि वहाँ विकास की दर क्या है? बल्कि यह विषय विचारणीय है कि उन देशों का उतना विकास हो चुका है या विकास के स्तर में वृद्धि कर चुके है ।

एक देश के विकास के स्तर को मापने के लिए प्रतिव्यक्ति आय (per capital income) को मापदण्ड माना जाता है । जब हम विकसित देश की बात करते है तो इसका अर्थ यह है कि विकसित देश वह देश है जिसकी प्रतिव्यक्ति आय अल्पविकसित देशों की तुलना में उच्चतर (higher) है, विकसित देशों की विशेषताऐं है सतत् सम्पनता (Continuous richness), आधुनिक तकनीक व संगठन, अति उतम उत्पादन और उच्च जीवन निर्वाह स्तर (Higher living Standard) है ।

विकसित देश या क्षेत्र वह क्षेत्र है जहाँ प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण रूपेण प्रयोग होता है और वे ठीक प्रकार से पूर्ण कुशलतम तकनीक से काम में लाये जाते है । विकसित देश कृषि उन्मुख (Agricultural oriented) नहीं होते, बल्कि उद्योग उन्मुख (industry oriented) होते है । कृषि में उपज दर उच्च होती है और यह प्रकृति व मानसून पर बहुत कम या नगण्य रूप से निर्भर करती है ।

इन देशों में जनसंख्या दबाव नहीं होता और आयु संरचना भी उच्च श्रेणी की होती है अर्थात् कुल जनसंख्या मे अग्रिम जनसंख्या का अनुपात कम व कार्य करने वाली जनसंख्या का अनुपात ज्यादा होता है । प्रजनन व मृत्युदरें (Fertility and mortality rate) अल्पविकसित देशो, की तुलना में कम होती है । मानवीय संसाधनों की विचारधारा भी आधुनिक होती है और वहाँ श्रम कुशलता उच्च होती है । विकसित राष्ट्रों में बेरोजगारी या तो होती ही नही या यदि होती भी है तो एकदम अल्पमात्रा में, उत्पादन के साधनों मे गतिशीलता अधिक पाई जाती है । समाज में महिलाओं की स्थिति उच्च होती है और उन्हें पुरूषों से नीचा नहीं समझा जाता । उनकी साक्षरता दरें (Literacy rates) उच्च होती है और व्यक्ति ज्यादा भौतिकवादी एवं क्रियाशील (materialistic and active) होते है । श्रमिक अत्यधिक कुशल गतिशील (mobile) और कार्य करने की अधिक क्षमता (more capacity) रखते है ।

पूंजी पर्याप्त या प्रचुर (Plenty) मात्रा में पाई जाती है । बचत व निवेश की दरें ऊँची होती है। उत्पादन के तरीके उन्नत या विकसित प्रकार के और ज्यादा पूँजी गहन (Capital intensive) तकनीक के होते है । इन देशों में साख सुविधाऐं अच्छी होती है, और पूंजी का पूर्ण उपयोग किया जाता है क्योंकि मौद्रिक बाजार ज्यादा संगठित और लोचदार (Elastic) होता है । पूंजी निर्माण (Capital Formation) की दरे उच्च होती है । विकसित तकनीक विकास की दर को भविष्य में और ऊँची बनाती है । विकसित देशों में संगठन व उद्यम / उपक्रम भी उच्च स्तरीय विकसित व प्रभावपूर्ण होता है । यहाँ अधिकतम् श्रम विभाजन, बड़े पैमाने पर उत्पादन, सुधरी व संशोधित मशीनीकरण व तकनीकी की सुविधा पायी जाती है ।

विकसित देशों में आंतरिक व बाहय व्यापार दोनों ही तेजी से, कुशलता के साथ लाभप्रद दृष्टिकोण से किया जाता है । भुगतान संतुलन (Balance of Payment) सामान्यतया

अनुकूल होता है। और देश की मुद्रा अन्तर्राष्ट्रीय साख अच्छी छवि या स्थिति रखती है। आन्तरिक बाजार पूर्णतया संगठित व आधुनिक श्रेणी का होता है।

विकसित देशों में उच्च स्तरीय यातायात, संचार सेवा, और ऊर्जा की अच्छी सुविधाऐं पाई जाती हैं। प्रतिव्यक्ति आय, प्रतिव्यक्ति उपभोग, प्रतिव्यक्ति बचतें और जीवन निर्वाह स्तर अत्यन्त ऊँची श्रेंणी का होने को प्रवृत रहता है।

विकसित देशों में समाज अच्छा और प्रगतिशील (Advanced) होता है। यहा पर परंपरागत रीति–रिवाजों को अत्यंत ही कम महत्व दिया जाता है। व्यक्ति अच्छी प्रगतिशील विचारधारा रखते है, इन देशों की विकास दरें प्राय: अल्पविकसित देशों की तुलना में अधिक होती है। अर्थव्यवस्था उत्पादन और प्रगति में ज्यादा संतुलित (more balanced) होती है। विकसित देशों की समपन्नता (richness) समृद्धता (Prosperity) और विकास(development) इन क्षेत्रों के अग्रिम विकास व प्रगति कों प्राप्त करने में सहयोग करते है ।

हम अविकसित क्षेत्रों (Undeveloped regions) अल्पविकसित क्षेत्रों (Under developed regions) और विकसित क्षेत्रों (developed regions) का अर्थ व विशेषताएं या लक्षण देख चुके है। अब यह स्पष्ट हों गया कि सभी क्षेत्र समान नहीं है, क्योंकि उनमें विशेषताओं व विकास के स्तरों में पर्याप्त (sufficient) भिन्नता है। इन सभी असमानताओं कें बावजूद सभी क्षेत्र अपने–अपने तरीके से विकास प्राप्त करते है ।

एक अर्थव्यवस्था जहाँ कि विकास संतुलित नहीं है व आर्थिक विकास विभिन्न स्तरों पर चारों ओर फैला हुआ है, वहाँ पिछड़े क्षेत्रों के आर्थिक विकास के लिए कुछ आवश्यक कदम उठाना जरूरी हो जाता है, ताकि उन्हें विकसित क्षेत्रों के समान लाया जा सके। पिछड़े क्षेत्रों को ऊँचा उठाने मे आर्थिक विकास एवं कारकों का अध्ययन शामिल होता है जो कि विकास के लिए आवश्यक है।

18.1.4 आर्थिक विकास और इसके कारक (Economic Development and its factors)

आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में एक लम्बी समयावधि के बाद वृद्धि होती है। यदि विकास दर जनसंख्या की दर से अधिक हो तो प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होती है। और भी कई अन्य परिवर्तन जो कि विशिष्ट विशेषता लिए होते है उत्पादन कों बढ़ाने में साथ देते है। उनमें सें कुछ महत्वपूर्ण निम्न हैं–

1. अतिरिक्त संसाधनों (Additional resources) का ज्ञान
2. पूजी संग्रहण (Capital accumulation)
3. जनसंख्या आकार व आयु संरचना में वृद्धि को सुधारना (Population growth improvement in size and age structure)
4. कुशलताओं में सुधार (improvements in skills)

5. अन्य संस्थागत एवं संगठनात्मक परिवर्तन (institutional and organizational improvement)
6. आय के स्तर व वितरण में सुधार (Improvement in Level and distribution of income)
7. मानवीय ससाघनों, उनकें स्वभाव व रीतिरिवाज व परम्पराओं में सुधार (improvement in human resources, tastes and traditions)

वर्तमान युग में आर्थिक विकास का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है अल्पविकसित देशों में विकास की एक चाह है और इसीलिए अल्पविकसित देशों में यह एक बड़ा राजनीतिक विषय बन गया है । वे अब यह महसूस करने लगे है कि निरतंर बढ़ती भुखमरी, रोग, मृत्यु और दु:खों का पूर्ण रूप से निराकरण विकास के व्यावहारिक व संभाव्य परिणामों से ही किया जा सकता है । कई विकसित देशों ने बहाय नीतियों में सहायता देना प्रमुख विशेषता माना है व जिसके कारण उन्हें अन्तर्राष्टीय पहचान भी मिली है ।

सम्पन्न देश अपने स्वयं के विकास से भी संबंध रखते है व ध्यान देते है । यद्पि इन देशो में निर्धनता उन्मूलन का दबाव निम्न स्तर का है । विकसित देशों के अर्थशास्त्री, व्यापारी और प्रशासक (सरकार) यह महसूस करतें है कि उनके निजी देशों में यदि अवनति या मंदी (depressions) को टाला जा सके और चिरकालिक गतिहीनता (secular stagnation) से बचा जा सके तो उन्हें इन देशों की विकास की दर संतोषजनक स्थिति मे बनाए रखनी चाहिए।

इस प्रकार विश्व के सभी देशों में विकास की समस्या पायी जाती है । आर्थिक विकास के दौर में सरकार और नागरिक चाहते हैं कि उनके निजी क्षेत्र आगे बढ़े और भविष्य मैं भी अग्रणी रहे ।

आर्थिक विकास के तत्व (Factors of economic Development)

पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए और इन क्षेत्रों के विकास को बनाए रखने के लिए कुछ मुख्य कारक निम्न है–

1 भूमि–प्राकृतिक संसाधन (Land–Natural Resources)
2 श्रम–मानवीय संसाधन (Labour–Human Resources)
3 पूंजी (Capital)
4 संगठन और निर्णय (Organization and Decision making)
5 उपक्रम उद्यम (Enterprise)
6 तकनीक (Technique)
7 आर्थिक कार्यप्रणाली (Economic Mechanism)
8 सामाजिक–सांस्कृतिक तत्व (Socio Cultural Factor)

इनका वर्णन निम्न प्रकार है

1 भूमि प्राकृतिक संसाधन (Land–Natural Resources)

यह उत्पादन का प्राक्रतिक संसाधन है, किसी भी अर्थव्यवस्था का उत्पादन प्रमुखत : भूमि की उपलब्धता, स्थिति की उपयुक्तता, मिट्टी की प्रकृति, यहाँ की वन संपदा, मछली

(मत्स्य), खनिज, जल और अन्य कोई पदार्थ (जैवकीय व अजैवकीय) जो दी हुई तकनीक पर निर्भर करती है । आर्थिक विकास में भूमि कई रूपों में जुड़ी हुई है, भूमि के रूप मे भौतिक व आर्थिक दोनों ही रूपों में भिन्न–भिन्न आकार लिए होती है । यह विकास दर की मुख्य निर्धारक घटक है । यह कृषि के साधन के रूप में, एक ओद्योग़ीक लागत के रूप में, यातायात के आधार के रूप में, श्रम पूँजी और तकनीकी के पूरक के – में विकास में अपना योगदान देती है ।

2 श्रम–मानव संसाधन (Labour–Human Resources)

जनसंख्या का आकार (Size) संरचना या बनावट (Composition) और सामाजिक सांस्कृतिक कारक आर्थिक विकास की गति एवं स्तर के आधारभूत निर्धारक तत्व है । जनांकीकिक या जन सांख्यीकीय (Demographic) और सांस्कृतिक कारक समाज में क्रियाओं के मात्रात्मक व गुणात्मक रूप को निर्धारित करते है । साथ ही उत्पादन के लक्ष्यों संगठन की विधि, तकनीकी का प्रकार, पूजा निर्माण की दर, प्राकृतिक साधनों के आकार–प्रकार के साथ–साथ उत्पादन के अन्य कारकों की मात्रा व प्रकृति को निर्धारित करता है । उपरोक्त बिन्दुओं के कारण आर्थिक संसाधनों में जन शक्ति का अध्ययन करना बहुत ही बड़ा कार्य हो गया है ।

मानव संसाधन या जनसंख्या आर्थिक विकास में दोहरा रिश्ता रखते है । संसाधन के रूप में, श्रम उत्पादन के अन्य साधनों के साथ मिलकर कार्य करता है । उपभोक्ता के रूप मे उनका लक्ष्य अधिकतम कल्याण और ठीक बने रहने का होता है । इस प्रकार जनसंख्या आर्थिक विकास का साधन और साध्य दोनों ही अर्थो में जुड़ी हुई है ।

यद्यपि अधिकांश अल्पविकसित क्षेत्रों और देशों में तेजी से आर्थिक विकास को प्राप्त करने की ओर लालायित रहने की प्रवृति है । उनका निर्धारण कुछ मुख्य समस्याओं जैसे जनसंख्या की तेजी सें बढ़ती दर, प्रतिकूल आयु संरचना, जनसंख्या का असंतुलित वितरण, जनशक्ति की अगतिशीलना, कार्य–कुशलता की अपर्याप्तता, शारीरिक क्षमता का कम पाया जाना अल्पबेरोजगारी, संस्थागत प्रतिरोध और सांस्कृतिक निष्क्रियता होते है । यह जीवन निर्वाह स्तर एवं प्रति व्यक्ति आय वृद्धि करनें में कई प्रकार का बाधाऐं डालते है । सही और संतुलित विकास प्राप्त करने के लिए इन देशों की सरकारें (Government) इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए कठिन प्रयास करती हैं ।

3 पूँजी (Capital)

पूँजी को उत्पादन के साधन के रूप में परिभाषित करते हुए हम कह सकते है कि पूंजी उत्पादन का वह साधन है जो हमें भवनों, कारखानों, मशीनों, उपकरणों, औजारों और माल की आगमन (inventories) के स्टॉक के रूप में हमें समाज में देखने को मिलता है । पूँजी आर्थिक विकास को सही तरीके से चालू रखने का एक उपकरण है और मानवीय पूँजी के रूप मे उत्पादकता को बढ़ाता है जैसे–तकनीकी शिक्षा पर निवेश, स्वास्थ्य और दक्षता पर निवेश, जो कि समाज की उत्पादक क्षमता को बढ़ाता है ।

पूंजी निर्माण वह प्रक्रिया है जिसमें एक समय अवधि में उत्पादन को और अधिक उत्पादित किया जाना है और यही प्रक्रिया निरंतर आगे जुड़ती जाती है । आर्थिक विकास के

सिद्धान्तों में पूंजी एक केन्द्रीय (Central) स्थिति रखती है । भूमि की मात्रा स्थिर है व अपरिवर्तनीय है । और पूंजी को भूमि के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जा सकता है । पूँजी निर्माण की प्रक्रिया अन्त : क्रियाओं व संचयन क्रिया द्वारा होती है । एक बार जब यह सक्रिय होकर चल जाती है तो यह स्वयं ही अपने आप आगे बढ़ जाती है । पूँजी बड़े पैमाने के उद्योगों, विशिष्टीकरण को बढ़ाने और कार्यकुशलता को बढ़ाने, तकनीकी प्रवृति के लिए, कार्य–क्षमता बढ़ाने, आर्थिक विस्तार करने एवं औद्योगीकरण के लिए आधार प्रदान करती है । पूँजी निर्माण की दर और उपलब्ध पूंजी का अनुकूलतम उपयोग किसी भी देश के विकास की दर को निर्धारित करते है ।

4 संगठन और निर्णयन (Organizational and decision making)

विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों के बीच संसाधनों के आवंटन, तकनीकी चयन, उत्पादन साधनो का अनुपात, बचत और निवेश में उत्पादकों के विभाजन और इसी क्रम में और बिन्दुओं को मद्देनजर रख कर निर्णय लिये जाते हैं । निर्णय कर्ता ही संगठन कर्ता होते है । और वे आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण (Central) केन्द्रीय भूमिका अदा करते है । योग्य (Competent) और कुशल (efficient) संगठन कर्ता उपलब्ध संसाधनो का सर्वश्रेष्ठ तरीके से उपयोग करते है और इस प्रकार देश कें आर्थिक विकास में वृद्धि (augmenting) करते है ।

निर्णय कर्ता (decision maker) की कुशलता विद्यमान परिस्थितियों जैसे कानून एवं व्यवस्था, मौदिक एवं राजकोषीय नीतियों, कीमत संयंत्र, बाजार की दशाओं आदि से प्रभावित होती है । जहाँ संगठन कर्ता कार्य कर्ता है वहाँ राज्य प्रशासन सुधार के लिए बहुत कुछ कार्य कर सकता है ।

5 उपक्रम (Enterprise)

उपक्रम / उद्यम आर्थिक विकास को आगे चलाने वाली मुख्य शक्ति है । निर्बाध वादी नीति (Laissez–faire policy) में कम विश्वास के कारण और समाजवादी विचारधारा के कारण विकसित राष्ट्रों में उद्यमियों का महत्व कम हो गया है । लेकिन फिर भी आर्थिक विकास को और अधिक बढ़ाने, प्रभावपूर्ण बनाने में उद्यमी अभी भी बहुत कुछ कर सकते है ।

6 तकनीकी (Technology)

तकनीकी प्रगति के द्वारा आधुनिक विचारधारा आविष्कार, नयी–नयी खोजों, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक क्षेत्र की तकनीक उपायों के साथ–साथ वास्तविक उत्पादन फलन में परिवर्तन आते है । विकसित देशों का विकास वहाँ की प्रौद्यौगिकीय उन्नतता या विकसित होने पर मुख्य रूप से निर्भर करता है प्रौद्यौगिकी क्रांति कम साधनों से अधिक उत्पादन प्रदान करती है । किसी भी देश की तकनीकी प्रगति स्वयं विज्ञान की प्रगति, शिक्षा और तकनीकी प्रचुरता में संसाधनों के प्रयोग पर निर्भर करती है, साथ ही तकनीकी सम्पन्न्ता व उसके व्यवहार में लाने की रीति पर निर्भर करती है ।

7 आर्थिक संयंत्र या प्रणाली (Economic Mechanism)

एक देश का विकास वहाँ की आर्थिक प्रणाली और कार्य करने की क्रियाओं जैसे कीमत, संयंत्र, बाजार की पूर्णताओं, श्रम विभाजन, राजकोषीय नीति (Fiscal policy) सार्वजनिक उपयोगिता और उत्पादन के साधनों की उत्पादकता आदि पर निर्भर करता है।

8 सामाजिक–सांस्कृतिक तत्व (Socio - Cultural Factors)

मानवीय मूल्य और संस्थाऐं आर्थिक जीवन को विभिन्न (Various) माध्यमों के द्वारा प्रभावित करती है । जैसे उपभोग प्रवृति, आर्थिक संगठन के तरीके, श्रम कुशलता, सामान्य जीवन का दृष्टिकोण, शिक्षा, स्वास्थ्य प्रोत्साहन, पुरस्कार आदि, ये सभी मानवीय मूल्य श्रम की क्षमता और उत्पादकता को प्रभावित करती है और देश के विकास को गति देने है ।

इस प्रकार आर्थिक विकास के विभिन्न चरों का विश्लेषण करने से यह प्रकट होता है, कि प्राक्रतिक व मानवीय संसाधनों के प्रतिस्थापन की एक विस्तृत (व्यापक) सीमा है, कोई भी साधन चाहे पूंजी हो या तकनीकी सामाजिक क्षमता हो या भौतिकीय विकास, कोई भी अपने आप में संतोषजनक या पूर्ण नही है । उत्पादन में कम से कम सभी की आवश्यकता होती है । और इनमें से प्रत्येक एक विशेष स्थिति में प्रभाव पूर्ण होता है कोई भी सार्वभौमिक संपन्न नहीं है और ना ही इनका कोई समाधान है ।

18.2 क्षेत्रीय विकास के सूचक (Indicators of Regional Development)

भारत में क्षेत्रीय विकास का अध्ययन समय–समय पर अर्थशास्त्रियों प्रशासनिक (सरकारी) अभिकरण, और आर्थिक कार्यकर्ताओं के दलो द्वारा किया जाता रहा है, क्षेत्रीय विकास के कारकों का मुख्य अध्ययन और उनके उपयोग निम्न प्रकार से किए गये है ।

18.2.1 भारतीय आर्थिक एवं वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान (The Economic and Scientific Research Foundation of India)

1960–61 से 1970–71 के दशक मे फसल उत्पादन से प्राप्त कृषि आय में अधिक ऊँची वृद्धि दर देखने को मिलती है । जो कि विकसित देशों में पहले से ही विद्यमान है । जब कि अल्पविकसित देशों मे इस दिशा मैं कोई उत्साह जनक स्थिति नही है । राष्ट्रीय औसत कृषि आय में 142.66 प्रतिशत की वृद्धि हुई है । पंजाब, हरियाणा, गुजरात और राजस्थान में यह राष्ट्रीय औसत से उपर 200 प्रतिशत से उपर है । मैसूर, उड़ीसा, जम्मू और काश्मीर और कैरल में 142.66 से 200 प्रतिशत के बीच में जब कि अन्य सभी राज्यों में कृषि आय की दर राष्ट्रीय वृद्धि दर से कम है ।

18.2.2 पाण्डे समिति (Pandey Committee)

1968 मे भारत सरकार ने पिछड़े क्षेत्रों कि पहचान के लिए कार्यकर्त्ताओं का एक दल नियुक्त किया, जिसे पाण्डे समिति का नाम दिया गया । ताकि पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित किया जा सके । नियुक्त दल या पाण्डे समिति ने पिछड़े क्षेत्रों की औद्योगिक पहचान निम्न मापदण्डों के आधार पर की –

1 बड़े शहरों और औद्योगिक संस्थानों से दूरी (Distance from large Cities and Industrial Projects)

2 प्रति व्यक्ति आय (Per Capita income)

3 द्वितीयक एवं तृतीयक उद्योगों में जनसंख्या को लगाना (Population engaged in Secondary and Tertiary industries)

4 आर्थिक एव प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग (Utilisation of economic and natural resources)

इसके बाद विकास योजना आयोग ने राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council) से विचार विमर्श करने के बाद निम्न कार्य क्षेत्र अनुशंसित (Recommended) किये –

1 प्रति व्यक्ति खाद्यान / व्यापारिक फसल उत्पादन (Per Capita food grains/ Commercial Crop Production)

2 कृषि मजदूरों का अनुपात (Proportional of agricultural workers)

3 प्रति व्यक्ति औद्यौगिक उत्पादन (Per Capita industrial Output)

4 द्रितीयक एवं तृतीयक गतिविधियों (activities) में कारखाना रोजगार या वैकल्पिक रोजगार ।

5 विधुत का प्रति व्यक्ति उपयोग (Per Capita Consumption of electricity)

6 जनसंख्या के संबंध में सड़क यातायात की लम्बाई और रेलवे माइलेज।

पाण्डे समिति और योजना आयोग दोनों ने ही यह सुझाव दिया कि पिछड़े क्षेत्रों के औद्यौगिक विकास को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए और कम से कम जीवन निर्वाह स्तर की आधारभूत संरचनात्मक सुविधाएं (infrastructural facilities) सभी जिलों को दी जानी चाहिए।

18.2.3 चक्रवर्ती समिति (Chakravarty Committee)

पिछड़े क्षेत्रों की पहचान और वर्गीकरण की समस्या को चक्रवर्ती समिति ने और अधिक वर्गीकृत कर परीक्षण किया । चक्रवर्ती समिति ने निभ चौदह सूचकों को पिछड़े क्षेत्रों के लिए चुना :

1 प्रति वर्ग किलोमीटर जनसंख्या का घनत्व (Population density Per sq. K.M. area)

2 कार्य शक्ति में कृषि श्रम का प्रतिशत (Percentage of agricultural, worker)

3 ग्रामीण जनसंख्या का प्रति व्यक्ति द्वारा उत्पादन में खाद्यान्न उत्पादन का कुल मूल्य (Gross value of output of food grains per head of rural Population)

4 ग्रामीण जनसंख्या का प्रति व्यक्ति उत्पादित अखाद्यान उत्पदान का कुल मूल्य (Gross value of output of non food grains per head of rural Population)

5 ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिव्यक्ति कुल फसल उत्पादन का मूल्य (Gross value of output of all crops per head of rural Population)

6 प्रतिष्ठानों या संस्थानों (establishments) की कुल संख्या में से विघुत उपभोग करने वालें कुल संस्थानों (establishments) का प्रतिशत ।

7 कुल पारिवारिक संस्थानों (Household establishments) में विश्रुत उपभोग करने वाले पारिवारिक संस्थानों का प्रतिशत ।

8 कुल गैर पारिवारिक संस्थानों का प्रतिशत

9 प्रति लाख जनसंख्या पर पंजीकृत कारखानों में कार्यरत श्रमिकों की संख्या (Number of workers in registered factories per lakh of Population)

10 प्रति सौ वर्ग किमी. क्षेत्रफल में सतही की लंबाई (Length of surfaced Roads per 100aquare km. of area.)

11 प्रति लाख जनसंख्या पर सतही भागों की लंबाई (Length of surfaced Roads per lakh of Population)

12 पुरूष जनसंख्या में पुरूष साक्षरों का प्रतिशत (% of male literates to male population.)

13 महिला जनसंख्या में महिला साक्षरों का प्रतिशत (Percentage of female literates to female population.

14 कुल जनसंख्या में कुल साक्षरों का प्रतिशत चक्रवर्ती समिति ने पिछड़े क्षेत्र के इन चौदह सूचकों को प्राथमिकी आधार पर चुनने के लिए तीन विधियों का प्रयोग किया । श्रेणी क्रम विधि द्वारा (Ranking method) 164 जिलों को पिछड़ेपन के रूप में वर्गीकृत किया और सूचकांक विधि द्वारा 206 जिलों को पिछड़ेपन के रूप में वर्गीकृत किया एवं तृतीय मूल अवयव विश्लेषण (Principal Component analysis) द्वारा 181 बिलों को पिछड़ेपन में वर्गीकृत किया। 155 जिलों को सभी तीनों पद्धतियों द्वारा वर्गीकृत किया गया । समिति ने इन सामूहिक (Common) जिलों को देश के दुष्कर पिछड़े क्षेत्रों के रूप में माना ।

18.2.4 पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए राष्ट्रीय समिति (National Committee on development of backward areas NCDBA)

इस समिति ने असफलताओं को मापने के लिए गरीबी रेखा (Poverty line) से नीचे रहने वालों का जनसंख्या में प्रतिशत या बेरोजगारी की दर, प्रति व्यक्ति घेरलू उत्पाद मूल्य (Domestic Product) सहित सूचकों को एक संख्या में संयुक्त रूप से रख कर क्षेत्रीय

पिछड़ेपन को मापना ज्यादा सरल माना, समिति ने पाया कि इस प्रकार का माप संतोषजनक नहीं है । समिति ने कहा: "निर्धनता व बेरोजगारी पिछड़ेपन की स्पष्ट तस्वीर है किन्तु निश्चित तौर पर एक कार्योत्पादक (Causative) तत्व नहीं है ।

NCDBA ने यह भी पाया कि समपूर्ण सूचकांकों को प्रयोग में लाने के बजाए पिछड़ेपन को परिभाषित करने कें लिए क्षेत्रीय सूचिकाओं को विकास के विशिष्ट क्षेंत्रों के क्रम में प्रयुक्त करना ज्यादा सरल है जैसे– कृषि पिछड़ापन औद्यौगिक पिछड़ापन, शैक्षणिक पिछड़ापन आदि ।

इन सूचिकाओं को क्षेत्रीय असमानताओं के विभागीय स्तरों पर अनुवर्तन में प्रयोग किया जा सकता है । औद्यौगिक पिछड़ेपन की अवधारणा में विशेष रूप से कुछ वैधता (Validity) हो सकती है । परंतु सामान्यतया पिछड़ेपन की पहचान करने की समस्या के लिए सामान्य उत्तर यही होता है कि विभागीय सूचकांक दृष्टिकोण बहुत ज्यादा आशाजनक (Promising) नही है ।

इस प्रकार NCDBA समिति ने पिछड़े क्षेत्रों को पहचानने के लिए संपूर्ण सूचकांक प्रणाली को मंजूर नहीं किया । इसके बजाय समिति ने पिछड़े क्षेत्रों की पहचान करने के लिए निम्न सुझाव दिए ।

1 भयंकर सुखा ग्रस्त क्षेत्र ।
2 शुष्क क्षेत्र ।
3 जनजातीय क्षेत्र ।
4 पहाड़ी क्षेत्र ।
5 भयंकर रूप से बाढ से प्रभावित क्षेत्र ।
6 क्षार/लवणपन/ खारेपन से प्रभावित तटीय क्षेत्र ।

समिति ने इन छ: प्रकारों को पिछड़ेपन के मूलभूत आधारक तत्व (Fundamental factor) माना। इनके अलावा एन.सी.डी.बी.ए. ने पिछड़े क्षेत्रों की पहचान हेतु दो मुख्य बातें बताई । एक तो उत्पादन संबंधों और सामाजिक संरचना में दोहरे तत्वों की व्यापकता या प्रचलन में होना बताया तथा दूसरी प्रशासकीय उपस्थिति (administrative Presence) की कमी ।

18.2.5 प्रो. राजकृष्ण ने अपने लेख "केन्द्र एवं परिधि (The centre and the periphery)

1980 में अंतराज्यीय असमानताओं को निम्न छ: श्रेणियों में वर्गीकृत किया–

1 आय, निर्धनता और बेरोजगारी ।
2 कृषि सूचक ।
3 औद्यौगिक सूचक ।
4 आधारभूत संरचनात्मक सूचक ।
5 सामाजिक सेवा सूचक ।
6 संसाधन आवंटन सूचक ।

प्रो० राजकृष्ण ने पाया कि 72 प्रतिशत कुल निर्धन जनसंख्या और 66 प्रतिशत बेरोजगार जनसंख्या सात प्रमुख राज्यों में केन्द्रित है । ये राज्य पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश महाराष्ट्र, तमिलनाडु एवं आंध्र प्रदेश है । प्रो ० राज कृष्ण ने कई अध्ययनों के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि असमानताओं में हल्की सी कमी या गिरावट 1950 में आई परंतु 1960 में असमानताओं में वृद्धि हुई और 1970 के प्रारंभिक वर्षो में यह यथावत रही । उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला कि राज्य प्राकृतिक संसाधनों की कमी के कारण निर्धन नहीं हैं बल्कि निवेश की अपर्याप्तता (insufficiency) के कारण वे निर्धन हैं ।

औद्यौगिक क्षेत्र में अन्तर्राज्यीय असमानताओं का परीक्षण करनें के लिए उन्होंने दो सूचकों का प्रयोग किया । ये सूचक हैं –

1 मूल्य वृद्धित प्रति व्यक्ति निर्माण (The value added by manufacturer per capita) और

2 निर्माण कार्यों में कर्मचारियों का अनुपात ।

बिहार सबसे ज्यादा पिछड़ा राज्य प्रमाणित हुआ है । जब कि केंद्र सरकार द्वारा इसी राज्य मे सर्वाधिक विनियोग किया गया है । महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिमी बंगाल, और पंजाब राज्यों ने केन्द्र सरकार के कम विनियोग के बावजूद आर्थिक विकास में उच्च श्रेणी प्राप्त की है।

आधारभूत और सामाजिक सेवा सूचकों (Indicators of fundamental and Social Services) के सन्दर्भ में बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तरप्रदेश राज्य महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिमी बंगाल, पंजाब, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु और हरियाणा राज्य से पीछे है । प्रो ० राजकृष्ण नें निष्कर्ष रूप से बताया कि लगभग पिछले तीन दशकों से समपूर्ण विकास को विचाराधीन रखने के बजाय विकास के कई महत्वपूर्ण आयामों को दृष्टिगत न रखने के कारण अन्तर क्षेत्रीय (interregional) (अन्तर्राज्यीय एवं अन्तराराज्यीय) असमानताओं को बढ़ावा मिला है जो कि बढ़ते हुए प्रमाणों के रूप में दर्शाये गये है । विकास की दरों ओर उनके स्तर "भद्रालोक" और "शूद्रा" (Bhadraloka and shudra) के रूप में राज्य के रूप होते जा रहे है। संयुक्त राष्ट्र के शब्दों में, एक गम्भीर "उत्तर–दक्षिण समस्या" देशों में जन्म लेते रही है । जो कि मानचित्र में पिछड़े क्षेत्रों के रूप में पहचानी जा चुकी है और वास्तव में उत्तर दक्षिण समस्या न होकर "केन्द्र परिधीय समस्या" (Central Peripheral Problem) है ।

दी इकोनोमिक टाईम्स (The Economic Times) ने 1982 में विभिन्न राज्यों में गरीबी के फैलाव का अध्ययन किया । नौ राज्य उड़ीसा, त्रिपुरा, मध्यप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, तमिलनाडु, आसाम, उत्तरप्रदेश, और कर्नाटक में कुल जनसंख्या का 48.13 प्रतिशत गरीब जन्मसंख्या रहती है जो कि निर्धनता रेखा (Poverty line) से नीचे है । दूसरी तरफ पंजाब और हरियाणा सबसे अमीर / धनी राज्य है जहाँ गरीबी के रेखा से नीचे क्रमश : 23.15 प्रतिशत और 24.48 प्रतिशत जनसंख्या रहती है । आपके तथ्यों के लिए 1982 में पूरे भारत के औसत को 100 मानते हुए चालू मूल्यों पर प्रति व्यक्ति आय के आधार पर राज्य से तुलना

कर क्षेत्रीय असमानताओं का विश्लेषण किया गया है । 1980 – 81 के लिए वे राज्य जो कि राष्ट्रीय औसत से ऊपर हैं वे पंजाब, महाराष्ट्र, हरियाणा, गुजरात, ओर पश्चिमी बंगाल हैं जिनके सूचकांक क्रमश : 173, 148, 137, 123, और 103 हैं । वे राष्ट्र जिनके सूचकांक औसत से कम है वे हैं हिमाचाल प्रदेश (98.5), जम्मू एवं कश्मीर (95.2), कर्नाटक (91.0), केरल (90.5), तमिलनाडु (89.1), आंध्र प्रदेश (85.6), आसाम (81.5), राजस्थान (81.3), उत्तरप्रदेश (74.4), मध्यप्रदेश (71.8), उड़ीसा (71.7), मणिपुर (69.8), और बिहार (59.4) है।

प्रो. आर. टी. तिवारी (Prof. R.T. Tiwari) ने 1984 में 19 सूचकों के आधार पर कृषि, उद्योग, सिंचाई, उर्जा, यातायात राष्ट्रीय औसत से अधिक है : पंजाब (157), केरल (139), तमिलनाडू (137), महाराष्ट्र (123), गुजरात (119), हरियाणा (116), कर्नाटक (114), और पश्चिमी बंगाल (110) हैं । जिन राज्यों का औसत राष्ट्रीय औसत से कम है उनके नाम आन्धप्रदेश (98 , हिमांचल प्रदेश (98), उत्तर प्रदेश (87), उड़ीसा (84), राजस्थान (81), बिहार (78) और मध्यप्रदेश (76) हैं । इस प्रकार मध्यप्रदेश जो देश का भूमि की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य होने पर भी पंजाब के निष्पादन स्तर से आधा भी नहीं है । पांचवीं योजना में क्षेत्रीय असमानताओं की समस्या तीसरी पंचवर्षीय योजना अवधि और उसके बाद पांचवीं पंचवर्षीय योजना मे अध्ययन की गई । जब राज्यों की पांचवीं पंचवर्षीय योजना तैयार की जा रही थी तो राज्यों के पिछड़े जिलों को मद्धेनजर रखतें हुए योजना बनाई गई ।

इनके लिए निम्न सूचक प्रयोग में लाए गये–

1 शुद्ध कृषि उत्पादन में प्रति श्रमिक औसत मूल्य (Per worker value of net agricultural Production)
2 शुद्ध औद्यौगिक उत्पादन में प्रति श्रमिक औसत मूल्य (Per worker average value of net industrial Production)
3 शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल मे सिंचित क्षेत्रफल का प्रतिशत (Percentage of irrigated area to net sown area)
4 विधुत का प्रतिव्यक्ति उपभोग (Per Capita consumption of electricity)
5 प्रति सौ वर्ग किमी क्षेत्रफल पर सड़क मार्ग (Roads per 100sq. Km. of area)
6 प्रतिलाख जनसंख्या पर अस्पतालों की संख्या (Hospitals per lakh, of Population)
7 प्रतिलाख जनसंख्या पर औषधालयों की संख्या (Dispensaries per lakh, of Population)
8 प्रतिलाख जनसंख्या पर अस्पताल में विस्तरों की जनसंख्या (Beds in per lakh of Population)

9 प्रतिलाख जनसंख्या पर बैंक शाखाऐं (Branches of Banks per lakh of Population)

10 जनसंख्या की वृद्धि दर (Growth rate of Population)

11 प्रति हजार पुरूषों पर महिलाओं की संख्या (Number of Females per thousand males or Sex Ratio)

12 कुल जनसंख्या में 0 से 14 वर्ष के आयु समूह का प्रतिशत (Percentage of 0–14 years age groups of total population)

13 कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का प्रतिशत (Percentage of Urban Population to total Population)

के आधार पर हम आर्थिक प्रणाली या अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में क्षेत्रीय आर्थिक विकास के सूचकों / निर्देशकों को समेकित या एकीकृत कर सकते है। अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्र जिनके विकास को हम माप सकते है निम्म है–

1 कृषि क्षेत्र (Agricultural Sector)

2 औद्यौगिक क्षेत्र (Industrial Sector)

3 बैंकिंग क्षेत्र (Banking Sector)

4 परिवहन क्षेत्र (Transport Sector)

5 सामाजिक क्षेत्र (Social Sector)

6 शिक्षा (Education)

7 स्वास्थ्य (Health)

8 राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय (National income and per capita income)

9 अन्य (Others)

18.2.6 कृषि क्षेत्र के विकास के सूचक (Indicators of Development of Agricultural)

कृषि क्षेत्र के विकास संबंधी, सूचक निम्न हैं -

1 भूमि से सम्बन्धित सूचक–

(क) शुद्ध क्षेत्रफल वार प्रति व्यक्ति कृषि (Per Capita net area sown)

(ख) सकल क्षेत्रफल वार प्रति व्यक्ति कृषि (Per Capita gross area sown)

(ग) दोहरे कृषि क्षेत्र का सकल कृषि क्षेत्र का प्रतिशत (Percentage of double sown area to gross sown area)

(घ) दोहरे कृषि क्षेत्र से शुद्ध कृषि क्षेत्र का प्रतिशत

(ङ) शुद्ध सिंचित क्षेत्र से शुद्ध कृषि क्षेत्र का प्रतिशत (Percentage of net irrigated area to net area)

(च) सकल सिंचित क्षेत्र से सकल कृषि क्षेत्र का प्रतिशत (Percentage of gross irrigated area to gross sown area)

(छ) उपरोक्त सभी सूचकों का योग

2 श्रम से सम्बन्धित सूचक (Indicators Concerning labour)

(क) कुल श्रमिकों में से कृषकों का प्रतिशत

(ख) कुल श्रमिकों में से कृषि श्रमिकों का प्रतिशत

(ग) ग्रामीण जनसंख्या में कृषर्को का प्रतिशत

(घ) कुल कृषि श्रमिकों में तकनीकी कृषि श्रमिकों का प्रतिशत

(ङ) उपरोक्त सभी सूचकों का योग

3 पूंजी से संबंधित सूचक

(क) कुल कृषि क्षेत्र के प्रति सौ हैक्टेयर पर पशुधन की संख्या

(ख) कुल भूमि के प्रति सौ हैक्टेयर पर दुधारू पशु धन संख्या

(ग) कुल कृषि क्षेत्र के प्रति सौ हेक्टेयर पर काम में लाये उर्वरक

(घ) कृषि भूमि के प्रति सौ हेक्टेयर पर कुल कृषि उपकरण

(ङ) कृषि उपज के प्रति लाख पर कृषि साख संस्थाओं की संख्या

(च) उपरोक्त सभी सूचकों का योग

4 कृषि आय से संबंधित सूचक (Indicators relating to agricultural income)

(क) प्रति व्यक्ति भूमि से प्राप्त आय (Per capita land revenue)

(ख) फसल प्रति व्यक्ति (रूपयों में) (Per Capita value of crops in rupees)

(ग) फसल प्रति हैक्टेयर रूपयों में (per hectare value of crops in rupees)

(घ) उपरोक्त आय के सभी सूचकों का योग

5 कृषि विकास के सूचकों के योगों का योग या महायोग (Total of totals of indicators of Agricultural development)

(क) भूमि से संबंधित सूचकों का योग

(ख) श्रम से संबंधित सूचकों का योग

(ग) पूंजी से संबंधित सूचकों का योग

(घ) कृषि आय के सूचकों का योग

(ङ) कृषि विकास के उपरोक्त चारों योगों का योग या महायोग और यह योग ही एक क्षेत्र विशेष के कृषि विकास के सभी सूचकों का समय होगा।

18.2.7 औद्यौगिक विकास के सूचक (Indicators of Industrial sector)

1 औद्यौगिक विकास के प्रत्यक्ष सूचक (Direct indicators of Industrial Sector)

(क) प्रति लाख जनसंख्या पर पंजीकृत कारखानों की संख्या,

(ख) प्रति लाख जनसंख्या पर पंजीकृत कारखानों में कर्मचारियों की संख्या (Number of workers in registered factories over per lakh of Population)

(ग) कुल श्रमिकों में द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों की संख्या का प्रतिशत (Percentage of secondary and tertiary sector workers to total workers)

(घ) लघु पैमाना उद्योगों, में प्रति व्यक्ति निवेश (Per Capita investment in small scale industries)

(ङ) औद्यौगिक उत्पादन की प्रति व्यक्ति कीमत (Per Capita value of industrial Production)

(च) औद्यौगिक विकास के प्रत्यक्ष सूचकों का योग

2 औद्योगिक विकास का माप आय के रूप में (Revenue as a measure of industrial Development)

(क) बिक्री कर से प्राप्त प्रति व्यक्ति आय (Per Capita revenue from sales tax)

(ख) उत्पादन शुल्क से प्राप्त प्रति व्यक्ति आय (Per Capita revenue from excise duties)

(ग) मनोरंजन कर से प्राप्त प्रति व्यक्ति आय

(घ) औद्यौगिक उत्पादन से प्राप्त प्रति व्यक्ति कीमत, (Per Capita value of industrial production)

(ङ) औद्यौगिक विकास के आय मापको का योग

3 औद्यौगिक विधुत विकास के सूचक (Indicators of Industrial electricity Development)

(क) कुल विद्युत उपभोक्ताओं में से औद्यौगिक विद्युत उपभोक्ताओं का प्रतिशत (Percentage of industrial electricity consumers to total electricity consumer)

(ख) ग्रामीण औद्योगिक विद्युत उपभोक्ताओं का कुल ग्रामीण विद्युत उपभोक्ताओं में से प्रतिशत (Percentage of rural industrial electricity consumers to total rural electricity)

(ग) कुल विद्युत उपभोग में से औद्यौगिक विद्युत उपभोग का प्रतिशत (Industrial electricity consumption to total rural industrial electricity consumption to total rural electricity)

(घ) कुल ग्रामीण विद्युत उपभोग में से ग्रामीण औद्यौगिक उपभोग का प्रतिशत (Percentage of rural industrial electricity consumption to total rural electricity consumption)

(ङ) कुल संबद्ध या संयुक्त खेप में से ग्रामीण औद्यौगिक संयुक्त खेप का प्रतिशत (Percentage of industrial connected load to total connected load)

(च) कुल संयुक्त खेप में से ग्रामीण औद्यौगिक संयुक्त खेप का प्रतिशत (Percentage of rural industrial connected load to total rural industrial connected load)

(छ) विद्युत का प्रति व्यक्ति उपभोग (Per Capita consumption of electricity)

(ज) औद्यौगिक विद्युत विकास के सूचकों का योग (Totals of indicators of industrial electricity development)

4 औद्यौगिक विकास के सूचकों के योगों का योग (Totals of totals indicators of industrial development)

(क) औद्यौगिक विकास के प्रत्यक्ष सूचकों का योग।

(ख) औद्यौगिक विकास के आयमापकों का योग।

(ग) औद्यौगिक विद्युत विकास के सूचकों का योग।

(घ) औद्यौगिक विद्युत विकास के उपरोक्त सूचकों के योगों (क, ख, व ग बिन्दुओं) का योग, और यही योग एक क्षेत्र विशेष के औद्यौगिक उत्पादन के सभी सूचकों का सकल योग या महायोग होगा।

18.2.8 बैंकिंग विकास के सूचक (Indicators of Banking Development)

(क) प्रति लाख जनसंख्या पर अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की शाखायें (Branches of Scheduled commercial banks for per lakh of Population)

(ख) प्रति लाख जनसंख्या पर को–आपरेटिव (सहकारी) बैकों की शाखाऐं (Branches of co–operative banks per lakh of Population)

(ग) प्रति सौ वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में बैंकों की शाखायें (Bank branches per hundred square Kilometer of area)

(घ) अनुसूचित वाणिज्यिक बैंको में प्रति व्यक्ति जमाएं (Per capita deposits in the scheduled Commercial Banks)

(ङ) को–ओपरेटिव बैंकों में प्रति व्यक्ति जमाएं (Per capita deposits in co–operative Banks)

(च) अनुसूचित वाणिज्यिक बैकों द्वारा प्रति व्यक्ति अग्रिमें (Per capita advances by scheduled commercial Banks)

(छ) कुल जमाओं में अग्रिमों का प्रतिशत (Percentage of advances to total deposits)

(ज) उपरोक्त सभी सूचिकाओं का योग (Totals of all indices)

18.2.9 परिवहन एवं संचार विकास के सूचक (Indicators of Transport and communication Development)

परिवहन एवं संचार विकास के सूचक निम्न है :–

(क) प्रति लाख जनसंख्या पर पंजीकृत कुल वाहनों की संख्या

(ख) प्रति लाख जनसंख्या पर मार्ग किमी. में (Roads in Kilometers per hundred square Kilometers of area)

(ग) प्रति सौ वर्ग किमी क्षेत्रफल में मार्ग किमी में (Roads in Kilometers per hundred square kilometer of area)

(घ) प्रति लाख जनसंख्या पर रेलवे रूट किलोमीटर में (Railway routes in Kilometers per lakh of Population)

(ङ) प्रति सौ वर्ग किमी क्षेत्रफल में रेलवे रूट किलोमीटर में (Railway routes in Kilometers per hundred square Kilometer of area)

(च) प्रति लाख जनसंख्या में कुल डाकघर (Totals of post offices per lakh of Population)

(छ) प्रतिलाख जनसंख्या पर टेलीफोन कनेक्शनों की कुल संख्या (Total numbers of telephone connections per lakh of Population)

(ज) उपरोक्त सूचिकाइयों का योग (Totals of above indices)

18.2.10 सामाजिक विकास के सूचक (Indicators of Social Development)

क्षेत्रीय विकास में सामाजिक विकास के सूचक निम्न है:–

(क) कुल जनसंख्या में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत (Percentage of Rural Population to total Population)

(ख) प्रति हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में शहरों की संख्या (Number of Cities per thousand square Kilometer of area)

(ग) कुल जनसंख्या में गैर अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़ी जाति जनसंख्या का प्रतिशत (Percentage of non SC / ST and BC Population to total Population)

(घ) प्रति हजार पुरूषों पर महिलाओं की संख्या अर्थात् लिंग अनुपात (Sex Ratio)

(ङ) जनसंख्या घनत्व या प्रति वर्ग किमी क्षेत्रफल में निवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या।

(च) कुल जनसंख्या में कुल कार्यरत जनसंख्या का प्रतिशत।

(छ) साक्षर जनसंख्या का प्रतिशत (Percentage of literate population)

(ज) स्वस्थ जनसंख्या का प्रतिशत (Percentage of healthy population)

(झ) पक्के घरों में रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत

(ञ) जीवन प्रत्याशा वर्षो में (Life expectancy)

(ट) उपरोक्त सूचिकाओं का योग।

सामाजिक विकास के उपरोक्त सूचकों के अतिरिक्त एक क्षेत्र के सामाजिक विकास में शैक्षिक विकास एवं स्वास्थ्य विकास से संबंधित नीचे दिए जा रहे सूचकों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

18.2.11 शिक्षा के विकास के सूचक (Indicators of Development of Education)

क्षेत्रीय विकास में शिक्षा के विकास के सूचक निम्न हैं –

(क) कुल जनंसख्या (Total population) में साक्षर जनसंख्या (Literate population) का प्रतिशत।

(ख) कुल पुरूषों (Total males) में साक्षर पुरूर्षो (Literate males) प्रतिशत।

(ग) कुल महिलाओं (Total Females) में साक्षर महिलाओं (Literate Females) का प्रतिशत।

(घ) कुल ग्रामीण जनसंख्या (Total rural population) में साक्षर ग्रामीण जनसंख्या (Literate rural population) का प्रतिशत।

(ङ) व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का प्रतिशत (Percentage of people having professional education)

(च) प्रति लाख जनसंख्या पर स्कूल विद्यालयों की संख्या।

(छ) प्रति हजार वर्ग किमी क्षेत्रफल में स्कूलों की संख्या।

(ज) प्रति हजार विद्यार्थियों पर शिक्षकों की संख्या।

(झ) प्रति लाख जनसंख्या पर महाविद्यालयों (Colleges) की संख्या।

(ञ) प्रति हजार वर्ग किमी क्षेत्रफल में महाविद्यालयों की संख्या।

(ट) प्रति सौ विद्यार्थियों पर महाविद्यालय में शिक्षकों की संख्या।

(ठ) प्रति लाख जनसंख्या पर व्यावसायिक संस्थाओं (Professional institutions) की संख्या।

(ड) प्रति हजार वर्ग किमी क्षेत्रफल में व्यावसायिक संस्थाओं (Professional institutions) की संख्या।

(ढ) प्रति सौ छात्रों पर व्यावसायिक संस्थाओं में शिक्षकों की संख्या।

(ण) परिवार का औसत आकार (Average size of family)

(त) जनसंख्या की दशवार्षिकी वृद्धि दर (Decennial growth rate of population)

18.2.12 स्वास्थ्य विकास के सूचक (Indicators of Health Development)

स्वास्थ्य विकास के सूचक निम्न हैं–

(क) प्रति लाख जनसंख्या पर एलौपैथिक चिकित्सालयों (Allopathic Hospitals) की संख्या।

(ख) प्रति लाख जनसंख्या पर एलौपैथिक चिकित्सालयों (Allopathic Hospitals) में बिस्तरों (Beds) की संख्या।

(ग) प्रति हजार वर्ग किमी क्षेत्रफल में एलौपैथिक चिकित्सालयों (Hospitals) की संख्या।

(घ) प्रति लाख जनसंख्या पर एलौपैथिक चिकित्सालयों (Allopathic Hospitals) में चिकित्सकों की संख्या ।

(ङ) प्रति लाख जनसंख्या पर एलौपैथिक चिकित्सालयों (Allopathic Hospitals) की भवन निर्माण लागत (Costs of buildings)

(च) प्रति हजार वर्ग किमी क्षेत्रफल मे, आयुर्वेदिक (Ayurvedic), होम्यौपैथिक (Homeopathic) और यूनानी (Unani) चिकित्सालयों की संख्या ।

(छ) प्रति लाख जनसंख्या पर आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक व यूनानी चिकित्सालयों (Ayurvedic, Homeopathic, Unani Hospitals) में चिकित्सकों (Doctors) की संख्या ।

(ज) प्रति लाख जनसंख्या पर आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक व यूनानी चिकित्सालयों में बिस्तरों की संख्या ।

(झ) प्रतिलाख जनसंख्या पर आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक व यूनानी चिकित्सालयों में उपकरणों की कुल लागत (Costs of equipments)

(ञ) इलाज करवाने की प्रति व्यक्ति आवृति (Prescription frequency per person)

(ट) पेय जल सुविधा (drinking water facility) प्राप्त करने वाले ग्रामों का प्रतिशत

(ठ) प्रति लाख जनसंख्या पर पार्को (Parks) की संख्या,

(ड) उपरोक्त सूचिकाओं का योग (Totals of above indices)

18.2.13 राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय विकास के सूचक (Indicators of National income and per capita income Development

आर्थिक विकास को मापने का राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय एक महत्वपूर्ण सूचक है, इन सूचकों में निम्न तत्व सम्मिलित हैं –

(क) तत्संबंधी वर्ष की राष्ट्रीय आय (National income during the year) के सूचक ।

(ख) तत्सबंधी वर्ष में राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि (Growth of NI during the Year) के सूचक

(ग) तत्संबंधी वर्ष में प्रति व्यक्ति आय: के सूचक (Per capita income during the year)

(घ) तत्संबंधी वर्ष में प्रति व्यक्ति आय में हुई वृद्धि के सूचक (Indicators of growth of per capita income during the year)

(ङ) उपरोक्त सूचिकाओं का योग (Totals of above indices)

18.3 विकास के सूचकों को बनाने की क्रिया विधि (Methodology of making indicators of Development)

1 समंक और स्त्रोत (Data and Sources)

किसी भी विकास के अध्ययन हेतु हमें विषय वस्तु व अध्ययन की आवश्यकता व उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त (appropriate) सूचकों का चुनाव करना होता है । यह सूचक प्राथमिक समंकों पर आधारित हो सकते है या फिर द्वितीयक समंको (Secondary) पर। परंतु प्राय : अधिकतर सूचक द्वितीयक समंकों पर आधारित होते है जो कि विभिन्न संस्थाओं (institutions), कार्यालयों (Offices) या अभिकरणों (Agencies) से प्राप्त होते है, विभिन्न समितियां (Committees) व विभिन्न व्यक्ति अपने अपने अध्ययन हेतु विभिन्न प्रकार के सूचकों का प्रयोग करते है ।

2 सूचकों को तैयार करना (संकलित करना) संग्रहित करना व श्रेणी / कोटि / क्रम प्रदान करना (Processing, Aggregating and Ranking Indicators)

(1) सूचकों का प्रयोग या तो विकास की पूरे काल (Over time) तुलना करने या फिर संपूर्ण क्षेत्रों या दृष्टिकोणों से समग्र रूप से (Over space) तुलना करने के लिए किया जाता है ।

(2) जब हम काल या समय (over time) के अनुसार विकास की तुलना (compare) करते है तो हम एक आधार वर्ष (base year) निर्धारित करते है और इस आधार वर्ष के विकास के आकड़ों या अंकों (figures) को सौ मानते हैं और तब दूसरें वर्ष (other year) या आलोच्य वर्ष के विकास के आकड़ों (figures) की गणना (Calculate) आधार वर्ष के आकड़ों से पंद्रह वर्ष के क्रमवार सूचकों (respective indicators) की निम्न सूत्र की सहायता से करते है ।

सूत्र :–

$$\frac{\text{आलोच्य वर्ष का विकास अंकों मेंआधार}}{\text{वर्ष का विकास अंकों में}} \times 100$$

या $\frac{\text{current year Development figure}}{\text{Base year's dovelopment figure}} \times 100$

डीएफ़एच

(3) जब संपूर्ण दृष्टिकोणों या क्षेत्रों की समग्र रूप (over space) के आधार पर तुलना करनी हो तो हमें एक औसत विकास अंक (average development figure) को आधार मानते है, जैसे यदि हमें एक राज्य के जिलों का तुलनात्मक अध्ययन (Comparing study) करना है तब हम राज्य के एक औसत अंक को

आधार के रूप में ले सकतें है और जिलें के विकास सूचकांक की गणना आधार वर्ष पर निम्न सूत्र की सहायता से कर सकते है –

सूत्र : –

$$\frac{\text{जिला विकास का अंक}}{\text{राज्य के विकास का अंक}} \times 100$$

या $\frac{\text{District Development figure}}{\text{State Developmen t figure}} \times 100$

विकास के यें अंक प्रत्येक जिले वार एक दूसरे कॉलम मैं समान्तर रखे जा सकते है । (उदाहरण तालिका क्रम एक)

4 अंत में एक संयुक्त या संघटित सूचिका बनाते हैं : इसके लिए प्रत्येक जिले की सभी सूचिकाओं को जोड़ते है और उन्हें सूचिकाओं की सखा से भाग देकर (divided) विकास का औसत सूचकांक (average index of development) बनाई है इसके बाद जिले की सभी सूचिकाओं के विकास के औसत सूचकांकों की संख्या से भाग देकर जिले का विकास सूचकांक निकालते है, इसी क्रम में सभी जिलों के विकास सूचकांको को जोड़ कर संख्या से भाग देकर राज्य का विकास सूचकांक निकालते है :

5 संमको की कोटि या श्रेणी (rank) उनकी औसत सूचिकाओं के परिमाण या महत्व (importance) के आधार पर जिले, के अनुसार की जाती है । इन क्रमों को एक स्तंभ (column) में रखा जा सकता है । उदाहरण तालिका नं. 1

18.4 निबन्धात्मक प्रश्न

1 क्षेत्रीय विकास के सूचकों के, अध्ययन का क्या उद्देश्य (objectives) है?

2 क्षेत्रीय विकास के मुख्य सूचक कौन सें हैं?

3 एक क्षेत्र में आप कृषि विकास (Agricultural Development) के स्तर का माप कैसे करेंगे ।

4 एक क्षेत्र विशेष में औद्यौगिक विकास (Industrial Development)का माप कैसे करेंगे ।

5 एक क्षेत्र विशेष में सामाजिक विकास (Social Development)को। मापने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए ।

6 विकास के सूचक समंकों के संकलन एकत्रीकरण व कोटि (Processing, Aggregating and Ranking) प्रदान करनें की विधि बताईये ।

18.5 सारांश (Summary)

आर्थिक विकास के सूचकों का अध्ययन विभिन्न क्षेत्रों की विकास योजनाएं बनाने के लिए, शहरीकरण की समस्याओं सै छुटकारा पाने (Problems of Urbanisation) अर्थ व्यवस्था की विकास की आन्तरिक द्वो (internal conflicts) को दूर करने के लिए क्षेत्रीयता (Regional) एवं राष्ट्रवाद (National) दूरियों को कम करने के लिए अर्थव्यवस्था के संतुलित

(Balanced) विकास के लिंए, जनजातीय क्षेत्रों (Tribal areas) के अध्ययन के लिए, अर्थ व्यवस्था के दुत गति व नियमित (rapidly and smoothly) विकास के लिए, संसाधनों के संरक्षण व विकास (development and conserve resources) कें लिए तथा संतुलित औद्यौगिक विकास (Balanced industrial development) के लिऐ आवश्यक है, क्योंकि आर्थिक विकास में क्षेत्रीय अध्ययन अभी बहुत की कम हो पाया है या इस संबंध में साहित्य की अत्यंत कमी है ।

क्षेत्र (Region) एक मैदान या क्षेत्रफल (Place or territory) स्थान या प्रदेश होता है जो कि आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, प्रशासनिक या भौगोलिक (Geographical) तथ्यों के आधार पर अध्ययन की आवश्यकता व उददेश्य के अनुसार अवलोकन हेतु प्रयुक्त होता है । इन क्षेत्रों को मुख्य रूप से तीन श्रेंणियों में विभक्त किया जा सकता है । विकसित क्षेत्र, विकासशील क्षेत्र व अविकसित क्षेत्र, तीनों ही क्षेत्रों की विशेषताएं भिन्न–भिन्न होती है ।

आर्थिक विकास के कारको में भूमि और प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources) श्रम एवं मानवीय संसाधन, पूंजी एवं अतिरिक्त संसाधनों का अन्वेषण तकनीकी एवं उत्पादन की श्रेष्ठ तकनीक (introduction of better technique) को प्रस्तुत करना, संगठन व निर्णय लेना (Organization and decision making) आर्थिक प्रणाली में श्रेष्ठतम कौशल का प्रयोग (economic mechanism) संस्थागत व संगठनात्मक परिर्वतन(institutional and organizational modification), आय का वितरण (income distribution) में सुधार लाना व इसे और अधिक समान (equitable) बनाना है। इनके साथ ही अन्य कारक व मानव संसाधनों की रूचियों, स्वभाव (interests and tastes). परंपराओं (traditions) कों भी आर्थिक विकास के कारकों में सम्मिलित किया जा सकता है।

क्षेत्रीय विकास के सूचक एक निश्चित समयावधि में एक क्षेत्र की दूसरे क्षेत्र से आर्थिक आधार पर क्षेत्रीय विकास का तुलनात्मक अध्ययन करते है। भारत में विभिन्न सरकारी संस्थाएं एवं निजी संस्थाएं विकास के सूचकों को देश के विभिन्न प्रदेशों के विकास स्तर (development level) को मापने में प्रयुक्त करती है।

भारत की आर्थिक एवं वैज्ञानिक शोध संस्था (The economic and scientific research foundation of India) नें 1971 में विभिन प्रदेशों में कृषि विकास (Agricultural development) का अध्ययन किया। 1968 मे सरकार ने पांच सूचकों की सहायता सें पिछड़े क्षेत्रों की जानकारी के लिए कार्यकर्ताओं (Workers) का एक समूह नियुक्त किया जो कि पाण्डे समीति (Pandey Committee) कें नाम से जाना गया। बाद मे राष्ट्रीय विकास परिषद (National development council) के साथ योजना आयोग (Planning commission) के परामर्श पर यह कार्य छ सूचकों की सहायता सें किया गया जब कि बाद में चक्रवर्ती समिति (Chakravarty Committee) ने इसी कार्य को चौदह: सूचकों की सहायता से संपन्न किया। विकास के आधार पर पिछड़े प्रदेशों कों राष्ट्रीय समिति (National committee) ने छः मुख्य प्रदेशों में वर्गीकृत किया है। विभिन्न सूचकों की सहायता के आधार

पर देश में क्षेत्रीय विकास के अध्ययन के लिए प्रो. आर. टी. तिवारी (Prof.R.T.Tiwari) और पंचम पंचवर्षीय योजना के कार्यकर्ताओं का प्रो. राजकृष्ण (Prof. Raj Krishan) इकोनामिक टाईम्स अध्ययन दल (The Economic Times study group) भी बनाए गए।

विभिन्न अध्ययनों के आधार हम क्षेत्रीय विकास के सूचकों को अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में निम्म रूप से वर्गीकृत करते है, जैसे – कृषि, उद्योग, बैकिंग, परिवहन, सामाजिक क्षेत्र, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं राष्ट्रीय एवं–प्रति व्यक्ति आय सूचक बनाने के लिए जो समंक काम में लाये जाते है वे प्राथमिक (Primary) या द्वितीयक (Secondary) किसी भी प्रकार के हो सकते है। द्वितीयक संमको को विभिन्न संस्थाओं, कार्यालयों, अभिकरणों या व्यक्तियों से एकत्रित किया जा सकता है।

विकास के सूचकों को संकलन, संग्रहण या एकत्रीकरण व क्रम प्रदान करने का काम विशेष रीति द्वारा स्पष्ट किया जाता है।

18.6 शब्दावली

1 क्षेत्र (Regions)

क्षेत्र एक भौगोलिक मैदान, क्षेत्रफल, स्थान या प्रदेश होता है। जिसकें अस्तित्व (existence) का अध्ययन की आवश्यकता या उद्देश्यानुसार आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक या भौगोलिक रूप से अवलोकन किया जाता है।

2 विकास के सूचक (Indicators of Development)

सापेक्षिक समंकों (Relative data) से उत्पन्न विकास का माप जो कि तुलनीय हो (comparable) विकास के सूचक कहलाते है।

3 समंक (Data)

समंक एक प्रकार की सूचना (Information) है जो शब्दों में भी (in words) है। सकती है। परन्तु प्राय: यह अंकात्मक (Figures) रूप में प्रकट की जाती है।

4 प्राथमिक समंक (Primary Data)

वे समंक जो सर्वेक्षण करता (Surveyer) द्वारा प्रथम समय ही एकत्रित किये जायें या वे समंक जिनका पूर्व में कोई अस्तित्व (existence) नहीं। प्राथमिक समंक कहलाते –.

5 द्वितीयक समंक (Secondary Data)

वे समंक जो पूर्व में एकत्रित किये जा चुके है वे पहले ही किसी के द्वारा काम में लाये जा चुके हों तथा जिन्हें अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन की आवश्यकतानुसार पुन: काम में ला सकता है।

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें (Some Useful Books)

1. डॉ. श्रीमति एस. मूर्ति — रीजनल डिस्पेरिटिज इन दी इकोनोमिक डवलपमेण्ट (1985) एम. पी. प्रकाशक. उज्जैन.
2. अग्रवाल एण्ड सिंह. — दी इकोनोमिक्स आफ अण्डर डवलपमेण्ट कण्ट्रीज.
3. एल्डर जे. एच. — केपिटल मूवमेण्ट एण्ड इकोनॉमिक डवलपमेण्ट.

4. बाल कृष्ण, आर. स्ट्रीज़ इन इण्डियन इकोनॉमिक प्रोबलम.
5. बाल कृष्ण, आर. रीजनल प्लानिंग इन इण्डिया (1948) बंगलोर.
6. बूयर एण्ड यामे. दी इकोनॉमिक ऑफ अण्डर डवलप्ड कण्ट्रीज (1957) जेम्स निसबर एण्ड कम्पनी, कैम्ब्रिज.
7. भट्टाचार्य, डी. अण्डरस्टैंडिंग इण्डियाज इकोनॉमी.
8. बंकिम एण्ड फोर्ड प्लानिंग एण्ड ग्रोथ इन रिच एण्ड पूअर कण्ट्रीज.
9. बॉस एच. सी. स्पेशियल डिस्पर्सनस ऑफ इकोनॉमिक एक्टिविटी (1965) रोटर्डम यूनिवर्सिटी.
10. बुकानन एण्ड एलिस एप्रोच टू इकोनॉमिक डवलपमेण्ट.
11. ब्राईट जे. वी. इकोनमिक डवलपमेण्ट एण्ड प्रोडक्टीविटी.
12. दत्ता एसेस ऑन इकोनॉमिक डवलपमेण्ट
13. दश्य जी. एच. जे. स्टडीज इन रीजनल प्लानिंग (1949) फिलिप, लन्दन.
14. डॉब, मॉंस इकोनामिक ग्रोथ एण्ड प्लानिंग.
15. दरबिर प्रोबलम्स ऑफ इकोनामिक प्लानिग.
16. दत्ता ए. के. सम लेसन्स ऑफ रीजनल प्लानिंग इन इण्डिया.
17. फ्रीडमेन जे. एण्ड एलोन्सो रीजनल डवलपमेण्ट एण्ड प्लानिंग(1965) ए. रीडर लन्दन.
18. गिलन्स ए. रीजनल प्लानिंग एण्ड डवलपमेण्ट (1955) लीडेन न्यूयार्क.
19. गुप्ता के. आर. इकोनोमिक्स ऑफ डवलपमेण्ट (1967) आत्मा राम एण्ड संस देहली.
20. हेन्सन पब्लिक एण्टर प्राइजेज एण्ड इकोनॉमिक डवलपमेण्ट.
21. हार्वे डी. पी. रीजनल रिसोर्सेज एण्ड इकोनॉमिक ग्रोथ (1960).
22. हासवैल, एम. आर. इकोनॉमिक्स ऑफ डवलपमेण्ट इन विलेज (1967) एलाइड बॉम्बे.
23. हजलवुड ऑर्थर दी इकोनोमिक्स ऑफ अण्डरडवलप्ड़ एरियाज, (1955) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन.
24. हुसैन, आई. जेड. इकोनॉमिक्स फेक्टर्स इन इकोनॉमिक ग्रोथ (1967) एलाइड बाम्बे
25. हर्शमैन, ए. ओ. दी स्ट्रेट जी ऑफ इकोनॉमिक डवलपमेण्ट (1961) याले
26. इसार्द लेटर मेथडस ऑफ रीजनल एनेलाइज (1962) एम. आई. टी. लंदन.
27. कहार, एस. प्रोडक्टिविटी एण्ड इकोनॉमिक ग्रोथ.
28. केदार नाथ प्रसाद टेक्योलॉजिकल च्वॉइस अण्डर डवलप्ड़ प्लानिंग (963) पॉपुलर पब्लिकेशन बाम्बे.

29. कहान,एन.ए. प्रोबलम्स ऑफ ग्रोथ ऑफ एन अण्डर डवलप्ड़ इकोनॉमि(1961)बॉम्बे, इण्डिया एशिया.
30. केदार नाथ प्रसाद दी इकोनोमिक्स ऑफ ए बेकवर्ड रीजन इन ऐ बेकवर्ड इकोनामि ए केस स्टडी ऑफ बिहार (1961) 2 वोल्यूम, साइंटिफिक बुक ऐजेन्सी, कलकत्ता.
31. किण्डल बर्गन इकोनॉमिक डवलपमेण्ट मेकग्राहिल, न्यूयार्क.
32. लिबिंस्टीन , एच इकोनॉमिक बेकवर्डनेस एण्ड इकोनॉमिक ग्रोथ.
33. लुइस, एल. ए. डवलपमेण्ट प्लानिंग.
34. लियर मंथ, ए.टी.ए. मैसूर स्टेट–ए रीजनल सिन्थेसि, वोल्यूम (1960) इण्डियन स्टेंटीस्टिकल इन्स्टीट्यूट, कलक्त्ता.
35. मैंक ग्रा. ग्रेविन इकोनॉमिक थ्योरी एण्ड रीजनल प्रोबलम्स.
36. मेक ग्रा. ग्रेविन रीजनल पालिसी इन ब्रिटेन (1969) एलन एण्ड उनविन, लंदन.
37. मीड, जी. ई. दी ग्रोइंग इकोनॉमिक.
38. मेयर एण्ड बॉल्डविन इकोनॉमिक डवलपमेण्ट (1957) बॉम्बे, एशिया.
39. मेटी, टी. के. इकोनॉमिक डवलपमेण्ट आफ अण्डर डवलपमेण्ट रीजन्स इन इटली (1969) कर्नाटक यूनिवर्सिटी प्रेस, धारदार.
40. मिश्रा, ए. लेवल्स ऑफ रिजलन डवलपमेण्ट इन इण्डिया (1961) सेन्सस ऑफ इण्डिया.
41. मिर्डल, गुन्नार इकोनॉमिक थ्योरी एण्ड अण्डरडवलप्ड़ रीजन्स (1966) वोरा एण्ड कम्पनी, बॉम्बे.
42. नाग, डी. एस. प्राबलम्स ऑफ अण्डरडवलप्ड़ इकोनॉमिक (1962) लक्ष्मी नारायण एण्ड संस, आगरा.
43. प्रकाश राव, वी.एल.एस रीजनल प्लानिंग, बॉम्बे.
44. प्रकाश राव जी.एल.एस एण्ड एल. एस. भाट एण्ड प्लानिंग रीजंस इन दी मैसूर स्टेट.
45. रेड्डावे, एल. आर. दी डवलपमेण्ट ऑफ दी इण्डियन इकोनोमि.
46. रीन, ए. एफ ए सर्वे ऑफ इकोनोमिक डवलपमेण्ट.
47. रोबॉक, एस. एच. रीजनल एण्ड डवलपमेण्ट इन इण्डिया (1959).
48. साहनी, बलवीर, एस. सेविंग्स एण्ड इकोनोमिक डवलपमेण्ट (1966).साईण्टिफिक बुक ऐजेन्सी, कलकत्ता.
49. शर्मा, टी. आर. लोकेशन ऑफ – इण्डस्ट्रीज इन इण्डिया.

50. शेनन, एल.डब्ल्यू. अण्डर डवलप्ड़ एरियाज (1957) हार्पर एण्ड रॉ, न्यूयार्क.
51. सिंगर इण्टरनेशनल डवलपमेण्ट ग्रोथ एण्ड चैलेंज, (1964) मैकग्राहिल न्यूयार्क.
52. सिंह बी. बी. पेटर्नस ऑफ इकोनामिक डवलपमेण्ट.
53. सिंह, आर. एल. इण्डिया ए रीजनल ज्योग्राफी (1967) नेशनल ज्योग्राफीकल सोसायटी ऑफ इण्डिया, वाराणसी.
54. टिनबर्जन, जे. रीजनल प्लानिंग समप्रिंसिपल्स (1959).
55. वकील एण्ड, ब्रह्मानंद प्लानिग फॉर एक्सपाण्डिंग इकोनॉमी.
56. जिमरमेन, ली.जे. पूअर लैण्डस् स्पिलेण्डस दी वाईड़निग गेप (1965). रेण्डम हाउस, न्यूयार्क.

इकाई 19

भारत के प्रमुख प्राकृतिक संसाधन एवं उनका प्रादेशिक वितरण

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 भारत के प्राकृतिक संसाधन : प्रादेशिक विश्लेषण

19.2.1 प्राकृतिक प्रदेश

19.3 मिट्टी

19.4 वन संसाधन

19.5 खनिज

19.6 जल व शक्ति संसाधन

19.7 सारांश

19.8 निबन्धात्मक

19.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

19.0 उद्देश्य

संसाधनों से हमारा अभिप्राय उन तत्वों से है जो मनुष्य की निजी या सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे । यह तत्व दोनों प्रकार के हो सकते है भौतिक एवं अभौतिक । भौतिक तत्वों में हम प्राकृतिक देनों को शामिल करते है जैसे वन, खनिज, मिट्टी, जलवायु, जल इत्यादि । अभौतिक तत्वों में मानव संसाधन व सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की गणना की जाती है ।. इस अध्याय में हम भौतिक प्राकृतिक संसाधनों का अध्ययन करेंगे ।

19.1 प्रस्तावना

कुछ समय पूर्व तक उत्पादन का, विशेषत : कृषि का अध्ययन वस्तु की दृष्टि से किया जाता था (Commodity Approach) । मगर अब जोर दिया जाता है प्रादेशिक / क्षेत्रीय अध्ययन पर । सो चाहे कृषि उत्पादन हो अथवा औद्योगिक उत्पादन – किसी का भी अध्ययन करना हो, अर्थात किसी भी आर्थिक गतिविधि का अध्ययन करने के लिये प्रादेशिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है । क्योंकि आर्थिक गतिविधियां प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है इसलिये प्राकृतिक संसाधनों का भी प्रादेशिक या क्षेत्रीय अध्ययन आवश्यक हो जाता है । अब हम भारत के प्राकृतिक संसाधनों के प्रादेशिक वितरण का अध्ययन करेंगे ।

धरातल के उन भूखण्डों को, जिनकी प्राकृतिक दशाओं में समानता हो–जैसे जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, मिट्टी इत्यादि इन्हें हम प्राकृतिक प्रदेशों की संज्ञा दे सकते है । इन

प्राकृतिक प्रदेशों के विभाजन में मानवीय हाथ नहीं होता। यह पूर्णतया प्रकृति द्वारा निर्धारित किये जाते है । इसलिये यह होते भी अपरिवर्तनशील है । मगर विभिन्न प्रदेशों में कोई निश्चित सीमा–रेखा नहीं होती । जैसें किन्हीं दो प्रदेशों में उनकी सीमाओं पर तो जलवायु वही रहेगी । ज्यों–ज्यों सीमा रेखा से दूर प्रदेश के भीतर जायेंगे, जलवायु या अन्य प्राकृतिक संसाधन भिन्न होते जायेंगे और तब एक प्रदेश विशेष के विलक्षण लक्षण नजर आयेंगे।

स्थानीय विषमताओं को देखते हुए एक प्राकृतिक प्रदेश को भी अनेक उपप्रदेशों में बाँटा जा सकता है । जब हम किसी देश के प्राकृतिक संसाधनों का प्रादेशिक अध्ययन करते है तो हो सकता है कि कोई प्रदेश बहुत बड़े और कुछ बहुत छोटे हों । उसका कोई अन्तर नहीं पड़ता । ज्यादा महत्व इस बात का है कि प्रत्येक प्रदेश की संरचना, जलवायु, वन सम्पदा, पशु–पक्षियों के प्रकार, कृषि का ढाँचा आदि एक समान हो ।

भारत में प्राकृतिक संसाधनों के अध्ययन के लिये अनेक संस्थाएं है । आरम्भ में सर्वे ऑफ इंडिया (Survey of India) तथा जियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (Geological Survey of India) या भारतीय भूगर्भिक सर्वेक्षण दो प्रमुख संस्थाएं थी । मगर समय की आवश्यकताओं को देखते हुए पंचवर्षीय योजनाओं में न केवल इनका विस्तार किया गया बल्कि अनेक नई संस्थाएं भी स्थापित की गई । राष्ट्र के प्राकृतिक संसाधनों के आँकलन के लिए 1950 में इंडियन ब्यूरो ऑफ माईन्स (Indian Beaurea of Mines) की स्थापना की गई जिसके कार्यों में सर्वेक्षण के साथ ही विकास के लिये नीति संरचना भी सम्मिलित थी । पैट्रोलियम संसाधनों के अध्ययन व सर्वेक्षण के लिये तेल व प्राकृतिक गैस आयोग की स्थापना की गई । आसाम, गुजरात व बौम्बे हाई में पैट्रोल व गैस के भण्डार खोज निकालने में इस आयोग की महत्वपूर्ण भूमिका थी । 1945 में स्थापित जल व शक्ति आयोग जल व शक्ति संसाधनों के विकास में संलग्न है । भारतीय कृषि अनुसंधान केन्द्र के मिट्टी व भूमि उपयोंग सर्वेक्षण के अन्तर्गत मिट्टी का सर्वेक्षण किया जाता है । इस प्रकार भारत में अनेक संस्थाएं देश के प्राकृतिक संसाधनों के सर्वेक्षण, अध्ययन, आंकलन व उनके सर्वाधिक, सर्वश्रेष्ठ उपयोग के लिये कार्यरत है ।

19.2 भारत के प्राकृतिक संसाधन : प्रादेशिक विश्लेषण

भारत देश की उत्तर से दक्षिण तक लम्बाई 3214 किलोमीटर व पूर्व से पश्चिम तक 2938 किलोमीटर है । कुल भौगोलिक क्षेत्र 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है । तथा समुद्र तट लगभग 7516 किलोमीटर है । क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत एक विशाल देश है व संसार में सातवें स्थान पर हें । न केवल आकार बल्कि भौगोलिक स्थिति व आर्थिक संसाधनों की दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण है ।

आर्थिक विकास की दृष्टि से कुछ प्राकृतिक संसाधनों का अत्यन्त महत्व है । इन्हें हम निम्नलिखित श्रेणियों में बांट सकते है :

1) भूमि व मिट्टी संसाधन
2) वन संसाधन
3) शक्ति संसाधन

4) खनिज संसाधन

5) जल संसाधन

अब हमें यह देखना है कि भारत में इन संसाधनों की उपलब्धि कहाँ–कहाँ होती है ।

19.2.1 प्राकृतिक प्रदेश

भौतिक परिस्थितियां, धरातलीय रूपरेखा, मिट्टी, जलवायु, फसलों का ढांचा, जल, शक्ति व खनिज संसाधनों के आधार पर भारत देश को अनेक लोगों ने विभिन्न प्रदेशों में बांटा है । हम यहां डा.पी. सेनगुप्ता द्वारा दिये गये विभाजन को मान कर चलेंगे । यह विभाजन उन्होंने (Census of India) में एक मोनोग्राफ में दिया था । उनके अनुसार भारत को पांच प्राकृतिक प्रदेशों में बांटा जा सकता है और इन प्रदेशों के आगे अनेक उप–प्रर्देश है । यह प्राकृतिक प्रदेश इस प्रकार है :

मुख्य प्रदेश	उप – प्रदेश
I हिमाचल प्रदेश	
(1) पश्चिमी हिमालय	(i) कश्मीर हिमालय
(2) पूर्वी हिमालय	(ii) पंजाब कुमाऊ हिमालय
	(iii) सिक्किम दार्जिलिंग
	(iv) असम हिमालय.
	(v) असम की पहाड़ियाँ व पठार
II बड़ा मैदान	
(1) गंगा का निचला मैदान	(vi) डैल्टाई मैदान
	(vii) मध्य गंगा का मैदान
	(viii) असम घाटी
(2) उपरी गंगा का मैदान	(ix) (अ) रूहेलखण्ड मैदान
	(ब) अवध का मैदान
	(स) गंगा–यमुना का मैदान
(3) उत्तरी–पश्चिमी मैदान	(x) (अ) उत्तरी पंजाब का मैदान
	(ब) दक्षिणी पंजाब का मैदान
	(स) राजस्थान का मैदान
III प्रायद्वीपीय पठार और पहाड़िया	
(1) उत्तरी–पूर्वी प्रायद्वीपीय पठार	(xi) (अ) छोटा नागपुर पठार
	(ब) बुन्देलखण्ड पठार
	(स) छत्तीसगढ़ बेसिन
	(ड) बस्तर का पठार
	(ई) उड़ीसा की पहाड़ियाँ

(2) उत्तरी–पश्चिमी प्रायद्वीपीय पठार	(xii) (अ) अरावली की पहाड़ियाँ
	(ब) चम्बल बेसिन
	(स) बुन्देलखण्ड का उपरी पठार
	(ड) मालवा पठार और विन्धयन पहाड़ियाँ
(3) महाराष्ट्र पठार और इसके अंग	(xiii) (अ) लावा का पठार
	(ब) पश्चिमी घाट
	(स) बैणगंगा घाटी
(4) कर्नाटक का पठार	(xiv) (अ) मैदानी प्रदेश
	(ब) मालनद प्रदेश
(5) आंध्र का पठार	(xv) (अ) तेलंगाना पठार
	(ब) रायलसीमा पठार
(6) तमिलनाडु का पठार	(xvi) (अ) पठार और पहाड़ियों
	(ब) पश्चिमी घाट प्रदेश
IV पश्चिमी तट	
पश्चिमी तट	(xvii) (अ) कोंकण तट
	(ब) कर्नाटक मालाबार तट
V पूर्वी तट	(xviii)(अ) तमिलनाडु तट
	(ब) आन्ध्रा तट
	(स) उड़ीसा तट

प्रथम अर्थात, हिमालय प्रदेश पहाड़ी क्षेत्र है जो 1000 से 6000 मीटर तक ऊँचा और 240 किलोमीटर की लम्बाई में विस्तृत है। यहां जलवायु काफी शुष्क है। भूमि का उपयोग इस प्रकार है। कृषि के लिये : 25 लाख हैक्टर, फल–उद्यान व वन : 22 लाख हैक्टर, चारागाह : 10 लाख हैक्टर। यहां कुछ खनिज पदार्थ भी पाये जाते है जिनमें प्रमुख स्लेट, चूने का पत्थर, बाक्साईट,' जिप्सम, ताँबा व लिग्नाईट, कोयला प्रमुख है।

बड़ा मैदान अधिकांशत: बाढ़ द्वारा निर्मित मैदानी क्षेत्र है। यहां की मिट्टी इसलिये बहुत उपजाऊ है तथा भूमिगत एवं धरातलीय जल स्रोतों से भरपूर है। इसलिये अधिकतर भूमि पर कृषि की जाती है। खनिज पदार्थ में तांबा, अभ्रक, लोहा–मैगनीज आयस्क, पैट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस काफी मात्रा में उपलब्ध है।

प्राय:द्वीपीय पठार एवं पहाड़ियों के क्षेत्र में भूमि कटी–फटी है, चट्टानों से भरी है, व लावा का विशाल क्षेत्र है, यह धरातल 900 मीटर से कम ऊंचा है। मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं है, जल स्रोत भी अधिक नहीं है। इस क्षेत्र में पाये जाने वाले मुख्य खनिजों में है – बाक्साईट, चूना पत्थर, अभ्रक, सोना, डोलोमाईट, मेग्नेसाईट तथा मैगेनीज।

तटीय मैदान का क्षेत्र समुद्र और घाट के बीच का क्षेत्र है जो नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी के कारण अत्यन्त उपजाऊ है। जलस्रोतों की बहुतायत होने से कृषि के अन्तर्गत लगभग 1.8 करोड़ हैक्टर भूमि है। 66 लाख हैक्टर वन व 10 लाख हैक्टर पर चारागाह है। यहां प्राप्त मुख्य खनिजों में से कुछ बाक्साईट, जिप्सम, चूना–पत्थर, चीनी मिट्टी और लौह अयस्क इत्यादि है।

इनके अतिरिक्त कुछ द्वीप समूह भी भारतीय अर्थव्यवस्था में योगदान करते है। उदाहरणत: लक्षद्वीप व अंडमान व निकोबार द्वीपसमूह।

19.3 मिट्टी

भारत मुख्यत: एक कृषि प्रधान देश है जिसकी अधिकतर जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषक की कुशलता को प्रभावित करने वाले तीन मुख्य कारक है : जलवायु, मिट्टी व ढलान। मिट्टी भूपृष्ठ पर मिलने वाले असंगठित पदार्थों की वह ऊपरी पर्त है जो धूल, चट्टानों अथवा वनस्पति के योग से बनती है । मिट्टी का निर्माण जलवायु तथा चट्टानों के विखण्डन के परिणामस्वरूप होता है । इसलिये विभिन्न जलवायु और विभिन्न चट्टानों से बनी मिट्टियां विभिन्न प्रकार की होती है । उनके रूप व उर्वराशक्ति में अन्तर रहता है । कृषि की गहनता व विस्तार को प्रभावित करने में मिट्टी का महत्वपूर्ण स्थान है । देश की फसलों का ढांचा मिट्टी के प्रकारों व भौगौलिक पर्यावरण पर निर्भर करता है । उदाहरणार्थ उत्तर–दक्षिण में कपास की अधिक उपज होती है क्योंकि वहां आर्द्रता सोखने वाली रेगड काली मिट्टी वाली भूमि है ।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था (दिल्ली) के अनुसार मिट्टियां 8 प्रकार की होती है– (1) लाल मिट्टी (2) काली मिट्टी (3) लेटेराईट (4) क्षारयुक्त (5) हल्की काली (6) दलदली कांप (7) रेतीली व (8) वनों वाली ।

इनमें भारत के सर्वाधिक हिस्से में (कुल क्षेत्र के 43% भाग में) कांप मिट्टी पाई जाती है । 13.7% प्रतिशत भूमि पर काली मिट्टी व 10.2% पर लाल (रेतीली व लाल) मिट्टी पाई जाती है । इस प्रकार भारत का 2/3 हिस्सा इन तीन प्रकार की मिट्टीयों से बना है । लेटेराईट, लाल पीली मिट्टी मरूस्थल देश के क्षेत्रफल के 1/6 भाग में है । और पहाड़ी मिट्टी, तराई मिट्टी व सलेटी व भूरी मिट्टी 9.1% भाग पर है शेष सब प्रकार की मिट्टियां केवल 7.8% भूमि पर पाई जाती है ।

भारत की मिट्टियों को मुख्यत: चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है :

(1) पहाड़ी प्रदेश की मिट्टीयां

(2) विशाल मैदान की मिट्टीयां

(3) प्रायद्वीपीय मिट्टीयां

(4) अन्य मिट्टीयां

हिमालय प्रदेश की मिट्टियाँ : इनमें अधिकतर वन उगते है । कुछ भूमि पर चावल व आलू तथा कांगड़ा, देहरादून, दार्जिलिंग व असम की पर्वतीय ढालों पर चाय उगाई जाती है ।

विशाल मैदान में सर्वत्र कांप मिट्टी पाई जाती है पंजाब, हरियाणा, उत्तर–प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, आसान तथा उत्तरी राजस्थान आदि में यही मिट्टी है । प्रायद्वीपीय मिट्टीयों में काली, लाल, पीली व लेटेराईट मिट्टीयां होती है । काली मिट्टी में कपास, मूंगफली, ज्वार, बाजरा व तम्बाकु की फसलें उगाई जाती है । लाल व पीली मिट्टीयों में कपास, गेंहूँ, दालें, मोटा अनाज रागी, तम्बाकू और साग–सब्जियां व आलू उगाये जाते है । लेटेराईट मिट्टी कर्नाटक, महाराष्ट्र, पूर्वी व पश्चिमी घाट, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, प. बंगाल, असम, मेघालय व बिहार इत्यादि में पाई जाती है। इनमें गन्ना, रागी व चावल का उत्पादन किया जाता है । इन राज्यों में ऊपर के भागों में चारा भी उगाया जाता है । इनके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार की मिट्टीयां भी है जैसे पीट मिट्टी जो आंध्र प्रदेश में पाई जाती है व धान की खेती के लिये उपयुक्त है । दलदली मिट्टी जो पानी खड़ा रहने से बन जाती है, मरूस्थली मिट्टी व नमकीन मिट्टी । यह मिट्टियां अधिकतर अनउपजाऊ होती है ।

19.4 वन संसाधन

वन एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है । किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास में वनों का महत्वपूर्ण योगदान है । इनसे हमें अनेक आवश्यक वस्तुएं प्राप्त होता है जिन्हें हम दो श्रेणियों में बांट सकते है–प्रधान वन उपज व गौण वन उपज । प्रधान उपज जिसमें लकड़ी व ईंधन शामिल है चीड़, देवदार, कैल, सिस्सू, टीक व साल के पेड़ों से प्राप्त होती है । गौण उपज में बांस, बेंत, गोंद, रंग, लाख, चमड़ा रंगने वाले रंग, राल, औषधयुक्त पौधे चारा व घास शामिल है । वन न केवल आर्थिक जीवन के लिये अपितू पर्यावरण के लिये भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । जलवायु निर्धारण, भूमि कटाव व बाढ़ के नियन्त्रण, वर्षा की मात्रा, वन्य जीवन इत्यादि के लिये और प्रदूषण से बचाव के लिये वन बहुत आवश्यक है । आजकल तो इन्हें धरती के फेफड़े कहा जाता है।

भारत में 751 लाख हैक्टर भूमि या कुल भौगोलिक क्षेत्र के 19.7%' भाग पर वन पाये जाते है । आवश्यकता के अनुसार हमारा वन क्षेत्र बहुत कम है । प्रतिव्यक्ति वन क्षेत्र भी केवल 0.11 हैक्टर है जो संसार की 1.08 हैक्टर औसत की तुलना में बहुत कम है । इन वनों का वितरण भी बहुत असमान है । ज्यादातर पहाड़ी क्षेत्रों में था दूरदराज क्षेत्रों में ही वन पाये जाते है । यदि राज्यों की दृष्टि से देखा जाये तो अधिकतम वन क्षेत्र मध्य प्रदेश में (155 लाख हैक्टर), उसके बाद महाराष्ट्र (64 लाख), आंध्र प्रदेश (63 लाख), उड़ीसा (60 लाख), अरुणाचल प्रदेश (51 लाख) व उत्तर–प्रदेश में (51 लाख) है । शेष सब राज्यों में 50 लाख हैक्टर भूमि से कम भूमि वनों के अन्तर्गत है ।

इन्हें प्राकृतिक प्रदेशों में हम इस प्रकार विभाजित कर सकते है :

हिमालय प्रदेश– 18%, उत्तरी मैदान– 5%, पठारी क्षेत्र– 57%, पश्चिमी घाट व तट– 10%, व पूर्वी घाट व तट– 10%,

हिमालय क्षेत्र में वर्षा अधिक होने की वजह से सघन वन पाये जाते है । पश्चिमी हिमालय (कश्मीर क्षेत्र) में लगभग 32 लाख हैक्टर भूमि वनों के अन्तर्गत है जिनमें चौड़ी

पत्तीवाले ओक, पर्णपाती, चीड़ व देवदार कें पेड, बांस व सवाई घास मिलते है । इनकी लकड़ी से दियासलाई, कागज की लुग्दी, व गन्धा बिरोजा आदि बनाये जाते है । पूर्वी हिमालय प्रदेश में 16 लाख हैक्टर भूमि पर वन पाये जाते है जिनमें ओक, देवदार व बांस, अस तथा बेंत भी पैदा होते है ।

अब हम आते है बड़े मैदान पर । यह प्रदेश अधिकांशत : बाढ़ द्वारा निर्मित मैदानी क्षेत्र है जो सम्पूर्ण भारत के लगभग 175 भाग पर फैला है । अनेक नदियों जैसे गंगा, यमुना, सतलज, व्यास, रावी, गण्डक, कोसी, ब्रह्मपुत्र इत्यादि से सिंचित होने के कारण इसमें अधिकतर भूमि पर कृषि की जाती है । इस प्रकार वनों का प्राय : अभाव है । असम घाटी में साल व लोह काष्ट प्रभूति वृक्ष तथा बांस, बेंत व अनेक अन्य प्रकार की पास मिलती है ।

प्रायद्वीपीय पठार एवं पहाड़ियों में बस्तर के पठार में लगभग 48 लाख हैक्टर भूमि पर साल व सागवान के बहुमूल्य वन है । उड़ीसा पहाड़ियों में भी साल तथा पतझड़ वाले घने वन पाये जाने है । छोटा नागपुर के पठार में बांस व सवाई घास के जंगल है । महाराष्ट्र के पठार में पश्चिमी घाट क्षेत्र में घने उष्ण कटिबन्धीय वन पाये जाते है । तमिलनाडु के पठार में पश्चिमी घाट के अन्तर्गत नीलगिरी, अन्नामलाई, पलनी और इलायची की पहाड़ियों में 12.5 लाख हैक्टर भूमि पर उष्ण कटिबन्धीय सघन वन पाये जाते है । तटीय मैदान में कर्नाटक–मलाबार तट पर सघन वन है जिनमें मूख्यत : सागवान के पेड पाये जाते है ।

भारत में वनों की उत्पादकता बहुत कम है केवल 0.5 घन मीटर प्रति हेक्टर प्रतिवर्ष । संसार की औसत 2 घन मीटर प्रति हैक्टर प्रतिवर्ष है । प्रति हैक्टर उत्पादन का मूल्य 1973 और 1980 के बीच दुगुने से अधिक हो गया – 23 रूपये से बढ़ कर 56 रूपये । लेकिन अन्य देशों की तुलना में यह फिर भी बहुत कम है जैसे पश्चिमी जर्मनी में 565 रूपये, स्विटजरलैण्ड में 494 रूपये व आस्ट्रिया में 336 रूपये । मगर यह देखा गया है कि जहाँ–जहाँ किसानों ने निजी तौर पर अपने खेतों में वानिकी की है तो 10,000 रूपये से अधिक आसानी से उपार्जित किये है । लाखों लोग वानिकी, से अपनी जीविका उपार्जित करते है । 1993 – 94 में वानिकी व लट्ठे बनाने से विशुद्ध घरेलू उत्पाद 3832 करोड़ रूपये (1980– 81 मूल्यों पर) था और वनों से 8412 करोड़ रूपये की साधन आय प्राप्त हुई । 1976 – 77 में वन उपज के निर्यात से 90 करोड़ रूपये की आय हुई थी। मगर अभी भी हमें वन उपज आयात करने की आवश्यकता पड़ती है ।

19.5 खनिज

खनिज संसाधनों की दृष्टि से भारत काफी सम्पन्न देश है । यहां विभिन्न प्रकार के महत्वपूर्ण खनिज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है जो एक मजबूत औद्योगिक आधार के लिये प्रर्याप्त है । मगर इनका वितरण बहुत असमान है । दामोदर घाटी में पैट्रोलियम के अलावा अन्य खनिज पदार्थो का अधिकतम भण्डार है जबकि मंगलोर से कानपुर तक यदि एक रेखा खींची जाये तो उसके पश्चिम में पठारी क्षेत्र में बहुत कम खनिज सम्पदा है इस रेखा के पूर्व की ओर धातु खनिजों, कोयले, अभ्रक व अनेक गैर धातु खनिजों के भण्डार है ।

खनिज तीन प्रकार के होते है :

(1) धात्विक खनिज : जैसे लोहा, ताम्बा, मैगनीज, टंगस्टन, सीसा, जस्ता, बाक्साईट, सोना, चाँदी, इल्मेनाईट, बैराईट, मैग्नेसाईट, सिलेमेनाईट, टिन इत्यादि ।

(2) अधात्विक खनिज जैसे अभ्रक, एसबेस्टस, पायराईट, नमक, जिप्सम, हीरा, घिया पत्थर, किटोनाईट, इमारती पत्थर, संगमरमर, चूने और सीमेंट का पत्थर, कांच बनाने का बालू व विभिन्न प्रकार की मिट्टियां ।

(3) अणुशक्ति वाले खनिज : जैसे युरेनियम, थोरियम, इल्मेनाईट, बैरीलियम, जिरकन, सुरमा, ग्रेफाईट इत्यादि ।

भारतीय भूगर्भीय सर्वेक्षण के अनुसार भारत के 50 मुख्य धातु क्षेत्र व लगभग 400 मुख्य स्थान है जहां यह धातुएं मिलती है । खनिज संसाधनों का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। लगभग उत्पादन के हर क्षेत्र में किसी न किसी खनिज पदार्थ की आवश्यकता पड़ती है–लोहा और कोयला तो बिलकुल ही आधारभूत खनिज है, मैगनीज, ताम्बा, कांच बनाने की बालू, चूना पत्थर, अभ्रक, बाक्साईट, पैट्रोलियम और गैस । इन सभी पदार्थो के बिना आर्थिक जीवन की कल्पना करना भी कठिन है।

भारत मे अधिकतर खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है ।

लौह–अयस्क

आधुनिक युग में लोहे का अत्यन्त महत्व है यह न केवल मजबूत व टिकाऊ धातु है बल्कि सस्ता भी है । साथ ही यह अच्छी विदेशी मुद्रा कमाने का भी साधन है । उदाहरणार्थ 1990–91 में 1200 करोड़ रूपये के लौह अयस्क का निर्यात किया गया । भारत में उत्तम किस्म के लौह अयस्क के भण्डार भारतीय भूगर्भीय सर्वेक्षण के अनुसार अनुमानत : 2222 करोड़ टन है जो कि विश्व के भण्डार के लगभग 20% है । और संसार में सर्वाधिक है । लोहे और इस्पात उद्योग के लिये आवश्यक कच्चा माल भी आसपास ही उपलब्ध होने के कारण लोहा–इस्पात उद्योग के विकास की सम्भावना भी अच्छी है ।

यहां लौह अयस्क के भण्डार पंजाब, कुमाऊ, हिमालय क्षेत्र में (6.0 करोड़ टन), डैल्टाई मैदानों में उत्तरी–पश्चिमी प्रायद्वीपीय पहाड़ियों में (2.03 करोड़ टन), उत्तरी–पूर्वी प्रायद्वीपीय पठार व बस्तर में (441.2 करोड़ टन), उड़ीसा की पहाड़ियों में छोटा नागपुर में (जहां देश के लौह अयस्क भण्डार का 96% भाग है) तथा बैन गंगा घाटी क्षेत्र में (2.2 करोड़ टन) और रायलसीमा के पठार में (18.4 करोड़ टन), तमिलनाडु के पठार में (30 करोड़ टन) तथा तटीय मैदानों में कोंकण तट पर (61 से 81 करोड़ टन) है । इसके अतिरिक्त कुछ भण्डार उत्तरी पश्चिमी मैदान, दक्षिण भाग में दामोदर घाटी में, असम घाटी में, आंध्रप्रदेश में, तेलंगाना पठार, कर्नाटक पठार व कर्नाटक तट पर भी पाये जाते है । राज्यों की दृष्टि से देखें तो अधिकतर भण्डार पाये जाते है उड़ीसा, बिहार, मध्यप्रदेश, कर्नाटक और गोआ में ।

भारत में 1994–95 में लौह अयस्क का 607 लाख टन का उत्पादन हुआ जिसका मूल्य 1043.0 8 करोड़ रूपये था । उस वर्ष इसके 260 लाख टन निर्यात से 1297 करोड़ रूपये की विदेशी मुद्रा अर्जित की गई ।

कोयला

लोहा इस्पात उद्योग के लिये आवश्यक एक और खनिज है कोयला । कोयला न केवल उर्जा व गर्मी का स्त्रोत है बल्कि अनेक आवश्यक पदार्थों का भी स्त्रोत है जैसे गैस, तारकोल, अमोनिया, पिच, कोक, तेल, उर्वरक, प्लास्टिक, रंग इत्यादि । भारत का विश्व मे कोयला उत्पादन में तीसरा स्थान है । कुमाऊ हिमालय में लिग्नाईट कोयला, पूर्वी हिमालय प्रदेश व दार्जिलिंग–सिक्किम क्षेत्र में भूरा कोयला पाया जाता है । पूर्वी पहाड़ियों और पठारी क्षेत्र में भी इसके सम्भावित विशाल भण्डार है । और गारों खासी और नागालैण्ड में भी अछूते विशाल भण्डार है । राजस्थान में कुछ लिग्नाईट, व गंगा के डेल्टाई मैदान में दामोदर घाटी में काँफी बड़े भण्डार (1320 करोड टन) है । असम घाटी क्षेत्र, उत्तरी पूर्वी प्रायद्वीपीय पठार में बघेलखण्ड पठार में लिग्नाईट, छत्तीसगढ बेसिन में, बस्तर के पठार में भी कोयला पाया जाता है । छोटा नागपुर का पठार में कोकिंग कोल का देश का 54% तथा अकोकिंग कोल का 30% पाया जाता है । बैनगंगा घाटी, तेलंगाना पठार और पश्चिमी तटीय मैदानों में कच्छ के प्राय :द्वीप में लिग्नाईट पाया जाता है । राज्यों की दृष्टि से प. बंगाल में रानीगंज व बिहार में झरिया व बोकारों में मुख्य कोयले की खाने है । लिग्नाईट तमिलनाडु में, नई वेली में अधिक मिलता है । बिहार में देश के 37% भण्डार है, पश्चिम बंगाल में 18% व मध्यप्रदेश में 16%।

आर्थिकी

भारत में 1995–96 में 2700 लाख टन कोयले का उत्पादन किया गया। कुल उत्पादन का 60% से अधिक भाग विद्युत उद्योग में काम आता है और 13% लोहा और इस्पात उद्योग में । अन्य सब कार्यों के लिये शेष 37% कोयले का प्रयोग होता है ।

बाक्साईट

यह एक अन्य महत्वपूर्ण खनिज है जिससे अल्यूमिनियम बनता है । यह धातु लौहे की तरह मजबूत मगर बहुत हल्की होने के कारण हवाई जहाज बनाने के काम आती है । इसके भारत में 2804 लाख टन के अनुमानित भण्डार है । और संसार में बाक्साईट उत्पादन में भारत का बारहवां स्थान है । यह पदार्थ हिमालय क्षेत्रों में पीर–पंजाल पहाड़ियों पर (1.30 करोड़ टन), प्रायद्वीपीय पठार में बुंदेलखण्ड, बघेलखण्ड, छत्तीसगढ वेसिन (2.5 लाख टन) बस्तर के पठार में, छोटा नागपुर के पठार मे, 17% महाराष्ट्र, कर्नाटक व आका के पठारों में, (20 लाख टन) मिलता है । पश्चिमी तट पर कच्छ प्रायद्वीप में (61 लाख टन), काठियावाड़ प्रायद्वीप में (1.0 करोड़ टन) व कोंकन तट पर भी– कुछ भण्डार मिलते है ।

आर्थकी

1994–95 में 78.28 करोड़ रूपये मूल्य का 46.44 लाख टन बाक्साईट का उत्पादन हुआ । लगभग 50 लाख रूपये मूल्य के बाक्साईट का प्रतिवर्ष निर्यात होता है ।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण धातुएं जो भारत में पाई जाती हैं इस प्रकार है ।

डोलामाईट पीर पंजाल, पूर्वी हिमालय प्रदेश, छत्तीसगढ बेसिन (25 लाख टन), छोटा नागपुर, महाराष्ट्र व कर्नाटक के पठार, उत्तरी–पश्चिमी मैदान व प्रायद्वीपीय पठार में, बघेलखण्ड और काठियावाड़ में (46 लाख टन) मिलता है । इसके अनुमानत 29.36 करोड़ टन के भण्डार है । ग्रेफाईट पीर पंजाल, बस्तर, आंध्रप्रदेश व तमिलनाडु के पठार में पाया जाता है । जिप्सम के अनुमानत : 11349 लाख टन के भण्डार भारत में है यह पीर पंजाल (46 करोड़ टन) राजस्थान (89.90 लाख टन) व आधप्रदेश के पठार में 1.5 करोड़ टन पाया जाता है । चूने का पत्थर के भण्डार 2.83 करोड़ टन है । यह भी पीर पंजाल मे, भूटान में (डोलोमाईट युक्त) गारो खासी, संयुक्त मीकर व उत्तरी कछार पहाड़ियों में, उत्तरी पश्चिमी मैदान में, राजस्थान में (310 करोड़ टन), रोहिलखण्ड का मैदान, मध्यगंगा के प्रायद्वीपीय किनारों पर (40 करोड़ टन), डैल्टाई मैदान में (152 लाख टन), असम घाटी क्षेत्र में, उत्तर प्रायद्वीप में अरावली पर्वत में (34.5 करोड़ टन), उदयपुर, बुंदेलखण्ड, छत्तीसगढ वेसिन में (1.2 करोड़ टन) बस्तर, महाराष्ट्र, कर्नाटक व आंध्रप्रदेश के पठार में, पश्चिमी तट पर (16.7 करोड़ टन), काठियावाड़ में (7 करोड़ टन), तथा गुजरात के मैदान में (86.8 करोड़ टन) पाया जाता है । कांच बनाने की बालू भारत में पूर्वी हिमालय प्रदेश मे खासी और जयन्तिया पहाड़ियों में, उपरी गंगा मैदान में व गुजरात के मैदान में पाई जाती है । ताम्बे के भारत में अनुमानित भण्डार 335 लाख टन है । यह धातु उत्तरी पश्चिमी मैदान में राजस्थान में (30 लाख टन), व बस्तर व छोटा नागपुर के पठारों में पाया जाता है । अभ्रक भी विभिन्न पठारी क्षेत्रों में पाया जाता है। मैगनीज डेल्टाई मैदान में उत्तर–पश्चिमी प्रायद्वीपीय पठार में अरावली पर्वत पर (40 लाख टन) तथा बस्तर, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश के पठार में व तटीय गुजरात में कर्नाटक तट पर पाया जोता है ।

खनिज तेलों अर्थात पैट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस की दृष्टि से भारत की स्थिति अभी सन्तोष जनक नहीं है । यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय भूगर्भिक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 620 करोड़ टन भण्डार है, पैट्रोलियम रसायन मन्त्रालय के अनुसार देश में 1313 लाख टन तेल के भण्डार तथा 592 करोड़ घन मीटर गैस के भण्डार है । अधिकतर तेल के स्त्रोत असम की पहाड़ियों में है । तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग के द्वारा किये गये सर्वेक्षण से चला है कि भारत में लगभग 26 बेसिन है जिनका 84.4% धरती पर (लगभग 14.1 लाख वर्ग किलोमीटर) तथा 15.6% (2.6 लाख वर्ग किलोमीटर) सागरीय क्षेत्र में है जिससे तेल मिलने की सम्भावनाएं है। अधिकतर तेल उपरी असम (ब्रह्मपुत्र घाटी जिसमें नागालैण्ड मिकिर की पहाड़िया और मेघालय के ऊपरी पठार, मिजोरम मणिपुर, त्रिपुरा सिलचर और कच्छार शामिल है, डिबोई क्षेत्र, सुरमा घाटी, नाहरकटिया तेल क्षेत्र, समरीजन मेरेन तेल क्षेत्र तथा रूद्र सागर लखवा तेल क्षेत्र है । इस क्षेत्र में 1987 में 45.10 लाख टन तेल का उत्पादन हुआ । पश्चिमी बंगाल, जिसमें उड़ीसा का

उत्तरी पूर्वी व तटीय भाग पश्चिम हिमालय प्रदेश, राजस्थान, सौराष्ट्र, कच्छ जिसमें अरावली के पश्चिम में राजस्थान के बीकानेर, जैसलमेर और बाड़मेर जिले, कच्छ के सामुद्रिक क्षेत्र, उत्तरी सौराष्ट्र के मैदान और सौराष्ट्र के पठार आते है, उत्तरी गुजरात प्रदेश जिसमें अंकलेश्वर, खम्भात व अहमदाबाद क्षेत्र है। इसमें 1987 में 50.4 लाख टन तेल का उत्पादन हुआ । तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश तथा केरल कें तटीय क्षेत्र, अण्डमान निकोवार तट व बम्बई के निकट बौम्बे हाई क्षैत्र में भी तेल के भण्डार है । मगर अभी तेल का ज्यादा उत्पादन, (1) असम और उससे सम्बधित क्षेत्र, (2) खम्भात की खाड़ी के निकट गुजरात तथा (3) बौम्बे हाई में होता है। 1994–95 में 322.39 लाख टन तेल का उत्पादन हुआ । मगर खपत अधिक होने के कारण हमें 17838 करोड रूपये मूल्य का 413 लाख टन तेल का आयात करना पड़ा । सन्तोष की बात यह है कि जहां हम कुछ समय पूर्व 90% तेल विदेशों से मंगवाते थे आज मांग बढ जाने के बावजूद केवल 50% का आयात करना पड़ता है ।

खनिज पदार्थो के कुल उत्पादन मूल्य में स्वतंत्रता के पश्चात तेजी से वृद्धि आई है । 1951 में खनिज उत्पादन का कुल मूल्य 85 करोड़ रूपये था जो 1992 में 17241 करोड़ रूपये हो गया। उत्पादन मात्रा सूचकांक (1970=100)1961 में 62 से बढ़ कर 1989 में 306 पहुंच गया। भारत के निर्यात में भी खनिजों का महत्वपूर्ण योगदान है । 1993–94 में कुल निर्यात में 1.9% लौह अयस्क, 0.9% प्रोसेस्ड खनिज, 1.0% अन्य खनिज व 1.8% तेल व तेल उत्पादन का भाग था । इनका मूल्य अमरीकी डॉलर में क्रमश : 43. 27, 19.6, 23.2 व 39.78 करोड़ बैठता है ।

19.6 जल व शक्ति संसाधन

जल संसाधन भारत की जीवन रेखा है । यद्यपि भारत में जल अधिकतर क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है । इसके वितरण में तीव्र विषमतायें है । जल संसाधन दो प्रकार के होते है। (1) धरातलीय एवं(2) भूगर्भिय । धरातलीय संसाधन धरती के ऊपर व भूगर्भीय जमीन के अन्दर पाये जाने वाले जल को कहते है । अनुमानत : समपूर्ण देश में औसतन 100 सेंटीमीटर वर्षा होती है जिसके द्वारा लगभग 370 लाख हैक्टर मीटर जल प्राप्त होता है । इसमें 125 लाख हैक्टर मीटर जल वाष्प बन कर उडद जाता है । व 79 लाख हैक्टर मीटर धरती द्वारा सोख लिया जाता है । इस प्रकार नदियों को 166 लाख घन मीटर जल ही प्राप्त होता है । मगर हमें यहां यह बात ध्यान में रखनी हैं कि भारत में वर्षा सामयिक, अनिश्चित तथा असमान होती है । अर्थात इसका समय काफी कुछ बंधा हुआ होने के बावजूद अनेक बार या तो वर्षा समय पर नहीं होती या फिर कम होती है । साथ ही देश के विभिन्न भागों में भिन्न–भिन्न मात्रा में वर्षा होने से जल वितरण में असमानता भी बहुत है । और फिर वर्ष में कुछ ही महीने बारिश होती है, शेष वर्ष सूखा जाता है । इन सभी कारणों से विभिन्न उपयोगों के लिये धरातलीय व भूगर्भिक दोनों प्रकार के संसाधनों पर निर्भर रहना पड़ता है । अनुमानत : नदी जल की 660 करोड़ घनमीटर मात्रा सिंचाई के लिये काम में लाई जा सकती है । इसमें 1951

में केवल 17% या 95 करोड़ घनमीटर जल का प्रयोग हो रहा था । चौथी योजना के अन्त तक 45% जल का उपयोग किया जा सका ।

वर्षा का जो हिस्सा भूमि में सोखा जाता है वह भी सारा उपयोग के लिये उपलब्ध नहीं होता । 7900 करोड़ घनमीटर में से केवल 4300 करोड़ घनमीटर का उपयोग ही कृषि के लिये किया जाता है, शेष 3600 करोड़ घनमीटर इतना नीचे तक चला जाता है कि सिर्फ गहरे कुओं आदि के द्वारा ही उसका प्रयोग किया जा सकता है ।

भूगर्भिक जल के स्त्रोत पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिमी बंगाल मे है। भूगर्भिक जल के धरातलीय जल की तुलना में अनेक लाभ है जैसे, जहां तालाब आदि में पानी रिस कर तालाब सूख जाते है, भूगर्भिक पानी में रिसाव से कमी नहीं आती । न ही इसमें वाष्पीकरण होने का डर है । भारत में भूगर्भिक जल की सम्भावना काफी है । अन्दाज है कि 300 मीटर की गहराई पर 37 करोड़ हैक्टर मीटर जल भण्डार है । यह मात्रा वर्षा से प्राप्त जल से लगभग 10 गुना है ।

द्वितीय सिंचाई आयोग ने 1972 में अनुमान दिया था कि वर्षा व रिसाव से पुनर्भरण 670 लाख हैक्टर मीटर होता है । कुछ उपाय करने पर यह मात्रा बढाई भी जा सकती है । हाल की कुछ गणना के अनुसार पठारी क्षेत्र की मजबूत चट्टानों में जो भारत की भूमि का 70% है पहले जितना अनुमान लगाया गया था उससे कही अधिक जल है । अन्दाज है कि वार्षिक उपयोग की सम्भावना 420 लाख हैक्टर मीटर है जबकि अभी हम केवल 100 लाख हैक्टर मीटर का उपयोग कर रहे हैं । इस 420 लाख हैक्टर मीटर में से 21.9% उत्तर प्रदेश में जिसमें केवल 29% का उपयोग हो रहा है, मध्यप्रदेश में 14.1%, जिसमें 8% का उपयोग हो रहा है, पंजाब और हरियाणा में क्रमश : 3% तथा 2.1% सम्भावना है जिसमें मे यह क्रमश : 73% व 70% का उपयोग कर लेते है । यह प्रयोग कुओ व नलकूपों की वजह से सम्भव हुआ है । भारत के कुल जल संसाधनों व सिंचाई के लिये उनके उपयोग का विवरण हम इस प्रकार देख सकते है–

तालिका 19.1

भारत के जल संसाधन

(दस लाख घन मीटरों में)

नदी बेसिन	धरातलीय बहाव	सम्भावित भूमिगत जल	धरातली बहाव	उपयोग में लाया गया भूमिगत जल	योग
1. सिन्द	76,907	11,109	46,048	8,515	54,563
2. गंगा	5,09,760	82,698	13,421	40,9551	73,376
3. ब्रह्मपुत्र	4,99,914	20,803	6,058	220	6,278
4. लूनी तथा गुजरात और	12,278	4,937	3,812	8,389	12,201

	कच्छ की नदियाँ					
5.	साबरमती	3,663	2,467	1,470	1,826	3,296
6.	माही	7,702	2,467	3,830	1,083	4,913
7.	नर्मदा	44,331	4,937	2,786	1,372	4,158
8.	तापी	17,982	5,814	5,383	1,545	6,928
9.	गोदावरी के उत्तर की और बहने वाली नदियाँ	32,024	5,184	11,756	299	12,055
10.	ब्राह्मणी एवं वैतरणी	27,363	5,184	4,320	136	4,456
11.	महानदी	66,644	12,343	21,287	277	21,564
12.	गोदावरी	1,17,997	14,194	32,732	5,389	38,121
13.	कृष्णा	62,784	9,628	52,437	6,513	58,950
14.	पेनार	6,858	2,374	5,031	1,390	6,421
15.	कावेरी	18,601	5,801	17,930	2,557	20,487
16.	प्रायद्वीप के पश्चिम में बहनें वाली नदियाँ	2,17,894	13,577	13,467	अनुपलब्ध	13,467

यदि हम जलशक्ति को देखें तो पूर्वी हिमालय प्रदेश में ब्रह्मपुत्र से असम हिमालय में लगभग 1 लाख हैक्टर भूमि में सिंचाई की सम्भावनाएं है । बड़ा मैदान में बाढ़ के द्वारा निर्मित मैदानी क्षेत्र है–भारत के 1/5 भाग में फैले इस प्रदेश में अनेक नदियॉ है – गंगा, यमुना, सतलज, व्यास, गण्डक, कोसी और ब्रह्मपुत्र । यद्यपि राजस्थान का मरूस्थल भी इसी क्षेत्र का हिस्सा है, मगर शेष "मैदान " क्षेत्र में जल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । ऊपरी गंगा मैदान मे गंगा–यमुना का दोआब, रोहिलखण्ड का मैदान तथा अवध का मैदान शामिल है । गंगा–यमुना दोआब में लगभग 20 लाख हैक्टर भूमि की सिंचाई हो सकती है । यहां चावल, गन्ना, कपास, गैहूं, तिलहन इत्यादि फसलें पैदा होती है । रोहिलखण्ड व अवध के मैदानों में गन्ना, कपास, गेहु, चावल पैदा किया जाता है । मध्य गंगा के मैदान में उत्तर प्रदेश के भाग व बिहार में घाघरा, कोसी व गण्डक नदियाँ बहती हैँ । वर्षा पर्याप्त होने से चावल, गन्ना व पटसन की फसलें यहां उगाई जाती है । डैल्टाई मैदान में चावल, जूट व मैदानी भाग की तराई में चाय की फसलें उगाई जाती है । असमघाटी क्षेत्र में तिलहन और चाय और पहाड़ी ढाल पर चाय, नारंगी व अनानास के बागान है।

प्रायद्वीपीय पठार एवं पहाड़ी क्षेत्र में सिंचाई की सम्भावनायें इस प्रकार है – उत्तरी–पश्चिमी प्रायद्वीपीय पठार– 16000 हैक्टर व चम्बल बेसिन 6000 हैक्टर । बुंदेलखण्ड में अधिकतर तालाब व छोटे बांधों द्वारा सिंचाई होती हैं । मालवा पठार व विन्धयन उच्च भूमि क्षेत्र में सिंचाई व जलविद्युत दोनों की सम्भावनाएं बहुत कम है क्योंकि भूमि कठोर व शुष्क है। महाराष्ट्र के पठार में ताप्ती नदी बहती है यहां कपास, गेहूं व मोटा अनाज पैदा किया जाता है । कर्नाटक के पठार में भीमा, कृणा, तुंगभद्रा व कावेरी मुख्य नदियाँ है । इस क्षेत्र में मूंगफली, गन्ना और कपास अधिक पैदा किये जाते है । आंध्रा के पठार में पेनार व सगीनेरू नदियाँ बहती हे, तेलंगाना पठार में अधिकतर तालाबों के द्वारा सिंचाई की जाती है । यहां कपास व मोटा अनाज पैदा किया जाता है । रायलसीमा पठार में सिंचित क्षेत्र बहुत कम है । तमिलनाडु के पठार में कावेरी नदी बहती है ।

तटीय मैदान में पश्चिमी तट गर काठियावाड़ के प्रायद्वीप में कपास, मोटा अनाज तथा गेहूँ उगायें जाते है और तट के पास मत्स्य क्षेत्र है । गुजरात का मैदान साबरमती व माही नदियों द्वारा सिंचित है । यहां सिंचाई की सम्भावना 14.2 लाख हैक्टर ऑकी गई है । कोकन तट पर चावल, केला । आम व नारियल अधिक पैटा होता है और तटीय क्षेत्र में मछली पकड़ने से जीविका उपार्जन होता है कर्नाटक मालाबार तट पर नारियल व चावल की पैदावार होती है । पूर्वी तटीय क्षेत्र में महानदी,कृष्णा , कावेरी व गोदावरी नदियाँ बहती है । तमिलनाडु तट पर कावेरी नदी का डेल्टा है जिसमें धान और नारियल खूब होता है । आंध्र तट पर कृष्णा और गोदावरी का डेल्टा है जिसमें धान और तम्बाकू पैदा किया जाता है । और उड़ीसा तट पर मछली पकड़ने का कार्य होता है । तटीय क्षेत्रों में कुल मिला कर 1.8 करोड़ हैक्टर भूमि पर कृषि होती है, 10 लाख हैक्टर पर चारागाह तथा 66 लाख हैक्टर पर वन क्षेत्र है ।

पूरे भारत देश में कुल सम्भावित सिंचाई की क्षमता अनुमानत : 11.35 करोड़ हैक्टर है जिसमें 7.35 करोड़ हैक्टर धरातलीय जल व 4.0 करोड़ हैक्टर भूगर्भिय जल से प्राप्त की जा सकती है । पंचवर्षिय योजनाओं में सिंचाई परियोजनाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है जिसके परिणामस्वरुप यह लगता 1950 और 1955 की बीच लगभग 5 गुणा बढ़ गई है ।

जल शक्ति से जुड़ी हुई है विद्यूत उत्पादन क्षमता । भारत की विद्युत उत्पादन क्षमता में पिछले पचास वर्ष में भारी वृद्धि हुई है । 1947 में 4700 मेगावाट से बढ़कर यह क्षमता 1992–93 में 72468 मेगावाट तक पहुंच गई । 1994–95 में इसके बढ़कर 81164 मेगावाट हो जाने की सम्भावना थी । 1978–79 में कुल विवृत शक्ति का 55% तापीय विद्युत कोयले व तेल से प्राप्त होती थी । 42.5% जल विद्यूत तथा 2.5% अणुशक्ति द्वारा प्राप्त होती थी। 1994–95 में यह अनुपात बदल कर क्रमश 71.6%, 25.60% व 2.74% हो गये थे । 1995–96 में विद्यूत का उत्पादन इस प्रकार रहा तापीय 29700 करोड़ किलोवाट घण्टा, जल 7230 किलोवाट घण्टा तथा अणु 780 किलोवाट घण्टा ।

राज्यों की दृष्टि से महाराष्ट्र में अधिकतम फिर क्रमश उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश व मध्य प्रवेश में उत्पादन होता है । इन सब राज्यों में 110000 लाख किलोवाट घण्टा से अधिक विद्युत का उत्पादन होता हैं ।

हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, कर्नाटक, केरल व मेघालय जल विद्युत पर निर्भर है । दिल्ली बिहार, असम, गुजरात और पश्चिमी बंगाल कोयले से विद्युत प्राप्त करते है । व आंध्र प्रदेश, हरियाणा, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु व उत्तर प्रदेश इन दोनों प्रकार की विद्युत शक्ति पर निर्भर करते है । सम्पूर्ण हिमालय प्रदेश में 2.4 करोड़ किलोवाट बड़े मैदान में 50 लाख किलोवाट, प्रायद्वीपीय पठार एवं पहाड़ी क्षेत्र में 36 लाख किलोवाट तथा तटीय मैदान में 10 लख किलोवाट की सम्भावित क्षमता है ।

इसके अतिरिक्त आजकल गैर परम्परागत उर्जा साधनों जैसे सौर्य उर्जा, पवन उर्जा, समुद्री(ज्वार–भाटा) उर्जा व अ–वाणिज्यिक उर्जा के प्रयोग 'को भी प्रोत्साहन दिया जा रहा है ।

19.7 सारांश

भारत एक विशाल देश है जिसे प्रकृति ने अनेक अनुपम उपहारों से समान बनाया है । भौगोलिक स्थिति, जलवायु, खनिज, वनस्पति, पशु–पक्षी सम्पदा, मिट्टियां, समुद्री तट, पर्वतमाला। हर प्रकार के आवश्यक संसाधन हमारे इस भारत देश को प्रकृति ने दिये है । सुजलाम, सुफलाम शस्यश्यामला धरती की कोख से हमें हर प्रकार का उत्पादन मिलता है । जहां एक ओर कृषि के लिये उर्वरा भूमि है, वहां दूसरी ओर उद्योगों के लिये हर प्रकार के खनिज उपलब्ध है । पर्वतमाला व घने जंगल भी है और लहरें मारता समुद्र भी– दोनों से ही अनेक पदार्थ हमें प्राप्त होते है ।अनेक प्रकार की फसलें यहां उगाई जाती है । कुछ जो जीवन का आधार है जैसे खाद्यान, फल और सब्जियाँ और कुछ फसलें जो उद्योगों के लिये कच्चा माल प्रदान करती है जैसे कपास, पटसन, गन्ना, वन–उपज, रेशम, रंग रोगन इत्यादि । लगभग प्रत्येक प्रकार के उद्योगों के लिये कच्चा माल यहां उपलब्ध है– फसलों के रूप में या खनिज, संसाधनों से, उर्जा के हर प्रकार के ज्ञान भी यहां पाये जाने है । जल विद्युत शक्ति, तेल और गैस, कोयला, समुद्री लहरें । देश के हर भाग में कोई न कोई संसाधन अवश्य उपलब्ध है जिससे देश को किसी वस्तु के लिये अन्य देशो पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं । सब तरफ से स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर हो सकता है भारत । आर्थिक विकास के लिये सब संसाधन यहां उपलब्ध है । यह दुर्भाग्य की बात है कि हम प्रकृति की इन देनों का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाये हैं । इन संसाधनों के उचित व पूर्ण प्रयोग से हम शीघ्र ही आर्थिक विकास की चोटियों को छू सकते है ।

19.8 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) भारत में मिट्टी की प्रादेशिक विभिन्नताओं की विवेचना करें । तथा देश के फसल प्रारूप के साथ उनकें सम्बन्ध का विश्लेषण करें ।

(2) वनों का हमारे जीवन में क्या महत्व है । विवेचन करें और भारत में इनके प्रादेशिक वितरण का विश्लेषण करें ।

(3) भारत के जल संसाधनों का वर्गीक्रत विवरण व उनके उपयोग का विश्लेषण करें ।

(4) भारत में उपलब्ध विभिन्न खनिजों के प्रादेशिक वितरण का विवरण दे।

(5) खनिज हमारे औद्योगिक जीवन की आधार रेखा है, विवेचन करें।

(6) भारत में शक्ति संसाधनों का विवेचन करें।

19.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

(1) चर्तुभुज मेमोरिया आधुनिक	भारत का वृहत भूगोल साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 1996
(2) सुरेश चन्द्र बंसल	भारत का भूगोल मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1997
(3) Jahar Lal Gupta and Prabhas Ranjan Cattoraj	Anew Approach to Economic Geography World Press Pvt.Ltd. Calcutta, 1990
(4) Ramamoorthy and Gopal Krishan	Geography of India jawahar Publication and Distributors, New Delhi, 1996–97
(5) Government of India	Economic Survey 1996–97
(6) Sengupta P and Sdasyuk Galina	Economic Regionalisation of India. Problems and Approach, Census of India 1996, Monograph Series Monograph no 8, 1968
(7) Spate O.H.K and Learmonth, AFA	India and Pakistan Methuen and Co, Ltd. UK, 1967
(8) Central Statistical Organisation (CSO) Govt. of India	National Accounts Statistics 1995
(9) V Vidyanath and R Rammohan Rao(ED)	Development of India Resource Base, Patterns, Problems And Prospects, Oxford university Press, 1988
(10) Sharma T.C. and O.Coutinho	Economic and Commerical Geography of India, Vikas Publishing Home Pvt.Ltd. Delhi, 1996
(11) Economic and Social Atlas of India	Oxford University Press New Delhi 1987

इकाई 20
औपनिवेशिक काल में भारतीय प्रादेशिक संरचना का विकास

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 भारत का आधुनिकीकरण एवं भारत का उपनिवेशीकरण
20.3 अठारहवीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था
20.4 उपनिवेशवाद के चरण
20.5 राजस्व प्रणाली व प्रादेशिक अर्थव्यवस्थाएं
20.5.1 रैयतवाड़ी
20.5.2 महालवाड़ी
20.6 कृषि का व्यावसायीकरण
20.6.1 व्यापार
20.6.2 उद्योग
20.6.3 शहरीकरण
20.7 सारांश
20.8 निबन्धात्मक प्रश्न
20.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

20.0 उद्देश्य

अंग्रेजों द्वारा भारत में अपनाई गई विभिन्न आर्थिक नीतियों की प्रकृति पर प्रकाश डालना तथा इन नीतियों का भारत के विभिन्न प्रदेशों पर क्या प्रभाव पड़ा इसका अध्ययन करना । अंग्रेजों ने अपने सामाज्यवादी हितों की पूर्ती के लिए भारत के विभिन्न प्रदेशों की आर्थिक परिस्थितियों, साधनों, जलवायु, मिट्टी व फसलों आदि की बारीकी से जाँच कराने के बाद ऐसी नीतियों का पालन किया जिससे कि इंग्लैण्ड के उद्योगों को कच्चा माल कम से कम दाम पर अधिक से अधिक मात्रा में व उत्तम गुणवत्ता का प्राप्त हो सके व इंग्लैण्ड में निर्मित माल भारत में बिक सके । अपने 190 वर्षों के राज्य–काल के दौरान यही अंग्रेजों का एकमात्र उद्देश्य था। भारत के विभिन्न प्रदेशों का किस प्रकार से इस उद्देश्य प्राप्ति के लिए शोषण किया गया व प्रदेशों में आर्थिक प्रगति व अर्थव्यवस्था को क्या मोड़ दिया गया यही इस लेख में प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

20.1 प्रस्तावना

भारत पर अंग्रेजों ने 190 वर्ष तक राज्य किया । 1757 में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बंगाल में अंग्रेजी राज्य की नींव रखी व 1765 में जब बंगाल, बिहार, उड़ीसा पर उनका अधिकार हो गया, तब भी अंग्रेजों का प्रशासनिक परिवर्तन करने का विचार बहुत कम था । उनकी एकमात्र इच्छा लाभप्रद व्यापार करना और राजस्व एकत्रित करके इंग्लैण्ड भेजने की थी । राज्य प्राप्ति की प्रक्रिया जो 1757 में प्रारम्भ हुई, उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक सौ वर्ष के बाद लगभग समस्त भारत पर अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ ही समाप्त हुई ।

उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज सरकार ने जो भारत में नीतियाँ अपनाई उनकी जानकारी आवश्यक है क्योंकि तभी हम भारत के आर्थिक पिछड़ेपन के स्वरूप और विकसित देशों की तुलना में पीछे रह जाने के कारण समझ सकते है ।

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में हुई आर्थिक प्रक्रिया के सम्बन्ध में दो परस्पर विरोधी विचार धाराओं के अर्थशास्त्रियों व आर्थिक इतिहासकारों के मध्य बहस होती रही है व अब भी जारी है । इनमें से एक विचारधारा के अनुसार ब्रिटेन द्वारा, अराजकता की लम्बी अवधि के बाद स्थापित शान्ति के फलस्वरूप भारत में व्यवस्था व शान्ति हुई । भारत को कुशल प्रशासक मिले, रेलमार्गो का विकास हुआ, व्यापार में वृद्धि हुई, सिंचाई का विस्तार हुआ व कृषि क्षेत्र में भी उन्नति हुई । इसके विपरीत अर्थशास्त्रियों का दूसरा समूह यह विचार प्रस्तुत करता है कि ब्रिटिश राज्य के परिणामस्वरूप न कोई औद्योगिक विकास हुआ व कोई आर्थिक उन्नति भी नहीं हुई । अंग्रेजी राज्य के परिणामस्वरूप आर्थिक परिवर्तन हुए परन्तु आर्थिक विकास नही हुआ व दूसरी ओर यह राज्य हमारे आर्थिक प्रगति के मार्ग में बाधा बन गया।

20.2 भारत का आधुनिकीकरण या भारत का उपनिवेशीकरण

साम्राज्यवाद के पक्ष के इतिहासकार मौरिस डी मौरिस (Morris D Morris) का मत है कि ब्रिटिश राज का प्रभाव सीमित हुआ क्योंकि "प्रकटत:" भारत सरकार का सक्रिय आर्थिक विकास के लिए सोचा हुआ कार्यक्रम नहीं था क्योंकि ब्रिटिश राज अपने को चौकसी करने वाले चौकीदार की निशिक्रय भूमिका में देखते थे । यह धारणा सैधांतिक रूप से ही गलत है व इस मत का खंडन भट्टाचार्य ने किया है । यह भी प्रमाणित हो चुका है कि अहस्तक्षेप की नीति जो ब्रिटिश राज ने अपनाई तथा साम्राज्यवाद के बीच गहन सम्बन्ध था । दूसरे शब्दों में अहस्तक्षेप की नीति अपनाने का कारण ही साम्राज्य के हितों को प्रोत्साहित करना था । तथा यह भी स्पष्ट है कि भारत सरकार ने भारत में औधोगिक और वाणिज्यिक उपक्रमों को आरम्भ करने और उन्हें प्रोत्साहित करने तथा ब्रिटिश पूँजीपतियों को भारत में विशेष अधिकार देने में प्रत्यक्ष, सीधी और सक्रिय भूमिका निभाई थी । उसने अहस्तक्षेप नीति के उत्कर्ष काल में सरकारी खर्च पर भारत में चाय, सिनकोना व काँफी के बाग लगवाने का कार्यक्रम प्रारम्भ किया तथा कपास की खेती करवाई व परिवहन का सक्रिय रूप से संवर्द्धन किया था । गवर्नर–जनरल डलहौजी के कार्यकाल में राज्य की गारंटी के अंतर्गत रेलमार्गों का निर्माण करवाया गया । इसी प्रकार भारत ही एक ऐसा अहस्तक्षेप की नीति पर आधारित 'उदारवादी' राष्ट्र राज्य था जिसकी सरकार ने भारतीय श्रमिकों कों चाय व कॉफी बागानों में काम करने को बाध्य करने के लिए दण्डित

कानून ननाए । इसके अतिरिक्त जो सरकार समस्त भूमि के स्वामित्व का दावा करती हो और जमींदारों गया किसानों व कर्जदारों और महाजनों के विवादों में खुला हस्तक्षेप करती हो, जैसा उन्नीसवी शताब्दी में ब्रिटिश सरकार करती थी, अथवा वह सरकार जिसने प्रतिबंधित व अपरिवर्तनीय मुद्रा चलाई हो, उस सरकार को केवल रात का चौकीदार या अहस्तक्षेप समर्थक नहीं कहा जा सकता । ब्रिटिश सरकार ने साम्राज्यवादी तत्वों को पनपने देने के लिए सक्रिय सहयोग देकर कच्चे माल के निर्यात पर आधारित अर्थव्यवस्था का विकास किया व जब भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने औद्योगीकरण के लिए सरकारी सहायता देने का प्रश्न उठाया तो, अहस्तक्षेप की नीति के सिद्धान्त का बहाना बना दिया ।

एक आदर्श उपनिवेश के रूप में भारत का रूपान्तरण आधुनिकीकरण, आर्थिक विकास और जहां भी आवश्यक हुआ, विदेशी पूंजी की सहायता से उद्योग और कृषि में पूंजीवाद के प्रतिरोपण के नाम से किया गया।

20.3 अठारहवीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था

मुगल साम्राज्य जब अपनी चरम, सीमा पर था तो उसने भारत के बहुत बड़े भाग की राजनैतिक व्यवस्था, स्थायित्व, एक रूप राजस्व नीति, शान्ति व्यवस्था में फलता–फूलता आन्तरिक व्यापार व उन्नतोमुख विदेशी व्यापार दिया । मुगल साम्राज्य आधुनिक राष्ट्रीय राज्य तो नही था व राज्य के अधिकांश भाग में स्वनिर्भर, पृथक (Isolated) अर्थव्यवस्था थी । परंतु मुगल साम्राज्य के अधीन देश के दूर के भाग अन्य राज्य के भाग से आर्थिक रूप से जुड़ गए थे व व्यापार का भी विस्तार हो रहा था।

1707 के बाद मुगल सामाज्य का पतन प्रारम्भ हुआ व तभी से भारत की आर्थिक व्यवस्था का भी विघटन शुरू हुआ। अनेक छोटे–छोटे राज्य अस्तित्व में आ गए व इन राज्यों में भी आपसी वैर. वैमनस्य का सम्बन्ध रहता था । अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक मुगल साम्राज्य विखण्डित हो चुका था व सिकुड़ चुका था । बंगाल, बिहार, उड़ीसा, हैदराबाद, गुजरात, सिन्ध, अवध, रोहिलखण्ड, राजपूत राज्य, मैसूर, महाराष्ट्र आदि या तो पूर्ण रूप सें स्वतन्त्र हो चुके थे या केवल नाममात्र के लिए मुगल राज्य के अधीन थे ।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार मुगल–साम्राज्य के पतन के साथ ही मध्य 18वी शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था न्यूनतम स्तर पर पहुंच गई थी । राज्य के अनेक भागों में युद्ध व अनिश्चितता के परिणामस्वरूप घातक आर्थिक प्रभाव हुए । दिल्ली में कमजोर राज्य व नियमित आक्रमणों के परिणामस्वरूप दिल्ली के कलाकार व श्रमिक शहर छोड़ कर चले गए । आगरा भी पतनोमुख था । अवध के उत्पादकों पर भी बुरा प्रभाव पड़ा क्योंकि वह अपना माल दिल्ली व आगरा में बेचते थे । सिख शक्ति के उत्कर्ष के परिणामस्वरूप लाहौर व काबुल का मार्ग बन्द हो गया व इसका विदेशी व्यापार पर बुरा असर पड़ा । साधारण तौर पर कहा जा सकता है कि उत्तर–पश्चिम के शहर इस काल में पतन की ओर उमुख थे । बंगाल के शहर भी कमजोर हो रहे थे क्योंकि मराठा आक्रमणों का भय यहां सदा बना रहता था । सिल्क व सूती कपड़ा बनाने वाले पश्चिमी बंगाल छोड़कर पूर्वी बंगाल में जाकर बस गए । स्वतन्त्र राज्यों के उत्थान के परिणामस्वरूप बंगाल का दूसरे भागों से व्यापारिक सम्बन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा व उसका

व्यापार अवध–आसाम तक सीमित हो गया। उत्तर–पश्चिम में मराठा आक्रमणों के फलस्वरूप गुजरात का सिल्क उद्योग नष्ट हो गया व फारस के साथ व्यापारिक सम्बन्ध नष्ट होने के बाद सूरत बन्दरगाह का पतन शीघ्रता से हुआ । दक्षिण भारत में भी राजनैतिक अव्यवस्था का उद्योग व व्यापार. पर बुरा प्रभाव पड़ा ।

अठारहवीं शताब्दी मैं इस प्रकार राजनैतिक अस्थिरता का आर्थिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा परन्तु तब भी इसका यह अर्थ नहीं है कि इस शताब्दी में भारत की अर्थव्यवस्था का साधारणतया पतन हो गया था । 1787 तक आगरा मराठा व जाट शासकों के अधीन एक सम्पन्न शहर हो गया था जहां अनेक दिल्लीवासियों ने शरण ली थी । 1740 में जब कलकत्ता व कासिमबाजार का सिल्क उद्योग मराठा आक्रमणों के कारण नष्ट होने लगा था। 1750 के दशक में यह उद्योग इंग्लैड में सिल्क की बढ़ती हुई माँग के फलस्वरूप फिर से पनपने लगा था। इसी तरह गंगा नदी के क्षेत्र में अंग्रेज सरकार ने शान्ति व्यवस्था कायम की व इस क्षेत्र का कलकत्ता के माध्यम से व्यापार विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ गया । यह उत्तर भारत के आर्थिक इतिहास की प्रमुख विशेषता है । गंगा नदी के किनारे के साथ के प्रदेशों में 1757 के बाद अप्रत्याशित व्यापारिक विस्तार हुआ। इसका प्रभाव कृषि भूमि, फसल, औद्योगिक व वित्तीय संगठनों व शहरीकरण पर भी हुआ व इन तटीय क्षेत्रों में परिवर्तन का प्रभाव कुछ समय पश्चात अन्दर के इलाकों पर भी पड़ा। यद्यपि दूरगामी क्षेत्र कम प्रभावित हुए। उदाहरण के लिए हम बेईड स्मिथ (Baird Smith) द्वारा 1861 में एकत्रित किए गए आकड़ों को ले सकते है। उन्होंने प्रमाणित किया कि 1861 में आजमगढ़ व गाजीपुर (उत्तर प्रदेश) में नमूने के तौर पर ली गई जनसंख्या का 33% से 50% भाग मैनचैस्टर में बने कपड़े का प्रयोग कर रहा था। इसी समय व इसी प्रदेश की दूसरी विशेषता है अफीम व्यापार का तीव्रता से उत्पादन व विकास व इस व्यापार का कपड़ा उद्योग के विनाश के बाद रिक्त स्थान को भरना।

1800 से पहले भी गंगा नदी पर छोटे जहाज या नौकाऐं चलती थी (जहाज 5–6 टन के होते थे जिन्हें 6–12 आदमी चलाते थे)। एक बड़ी नाव कलकत्ता से इलाहाबाद का सफर वर्षा के दिनों में बीस दिन में तय करती थी (रात को यात्रा नहीं की जाती थी)। इस यातायात में 1857 तक अन्तर केवल यह आया कि इंग्लैड में बनी स्टीमशिप चलने लगी व व्यापार अधिक हो गया। इस तरह पूर्व ब्रिटिश काल में हमारी अर्थव्यवस्था निष्प्राण नहीं थी। हस्तशिल्प व कृषि का आपसी समन्वय था। कृषक के घरों में सूत कत जाता था और ग्राम के ही जुलाहे उसका उत्तम कपड़ा बना लेते थे। परंपरागत पद्धति के अनुसार जुलाहे, कुम्हार, तेली, सुनार, चमार ग्रामीणों की आवश्यकता पूरी कर देते थे व बदले में उपज का अंश प्राप्त कर लेते थे। भूमि पर दबाव अधिक नहीं था क्योंकि उद्योग बहुत थे। जनसंख्या के अनुपात में भूमि अधिक थी इसलिए भूमि का क्रय–विक्रय नहीं होता था। गांव की भूमि कृषक समाज की होती थी और प्रत्येक कृषक परिवार के पास थोड़ी बहुत भूमि जरूर होती थी, ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर थी ।

नागरिक अर्थव्यवस्था सम्पत्र थी। भारतीय हस्तशिल्प विश्व में सम्मानित था व भारतीय कपड़ा व आभूषणों, तलवारों आदि की माँग यूरोप के अनेक देशों में थी। व्यापार का संतुलन भारत के पक्ष में था व निर्यात के बदले भारत को सोना चांदी मिलता था।

20.4 उपनिवेशवाद के चरण

अंग्रेज शासकों ने विभित्र तरीकों से भारत का शोषण किया। श्री आर.पी. दत्त ने भारत में साम्राज्यवादी काल को तीन भागों में बांटा है–

(1) वाणिज्यवाद (वाणिकवाद), (Mercantalism) 1757 से अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक।

(2) स्वतन्त्र व्यापारिक पूंजीवाद का काल (Free Trade Capitalism)। जो उन्नीसवीं शताब्दी में विकसित हुआ।

(3) वित्त पूंजीवाद का काल (Financial Capital)। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों से 1947 तक।

प्रत्येक चरण अपने पूर्व की परिस्थितियों के कारण विकसित हुआ और साम्राज्यवादी शोषण की भिन्न–भिन्न पद्धतियॉ प्राय: एक दूसरे पर आच्छादित हो जाती थी जिससे कि शोषण की पहली प्रणाली समाप्त होने से पहले ही वह शोषण के नए ढाँचे में ढल जाती थी।

अंग्रेजों के अधीन भारत एक "बस्ती" बन कर रह गया जहां से इंग्लैण्ड के उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति की जाती थी व इंग्लैण्ड में निर्मित साम्राज्य के लिए भारत एक मण्डी बन कर रह गया।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने वाणिज्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर अपनी मातृभूमि मे अधिक से अधिक भारतीय सोना चांदी पहुंचाने का प्रयास किया व इंग्लैण्ड से निर्यात की तुलना मे आयात कम किया जिससे कि व्यापारिक संतुलन इंग्लैण्ड के पक्ष में हो गया । इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी ने व्यापार पर एकाधिकार स्थापित किया व सम्भावित प्रतिद्वन्दी समाप्त किए । दूसरा, कंपनी ने प्रयास किया कि वस्तुएँ कम से कम कीमत पर खरीदे और अधिक से अधिक मूल्य पर बेची जाए व इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भारत पर औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित किया ।

औपनिवेशिक राज्य स्थापित करने की प्रक्रिया 1757 में प्लासी के युद्ध से प्रारम्भ हुई थी व 1857 तक भारत का अधिकांश भाग अंग्रेजी राज्य के अधीन आ गया । यद्यपि विस्तृत क्षेत्र पर राज्य स्थापना करने में अंग्रेजों को कुछ दशक लग गए, तथापि लूट खसोट व लाभांश प्राप्ति की प्रक्रिया 1757 से ही अंग्रेजों ने प्रारम्भ कर दी थी व इसके साथ ही भारत का शोषण भी प्रारम्भ हुआ । भूमिकर व्यवस्था, व्यापार नीति, कृषि नीति, पूंजी निवेश सभी एक ही उद्देश्य प्राप्ति के प्रति उन्मुख थे । कैसे भारत से अधिक से अधिक धन प्राप्त किया जाये या कैसे कच्चा माल इंग्लैण्ड पहुंचाया जाये व इंग्लैण्ड का निर्मित माल भारत में बेचा जाए। इस प्रक्रिया ने भारतीय अर्थव्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन किया।

20.5 राजस्व प्रणाली व प्रादेशिक अर्थव्यवस्थाएं

अंग्रेजी राज्य की स्थापना का प्रत्यक्ष प्रभाव ग्रामीण भारत की अर्थव्यवस्था पर राजस्व प्रणाली के फलस्वरूप पड़ा। कृषि आय का प्रमुख स्रोत था तथी इसी धन से अंग्रेज भारतीय कच्चा माल खरीद कर इंग्लैण्ड भेज सकते थे ।

जमींदारी राजस्व प्रणाली ग्रामीण समाज को स्थायित्व व निरन्तरता देने के विचार से व समाज में व्यवस्था कायम करने के उद्देश्य से जमींदार वर्ग की महता पर जोर देते हुए बंगाल, बिहार व उड़ीसा में अंग्रेजों ने स्थाई बन्दोबस्त लागू किया । यह बन्दोबस्त आरम्भ में कृषि में सुधार लाने में असमर्थ सिद्ध हुआ । पुराने जमींदार घराने नष्ट हो गए व नए जमींदार वर्ग अस्तित्व में आ गए । यद्यपि इनमें से कुछ ने कृषि सुधार में रूचि दिखाई तथापि अधिकांश अनुपस्थित जमींदार बन कर रह गए । यह जमींदार बहुत अधिक कर लगाते थे व इनकी लाभ प्राप्ति की दर बहुत उँची थी । यह अपने प्रतिनिधियों से लगान इकट्ठा करवाते थे व इस तरह काश्तकारों और मालिकों के मध्य दलालों की श्रंखला बन गई व कृषकों पर लगान का बोझ बढ़ गया ।

20.5.1 रैयतवाड़ी

मद्रास और बम्बई प्रान्त के कुछ क्षेत्रों में' रैयतवाड़ी प्रबन्ध लागू किया गया । यह समझौता सीधे रैयतों या किसानों के साथ किया गया व यहां रैयतों को मालिक स्वीकार करके भूमि सम्बन्धी सभी अधिकार दे दिए गए । पर इस प्रबन्ध से भी रैयतों को लाभ नहीं हुआ क्योंकि राजस्व दर बहुत उँची थी व उनके पास कर देने के बाद कुछ भी पूंजी नहीं बचती थी । कुछ ही समय बाद इस क्षेत्र में भी भूमि का क्रय–विक्रय होने लगा व यहां भी जमींदार व काश्तकार वर्ग उभर आए ।

20.5.2 महालवाड़ी

उत्तर पश्चिम प्रान्त, मध्य भारत और पंजाब में महालवाड़ी प्रबंध लागू किया गया। इस पद्धति में ग्राम को कर देने के लिए इकाई माना गया व कर निर्धारण पूरे गांव के साथ किया गया। पर यहां भी पटेदारों व जमींदारों के व्यक्तिगत अधिकार स्वीकार किए गए तथा बाद में यहां भी भूमि का हस्तांतरण हो गया व भूमि महाजनों व जमींदारों के हाथ में चली गई ।

इस प्रकार भूराजस्व की वसूली का अलग–अलग प्रान्तों में अलग–अलग रूप सामने आया। परन्तु सभी क्षेत्रों में भूराजस्व की दर कुल नकदी की जरूरत से जुड़ी थी। निर्धारण व वसूली भी कठोरता से की जाती थी इसलिए तीनों ही प्रकार के क्षेत्र में किसानों का शोषण होने लगा तथा किसान भूराजस्व के नकद भूगतान के लिए कर्जे लेने लगे ।

20.6 कवि का व्यवसायीकरण

कृषि का व्यवसायीकरण भी अंग्रेज शासकों की सामाजवादी आवश्यकताओं की पूर्ति से जुड़ा है ।

मद्रास प्रैसीडेन्सी में व्यवसायीकरण में वृद्धि के कारण गरीब किसानों की समृद्धि में गिरावट आई । उस समय प्रचलित कीमतों ने भी उत्पादन को निरूत्साहित किया।

इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में आधुनिकीकरण की नीति जिसके दर्शन –सड़क, रेल तथा नहरों के निर्माण में होते है– के बावजूद या शायद इसी कारण व्यवसायिक खेती के विस्तार ने कुछ असंतुलनों को जन्म दिया। उँची राजस्व की दर व सख्ती से वसूली के परिणामस्वरूप ऋणदाता उत्पन्न हुई ।

महाराष्ट्र में भी भूराजस्व प्रणाली से इसी प्रकार की विषमताएं बढ़ी व अव्यवस्था फैली।

पंजाब मे, यद्यपि उपरी तौर पर स्थिति बेहतर दिखती थी, अपितु मूल प्रवृत्ति यही थी। 40 लाख एकड़ भूमि जो खाली पड़ी थी, सिंचाई के माध्यम से खेती योग्य बनाई गई कृषि उत्पादन बहुत बढ़ा पर मूल फसलें अमरीकी कपास व गेंहु की विशेष किस्में थी जिसका बड़ा हिस्सा करांची बन्दरगाह से बाहर जाता था।

20.6.1 व्यापार

1860 के दशक के बाद से भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में नए प्रभावों के दबाव बढ़े; (dominated by new forces), अर्थात कच्चे माल की विदेशों में भारी मांग व इसके व्यापार में अप्रत्याशित वृद्धि। यह दौर 1930 तक चला। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत से नील, अफीम, कपास (कपड़ा, धागा व कच्ची कपास तीनों ही) व सिल्क का निर्यात होता था। बाद में जूट, चावल, तेल, तिलहन व चाय, कच्ची कपास निर्यात की प्रमुख फसलें बन गई । 1880 तक, उत्तर पश्चिम व मध्य भारत में गेंहूँ, कपास बम्बई से मद्रास से मूंगफली, बंगाल से बूट, उत्पादन व निर्यात की प्रमुख वस्तुएं बन गई।

यूरोपियन उत्पादकों ने पहला काँफी बाग 1840 में मैसूर में लगाया व 1810–80 के मध्य काँफी उत्पादन मैसूर, कुर्ग, नीलगिरी व मालाबार में विकसित हो गया।

नील उत्पादन ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों ने बंगाल में प्रारम्भ करवाया व 1800–1850 के मध्य इसकी खेती तीव्रता से बढ़ी ।

चाय की खेती आसाम में 1840 के दशक में प्रारम्भ कराई गई ।

20.6.2 उद्योग

भारत में औद्योगिक प्रगति बहुत ही धीमी गति से हुई । इसके अनेक कारण थे। औपनिवेशिक ढांचें के अन्तरगत उद्योगों पर अनेक प्रतिबन्ध थे–

(1) भारतीय उद्योग अंग्रेजी पूंजी के नियन्त्रण में हों ।

(2) भारतीय पूंजी केवल अंग्रेजी पूंजी की अधीनस्थ पार्टनर हो (Junior Partner)

(3) भारतीय उद्योग कभी भी अंग्रेजी उद्योग के प्रतिद्वन्दी न बनें ।

(4) भारतीय बाजार में अंग्रेजी सामान की बिक्री पर भारतीय उत्पादन की प्रतिस्पर्धा न हो ।

(5) भारी उद्योग नही स्थापित किए जाएं ।

1857 से पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी ने निर्यात व अपनी प्रशासनिक जरूरतें पूरी करने के लिए कुछ फैक्टरी लगवाई–चीनी, कपड़ा, कोयला खनन उद्योग पेर इनमें से कोई भी पनप

नहीं पाया। 1857 के बाद ब्रिटिश शासक ने सीधे अपने हाथ में सरकार लेने पर कुछ उद्योग प्रारम्भ करने की आवश्यकता समझी व कोयला खदान तथा तोपखाना बनाने की फैक्टरी लगाई।

1870 के बाद ही कपास व पटसन उद्योग फला–फूला । बम्बई में तीन कॉटन मिलें व बंगाल में दो बूट मिले प्रारम्भ की गई । 1895 तक 1 रू कॉटन मिल व 29 जूट मिलें प्रारम्भ की जा चुकी थी 1888 में 62 कपड़ा मिलें थी जिनमें से 3/4 बम्बई प्रैसीडेंसी में थी । कुछ गिरावट के बाद 20वी शताब्दी में कपड़ा मिलें तीव्रता से खुली व 1914 में कपड़ा मिलों की संख्या 264 तक हो गई । पहली आधुनिक बूट मिल 1859 में कलकत्ता में खुली व उसके बाद 1882 तक 20 बूट मिलें इसी क्षेत्र में खुल गई ।

रानीगंज (बंगाल) में प्रथम कोयला खान 1820 में प्रारम्भ की गई पर रेलगाड़ी के चलन के बाद ही कोयले की मांग बढ़ी व अनेक खनिज उद्योगों को प्रोत्साहन मिला। 1880 तक 56 कोयला खानों से कोयले का उत्पादन किया जाने लगा ।

प्रथम विश्व युद्ध तक विदेशी शासकों ने औद्योगिक प्रगति के विरूद्ध की नीति अपनाई परन्तु युद्ध प्रारम्भ होने पर सरकार को कई वस्तुओं की आपूर्ति इंग्लैण्ड से करनी कठिन हो गई व इसलिए भारत के कुछ उद्योग प्रारम्भ करने की आवश्यकता महसूस की गई । परिणामस्वरूप 1916 में कमीशन का गठन किया गया व कुछ उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नीति की घोषणा की ।

इस तरह 1881–1914 तक औद्योगिकीकरण की रफ्तार बहुत धीमी थी । जिन क्षेत्रों में यह प्रमुख रूप से केन्द्रित थे वह थे बंगाल का कलकत्ता क्षेत्र जहां हुगली बन्दरगाह था । इस क्षेत्र में बूट उत्पादन पर जोर दिया गया । बम्बई प्रेसिडैन्सी के परिचय क्षेत्र में बम्बई का बन्दरगाह निकासी का केन्द्र होने के कारण नवजात कपास एवं कपड़ा उद्योग पनपा । दक्षिण भारत में औद्योगिकीकरण नगण्य ही था । जो थोड़ा बहुत औद्योगीकरण हुआ भी, उसकी प्रगति मिली–जुली थी एवं वह मद्रास तक सीमित था । उत्तरी क्षेत्र में आधुनिक उद्योग लगभग नदारद ही था। यद्यपि पंजाब में कुछ कपड़ा मिलें थी पर करांची का अन्दरूनी हिस्सा पूरी तरह से खेतीहर था । करांची इस समय देश के तीसरे बड़े बन्दरगाह की तरह विकसित हो चुका था । इस समय अन्य उभरते हुए उद्योग थे कागज, भारी रसायनिक पदार्थ, काँच आदि । पर यह सभी अभी प्रारम्मिक अवस्था में ही थे ।

20.6.3 शहरीकरण

औद्योगिकीकरण के साथ–साथ शहरीकरण और कारखानों के निर्माण के साथ शहरों के विस्तार के बीच एक कार्यकारण संबंध है । औपनिवेशिक भारत के शहर ठीक–ठीक औद्योगिक नगर नहीं है । फिर भी उद्योग और तथाकथित आधुनिकता के केन्द्रों के रूप में शहरों की बात उठती है ।

शहरीकरण के क्षेत्र में दो बातें स्पष्ट दिखाई देती है – (1) पुराने शहरों का पतन व दूसरी और नए शहरों का तीव्रता से विकास । नए शहर अधिकतर रूप से अंग्रेजी प्रशासन की प्रशासनिक व व्यापारिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विकसित हुए । उदाहरण के लिए

हम कलकत्ता, मद्रास, बम्बई को ले सकते है । इसी के साथ अनेक छोटे शहर प्रशासनिक केन्द्र के रूप में विकसित हुए या भारतीय कच्चा माल निर्यात व विदेशी माल यहां बेचने के लिए जो व्यापारिक केन्द्रं बने उनका तीव्रता से विकास हुआ । यह बात विचारणीय है कि भारत में जो शहर विकसित हुए वह उद्योग प्रगति के प्रति उन्मुख न थे । शहरी जनसंख्या अपना जीविकोपार्जन अधिकतर प्रशासन, व्यापार या यातायात में कार्य करके करती थी ।

मुगल कालीन मुख्य राजधानी व शहर जैसे दिल्ली, आगरा व स्थानीय राज्यों की राजधानियाँ जैसे मुर्शिदाबाद, पटना, श्रीरंगपट्टम, हैदराबाद आदि का पतन हुआ। इनके स्थान पर ब्रिटिश काल में कुछ नए शहर विकसित तो जरूर हुए पर तथ्य यह है कि अंग्रेजी शासन के दौरान कुल जनसंख्या की तुलना में 1921 तक शहरवासियों का अनुपात जरा भी नहीं बढ़ा व उसके बाद भी बहुत धीमी गति से बढ़ा है । यद्यपि साधारणतया हम देखते है कि अंग्रेजी शासनकाल में बड़े–बड़े शहर निर्मित हुए पर जनगणंवादियों के पैमाने से खास शहरीकरण नहीं हुआ क्योंकि नगरों का विस्तार नहीं हुआ। यह प्रमाणित है कि ढाका, लखनऊ, मुर्शिदाबाद आदि शहरों की जनसंख्या बुरी तरह कम हुई और इतिहासकार इर्फान हबीब इसे विनगरीकरण कहते है। दूसरी ओर मद्रास, बम्बई व कलकत्ता की जनसंख्या में वृद्धि हुई ।

औपनिवेशिक ढंग के नगरीकरण का एक और पक्ष है– औद्योगिकरण के बिना नगरीकरण जो पश्चिमी धारा के ठीक विपरीत है । नए महानगर प्रशासन व वाणिज्य के केन्द्रों के रूप में उठ खड़े हुए और कल–कारखाने यही–कहीं, पर कभी–कभी महानगरों के मध्य या उसके आसपास बन गए ।

1854 के बाद रेलपथ के प्रसार का एक मूल उद्देश्य था कुछ समुद्रतट पर स्थित बन्दरगाहों (जैसे मद्रास, बम्बई, करांची व कलकत्ता भी) और देश के भीतरी हिस्सों के बीच कृषि उत्पादन की खरीद और वितरण तथा औद्योगिक पदार्थों के विक्रय के क्षेत्रों के बीच पुल कार्य करना । इस निर्यात के लिए रेलपथों के अलावा इन महानगरों में विदेशी व्यापारी कम्पनी जैसे बैंक, बीमा कंपन्नी, जहाजरानी कम्पनियों के दफ्तर की भी आवश्यकता थी । इनके अलावा मुगल काल में ही अंग्रेजों ने कोलकता, मद्रास जैसे शहरों में सुरक्षा की भावना ये किले बनाए थे और अंग्रेजी शासन के प्रारम्भ से ही यही किले प्रशासन केन्द्र बन गए । यही निर्यात केन्द्र भी थे इसलिए यहां सुविधाएं व कच्चा माल जैसे जूट व कपास आसानी से उपलब्ध था इसलिए यहां कारखाने लगाना आसान हो गया जैसे बम्बई । इनके अलावा छोटे राष्ट्रीय नगर थे जैसे कानपुर, अहमदाबाद जो औद्योगिक नगरों के रूप में विकसित हुए थे ।

रेलमार्गों का भौगोलिक विन्यास और माल ढोने का किराया, जिस दर पर लिया जाता था, यह दोनों ही देश के भीतर के सुदूर अंचलों से कच्चा माल ढोकर लाने और वहां अंग्रेजी औद्योगिक पदार्थो को पहुंचाने के अनुकूल थे। उपरोक्त भौगोलिक विन्यास इस प्रकार से किया गया था, जिससे कि भीतरी क्षेत्रों से कच्चा माल बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े बन्दरगाह शहरों तक पहुचाने का निकटमत मार्ग मिल सके । दूसरी ओर वही रेलमार्ग मैनचैस्टर से सूती कपड़े और बरमिंघम से लोहा–इस्पात आदि दूर भीतरी प्रदेशों तक पहुंचा सके । कच्चा माल तथा

अन्य कृषि प्रदार्थ जैसे पूर्वी बंगाल का चावल, मध्य प्रदेश और पंजाब का गेहूं दक्षिण भारत की रूई कम किराए पर बन्दरगाह शहरों तक लायी जाती थी ।

देशी व्यापार में परिवहन की उन्नति, विलायती पूंजी से तैयार रेलपथ ने देश के सुदूर भीतरी भागों से कृषि उपज को बाहरी स्थानों पर ले आने में मदद पहुंचाई । कृषि उपज देश के कोने–कोने से मद्रास, कलकत्ता, बम्बई व करांची पहुंचने लगी । औपनिवेशिक नगरों में आधुनिक बन्दरगाह, आयात–निर्यात के व्यापारिक दफ्तर, बैक आदि अंग्रेजी व थोड़ी मात्रा में भारतीय पूंजी के केन्द्रस्थल बने । वह एक नई दुनियां थी । देश के भीतर एक दूसरी दुनियां थी जहां किसान था, महाजन था और उनके दलाल थे । रेलवे इन दोनों के बीच एक पुल बन गई और रेल की सहकारी बनी नावें, बैलगाड़ियां व सरकार द्वारा तैयार सड़कें । इस तरह देश के भीतर खरीद बिक्री के बाजार का रास्ता आसान हो गया । दूसरा इसी के फलस्वरूप देश के अन्दर खेती का आंचलिक विशेषीकरण भी हुआ यानि विशेष प्रकार की मिट्टी व जलवायु का लाभ उठाकर फसलें उगाने की प्रवृत्ति बढ़ी जैसे बम्बई प्रेसिडैन्सी (आधुनिक महाराष्ट्र) में दक्षिण जिले में उपलब्ध काली मिट्टी रूई की खेती के लिए उत्तम है । यहां पहले किसान रूई, गेंहूँ, ज्वार आदि सब कुछ उगाते थे क्योंकि खाद्यान बाहर से मंगाने की व्यवस्था नहीं थी व रूई बेचने के साधन नहीं थे । 1860 के बाद रूई इंग्लैण्ड तक पहुंचने का मार्ग खुल गया व किसान रूई उत्पादन में ही लग गए। इस तरह किसान न केवल विक्रेता अपितु खरीददार भी बने क्योंकि अब अनाज नहीं उगाते थे व खाने के लिए अनाज के खरीददार बन गए ।

उत्तरी भारत में निर्यात व्यापार का विस्तार, गंगा नदी में यातायात की सुविधाओं के कारण प्रदेश के कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया । कृषि फसलों की मांग विशेषकर नील, कपास, अफीम की मांग बढ़ी व इससे फसल के स्वरूप में परिवर्तन आया व भूराजस्व प्रणाली में परिवर्तन आने से प्रादेशिक अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई ।

व्यापारिक आवश्यकताओं से प्रभावित होकर नदी किनारे के गांव–शहर भी तीव्रता से विकसित हुए। व्यापारी, नाविक व अन्य यातायात (विशेषज्ञ आदि इन तटीय शहरों की ओर अग्रसर हुए–आगरा, बनारस, मिरजापुर, अनूपशहर बरेली, इलाहाबाद, कानपुर, दिल्ली भी विकसित हुए ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अधिकांश परिवर्तन गंगा के तटीय क्षेत्रों में ही हुए । उत्तर भारत के अन्य प्रदेश पंजाब, कश्मीर, राजपुताना में परिवर्तन बहुत धीमी गति से हुआ व बहुत ही कम हुआ ।

20.7 सारांश

इस प्रकार औपनिवेशिक राज्य के अन्तर्गत भारत के विभिन्न प्रदेश भिन्न–भिन्न रूप से प्रभावित हुए। व्यापारिक परिवर्तन हुए, यातायात के साधन विकसित हुए । पारम्परिक उद्योगों का विनाश हुआ व कुछ नए प्रकार के उद्योग प्रारम्भ हुए । भूराजस्व प्रणाली, व्यापारिक नीति, भारत–पूंजी विरोधी औद्योगिक नीति सभी ने भारत के विभिन्न प्रदेशों को विभिन्न रूप से प्रभावित किया। अंदरूनी शहर जैसे बनारस व उज्जैन् जो एक समय धार्मिक

केन्द्र होने के कारण बहुत पनप रहे थे, अब अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण हो गए व बन्दरगाह शहर, कलकत्ता, बम्बई, कराँची, मद्रास, जो अंग्रेजों के आगमन से पहले छोटे ग्रामों से अधिक कुछ न थे, अब सम्पन्न महत्वपूर्ण केन्द्र बन गए व यहीं पर औदोगिकरण की नींव पड़ी । इसी प्रकार वह प्रदेश जहां व्यवसायिक फसलें उगाई जाने लगी जिनकी विश्व में मांग थी–चाय, कॉफी, नील, अफीम, कपास, आर्थिक रूप से अंग्रेजी राज्य से अधिक प्रभावित हुए ।

20.8 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) विभिन्न प्रदेशों में अंग्रेजों –द्वारा अपनायी गयी राजस्व प्रणालियों का विवरण देते हुए स्पष्ट कीजिए की इन नीतियों के मध्यम से अंग्रेजी सामाज्यवादी हितों की पूर्ति किस प्रकार हुई?

(2) विभिन्न बन्दरगाह शहरों के विकास की महता पूर प्रकाश डालिए।

(3) अंग्रेजी राज के दौरान प्रादेशिक फसल विशिष्टीकरण का उल्लेख कीजिए।

20.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. बिपिन चन्द्र : भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद
2. बिपिन चन्द्र : भारत मैं आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास
3. रजनी पामदत्त : आज का भारत
4. गिरिश मिश्र : आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास
5. Dharam Kumar (Ed.) Cambridge Economic History of India Vol. II

इकाई 21

कृषि विकास : परिवर्तनशील क्षेत्रीय संरचना

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 कृषि उत्पादन क्षमता
21.3 कृषि क्षेत्रफल
21.4 कृषि उत्पादन का प्रादेशिक स्वरूप
21.5 मूल्य उत्पादकता
21.6 नयी कृषि नीति
21.7 भारत में कृषि क्षेत्र
21.8 भारत में फसलों के ढांचे में परिवर्तन
21.8.1 प्रादेशिक स्तर. पर अध्ययन
21.8.2 कृषि उत्पादन
21.9 सिंचाई साधनों का विकास
21.10 सारांश
21.11 निबन्धात्मक प्रश्न
21.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

21.0 उद्देश्य :

भारत एक कृषि प्रधान देश है । हमारे देश की अर्थव्यवस्था में कृषि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि व्यवसाय से ही जीविकोपार्जन करती है । वर्तमान समय में कृषि के प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन आये है । बीजों की विभिन्न किस्में, अलग–अलग फसल के अनुसार खाद, कृषि कार्य में उपयोग में आने वाली सभी तरह की मशीनों में व्यापक परिवर्तन आये है । इससे कृषि उत्पादन में बहुत बढ़ोतरी दर्ज की गयी है ।

21.1 प्रस्तावना :

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान पायेंगे

(i) देश की कृषि उत्पादन क्षमता में क्या परिवर्तन आये है ।
(ii) भारत में कृषि उत्पादन का प्रादेशिक स्वरूप क्या है ।
(iii) मूल्य उत्पादकता के बारे में
(iv) नयी कृषि नीति के बारे में
(v) भारत में कृषि क्षेत्र के बारे में
(vi) भारत में फसलों के ढांचे में हुए परिवर्तन के बारे में
(vii) प्रादेशिक स्तर पर कृषि से प्राप्त सकल घरेलू उत्पादक एवं विशुद्ध घरेलू उत्पाद के बारे में

21.2 कृषि उत्पादन क्षमता :

भारत की खाद्यान्न उगाने की क्षमता अधिकतम 250 मिलियन टन आंकी गयी है जो कि 2025 तक प्राप्त हो सकेगी और फिर अधिकतम जनसंख्या 125 करोड़ को भोजन दे पायेंगे: इससे अधिक जनसंख्या बढने पर व्यापक भुखमरी होगी।

1947 से 1997 के बीच खाद्यान का उत्पादन 50 मि.ट. से बढ़कर 185 मि.ट. व 1997–98 तक 200 मि.ट. (अनु) था। जनसंख्या 34 करोड से 94 करोड़ हुई। खाद्यान वृद्धि अत: 3.7 गुनी, जनसंख्या 3 गुनी। भारत की कृषि की यह एक बड़ी उपलब्धि है कि अतिरिक्त 60 करोड़ व्यक्ति (जो बराबर यूएसए. + प. योरोप + रुस की आज की जनसंख्या) को भोजन दे पाये। परन्तु अब अतिरिक्त जमीन कृषि के अन्तर्गत नहीं लायी जा पा रही है।

तालिका 21.1

वृद्धि दरें 1947–1967 तथा 1967–1997 के बीच प्रतिशत में इस तरह रही

फसले	**उत्पादन**		**उत्पादकता**	
	1947–67	1967–97	1947–67	1967–97
चावल	4.0	2.6	2.4	2.0
गेहूँ	3.3	4.9	2.3	3.1
मोटा अनाज	2.6	0.5	1.6	1.4
दालें	0.4	0.6	0.0	0.3
सकल खाद्यान्न	3.0	2.5	2.2	2.3

अब दरें गिरी है परन्तु स्तर (level) ऊँचा है (10 से 20 होना 100% परन्तु 100 से 110 मात्र 10%) मात्र गेहूँ की ही प्रबल क्रान्ति हुई। चावल में दरें घटी स्तर बढ़ा। दालों की तुलनात्मक स्थिति हमेशा नीची रही।

21.3 कृषि क्षेत्रफल :

क्षेत्रफल 1947– 1967 के बीच कृषि के अन्तर्गत लाया जाने वाला क्षेत्रफल 1.41% वार्षिक से बढ़ा, 1968–81 के बीच वह मात्र 0.35% वार्षिक दर से बढ़ा, 1981–91 के बीच वह 0.06% वार्षिक था। अब वह नगण्य हो गया। उल्टे कृषि की जमीन शहरों के विस्तार से घटने की सम्भावना है।

भारत में हरित क्रान्ति 1967 के बाद आयी परन्तु वह गेहूँ–चावल तक सीमितरहीं। दालों में नहीं सोयाबीन में भी क्रान्ति आयी। यह बड़े किसानों तथा पंजाब, हरियाणा, प.उत्तर प्रदेश, गोदावरी जिले (आंध्र) सीमित क्षेत्रों में विशेष रही। कहते है कि भारत को हरित क्रान्ति नम्बर II चाहिए, वास्तव में भारत को Ever–green revolution चाहिए।

21.4 कृषि उत्पादन का प्रादेशिक स्वरुप :

तालिका 21.2

भारत के कृषि उत्पादन में विभिन्न राज्यों का प्रतिशत योगदान (वर्ष 1996–97)

चावल	मोटा अनाज	गेहूँ	दालें
1. पं. बंगाल 14.5	1. महाराष्ट्र 25.3	1. उत्तर प्रदेश 35.3	1. म.प्र. 25.7
2. उत्तर प्रदेश 12.8	2. कनार्टक 14.7	2. पंजाब 22.6	2. उ.प्र. 19.0
3. आन्ध्र प्रदेश 12.0	3. उत्तर प्रदेश 11.5	3. हरियाणा 12.2	3. महाराष्ट्र 15.4
4. तमिलनाडु 8.2	4. मध्य प्रदेश 10.4	4. मध्य प्रदेश 10.4	4. राजस्थान 8.2
5. पंजाब 8.5	5. राजस्थान 7.7	5. बिहार 7.1	5. बिहार 5.8
6. उडीसा 8.4	6. आन्ध्र प्रदेश 6.3	6. राजस्थान 5.8	6. आ.प्रा. 4.6
7. बिहार 7.7	7. बिहार 5.1	7. महाराष्ट्र 1.8	7. कर्नाटक 4.5
8. मध्य प्रदेश 7.4	8. तमिलनाडु 5.1	8. गुजरा 1.6	8. गुजरात 4.1
9. असम 4.2	9. गुजरात 3.5	9. हि. प्रदेश 0.7	9. हरियाणा 3.6
10. कनार्टक 4.0	10. हि. प्रदेश 2.3	10. त्रिपुरा 0.7	10. तमिलनाडू 3.0
11. महाराष्ट्र 3.1	11. हरियाणा 1.6		11. उड़ीसा 2.9
12. हरियाणा 2.6	12. जम्मू कश्मीर 1.6		12. प.बंगाल 1.6

तालिका 21.3

सकल खाद्यान उत्पादन में राज्य

राज्य	प्रतिशत हिस्सा
1. उत्तर प्रदेश	20.3%
2. पंजाब	11.8
3. मध्य प्रदेश	10.2
4. महाराष्ट्र	7.4
5. बिहार	7.0

6. पं. बंगाल	6.8
7. आन्ध्र प्रदेश	6.6
8. हरियाणा	5.6
9. तमिलनाडु	4.7
10. कर्नाटक	4.6
11. राजस्थान	3.9
12. उड़ीसा	3.7

तालिका 21.4

विभिन्न राज्यों में शुद्ध व सकल बोया गया क्षेत्र

प्रमुख राज्य	**लाख हैक्टेयर शुद्ध बोया क्षेत्रफल**		**लाख हैक्टेयर सकल बोया क्षेत्रफल**	
	1962–65	1992–95	1962–65	1992–95
1. आन्ध्र प्रदेश	115.1	107.5	122.7	122.0
2. असम	21.2	27.1	26.2	36.2
3. गुजरात	95.3	94.4	50.3	87.3
4. बिहार	84.8	74.4	106.9	93.0
5. हरियाणा	34.8	34.9	41.5	54.3
6. कर्नाटक	104.3	107.5	103.3	116.9
7. जम्मू कश्मीर	6.8	7.3	8.1	9.7
8. केरल	20.2	22.5	22.1	26.4
9. मध्य प्रदेश	165.4	194.5	184.7	232.4
10. महाराष्ट्र	181.5	179.7	179.6	198.3
11. उड़ीसा	59.4	63.2	59.3	65.8
12. पंजाब	38.6	41.8	40.9	68.1
13. राजस्थान	139.2	162.1	138.8	185.4
14. तमिलनाडु	60.6	55.5	70.3	67.3
15. उत्तर प्रदेश	173.0	172.4	235.8	242.9
16. पं बंगाल	55.1	53.3	64.1	79.1

भारत में आजादी के बाद के 50 वर्षों में से 20 वर्षों में से उत्पादन पिछले वर्ष की तुलना में घटा। कृषि विकास की कहानी बढ़ने ही बढ़ने की न थी ।

उन्नत बीज सकल बीज 1970 – 71 में 15.4 मिलियन हे. में प्रयोग थे । 1995 – 96 में वे 75 मि. हे. में (आधी कृषि में प्रयोग होने लगे)

तालिका 21.5

उन्नत बीजों का उपयोग

	1970 – 71	1995 – 96
1. पेड़ी (चावल)	5.6	33.2
2. गेहूँ	6.5	23.2
3. मक्का	0.5	3.5
4. ज्वार	0.8	9.0
5. बाजरा	2.0	6.9
सकल	15.4	75.0

जाहिर हैं कि अन्तिम लक्ष्य तो शत प्रतिशत क्षेत्र होना हैं ।

उन्नत बीजों की मात्रा मिलियन कुइन्टल में 1985 – 86 में 4.8 मि. कु. थी वह 1995 – 96 में बढ़कर 6.88 मि. कु. थी ।

प्रगतिशील राज्य : पंजाब, हरियाणा, हि. प्रदेश, तमिलनाडु, जम्मू कश्मीर । आन्ध्र प्रदेश व बिहार

मध्यम राज्य : गुजरात, महाराष्ट्र, पं. बंगाल, तथा उत्तर प्रदेश

पिछड़े राज्य : केरल, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उड़ीसा व राजस्थान.

उर्वरक के मामले में 90 के दशक के मध्य में स्थिति यह थी 1951 – 52 में मात्र 0.074 मि. ट. उर्वरक प्रयोग हुए । 1995 – 96 में 13.88 मि. ट. यानी 188 गुना सकल उपयोग = 83 कि. ग्राम प्रति हेक्टेयर

तालिका 21.6

उर्वरकों का उपभोग (मिलियन टन मे)

राष्ट्र के ओसत का प्रतिशत	राज्य
औसत से नीचे 4	नागालैंड
9	असम
20-33	सिक्किम, राजस्थान, मेघालय, उड़ीसा व त्रिपुरा
34-60	म. प्र., हि. प्र. तथा जम्मू कश्मीर,
61–80	मणीपुर, महाराष्ट्र व गुजरात
औसत से ऊपर 100 के लगभग	कर्नाटक व बिहार,
101-140	पं. बंगाल व उ० प्र०
150	आन्ध्र प्रदेश व हरियाणा
230	दिल्ली वं तमिलनाडु
350	पंजाब
550	चंडीगढ
700	पांडीचेरी

कीटनाशक 1951–52 में 575 टन प्रयोग हुए 1993–94 में 83000 टन। अब कम करके 61260 टन 1995–96 में Pesticides के स्थान पर बढ़ाना है।

तालिका 21.7

कीट नाशक दवाइयों का उपयोग

हजार टन	राज्य
100–200	नागालैंड, मेघालय, मणीपुर, त्रिपुरा
300–650	हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर व असम
1000–2000	केरल व उड़ीसा
2600	राजस्थान, 3000 बिहार, 4000-5000 हरियाणा , मध्य प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब, 5000 पं. बंगाल, 7000 उत्तर प्रदेश 12000 तमिलनाडु व आन्ध्र प्रदेश प्रत्येक।

तालिका 21.8

अन्तर्राज्यीय उत्पादन के आकड़ें

		चावल	**गेहूँ**	**मोटा अनाज**	**दालें**	**सकल**
1. आन्ध्र प्रदेश	1990–91	9654	9	1971	696	12330
	1995–96	9195	5	1738	640	11578
2. असम	1990–91	3270	105	18	49	3442
	1995–96	3390	95	19	57	3562
3. बिहार	1990–91	6566	3560	1219	916	12259
	1995–96	6911	4181	1406	572	13069
4. गुजरात	1990–91	791	1444	1982	627	4844
	1995–96	827	1124	1697	457	4103
5. हरियाणा	1990–91	1834	6440	747	540	9561
	1995–96	1860	7350	582	416	10208
6. हि. प्रदेश	1990–91	107	602	713	14	1434
	1995–96	111	544	705	13	1773
7. जम्मू कश्मीर	1990–91	555	297	467	25	1344
	1955–96	509	349	486	23	1367
8. कर्नाटक	1990–91	2415	125	3307	552	6399
	1995–96	3019	150	4675	724	8768
9. केरल	1990–91	1087	–	6	18	1111
	1995–96	933	–	6	19	956
10. मध्य प्रदेश	1990–91	5738	5833	3223	3104	17999
	1995–96	5705	6468	2502	3102	17777

11. महाराष्ट्र	1990–91	2314	918	7508	6546	12184
	1995–96	2563	898	6546	1661	11668
12. उड़ीसा	1990–91	5275	56	526	1086	6942
	1995–96	6226	5	426	1176	7834
13. पंजाब	1990–91	6535	12155	450	108	19249
	1995–96	6768	12724	443	83	20018
14. राजस्थान	1990–91	142	4309	4765	1719	10935
	1995–96	118	5493	2492	1462	9566
15. तमिलनाडु	1990–91	5782	–	1307	348	7438
	1995–96	7583	–	1242	359	9164
16. उत्तर प्रदेश	1990–91	10260	18600	4039	2772	35671
	1995–96	10408	22202	4080	2252	38944
17. पं. बंगाल	1990–91	10437	530	110	193	11270
	1995–96	11887	850	131	126	12994
सकल भारत अन्य	1990–91	74291	55135	32699	14265	176390
राज्यो UTs सहित	1995–96	79818	62620	29617	13192	185047

भारत सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण से

21.5 मूल्य उत्पादकता

1986–87 से 1988–89 के बीच भौतिक एवं मूल्य उत्पादकता की तालिका में राजस्थान सबसे नीचे था । निम्न तालिका में वस्तुत : 90 के दशक की शुरू की स्थिति है

तालिका 21.9

भौतिक उत्पादकता

फसल	उसमें अधिकतम उत्पादकता राज्य	उत्पादकता टन /हे।	सबसे नीचा राज्य	वहा पर अधिकतम उत्पादकता से प्रतिशत
1	2	3	4	5
1. सकल खाद्यान	पंजाब	2.3	राजस्थान	24.7%
2. सकल मोटा अनाज	पंजाब	2.5	राजस्थान	26.2%
3. बाजरा	पंजाब	1.1	राजस्थान	26.2%
4. तिलहन	तमिलनाडु	1.0	राजस्थान	46.7%
5. चावल	पंजाब	2.8	मध्य प्रदेश	28.6%

6. गेहूँ	पंजाब	2.5	कर्नाटक	23.4%
7. मक्का	कर्नाटक	2.9	असम	20.0%
8. चना	उत्तर प्रंदेश	0.8	महाराष्ट्र	44.2%
9. दालें	उत्तर प्रंदेश	0.8	आन्ध्र प्रदेश	39.9%
10. गन्ना	तमिलनाडु	95.0	बिहार	46.7%

निम्न तालिका में हम मूल्य उत्पादकता दर्शा रहे है। समय के साथ लागतें व मूल्य तथा उनके अन्तरों में परिवर्तन आता है परन्तु किसानों की यह मनोवृत्ति व प्रयास रहते है कि आय–खर्चा = लाभ को बनाये रखें। 1988–89 सर्वोत्तम राज्य तमिलनाडु : सबसे पीछे = राजस्थान

तालिका 21.10

मूल्य उत्पादकता

राज्य	मूल्य उत्पादकता रु० प्रति हे	भारत में सकल मूल्य सृजन कृषि में से प्रतिशत	भारत का सकल कृषि क्षेत्र का प्रतिशत	सक्षमता इन्डेक्स 3÷4
1	2	3	4	5
1. तमिलनाडु	9807	7.51	3.57	2.10
2. पंजाब	8522	9.27	5.08	1.82
3. आन्ध्र प्रदेश	5964	8.69	6.80	1.28
4. केरल	5871	0.65	0.52	1.25
5. हरियाणा	5753	4.60	3.74	1.24
6. पं. बंगाल	5554	6.09	5.12	1.19
7. उत्तर प्रदेश	5458	19.69	16.84	1.17
8. गुजरात	5033	5.32	4.92	1.08
9. कर्नाटक	4958	5.62	5.30	1.06
10. जम्मू कश्मीर	4072	0.61	0.68	0.90
11. उड़ीसा	4599	4.06	4.12	0.98
12. असम	3664	1.79	2.28	0.79
13. बिहार	3595	5.20	6.76	0.77
14. मध्य प्रदेश	3076	7.97	12.10	0.66
15. हिमाचल प्रदेश	2982	0.40	0.64	0.66
16. महाराष्ट्र	2946	7.63	12.10	0.63
17. राजस्थान	2421	4.88	9.41	0.52

भारत	4688

- तमिलनाडु में औसत जोत 1.07 हे. थी, जबकि राजस्थान में 4.44 हे.
- तमिलनाडु में 43% क्षेत्रफल सिंचित था जबकि 21% राजस्थान में
- तमिलनाडु में प्रति हे. उर्वरक प्रयोग था 100 कि.ग्रा. राजस्थान में 11 कि.ग्रा
- तमिलनाडु में 74% भाग में उन्नत बीज प्रयोग हुए थे जबकि राजस्थान में 30% भाग में
- तमिलनाडु में प्रति हे. साख उपलब्धि थी रु. 245 राजस्थान में रु. 56 थी।

निम्न तालिका में हम सकल उत्पाद मूल्य व प्रति हे. मूल्य 1992–95 का भी, 1962–65 की तुलना में दर्शाते है ।

तालिका 21.11

राज्य	करोड़ रु. 1962–65	करोड़ रु. 1992–95
1. उत्तर प्रदेश	9363	21025
2. मध्य प्रदेश	4807	11091
3. आन्ध्र प्रदेश	4988	11020
4. महाराष्ट्र	5207	10268
5. तमिलनाडु	4700	9465
6. पंजाब	2208	9255
7. कर्नाटक	3318	8147
8. पं. बंगाल	3254	7881
9. राजस्थान	2415	6888
10. गुजरात	3317	6559
11. हरियाणा	1630	5499
12. बिहार	3933	5283
13. केरल	2517	4130
14. उड़ीसा	2439	3932
15. असम	1504	2965
16. जम्मू कश्मीर	243	540
17. हिमाचल प्रदेश	249	462

तालिका 21.12

	प्रति हेक्टेयर स्थिति 1962–65	**मूल्य उत्पादकता 1992–95**
1. केरल (मसालों आदि से भी)	11376	15626
2. तमिलनाडु	6690	14074
3. पंजाब	5396	13597

4. हरियाणा	3927	10129
5. आन्ध्र प्रदेश	4065	9390
6. उत्तर प्रदेश	3970	8656
7. असम	5728	8197
8. गुजरात	3673	7460
9. पं बंगाल	5075	7319
10. कर्नाटक	3208	6970
11. उड़ीसा	4114	5979
12. बिहार	3680	5678
13. जम्मू कश्मीर	2987	5567
14. हि. प्रदेश	3048	5196
15. महाराष्ट्र	2899	5177
16. मध्य प्रदेश	2603	4773
17. राजस्थान	1740	3715

EPW March 29,1997, G.S. Bhalla & G. Singh

21.6 नयी कृषि नीति

इसमें कृषि को "उद्योग" का दर्जा दिया गया है। अतिरिक्त साख, कृषि इंजीनियरिंग को बढ़ावा, IRDP को कृषि क्षेत्र से समन्वय, उत्पादकता वृद्धि आन्दोलन, 127 छोटे Agro climatic zones में विशिष्ठ प्रयत्न, तथा पुरानी नीतियों को चालू रखना इसकी विशेषतायें थी। आठवी योजना के अन्त में 210 मि. ट. का लक्ष्य 12 मि.ट. से कम रहा।

नवीं योजना में 245 मि. ट. का लक्ष्य 2001 में प्राप्त करना रखा गया जिसे बहुत अच्छी किस्मत से ही पूरा कर पायेगें। कृषि को Subsidy कम तथा बाजार मूल्यों से लाभ देने के लक्ष्य है ।

(1) कृषि की औसत विकास दर 3.5% वार्षिक से 4% वार्षिक रखने का लक्ष्य है।

(2) सक्षम (efficient zones) अंचलों में यह दर 4.5 – 5.0% वार्षिक रखने का लक्ष्य तथा अक्षम (inefficient zones) में भी 2 से 2.5% वार्षिक रखने का लक्ष्य।

(3) कृषि वस्तुओं पर आधारित प्रोसेसिंग यूनिट Urban क्षेत्रों में प्रोत्साहित कर कृषि से विपणन योग्य अधिक्य को बढ़ावा दिया जायेगा।

(4) ऊँचे मूल्य सृजन की फसलों को बढावा दिया जायेगा।

(5) भारत अब कृषि जनित वस्तुओं के "निर्यात में क्रान्ति" लायेगा।

(6) फार्म–फर्मो का विकास होगा।

(7) भारत में सकल खाद्य सुरक्षा है। इसे गिरने न देंगे। सकल भारतीयों को खाद्य सुरक्षा के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को नया रुप निरन्तर दिया जाता रहेगा।

21.7 भारत में कृषि क्षेत्र

मूलत : भारत में मुख्यत: पांच कृषि प्रदेश बनाये गये है । इनमें 15 राज्यों को शामिल किया गया है । इन पांचों प्रदेशों से भारत के कृषि उत्पादन व कृषि से प्राप्त राष्ट्रीय आय दोनों का 97% भाग प्राप्त होता है । हम भी इन्ही पांच कृषि प्रदेशों को आधार मान कर भारत में कृषि के प्रादेशिक विकास का अध्ययन करेंगे ।

यह प्रदेश इस प्रकार है :

तालिका 21.13

प्रदेश	प्रदेश मे सम्मिलित राज्य
(1) दक्षिणी प्रदेश	आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल तमिलनाडु
(2) पश्चिमी प्रदेश	गुजरात व महाराष्ट्र
(3) उत्तर पश्चिमी प्रदेश	हरियाणा, पंजाव
(4) मध्य भारत प्रदेश	मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश
(5) पूर्वी प्रदेश	आसाम, बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल

इन विभिन्न प्रदेशों की पिछले कुछ वर्षो की प्रगति हम फसलों के क्षेत्रफल, उत्पादन व प्रति हेक्टर उत्पादकता के आधार पर देख सकते है ।

21.8 भारत में फसलों के ढाँचे में परिवर्तन

पिछले कुछ वर्षो में खाद्यानों की अपेक्षा अखाद्यान फसलों में अधिक प्रगति हुई है । अखाद्यान फसलों की चक्रवृद्धि विकास दर (compound growth rate) 1981–82 से 1991–92 के बीच 4.3% रही जबकि खाद्यान्न फसलों की यह दर केवल 2.8% थी । इसका कारण था कि अखाद्यान फसलों के उत्पादन में दोनों कारणों से वृद्धि हुई– क्षेत्र में 1.7% वृद्धि तथा उत्पादकता में 2.55% वृद्धि जबकि खाद्यान के अन्तर्गन क्षेत्रफल में वस्तुत: 1980 के दशक में कमी आ गई। क्षेत्रफल की वृद्धि दर 1981–82 और 1991–92 के बीच ऋणात्मक रही (–0.26%) मगर इसके बावजूद खाद्यान्न उत्पादन 2.92% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ता रहा, यह एक उल्लेखनीय बात है । और इसका कारण था खाद्यान्नों की प्रति हेक्टर उत्पादकता का 3% से अधिक दर से बढ़ना।

अखाद्यान फसलों के क्षेत्र में 1.71% की दर से वृद्धि तथा खाद्यान फसलों में – 0.26% वृद्धि अर्थात क्षेत्र में कमी से लगता है कि खाद्यान फसलों से भूमि हटा कर अखाद्यान फसलों की कृषि के लिये प्रयोग में लाई जा रही है । देखना यह है कि यह प्रवृति पूरे देश में ही थी या कि कुछ प्रदेशों तक सीमित रही ।

हरित क्रान्ति के बाद अर्थात 1968 के पश्चात कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई । खाद्यानों व अखाद्यानो दोनों प्रकार की फसलों के उत्पादन में वृद्धि के दोनों कारणों–क्षेत्रफल में वृद्धि व उत्पादकता में वृद्धि अधिक महत्वपूर्ण रहा है । कुल कृषि उपज में भी उत्पादन की वृद्धि ज्यादा उत्पादकता की वृद्धि के कारण व कम क्षेत्रफल की वृद्धि के कारण हई । उत्पादन में कुल वृद्धि 3.43% की दर से आई जिसने 2.93% उत्पादकता की वृद्धि के कारण व 0.49% क्षेत्र

वृद्धि के कारण हुई, इसलिये पिछले तीन दशकों में अर्थात हरित क्रान्ति के बाद भूमि क्षेत्रफल व उत्पादकता में हुए परिवर्तनों व कुल उत्पादन पर उनके प्रभाव का अध्ययन आवश्यक हौ जाता हैं, और सुनियोजित विकास के लिये यह अध्ययन हम प्रादेशिक स्तर पर करते है ।

21.8.1 प्रादेशिक स्तर पर अध्ययन

सकल घरेलू उत्पाद में योगदान

भारत का कृषि से प्राप्त सकल घरेलू उत्पाद व विशुद्ध घरेलू उत्पाद 1968 से 1981-82 के बीच क्रमश 2.16% व 2.15% की दर से तथा 1981–82 से 1991–92 के बीच 3.28% व 3.34% की दर से बढ़ा । यदि राज्यों की दृष्टि से देखा जाये तो अधिकतर राज्यों में 1981–82 के बाद कृषि उन्माद से प्राप्त आय में ज्यादा तेजी से वृद्धि हुई और अधिकतर राज्यों ने घरेलू उत्पादन मै कृषि के भाग में न्यूनाधिक बहुत योगदान दिया । हम घरेलू उत्पाद में राज्यों के योगदान को राज्य घरेलू उत्पाद कह सकते है ।

दक्षिण प्रदेश: केरल और तमिलनाडु में 1968 से 1981–82 के बीच जहां कृषि से प्राप्त आय में नगण्य वृद्धि हुई, 1981–82 और 1991–92 के बीच क्रमश 2.75% व 3.66% वृद्धि हुई । कर्नाटक में यह वृद्धि ज्यादा नही रही – 2.47% से 3.21% जबकि आंध्र प्रदेश में तो वृद्धि दर 2.48% ये गिर कर 1.81% रह गई ।

पश्चिमी राज्यों में गम्भीर स्थिति थी जहां कृषि से प्राप्त राज्य घरेलू उत्पाद में न केवल वृद्धि नहीं आई अपितु उसके विपरीत कमी आ गई । गुजरात में यह दर 3.23% यें गिर कर शून्य रह गई और महाराष्ट्र में 4.48% से गिर कर 2.24% हो गई । इस प्रदेश में कृषि पर मौसम का काफी प्रभाव देंखा जाना हैं ।

उत्तरी–पश्चिमी राज्यों, हरियाणा व पंजाब में यह वृद्धि देर 1968 –69 से 1981–82 और 1981 – 82 से 1991 – 92 के बीच 2.93% तथा 3.47% से बढ़ कर क्रमश : 4.77% व 4.77% हो गई ।

भारत के शेष दोनों प्रदेशों के समस्त राज्यों में राज्य घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 1970 के दशक की अपेक्षा 1980० के दशक मे अधिक रही । पश्चिमी बंगाल में तो उल्लेखनीय वृद्धि हुई । वहां यह दर 2.46% से बढ़ कर 6.88% हो गई । शेष राज्यों में यह दर इस प्रकार रही:–

तालिका– 21.14

कृषि जन्य राज्य घरेलू उत्पाद की चक्रवृद्धि वृद्धि दर

प्रदेश / राज्य	1970 का दशक	1980 का दशक
मध्य भारत प्रदेश		
मध्य प्रदेश	0.67	2.51
राजस्थान	3.11	2.51
उत्तर प्रदेश	3.11	3.34

पूर्वी राज्य		
असम	1.72	2.34
बिहार	1.39	2.34
उड़ीसा	2.57	3.40
प. पश्चिमी बंगाल	2.46	2.46

उपरोक्त तथ्यो को देखते हुए हम कह सकते है, कि पश्चिमी राज्य प्रदेश एवं आन्ध्र प्रदेश को छोडकर शेष सब राज्यों में 1980 और 1990 के बीच कृषि की वृद्धि दर में वृद्धि हुई।

21.8.2 कृषि उत्पादन

कृषि विकास के स्वरुप को समझने के लिये सकल कृषि उत्पादन की अपेक्षा खाद्यान व अखाद्यान फसलों का अलग–अलग अध्ययन करना बेहतर है । हमने उपर देखा कि समस्त भारत के लिये खाद्यान्न उत्पादन की औसत चक्रवृद्धि वृद्धि दुरा निरन्तर 2.66% रही । मगर अन्तर यह था कि 1968 से पहले इसमें अधिक योगदान क्षेत्रफल में वृद्धि का था । 1968 के बाद खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि उत्पादकता में वृद्धि के कारण आई । उत्पादकता की वृद्धि दर 1981–82 से पहले 1.94% थी, उसके बाद एकदम बढ़कर 30.8% हो गई । बल्कि खाद्यानों के अन्तर्गत भूमि क्षेत्र की वृद्धि दर में तो इस अवधि में कमी आई थी– यह दर 1981 – 82 तक 0.38% रही थी, तत्पश्चात गिर कर 0.24% रह गई थी । अब यह देखना आवश्यक हो जाता है कि यह प्रवृत्ति क्या पूरे देश के लिये ऐसी ही रही या कुछ राज्यों में वृद्धि व कुछ राज्यों में कमी का यह प्रभाव था ।

दक्षिण प्रदेश :– दक्षिण प्रदेश के राज्यों में खाद्यानों की उत्पादकता में वृद्धि दर केरल में 1.56% से लेकर तमिलनाडु में 4.11% तक रही । यह काफी संतोषजनक स्थिति थी इसके विपरीत खाद्यानों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में सभी राज्यों में कमी आई । केरल में खाद्यान क्षेत्रफल में 3.79% की गिरावट आई, आन्ध्र प्रदेश में 1.76% व तमिलनाडु में 0.81% की कमी आई । इससे स्पष्ट है कि दक्षिण क्षेत्र में 1980 के दशक में खाद्यान उत्पादन में कमी होने का मुख्य कारण खाद्यान के अन्तर्गत क्षेत्र में कमी आना था । भूमि क्षेत्र में कमी व उत्पादकता में विभिन्न अनुपात में वृद्धि के कारण इस दशक में खाद्यान उत्पादन की प्रवृतियाँ दक्षिण क्षेत्र के इन चार राज्यों में भिन्न–भिन्न रही । उदाहरणार्थ, आन्ध्र प्रदेश, में व तमिलनाडु में खाद्यान्न उत्पादन क्रमश 1.32% तथा 3.26% की दर से बढ़ा, कर्नाटक में लगभग स्थिर रहा तथा केरल में 2.29% कम हो गया । पूरे दक्षिण राज्य में 1970 के दशक में खाद्यान्न उत्पादन की दर आन्ध्र प्रदेश कर्नाटक व तमिलनाडु में इस दर में तीव्र कमी आने के कारण गिर गई । आन्ध्र प्रदेश में यह दर 1970 के दशक में 3.44% रही थी जो 1980 के दशक में 1.32% रह गई थी, कर्नाटक में 1.99% से कम हो कर शून्य रह गई और केरल–में तो यह दर ऋणात्मक हो गई । केवल तमिलनाडु में इस दर में वृद्धि आई और 1970 के दशक में स्थिरता की स्थिति से 1980 के दशक में 3.6% की दर हो गई । इस प्रकार

समपर्ण दक्षिण प्रदेश में खाद्यान्न के अन्तर्गत क्षेत्र एव खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर दोनों में इन दो दशकों में कमी आई है ।

इस प्रदेश में भूमि का उपयोग खाद्यान फसलों से हटाकर अखाद्यान फसलों को उगाने के लिये किया जाने लगा । केरल व आन्ध्र प्रदेश में यह प्रवृत्ति सर्वाधिक देखने में आती है, जहां 1980 के दशक में खाद्यान के अन्तर्गत क्षेत्र में क्रमश : 3.79% व 1.79% कमी आई। आन्ध्र प्रदेश में कपास व तम्बाकू तथा कर्नाटक में मूंगफली को छोड़ जिनके उत्पादन में 1980 के दशक में कोई वृद्धि नहीं आई, दक्षिण प्रदेश में 1980 के दशक में 1970 के दशक की अपेक्षा तथा खाद्यान्न फसलों की तुलना में भी अखाद्यान फसलों का उत्पादन अधिक रहा । कर्नाटक में कपास की प्रति हेक्टर उत्पादकता इस दशक में 9.63% की दर से बढ़ी । पंजाब की 7.93% की दर की तुलना में यह दर कहीं अधिक थी । सम्पूर्ण दक्षिण प्रदेश को देखें तो खाद्यान फसलों का असंतोषजनक प्रगति की कमी को –काफी सीमा तक अखाद्यान फसलों की वृद्धि ने पूरा कर दिया । सम्भव है आन्ध्र प्रदेश में कपास व तम्बाकू की असन्तोषजनक प्रगति ने मूगफली की 6.97% व मिर्चो की 7.435 की तीव्र वृद्धि दर को छिपा दिया हो जिससे अखाद्यान्नों की 1980 के दशक में समपूर्ण प्रगति असन्तोषजनक लगने लगी । केरल की कृषि अर्थव्यवस्था में अखाद्यान फसलों का महत्वपूर्ण स्थान है । उस राज्य में कुल कृषि दन का 76% भाग अखाद्यान्न फसलों का है । रबड व काली मिर्च उगाने वाला केरल अकेला राज्य है और नारियल के कुल उत्पादन का 50% इस राज्य में पैदा होता है । 1970 के दशक में इस राज्य में पैदा होता है । 1970 के दशक में इस राज्य में कृषि की सकल प्रगति–खाद्यान व अखाद्यान फसलों को मिला कर खराब रही । लेकिन 1980 के दशक में यद्यपि खाद्यान फसलों के उत्पादन में कमी आई, (–2.29%) कृषि से प्राप्त राज्य घरेलू उत्पाद में 2.75% की दर से वृद्धि आई इसमें विभिन्न अखाद्यान फसलों की उत्पादन की तीव्र वृद्धि दर (रबड़ की 3% से लेकर काली मिर्च की 9% तक) का बड़ा योगदान था । आन्ध्र प्रदेश में 1970 के दशक में कृषि क्षेत्र से घरेलू उत्पादन में 2.48% की वृद्धि आई थी, 1980 के दशक में यह गिर कर 1.32% रह गई । इसका कारण था कि 1970 के दशक में खाद्यानों की उत्पादन वृद्धि दर 3.44% व कपास की 15.21% रही थी जो 1980 के दशक में गिर कर 1.32% व कपास तथा तम्बाकू में नगण्य हो गई । इस प्रकार जहां केरल में अखाद्यान फसलों की प्रगति ने सकल कृषि की प्रगति पर गहरा प्रभाव डाला, आन्ध्र प्रदेश में अखाद्यान फसलों की वृद्धि खाद्यान फसलों की कमी को पूरा नहीं कर पाई ।

पश्चिमी राज्य – इन राज्यों मे भी 1970 से 1980 के बीच खाद्यान्न उत्पादन की चक्रवृद्धि वृद्धि दूर में कमी आई । महाराष्ट्र में यह दर 5.60% से गिरकर 2.1% व गुजरात में 2.92% से गिर कर – 1.81% रह गई । इसका मुखर कारण उत्पादकता में कमी था । और उत्पादकता में वृद्धि न होने का कारण था सिंचाई के साधन पर्याप्त न होना तथा अनेक बार अनावृष्टि की स्थिति हों जाना । पश्चिमी प्रदेश में महाराष्ट्र में कपास व गुजरात में राई (rapeseed) को छोड़कर अखाद्यान फसलों की प्रगति कुछ विशेष संतोंषजनक नहीं रही ।

हरित क्रान्ति के बाद दोनों दशकों मे महाराष्ट्र में कपाम के उत्पादन में केवल 2.5% प्रति वर्ष की दर से वृद्धि हुई और मूंगफली, गन्ना औंर मिर्च में 1980 के दशक में कोई वृद्धि नहीं हुई । गुजरात में जहां कृषि का लगभग आधा क्षेत्र अखाद्यान फसलों के अन्तर्गत है, 1980 के दशक में अनेक बार वर्षा अच्छी नही होने के कारण इन फसलों का उत्पादन कम रहा ।

उत्तर–पश्चिमी प्रदेश – भारत मैं हरित क्रान्ति लाने मे अग्रिम उत्तर–पश्चिमी प्रदेश निरन्तर खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि में और छलांगें लगाता गया । और इन दो प्रदेशों में भी हरियाणा का स्थान प्रथम रहा । पंजाब को इस प्रदेश ने खाद्यान्न के उत्पादन व उत्पादकता दोनों में पीछे छोड़ दिया । हरियाणा में खाद्यान v u 1980 के दशक में 4.52% प्रति वर्ष की दर से बढ़ा जो पंजाब की 3.80% की दर से कहीं अधिक था । हरित क्रान्ति के बाद 1970 के दशक में इससे विपरित स्थिति थी । पंजाब में खाद्यान्न उत्पादकता की वृद्धि दर 5.74% रही थी जबकि हरियाणा मे यह 3.6% थी । इसका मुख्य कारण हरियाणा में खाद्यानों की उत्पादकता में 5.1% की दर से तीव्र वार्षिक वृद्धि थी जो पंजाब में केवल 2.54% रही । औंर पंजाब में खाद्यान्न क्षेत्रफल की वृद्धि दर तो वस्तुत : 1970 के दशक की 2.34% से कम होकर 1980 के दशक मे 1.23% रह गयी और उत्पादकता भी 3.33% से कम होकर 2.54% रह गयी । हरियाणा में 1980 के दशक में अखाद्यान फसलों का उत्पादन भी तीव्रता से बढ़ा ।

इन राज्यों की फसलों में राई तथा कपास का 20% हिस्सा है । इन दोनो की वृद्धि दर क्रमश : 1 7% व 6.89% रही । इसलिए अखाद्यान फसलों की उत्पादन वृद्धि की दर खाद्यान्न फसलों की अपेक्षा कही अधिक रही । पंजाब में अखाद्यान फसलें केवल 15% भूमि पर उगाई जानी है । और इनमें प्रमुख है कपास जो कुल कृषि भूमि के दसवें भाग पर उगाई जाती है । व देश के कुल उत्पादन का 23% भाग उपलब्ध कराती है । इस फसल की उत्पादन की वृद्धि दर, 1970 के दशक में 3.25% से बढ़कर 1980 के दशक में 9.94% हो गई । इसी कारण पंजाब में कृषि राज्य घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 1970 के दशक में 3.47% से बढ़ कर 1980 के दशक में 4.77% हो गई । हरियाणा में भी यह दर 4.77% रही । इसलिए इन दोनों ही राज्यों में अखाद्यान फसलों की उत्पादन की तीव्र वृद्धि दर से राज्य के घरेलू की यह वृद्धि सम्भव हुई।

मध्य व पूर्वी प्रदेश : इस क्षेत्र में मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश दो प्रमुख खाद्यान उगाने वाले प्रदेश है । कुल भारत के खाद्यान्न उत्पादन का 30% भाग इन दो प्रदेशों में उगाया जाता है । पूर्वी प्रदेश में पश्चिमी बंगाल (7.6%), बिहार (6.1%), तथा उड़ीसा (5%) खाद्यान्न उत्पादन में प्रमुख है जहां भारत के खाद्यान्न उत्पादन का 18.7% उगता है । पश्चिमी बंगाल मैं खाद्यान उत्पादन की चक्रवृद्धि वृद्धि दर 6.1% बहुत अच्छी रही । उत्तर प्रदेश, उड़ीसा व बिहार में 3% से अधिक व कम प्रदेश तथा आसाम में 2.3% रही । राजस्थान ही एक अपवाद था जहां उत्पादन न केवल बढ़ा नहीं बल्कि अस्थिर भी था । इस मध्य एवं पूर्वी प्रदेश में भी उत्पादकता की वृद्धि ही उत्पादन की वृद्धि का मुख्य कारण रही । भूमि विस्तार की इसमें नगण्य

भूमिका रही । बल्कि मध्य प्रदेश में क्षेत्रफल में 0.5% की कमी ही आई । आसाम के अतिरिक्त प्रति हेक्टर उत्पादकता की वृद्धि दर सभी राज्यों मैं 3% से अधिक बढ़ी और पश्चिमी बंगाल में तो 5.05% रही ।

हरित क्रान्ति के बाद राजस्थान के अतिरिक्त इन सभी राज्यों में खाद्यान उतादन में वृद्धि आई । मध्य प्रदेश मे, खाद्यान उतादन की वृद्धि दर 1970 के दशक में 0.88% से बढ़कर 1980 के दशक में 2.3% हो गई । यद्यपि भूमि क्षेत्र की वृद्धि दर 0.57% से गिर कर 0.58% हो गई थी। उत्तर प्रदेश में उत्पादन की वृद्धि दर 1970 के दशक में 2.55% से बढ़कर 1980 के बाद 3.37% हो गई । देखने में शायद यह दर इतनी अधिक न लगे, मगर जब उत्तर प्रदेश में देश के कुल खाद्यान उत्पादन में 21% से अधिक भाग पैदा होता है, इस बात को ध्यान में रखा जाये तो यह छोटी वृद्धि भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हों जाती है । इस प्रदेश में खाद्यान्न उत्पादन की तीव्र वृद्धि के कारण है नई तकनीकी का अपनाना, उन्नत किस्म के बीज, खाद, उर्वरक व साख आदि के वितरण की सुविधाओं में वृद्धि व सिंचाई के साधनों में विस्तार ।

इस प्रदेश में राजस्थान में कृषि से प्राप्त राज्य घरेलू उत्पादन वृद्धि दर 1980 कें दशक में खाद्यान उत्पादन की स्थिरता के बावजूद 4.91% रही । इसका कारण था यहा लगभग सभी अखाद्यान फसलों के उत्पादन में आशातीत वृद्धि – जैसे तिलहन, कपास, मिर्चें, धनिया, प्याज इत्यादि । इनकी उत्पादन वृद्धि दर 7.08% से लेकर 16.64% तक रही और इस वृद्धि का श्रेय उत्पादकता की वृद्धि को जाता है, क्षेत्र वृद्धि का, इसमें कोई स्थान नहीं था । इस राज्य में अखाद्यान फसलों का कुल कृषि भूमि में केवल 32% हिस्सा है इसलिए राज्य घरेलू उत्पाद में यह वृद्धि उल्लेखनीय है ।

इन तीनों प्रदेशों में – उत्तर पश्चिमी प्रदेश, मध्य भारत प्रदेश व पूर्वी क्षेत्र में जहां खाद्यान्न फसलों की प्रगति बहुत अच्छी रही, मुख्य अखाद्यान फसलों के उत्पादन में भी अच्छी प्रगति हुई। विशेषत: तिलहन, गन्ना, व कपास में हुई– प्रगति उल्लेखनीय है । पश्चिमी बंगाल, पंजाब और हरियाणा में अन्य सभी राज्यों की अपेक्षा विशेष तौर पर यह प्रगति बहुत अधिक रही ।

21.9 सिंचाई के साधनों का विकास

कृषि उपज की वृद्धि में सिंचाई के साधनों में विस्तार का बहुत योगदान होता है । भारत में 1970–71 और 1980–81 के बीच कुल सिचित क्षेत्र में 23% और 1980–81 से 1990–91 के बीच 24.9% की वृद्धि हुई । 1970 के दशक में सर्वाधिक वृद्धि पश्चिमी क्षेत्र में हुई जहां सिंचित क्षेत्र 49.1% बढ़ा। मध्य क्षेत्र में 36.7% तथा उत्तरी–पश्चिमी प्रदेश में 24.8% वृद्धि भी सराहनीय थी। इसके विपरीत पूर्वी तथा दक्षिणी प्रदेशों में सह वृद्धि क्रमश : 3% व 2.1% रही । 1980 के दशक मैं इस स्थिति में काफी परिवर्तन आया । पश्चिमी प्रदेश में सिंचित क्षेत्र की वृद्धि दर में अधिकतम कमी आई जहां यह गिर कर केवल 15.2% रही– अर्थात पहले दशक की तुलना में लगभग एक तिहाई । मध्य क्षेत्र व उत्तर पश्चिम में भी यह

वृद्धि की दरें क्रमश : 27.2% तथा 18% पर 1970 के दशक की अपेक्षा काफी कम रही । दूसरी ओर, दक्षिण प्रदेश में यह 1970 के दशक की 2.1% से एकदम बढ़कर 1980 के दशक में 19.5% व पूर्वी प्रदेश मैं 3.0% से बढ़कर40.4% हो गई जो बहुत अधिक थी । मध्य भारत प्रदेश में 1970 से 1990 तक कुल 64% की वृद्धि हुई । 1970 के दशक में ज्यादा वृद्धि उत्तर प्रदेश मे आई थी, 1980 के दशक में मध्य प्रदेश में सिंचित क्षेत्र में अधिक वृद्धि हुई । शायद यही कारण था कि इन दोनों प्रदेशों में जहां सिंचित क्षेत्र में इतनी तीव्रता से वृद्धि हुई, कृषि उत्पादन भी तीव्रता से बढ़ा ।

इसलिए भारत में खाद्यान उत्पादन की वृद्धि में विभिन्न राज्यों /प्रदेशों की भिन्न–भिन्न भूमिका रही । एक और दक्षिण प्रदेश तथा पश्चिम प्रदेश में खाद्यान्न क्षेत्र में कमी आई पूर्वी राज्यों में स्थिरता का स्थान तीव्र वृद्धि ने ले लिया । मध्य भारत क्षेत्र में कृषि विकास की दर में तेजी आई तथा उत्तरी–पश्चिमी– प्रदेश मैं भी तीव्र वृद्धि की दर बनी रही । पिछले कुछ वर्षों में मध्य भारत क्षेत्र व पूर्वी क्षेत्र के अनेक कम उत्पादन वाले क्षेत्रों में उत्पादन तीव्रता से बढ़ा । अखाद्यान फसलों की उत्पादकता व उत्पादन में वृद्धि के कारण अधिकतर राज्यों में कृषि आय में भी तीव्र वृद्धि आई । इसलिए ज्यों–ज्यों कृषि का विकास अधिक क्षेत्रों व फसलों में फैला, कृषि के विकास का भारत में आधार अधिक विस्मृत होता गया

21.10 सारांश

भारतीय कृषि विकास के क्षेत्रीय पहलु का अध्ययन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि कुछ क्षेत्रों मे विकास की दर में तेजी आई है तो कुछ में कमी । इसका प्रभाव इन क्षेत्रों में आय व सम्पत्ति पर भी पड़ा है । धन और आय के वितरण की व्यवस्था का उस क्षेत्र के आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है । विश्व बैक (World Bank) की एक रिपोर्ट के अनुसार निर्धनता की रेखा के नीचे जनसंख्या है, विभिन्न प्रदेशों एवं राज्यों के लिये उसका अनुमान निम्नलिखित तालिका से लगाया जा सकता है ।

तालिका संख्या 21.15

भारत में गरीबी की रेखा से नीचे जनसंख्या का प्रादेशिक अनुमान

	गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या		
प्रदेश	1970	1983	1988
दक्षिण प्रदेश	61.0	46.2	43.2
पूर्वी प्रदेश	61.8	57.3	51.3
मध्य भारत क्षेत्र	46.9	40.2	37.2
पश्चिमी प्रदेश	46.1	38.2	34.9
उत्तरी प्रदेश **	12.6	9.8	8.3

गरीबी–रेखा से नीचे रहने वाली कुल ग्रामीण जनसंख्या का 90% भाग मुख्यत : दस राज्यों में रहता है: आन्ध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश व पश्चिमी बंगाल इस प्रकार भारत में अत्याधिक क्षेत्रीय असमानताएं है।

कुछ राज्यों या क्षेत्रों में पिछले कुछ वर्षों में अधिक विकास हुआ है, कुछ तुलनात्मक रूप मे कम विकास कर पाये है । इसलिए अन्तर्प्रादेशिक असमानताएं बढ़ती गई है । यही नहीं कुछ राज्यों के विभिन्न हिस्सों में भी अन्तर है जैसे उत्तर प्रदेश जहां पूर्वी उत्तर प्रदेश में कम विकास व अधिक निर्धनता । यह प्रादेशिक असन्तुलन प्राकृतिक हो सकता है–प्राकृतिक संसाधनों में अन्तर के कारण, या मानवीय – मानव द्वारा कुछ क्षेत्रों पर अधिक व दूसरे क्षेत्रों पर कम ध्यान दिये जाने के कारण । एक अन्य प्रकार से हम प्रादेशिक असन्तुलन को देख सकते है–, सकल उत्पाद में या उत्पादन के किसी एक क्षेत्र में अर्थात कृषि, उद्योग या सेवाएं । अनेक बार देखा जाता है कि एक राज्य कृषि में अधिक विकास कर जाता है मगर उद्योगों में पिछड़ जाता है, तो दूसरे क्षेत्र में कृषि के विकास की अपेक्षा औद्योगिकरण अधिक होता है । कुछ क्षेत्र ऐसे हो सकते है जहां सर्वागीण, सकल विकास हो । किसी राज्य अथवा प्रदेश के पिछड़ेपन की अनेक निशानियां है– कृषि अथवा उद्योगों का पिछडेपन, प्रति व्यक्ति आय कम होना. भूमि पर जनसंखा का अधिक दबाव इत्यादि ।

** यहा उत्तरी प्रदेश में हिमाचल प्रदेश भी सम्मिलिन किया गया है ।

*स्रोत (Source) World Bank Report 1989.

भारत में कृषि विकास पिछले दो दशकों में लगभग सभी प्रदेशों में हुआ है । यह इस बात से स्पष्ट है कि अनेक कम उत्पादकता वाले क्षेत्रों में, जैसे मध्य भारत और पूर्वी राज्य जहां पहले विकास बहुत धीमी गति से हो रहा था, खाद्यान उत्पादन बहुत तेजी से बढ़ा है । साथ ही, अखाद्यान फसलों के विकास के कारण कृषि आयों में भी अधिकतर राज्यों में तीव्र वृद्धि आई । इस प्रकार कृषि का आधार भारत में काफी विस्तृत हो गया है ।

पश्चिमी प्रदेश के धीमें विकास की गति का कारण शायद कृषि से हटकर उद्योगों आदि पर जोर देना है । इस कारण संसाधन भी कृषि से हटाकर अकृषि कार्यो में लगा दिये गये है । वैसे इस प्रद्रेश में खराब मौसम व सिंचाई के साधन अपर्याप्त होने का भी प्रभाव रहा है ।

दक्षिण राज्य में खाद्यान्न उत्पादन में कमी खाद्यानों के क्षेत्र में कमी आने से हुई । अखाद्यानों के उत्पादन में कहीं ज्यादा वृद्धि आई ।

प्रादेशिक नियोजन सें विभिन्न कृषि व खेती प्रणालियों के लिये निवेश व अध: संरचना या उपरी पूंजी (Infrastructure) का विकास होता है । किसी प्रदेश की जो संसाधन सम्भावनाएं होती है उनका न्यूनतम पूंजी के निवेश से अधिकाधिक विकास करना–जैसे नहरों को या पारम्परिक सिंचाई के साधनों को बेहतर बनाना और प्रादेशिक राज्यीय व क्षेत्रीय (Sectoral) आधार पर सन्तुलित विकास करना भारत जेंसे देश के विकास के लिये आवश्यक है । अभी पिछले कुछ वर्षो में हुए भारतीय अर्थव्यवस्था की विदेशी व्यापार नीतियों में परिवर्तन से अनेक प्रशासनिक नियंत्रण हटा दिये गये है । उदारीकरण (liberalistion) की इस नीति के कारण नये कृषि आधारित उद्योगों व कृषि निर्यात की वृद्धि के लिये अच्छी संभावनाएं पैदा हो गई है व सम्भव है कि दक्षिण भारत राज्य अखाद्यान फसलों में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लें । जहां–जहां कृषि विकास की दर जब तक ऊँची रही है जैसे पंजाब, वहां अब उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति को तकनीक में परिवर्तन लाये बिना कायम रखना कठिन है । फसलों की विविधता लाने

के लिए अब ज्यादा सुहाने अवसर चाहिये । दक्षिण, पश्चिम व उत्तर–पश्चिमी, तीनों प्रदेशों में खाद्यान उत्पादन में आई कमी को देखते हुए लगता है कि भविष्य में मध्य भारत व पूर्वी राज्यों को भारत की खाद्य सुरक्षा का भार वहन करना होगा । सौभाग्यवश इन दोनों राज्यों में न केवल इसकी सम्भावना नजर आई है बल्कि इन प्रदेशों में विभिन्न नीतियों का भी अच्छा प्रभाव देखने में आया है । इन्ही नीतियों पर जोर देने व इन प्रदेशों को पूरे साधन उपलब्ध कराने पर इन राज्यों से काफी आशा की जा सकती है ।

21.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1) भारत की अर्थव्यवस्था के लियें कृषि के महत्व का विवेचन करें ।
2) पिछले कुछ वर्षों में भारत में: विभिन्न प्रदेशों एवं राज्यों के राज्य घरेलू उत्पाद में कृषि के योगदान का विवेचन करें ।
3) हरित क्रान्ति के पश्चात विभिन्न प्रदेशों एवं उनके राज्यों में आई खाद्यान्न उत्पादन की प्रवृति का विश्लेषण करें ।
4) दक्षिणी प्रदेश व पूर्वी प्रदेश के पिछले तीन दशकों में कृषि विकास का विवेचन कर ।
5) अखाद्यान फसलों की तीव वृद्धि दर ने पिछले दो दशकों में किस प्रकार सकल कृषि उत्पादन की वृद्धि दर को उपर बनाये रखा ।

21.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) सुरेश चन्द्र बंसल — भारत का भूगोल, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ, 1997
2) Gopal Singh — A geography of India; Atma Ram and Sons, Delhi, 1970
3) Jahar Lal Guha — A new approach to Economic Geography
4) and Prabhas Ranjan Chatteraj — The World Press Pvt. Ltd. Calcutta, 1996
5) T C Sharma and — Economic and Comercial
6) O Coutinho — Geography of India, Vikas Publishing house, New Delhi 1996
7) Ranjit Tirtha — Geography of India Rawat Publications, Jaipur, 1996
8) S.D. Sawant and — Agricultural Growth Across
9) C.V Achathan — Crops and Regions in Ed. Uma Kapila, Problems Of Indian Economy since independence, Delhi, Academic foundation, TRP 1997–98 edition.
10) O. S. Shrivastava — Inter– State Economic

Development of Agriculture in India “Pointer Publishers, SMS Highway, Jaipur

इकाई 22

औद्योगिक विकास : परिवर्तनशील क्षेत्रीय संरचना

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 औद्योगिक विकास एवं क्षेत्रीय संरचना
22.2.1 क्षेत्रीय विशेषताएं एवं औद्योगिक विकास
22.2 2 संतुलित क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता
22.3 क्षेत्रीय विकास के लिए औद्योगीकरण
22.3.1 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास के उद्देश्य
22.4 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास का स्वरूप
22.4.1 उद्योगों का क्षेत्रीयकरण
22.4.2 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की व्यूहरचना
22.5 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की संरचना
22.5.1 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की दिशा
22.5.2 उद्योगों की क्षेत्रीय संरचना में परिवर्तन
22.6 सारांश
22.7 निबन्धात्मक प्रश्न
22.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

22.0 उद्देश्य :

भारत कई औद्योगिक विषयजातीय क्षेत्रों का एक संघ है, जो एक संपन्न सिंचित व औद्योगिक क्षेत्र, और एक पिछड़ी हुई कृषि के लघु औद्योगिक क्षेत्रों में फैला हुआ, सूखे व अकाल से प्रभावित रहता है । सरकार एक नियोजित तरीके से पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास करने के लिये प्रयासरत है। आर्थिक नियोजन एक क्रमश: विकास का साधन है, जिसका उद्देश्य औद्योगिकरण के द्वारा बहु स्तर पर रोजगार के अवसर प्रदान करके पिछड़े हुए क्षेत्रों की स्थिति में सुधार करना है । इस प्रकार आजकल औद्योगिकरण दोषपूर्ण रूप में विकसित व कम विकसित क्षेत्रों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया की महत्वपूर्ण विशेषता बन गयी है ।

यह अध्याय (ईकाई) अपने देश के विभिन्न क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के विश्लेषण पर केन्द्रित है । इस इकाई का महत्वपूर्ण उद्देश्य भारत की औद्योगिक संरचना की प्रस्तुती, विभिन्न क्षेत्रों कें तीव औद्योगिकरण के लिये किये गये सरकारी प्रयासो, और इन क्षेत्रों के लिये उनकी परिस्थितियां व स्थिति के उपयुक्त विभिन्न प्रकार के उद्योगों को प्रोत्साहित करने के प्रयासों का वर्णन करना, विभिन्न क्षेत्रों के उद्योगों की संरचना में परिवर्तनों का परीक्षण करना, एवं भारत के विभिन्न क्षेत्रों में औद्योगिकरण के प्रभावों का मूल्यांकन करना है । इसका उद्देश्य

औद्योगीकरण की नीति महत्वपूर्ण परिवर्तनों और विभिन्न क्षेत्रों में इस उद्देश्य की प्रवृतियों की रूपरेखा देना भी है ।

22.1 प्रस्तावना :

यह एक संस्थापित तथ्य है कि तीव्र औद्योगिकरण एक देश के आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है । औद्योगिक क्षेत्रों का विकास श्रमिकों का कृषि से जहाँ प्रति व्यक्ति उत्पादन निम्न होता है, उन औद्योगिक व सेवा क्षेत्रों में स्थानान्तरण सुविधाजनक बनाता है, जहाँ प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिक होता है । तीव्र प्रावैधिक प्रगति औद्योगिक क्षेत्र में उत्पन्न विधियों में सुधार को जन्म देती है और इस प्रकार उत्पादन का उच्च स्तर व आय वृद्धि की उच्च दर प्राप्त होती है । औद्योगिक विकास के द्वारा क्षेत्रों की आय व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि देश के क्षेत्रों के बीच असंतुलन व विषमताओं को दूर करती है ।

क्षेत्रीय असंतुलन व विषमताएँ भारत जैसे विकासशील देश के सर्वागीण विकास में प्रमुख बाधाएँ है। विभिन्न क्षेत्रों की विषमजातीय विशेषताएँ कृषि विकास में बाधाएँ होती है । इसके साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में प्राकृतिक साधनों की उपलब्धि उनके औद्योगीकरण को आवश्यक बनाती है ताकि क्षेत्रीय आय में वृद्धि हो सके । उद्योगों का स्थानीयकरण व इसके साथ स्थानीय साधनों व योग्यताओं का उपयोगीकरण क्षेत्रीय विकास का मार्ग प्रशस्त कर क्षेत्रीय असंतुलनों को कम करता है । यह संतुलित क्षेत्रीय विकास की माँग करता है, और औद्योगिक विकास नियोजित अर्थव्यवस्था के संतुलित क्षेत्रीय विकास का साधन है ।

औद्योगिक विकास का उद्देश्य आय संवर्द्धन क्रियाओं का विस्तार करना है, जिससे क्षेत्रीय कुल व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है । यद्यपि क्षेत्रीय हितों व सभी क्षेत्रों की व्यापक विकास संभावनाओं के बीच सामंजस्य बनाये रखना भी आवश्यक होता है । अन्तर – उद्योग सम्बद्धताएँ व उद्योगों का विविधीकरण क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की संरचना को परिवर्तित करने के साधन है । इसके साथ ही संभाव्य क्षेत्रों में उद्योगों के क्षेत्रीयकरण की आवश्यकता पर भी महत्व दिया जाना चाहिए ।

देश की औद्योगिक नीति क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की संरचना दर्शाती है और इस नीति में परिवर्तन भी औद्योगिक विकास की संरचना में होने वाले परिवर्तनों का संकेत देते है । अधिक विशिष्ट रूप में कहा जाये तो पिछले अनुभवों के आधार पर कहा जा सकता है कि औद्योगिक विकास की संरचना में परिवर्तन लाने के लिये औद्योगिक नीति में परिवर्तन लाये जाने होते है । औद्योगिक विकास की ब्यूहरचना, औद्योगिक विकास व औद्योगिक प्रगति की प्रवृतियों का निर्धारण करती हैं । इस सन्दर्भ में यह इकाई संतुलित क्षेत्रीय विकास के साधन के रुप में क्षेत्रीय प्रगति, क्षेत्रीय विषमताओं व औद्योगिक विकास की विशेषताओं, उद्योगों का क्षेत्रीयकरण जो औद्योगिक विकास की संरचना निर्धारित करता है, और क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की संरचना के परिवर्तन प्रस्तुत करता हैं ।

22.2 औद्योगिक विकास एवं क्षेत्रीय संरचना :

भारत में क्षेत्रीय असमानताएँ है और इसी कारण विभिन्न क्षेत्रों की संरचना एक दूसरे से भिन्न पायी जाती है । कुछ विकसित क्षेत्र है जिनमें कुछ पिछड़े व छिपे हुए लघु क्षेत्र पाये

जाते है । उनमें क्षेत्रीय औद्योगिक प्रगति का निम्न स्तर पाया जाता है । दूसरी और कुछ पिछड़े हुए राज्य जैसे बिहार व उत्तर प्रदेश है, जिनमें कुछ क्षेत्रों (मंडलों) को छोड़ कर शेष समर्थता क्षेत्र आर्थिक दृष्टिकोण से पिछड़े हुए है । यह अनुभव किया जाता है कि आर्थिक पिछड़ापन साधनों की कमी या विकास के निम्न स्तर के कारण नहीं बल्कि मुख्य रूप से क्षेत्रों के औद्योगीकरण के लिये साधनों के अदक्षतापूर्ण आवंटन के कारण है । इन क्षेत्रों में आर्थिक पिछड़ेपन का दूसरा कारण जनसंख्या के अधिकांश भाग की कृषि पर निरन्तर निर्भरता है, जहां व्यवहारिक प्रविधि व साथ ही उत्पादकता का स्तर भी निम्न है । कुछ पिछड़े हुए क्षेत्रों में अर्थ विकास मुख्यतया जनसंख्या की वृद्धि और अशिक्षा के कारण लाभप्रद आर्थिक क्रियाओं का न अपनाना है ।

22.2.1 क्षेत्रीय विशेषताएँ व औद्योगिक विकास :

किसी भी क्षेत्र की प्राकृतिक व भूत्थलीय विशेषताएँ उस क्षेत्र के आर्थिक विकास विशिष्टतया औद्यौगिक विकास को प्रभावित करती है । एक क्षेत्र का भौतिक परिदृश्य (वातावरण) प्राकृतिक पहलु से जुडा होता है जिसके अंतर्गत स्थिति, स्थान की विशेषताएँ, धरातलीय आकार का रुप, जलवायु अवस्थाएँ, कच्चा माल, ऊर्जा के स्त्रोत आतें है । क्षेत्रीय वातावरण का सम्बन्ध सांस्कृतिक तत्वों से होता है, जो मानवीय क्रियाओं जैसे विपणन, श्रम पूर्ति, यातायात आदि से उत्पन्न होता है । विभिन्न क्षेत्रों के बीच, भौतिक वातावरण व क्षेत्रीय वातावरण के बीच सम्बन्ध उद्योगों की स्थिति, स्थापना व विकास के लिये महत्वपूर्ण होता है।

यह अच्छी तरह स्वीकार किया जाता है कि भारत में सभी क्षेत्र औद्योगिक दृष्टिकोण से समान रूप से विकसित नहीं है । देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच विधमान आर्थिक विषमता के कुछ महत्वपूर्ण तत्व निम्न प्रकार है :–

(1) राज्यों की प्रति व्यक्ति / आयों में अन्तर, अन्तर्राज्यीय कृषि व औद्योगिक विकास के स्तरों में अन्तरों के कारण उत्पन्न होतें है । पंजाब व हरियाणा ने प्रति व्यक्ति आय की उच्च दर प्राप्त की है, जबकि बिहार में इसकी दर निम्नतम रही है ।

(2) निर्धनता रेखा से नीचे की जनसंख्या भी क्षेत्रों के विकास में असंतुलन उत्पन्न करती है ।

(3) आधारभूत संरचनात्मक सुविधाएँ जैसे, सड़कें, यातायात व संदेशवाहन, ऊर्जा पूर्ति इत्यादि भी विभिन्न क्षेत्रों के विकास के स्तरों के बीच महत्वपूर्ण अन्तर उत्पन्न करती है । परिणाम–स्वरूप, विभिन्न राज्यों के द्वारा प्राप्त औद्योगीकरण के स्तर भी राज्यो में भिन्न–भिन्न हाते है । महाराष्ट्र, गुजरात, व पश्चिमी बंगाल औद्योगिक दृष्टिकोण से विकसित है, जबकि मध्य प्रदेश व उड़ीसा औद्योगिक पिछड़ेपन से ग्रसित है ।

22.2.2 संतुलित क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता :

एक देश में क्षेत्रीय असंतुलनों से तात्पर्य औद्योगिक दृष्टिकोण से विकसित व पिछड़े हुए क्षेत्रों से है । ये असंतुलन अन्तर्राज्यीय और राज्यभ्यन्तर (राज्यों के अन्दर) भी हो सकते हैं, और पूर्ण व क्षेत्रीय सहित दोनों प्रकार के हो सकते है । औद्योगिक पिछड़ापन एवं क्षेत्र को अपना अतिरिक्त श्रम कृषि से उद्योग में स्थानान्तरित नहीं होने देता । यह एक क्षेत्र की

अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने की क्षमता को भी सीमित करता है, और इस प्रकार उत्पादकता स्तर के सुधार में बाधक होता है । इस कारण क्षेत्रीय संतुलित विकास क्षेत्रों के अनुरूप विकास के लिये आवश्यक है । इसका अर्थ देश के क्षेत्रों में समान विकास करना नहीं, बल्कि एक क्षेत्र की इसकी योग्यताओं के अनुसार संभाव्यताओं का पूर्णतया विकास करना है । इसका तात्पर्य, प्रत्येक क्षेत्र का समान–स्तरीय अथवा समान स्वरूप का औद्योगिकरण करना नहीं बल्कि पिछड़े हुए क्षेत्रों में उद्योगों का व्यापक प्रसार करना है ।

क्षेत्रीय औद्योगिक विकास का उद्देश्य पिछड़े हुए क्षेत्रों में लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है और, यह देश के अनुरूप विकास की एक प्रयोजनीय आवश्यकता है । संतुलित औद्योगिक विकास बड़े शहरों व कस्बों में उद्योगों के संकेन्द्रीकरण की समस्याओं से छुटकारा दिलाने में सहायक होता है, जैसे अति भीड़–भाड़, घुटन व प्रदूषण आदि । संतुलित क्षेत्रीय औद्योगीकरण आय व सम्पत्ति में वृहत–स्तरीय विषमताओं को कम करता है, और क्षेत्रों के बीच राजनैतिक संघर्ष के खतरों को दूर करता है । यह अधिकतम दक्षता की प्राप्ति के लिये उपलब्ध साधनों के दक्षतापूर्ण उपयोग में सहायक होता है । क्षेत्रीय औद्योगिक विकास उद्योगों के फैलाव के साथ वृहत स्तर पर रोजगार के अवसर प्रदान करता है, जो फिर एक क्षेत्र की प्रति व्यक्ति आय व संपत्ति में वृद्धि करता है । यह क्षेत्रों के बीच आय व संपत्ति की असमानताओं को दूर करने के आधार (उत्तोलन दंड) की तरह कार्य करता है और, क्षेत्रों को एक साथ विकास करने के योग्य बनाता है ।

22.3 क्षेत्रीय विकास के लिये औद्योगीकरण :

औद्योगीकरण की आर्थिक गतिहीनता (स्थिरता) की अवस्था को दूर करने और असमान व असंतुलित अर्थव्यवस्था के विविधीकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है । किसी भी क्षेत्र की संभावनाएँ व संपन्नता उन तीव्र आर्थिक परिवर्तनों पर निर्भर करती है, जिनके प्रयास औद्योगीकरण के द्वारा किये जाते है । ये अग्रगामी व द्रुतगामी सबद्धताएँ प्रयासों को आगे लाती है । औद्योगीकरण व्यापार, यातायात, खनन, ऊर्जा व अन्य आधारभूत संरचनात्मक सुविधाओं के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है । तीव औद्योगीकरण के क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम (बेरोजगार श्रम) को लाभप्रद रोजगार प्रदान करता है । उद्योगों का श्रेष्ठ संगठन व प्राविधि का विकास कृषि क्षेत्र में अप्रत्यक्ष रूप से कृषि उपकरण, साधन व आधार भूत उपभोग वस्तुओं का उत्पादन व पूर्ति करके उत्पादकता में वृद्धि करता है । दूसरे शब्दों में औद्योगिक विकास कृषि क्षेत्र में उत्पति की वृद्धि के लिये विज्ञान व प्राविधि के उपयोग को प्रेरित करता है । औद्योगिक प्रगति निर्यात गुणवता की वस्तुओं का निर्माण करके विदेशी व्यापार की प्रकृति भी परिवर्तित करती है और इस प्रकार विदेशी विनिमय आय में भी वृद्धि होती है । औद्योगिकरण श्रम के विशिष्टीकरण की मांग करता है, और इस प्रकार यह कार्य व व्यापार के विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञों के द्वारा श्रमिकों को विशेष प्रशिक्षण देकर योग्यताओं के सुधार व विकास में योगदान देता है । इससे अर्थव्यवस्था को वृहत स्तर पर वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन के योग्य बनाता है, जिससे राष्ट्रीय उत्पति व राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है ।

22.3.1 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास के उद्देश्य :

औद्योगिक विकास का उद्देश्य क्षेत्रों के विशाल अनुपयुक्त व अर्थ–उपयुक्त साधनों का शोषण करना, लोगों की समाजार्थिक दशाओं में सुधार करना, और क्षेत्रीय निकास या राष्ट्रीय स्तर पर उत्पादन आधार का निर्माण करना है । एक विशेष उद्योग इन सभी उद्देश्यो के लिये क्षेत्र प्रदान कर सकता है, मगर क्षेत्रीय विकास में इसका योगदान भारी पूंजी विनियोग के अनुरूप नहीं भी हो सकता है । इन परिस्थितियों में औद्योगिक विकास का लाभ साधारण व्यक्ति तक नहीं पहुँचता और, क्षेत्रीय विकास पर इसका प्रभाव महत्वहीन हो जाता है । इसलिये सभी क्षेत्रों में एक साथ विनियोग में अनुकूलता कायम रखना आवश्यक हो जाता है ।

सभी क्षेत्रों में उद्योगों का विकास किस तरह किया जाये? क्या यह महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक प्रकार के उद्योग का विकास होना चाहिए? कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिनकी स्थापना तकनीकी दृष्टिकोण से परिभाषित क्षेंत्रों में होनी चाहिए जो सभी दृष्टिकोणों से इष्टम हों / अक्सर ये उद्योग ऐसे होते है, जिन्हें उस समय तक आर्थिक आधार पर नहीं चलाया जा सकता जब तक कि विनियोग बहुत अधिक मात्रा में न हो । विकास हित में यह कभी–2 लाभप्रद हो सकता है कि, केवल विकसित क्षेत्रों में ही और तीव्र विकास हो, क्योंकि इन क्षेत्रों में विकास की तीव्र संभावनाएँ होती है । इन परिस्थितियों में हो सकता है कि, विकसित क्षेत्रों की विकास संभावनाओं को बनाये रखने के लिए अर्धविकसित क्षेत्र और भी निर्धन हो जायें।

भारत में औद्योगिकरण का उद्देश्य बाजार पर नियन्त्रण प्राप्त करना था । औद्योगीकरण की आयात विरोधी प्रवृत्ति में भी भारी उद्योगों का प्राथमिकता से विकास निहित था । यह माना गया था कि विकास के साथ यंत्र व मानवीय श्रम पर आधारित उद्योगों का भी समानान्तर विकास होना चाहिए ।

हालांकि विभिन्न क्षेत्रों में उद्योगों के विकास की प्रत्याशित दर प्राप्त करने में बहुत सी कठिनाइयां है । अक्सर औद्योगिक प्रगति के लक्ष्यों व प्राप्तियों के बीच अन्तर हो सकते है । उद्योगों की क्षमता का अर्धउपयोग और उद्योगों में रुग्णता औद्योगिक विकास की उच्च दर में बाधक होती है । कुछ क्षेत्रों के कुछ उद्योगों में बड़ी मात्रा में विनियोग बड़े औद्योगिक व व्यापारिक गृहों(घरानों) को जन्म देता है, जो सर्वोच्च वर्गोमुखी उपयोग वस्तुओं का उत्पादन करते है, और आय की असमानताओं में वृद्धि करके क्षेत्रीय असमानताओं व असंतुलनों को बढ़ाती है । बड़े उद्योगों का विकास लघु स्तरीय उद्योगों व रोजगार अवसरों में कमी लाता है । इसलिये अब समस्या यह है कि, किस प्रकार क्षेत्रीय हितों व सामान्य विकास समस्याओं के बीच सामंजस्य बिठाया जाये, उार्थात किस प्रकार विकेन्द्रित क्षेत्रों को अधिक उन्न्त विकास बिन्दुओं से जोड़ा जाये।

क्षेत्रीय विकास के लिये औद्योगीकरण विनियोग में बाधाओं (Botlenecks) को दूर करने और उद्योगों के स्थानीयकरण के लिये अनुकूल वातावरण प्रदान करने की आवश्यकता पर महत्व नही देता । साधनों के ईष्टतम उपयोग एवं औद्योगिक रूग्णता की समस्या को दूर करने के उद्देश्य के लिये क्षेत्रीय संतुलित विकास का नियोजन, क्षेत्रीय औद्योगिक विकास के लिये

अति आवश्यक है। स्थायी राजकोषीय नीति व औद्योगिक रुग्णता को नियन्त्रित करने के प्रयास महत्वपुर्ण है । पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास को तीवता प्रदान करने के लिये ताकि वे देश के अधिक विकसित क्षेत्रों के साथ हो सकें, राज्य स्तरीय ऐजेन्सियाँ औद्योगिक विकास व स्थानीयकरण नियंत्रण की ऐसी प्रणाली के लिये प्रेरणाएं दें सकती है, जो पिछड़े हुए क्षेत्रों में उपयुक्त प्रकार के उद्योगों की स्थापना कर सके । इसके अतिरिक्त आधारभूत संरचनात्मक सुविधाओं का प्रावधान भी संतुलित क्षेत्रीय विकास प्राप्त करने में सहायक हो सकता है । इस प्रकार आर्थिक विकास की प्रक्रिया व अवस्थाओं में प्रत्येक क्षेत्र को अपना ध्यान कृषि विकास से हटाकर औद्योगिक् विकास की ओर लगाना होगा।

22.4 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास का स्वरूप :

औद्योगिक विकास का आधार, क्षेत्र के उपलब्ध खनिज साधनों व अन्य भौतिक, आर्थिक न सामाजिक पहलुओं से उपलब्ध होता है । विपिन व्यापक प्रकार के कच्चे माल, वन, कृषि व पशु संपदा, उत्पतियां प्राप्त करने की प्राकृतिक उपलब्धियां भी औद्योगिक विकास की संरचना को प्रभावित करती है । औद्योगिक संरचना के मुख्य पहलू ये है

(1) संस्था का आकार वितरण।

(2) प्रमुख समूहों के मूल्य वृद्धि अंश में परिवर्तन।

(3) अर्न्तउद्योगीय सम्बन्ध ।

(4) प्रमुख निर्माण क्षेत्र की रोजगार रचना में परिवर्तन ।

(5) औद्योगिक संरचना में विविधीकरण ।

कुछ विशेष प्रकार की वस्तुओं की बढ़ती हुई मांग भी बहुत से नवीन उद्योगों में जान डालती है जिनकी स्थापना कच्चे माल, अर्ध–निर्मित उसतियों या सहायक वस्तुओं के विचार को उचित ध्यान में रखकर नहीं की गयी थी । नये उद्योग केवल व्यापक श्रम विभाजन व विदेशी फर्मों के साथ घनिष्ट सम्बन्धों के आधार पर ही सफलता पूर्वक कार्य कर सकते है । दूसरे शब्दों में नये उद्यमकर्ता स्थापित स्वरूप के साथ ताल मेल बिठाने में कठिनाई अनुभव करते है और इसके साथ ही उन्होंने क्षेत्र में पुर्नउत्पादन की सामान्य प्रक्रिया के विकास पर शायद ही कोई प्रभाव डाला हो ।

22.4.1 उद्योगों का क्षेत्रीयकरण :

अधिकांश औद्योगिक क्रियाऐं औद्योगिक विकास वाले लघु क्षेत्रों (Pockets) तक ही सीमित रहती है । इन केन्द्रों पर बड़े औद्योगिक संस्थानों का आधिपत्य रहता है जो केन्द्र बिन्दु बना लेते है, और जिनके इर्द गिर्द बहुत सी बड़ी मध्यम व लघु सहायक इकाईयां विकसित हो जाती है । वास्तव में इन इकाईयों ने सहअस्तित्व के सिद्धान्त के आधार पर सम्बन्ध स्थापित कर लिये है, हालांकि इन उद्योगों की स्थापना कुछ वैज्ञानिक माप दण्डों के आधार पर होती है ।

भारतीय नियोजन प्रणाली में क्षेत्रीय विकास के सन्दर्भ में नये उद्योगों की स्थापना दो कारणों से हुई है अर्थात् :–

(1) कुछ चुने हुए स्वरूप या विकास बिन्दु केन्द्र जिनमें अधिकतम विकास की सम्भावनाएं पायी जाती है, और

(2) कुछ विकास क्षेत्र या केन्द्र बिन्दुओं के चयन करने की अनिवार्यता जो सम्बन्द्व क्षेत्र को संतुष्ट करने या कहीं अधिक राजनैतिक दबाव के कारण है ।

एक क्षेत्र मे, उद्योगों की स्थापना विभिन्न मात्राओं में तकनीकी आर्थिक व अन्य संस्थागत तत्वों से प्रभावित होती है । महत्वपूर्ण तकनीकी तत्वों में भूमि व कच्चे माल जैसे वन आधारित . उत्पतियॉ, खनिज व विद्यमान उद्योगों से अर्थ – निर्मित उत्पतियाँ, यातायात सुविधाओं के सम्बन्ध मे बाजार की निकटता, मानवीय साधनों की उपलब्ध मात्रा, ऊर्जा स्त्रोत व जलवायु आदि शामिल है । आधारभूत संरचना में कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक तत्व और स्थानीय बाजार की प्रकृति, विदेशी बाजारों की संभावना, संरचनात्मक सुविधाओं की लागत, मजदूरी की दर, कर रचना, विद्यमान उद्योगों की रचना, आवास व जल पूर्ति की सुविधा आदि है । संस्थागत तत्वों में (1) नये उद्योगों की स्थापना के प्रति सरकारी नीति, (2) और व्यक्तिगत तत्व शामिल है । सभी सरकारें तीव्र औद्योगीकरण की नीति अपनानी है, और उद्योगपति एक क्षेत्र में उद्योग की स्थापना के लिये सरकार द्वारा उपलब्ध करायी गयी सुविधाओं का मूल्याँकन करते है । सभी तत्व मिलकर एक क्षेत्र में उद्योग की इष्टतम स्थापना के लिये स्थान सम्बन्धी आकार व रूप (Spatial configuration) प्रदान करते है । यद्यपि एक क्षेत्र में उद्योग की स्थापना का निर्णय उत्पादन के पैमाने व उसमें उपयोग में आने वाली विधि से स्वतंत्र नहीं होगा । इन सभी तत्वों के बीच अन्तर्सम्बन्ध की मात्रा उद्योगों के क्षेत्रीयकरण की मात्रा निर्धारित करती है ।

22.4.2 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की व्यूहरचना :

किसी भी क्षेत्र में औद्योगिक विकास के लिये कई प्रकार के कारणों से एक उपयुक्त व्यूहरचना अपनाने की आवश्यकता होती है । औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय विविधता विकासशील देशों की सामान्य विशेषता है । एक क्षेत्र का पिछड़ापन, सामान्यतया औद्योगिक विकल्प की दौड़ में देरी मै शुरूआत, सामाजिक आर्थिक ऊपरी व्यय (Overheads)का अभाव व प्रतिकूल स्थिति आदि है । यदि औद्योगिक विकास के स्तर को ऊपर उठाने के लिये विशेष प्रयास नहीं किये जाते तो, कुछ दीर्घ कालीन असाम्य शक्तियों के कार्यशील होने से उनका सापेक्ष पिछड़ापन और भी बढ़ता जायेगा ।

पिछड़े हुए क्षेत्रों में विकास प्रवृतक (Stimuli) तीव्र करने के लिये मुख्य व्यूहरचना केवल सामाजिक आर्थिक आधारभूत संरचना का निर्माण ही नही, जो तीव्र गति के विकास के लिये आवश्यक बाहा मितव्ययिताओ कौ प्राप्त कराये, बल्कि सुस्त औद्योगिक क्षेत्र के आधार को तीव्र गति प्रदान करे, जो संचयी विकास के लिये आवश्यक विकास प्रवृति को उत्पन्न करेगा। इन तत्वों की तुलना में औद्योगिक क्षेत्र, औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने में अधिक प्रभावशाली भूमिका निभा सकता है ।

क्षेत्रों के औद्योगिक विकास की व्यूहरचना में निमलिखित को शामिल किया जा सकता है : (1) क्षेत्रीय औद्योगिक मिश्रण (Mix) व निर्यात–आधार में सुधार के लिये अर्थव्यवस्था के गहनीकरण व विविधीकरण के लिये व्यूहरचना । (2) औद्योगिक स्थापना के फैलाव के द्वारा शहरीकरण के विकेन्द्रीकरण के लिये व्यूहरचना । (3) ग्रामीण क्षेत्रों के लिए विकेन्द्रित आधारभूत संरचना व सामाजिक सेवाओं के लिये व्यूहरचना । क्योंकि, ग्रामीण क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के निम्न आधार स्तर के कारण स्थानीय स्तरीय नियोजन के अधीन साथ–2 विस्तार व्यूहरचनाएँ भी अपनानी होंगी । लेकिन इन प्रयासों का प्रभाव धीमा होता है, क्योंकि बहुत सी बाधाओं को दूर करना पड़ता है, जैसे स्थानीय ऊर्जा संरचना, निर्भरता के लक्षणों का समावेश व नौकरशाही बाधाएँ आदि ।

क्षेत्रीय औद्योगिक व्यूहरचना को विभिन्न प्रकार से अपनाया जा सकता है । इसके लिए आवश्यक है कि–

(1) क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय विकास की व्यूहरचना जिसमें वृहत – स्तरीय प्रीरियोजनाओ जैसे बांध, जलाशय, सड़को जल जाल आदि का निर्माण करना।

(2) सुदूर क्षेत्रों मैं अन्र्त–उत्प्रवासी कार्यक्रमों के द्वारा अर्धविकसित साधनो, का विकास करना ।

(3) स्थानीय सरकार को सब्सिडी देकर बजट आवंटन व्यूहरचना ।

(4) कृषि का विकास एवं कृषि–आधारित व वन–आधारित उद्योगों, की' स्थापना और उन्हें बहु–आयामी क्रियाओं के रूप में स्थापित करना ।

क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की व्यूहरचनाओं के उद्देश्य के लिये बहुत प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रयास है। इनमें शामिल है : (1) उद्योगों की स्थापना के लिये केन्द्रीय सहायता के वितरण के लिये एक अन्तर्क्षेत्रीय आवंटन नीति (2) औद्योगिक दृष्टिकोंण से पिछड़े हुए क्षेत्रों में विनियोग दिशा मोडने के लिये प्रेरणात्मक नीतियां,

(3) समान समस्या क्षेत्रों जैसे जन जाति क्षेत्र, पहाड़ी क्षेत्र, अकाल व सूखे के संभाव्य क्षेत्र, मरु क्षेत्र व समस्या–मूलक क्षेत्र जैसे उत्तरी–पूर्वी क्षेत्रों के समाधान के लिये क्षेत्र/क्षेत्रीय विकास दृष्टिकोण पर आधारित कार्य (Action) नियोजन ।

(4) क्षेत्र में उद्योगों के स्थानीय स्तर पर विकास के लिये एक समन्वित दृष्टिकोंण ।

(5) निम्नतम आवश्यकताओं के प्रावधान के लिये एक आधारभूत व्यूहरचना, ताकि हानि की स्थिति में रहे क्षेत्र सामाजिक उपभोक्ता के रूप में अन्य क्षैत्रों के साथ समानता प्राप्त कर सकें ।

"सामाजिक न्याय सहित क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के लिये, नियोजन के हाल के अनुभव विद्यमान दुषनिर्देशित विनियोग के दुष्परिणामों की और संकेत करते है । क्षेत्रीय संतुलन के नाम पर बड़े सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं को जिन्हें प्रतिष्ठा के चिन्ह माना जाता है, उन्हें अन्य क्षेत्रों की तुलना में किसी एक क्षेत्र में स्थापना के लिये शक्तिशाली राजनैतिक दबाव डाला जाता ते । परिणामस्वरूप भारत में विकास की प्रारंभिक व्यूहरचना में उद्योगों के केन्द्रभिमुखता की प्रवृत्ति पायी गयी है ।

22.5 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की संरचना :

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय उद्योग ग्रामीण हस्तकलाओं के रूप में थे, जो कृषि के साथ सामुदायिक घनिष्टता (सम्बन्धों) की प्रणाली से जुड़े थे । इसी प्रकार शहरों विशेषकर समुद्री बंदरगाहों में हस्तकला, घरेलू व लघु–हस्तकृत संस्थान भी कृषि से जुड़े हुए थे। इसके अतिरिक्त लघु–स्तरीय औद्योगिक संरचना भी आर्थिक व तकनीकी दोनों दृष्टिकोणों से अति दुर्बल थी । इसका अति निम्न स्तरीय उत्पादन था व इसमें निम्न प्रकार की पूँजी की प्रधानता थी ।

भारत में नियोजन के युग के प्रारम्भ मैं औद्योगीकरण का स्वरूप लघु–स्तरीय उद्योगों, हस्तकलाओं, कपड़े की बुनाई के क्षेत्र में था, और वृहतस्तरीय उद्योग जूट व वस्त्र उत्पादन के क्षेत्र में थे । खनिज उद्योग बहुत पिछड़ा हुआ था, जिसमें अति निम्न प्रकार का विकास हुआ था। निर्मित उद्योग में हल्के उद्योगों की प्रधानता की विशेषकर उनकी उन शाखाओं में जो कृषि आधारित कच्चे माल की उन्नति प्रक्रिया (Processing) में लगे हुए थे । हालांकि इंजीनियरिग वस्तु उत्पादन मैं लगे उद्योग राजकीय उपक्रमों के लिये विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन के योग्य थे जैसे, रेलवे व खुले बाजार, मगर ऊर्जा उत्पादन में देश की आवश्यकताओं से काफी पीछे थे ।

22.5.1 क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की दिशा :

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सक्रिय सरकारी हस्तक्षेप ने नियोजन प्रक्रिया में गहरी जड़े जमा ली है । राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सरकार ने प्रमुख उद्योगों के निर्माण व संचालन में काफी अनुभव प्राप्त कर लिया है, और यह परिवर्तन सन 1956 की औद्योगिक नीति प्रस्ताव में प्रतिबिंबित हुआ था । सामाजिक व आर्थिक ढांचे के निम्न स्तर पर उत्पादन व तकनीकी के आधुनिक साधनों को लागू करनें की प्रक्रिया ने उद्योगों की असजातीय (विषय) संरचना को दूर करने में सहायता की हैं ।

सन 1951–65 के दौरान हल्के उद्योग, निर्मित उद्योगों की तुलना में निम्न दर पर विकसित हो रहे थे । एकाधिकार जांच आयोग (1965) रिपोर्ट बतलाती है कि, निजी क्षेत्र के उच्चतम 75 व्यापारिक समूह के एक वर्ग के द्वारा औद्योगिक इकाइयों कीं भोगोलिक स्थापना स्थिति निर्धारित की गयी । उनमें से अधिकांश महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल व तमिलनाडु राज्यों मैं स्थापित की गयी थी ।

महालनोविस व्यूहरचना को स्वीकार किये जाने के बाद आधारभूत व पूंजीगत वस्तु उद्योगों जैसे लोह व इस्पात, सीमेन्ट, कोयला, इजीनीयरिग आदि का विस्तार अपेक्षाकृत तीव्र गति से हुआ था । औद्योगिक संरचना जो कुछ उद्योगों व कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित थी, परम्परागत उद्योगों जैसे जुट व सूती वस्त्र से पूंजीगत वस्तु उद्योगों में परिवर्तित हो गयी ।

22.5.2 उद्योगों की क्षेत्रीय संरचना में परिवर्तन :

सरकार के सकारात्मक दृष्टिकोण के बावजूद औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय असमानताएँ व असंतुलन निरन्तर जारी रहा । विभिन्न क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के असंतुलनों को दूर करने के लिये सरकार ने कई कदम उठाये । प्रथम पंच वर्षीय योजना के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों को प्रोत्साहन दिया गया और, सन 1948 व 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव ने उन उद्योगों को निजी क्षेत्र से अलग किया और, राष्ट्रीय महत्व के उद्योगों को सरकार के नियंत्रण में लाया गया। इसके परिणाम–स्वरूप बहुत से आधारभूत व भारी उद्योगों को बिहार, महाराष्ट्र व तमिलनाडु जैसे क्षेत्रों मेँ स्थापित किया गया ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में महालनोवीस योजना व्यूहरचना अपनाते हुए विभिन्न क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के लिए ऊर्जा व जल पूर्ति प्रदान कर, नये उद्योगों की स्थापना के अलावा, ग्रामीण व लघु उद्योगों की स्थापना करके कई प्रयास आरम्भ किये । औद्योगिक विकास का विविधीकरण हुआ और छोटे कस्बों के निकट औद्योगिक बस्तियाँ स्थापित की गयी। इससे क्षेत्रीय उद्योगों की संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया । हालांकि औद्योगिक बस्तियों व संबंद्ध संयुक्त क्षेत्रों से उद्योगों के क्षेत्रीय ढांचे में परिवर्तन का आवश्यक उद्देश्य प्राप्त नही हों सका ।

विभिन्न राज्यों के कुछ पिछड़े हुए क्षेंत्रों में तृतीय पंचवर्षीय योजना काल में उद्योगों की स्थापना के लियें विशेष ध्यान दिया गया था। कम विकसित क्षेत्रो में ऊर्जा परियोजनाओं के विस्तार व वृहत औद्योगिक परियोजनाओं की स्थापना के लिये गहन प्रयास किये गये थे । हालांकि योजना के कार्यक्रम औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय असमानताए कम करने में असफल रहे, मगर उन्न्तशील व पिछड़े हुए राज्यों के बीच अन्तर समान आकार का बना रहा । नये उद्योग विशेषकर लघु उद्योगों को प्रारंभ करने के कारण पंजाब उच्चतम व बिहार निम्नतम स्थान पर रहा ।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना काल में भी पिछड़े हुए क्षेत्रों में औद्योगिक संरचना में सुधार के प्रयास जारी रखे गये थे । पिछड़े हुए क्षेत्रों में केन्द्रीय परियोजनाओं की स्थापना पर महत्व दिया गया और इन क्षेत्रों में लघु व मध्यम उद्योगों को रियायतें देने के लिये वितीय संरथाओं की कार्य प्रणाली व नीतियों में भी समायोजन किया गया । केन्द्रीय व राज्य सरकारों ने उप–शहरी व अर्थ शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिये औद्यौगिक बस्तियो की स्थापना की और इस प्रकार औद्योगिक विकास का क्षेत्रीय संरचना को बड़े कस्बों से गांवों की और विविधीकरण करने का प्रयास किया गया ।

पांचवी पंचवर्षीय योजना काल मे, औद्योगिक विकास की क्षेत्रीय संरचना को परिवर्तित करने की नीतियाँ व कार्यक्रम जारी रखें गये । एक भिन्न दृष्टिकोण से पिछड़े हुए क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना के लिये रियायतों के विशेष पैकेज दिये गये । पिछडे हुए क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयों को कर मुक्तता व अन्य स्थानीय चुंगी व करों में भी रियायतें दी गयी थी। औद्योगिक विकास की क्षेत्रीय संरचना को परिवर्तित करने के लिये क्षेत्रीय विकास दृष्टिकोण पर अधिक महत्व दिया गया। इसमें साधन आधारित या समरूपता आधारित विकास दृष्टिकोण,

लक्ष्य समूह दृष्टिकोण, प्रेरणा दृष्टिकोण व व्यापक सर्वागीण क्षेत्र दृष्टिकोण निहित है । परिणाम–स्वरूप लघु व ग्रामीण उद्योगों को प्रेरणा प्राप्त हुई और ग्रामीण क्षेत्रो में परम्परागत कृषि ढांचे को औद्योगिक क्षेत्रों में रूपान्तरित करके आय जनित रोजगार के अवसर प्रदान किये गये । बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत उठाये गये कदम जैसे, ऊर्जा–जनन की वृद्धि व हेन्डलूम क्षेत्र के विकास के लिये कार्यक्रमों ने भी क्षेत्रीय औद्योगीकरण के ढांचें के परिवर्तन में सहयोग दिया ।

छठी पंच–वर्षीय योजना काल में उद्योगों की क्षेत्रीय संरचना को रूपान्तरित करने के लिये आई. आर.डी.पी. व एन.आर.ई.पी आदि कार्यक्रम भी क्रियान्वित किये गये । इन कार्यक्रमों की ग्रामीण क्षेत्रों में काफी रोजगार संभावनाएं थी, और उन्होंने क्षेत्रीय औद्योगीकरण की संरचना व आयामों मे परिवर्तन में सहयोग दिया । क्षेत्रों के कमजोर साधन–आधार को सुदृढ़ बनाया गया, और निजी उद्योगपतियों से सम्बन्धित केन्द्रीय व राज्य सरकारों की निवेश व प्रेरणा योजनाओं को परिवर्तन किया गया ।

अगली पंचवर्षीय योजना काल में औद्योगिक दृष्टिकोण से पिछड़े हुए क्षेत्रों में विकास को प्रोत्साहन देने के लिये अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया गया । सन 1990 की औद्योगिक नीति के अन्तर्गत लघु स्तरीय व कृषि आधारित उद्योगों के प्रोत्साहन के लिए कई उपाय लागू किये गये जैसे, रोजगार वृद्धि व उद्योगों के फैलाव के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये औद्योगिक विकास को परिवर्तित करने की नीति, देश के ग्रामीण व पिछड़े हुए क्षेत्रों में पूर्णतया लघु उद्योग क्षेत्र के लिये केन्द्रीय सब्सिडी की योजना आदि ।

नवीन आर्थिक नीति से प्रेरित वर्तमान औद्योगिक नीति क्षेत्रीय औद्योगिकरण के लाभ के लिये नवीनीकृत आदि कार्यो का प्रतिनिधित्व करती है । सातवी व आठवीं पंचवर्षीय योजनाओं में लघु स्तरीय बहुत छोटे व घरेलू उद्योगों के विकास पर दिये गये महत्व से औद्योगिक विकास के लिये वातावरण बना हैं । बहुत से क्षेत्रो में एक व्यापक आधारित आधारभूत संरचना का निर्माण हुआ है । आधारभूत उद्योगों को प्रोत्साहित करते हुए लघुस्तरीय इकाइयों पर विनियोग की उच्चतम सीमा घटा दी गयी हैं । इस उदार कदम ने कई क्षेत्रों में लघु स्तरीय व ग्रामीण क्षेत्रों कें औद्योगिक आधार के विस्तार में सहायता की है । दूसरी ओर भारतीय उद्योगों में विदेशी विनियोग के अंश में वृद्धि नें, मुख्य शहरों व देश के उन्नतशील क्षेत्रों के निकट, कृषि आधारित व उपभोग वस्तु उद्योगों की स्थापना के लिये द्वार खोल दिये है । साथ ही निजी निवेश कर्ताओं को दिये गये प्रोत्साहन ने भी क्षेत्रीय औद्योगिक विकास में सहायता की है ।

22.6 सारांश :

यह अच्छी तरह स्वीकार किया जाता है कि, भारत में सभी क्षेत्र औद्योगिक दृष्टिकोण से समान रूप में विकसित नहीं हुए है । विकसित क्षेत्रों में भी पिछड़ेपन के कुछ क्षेत्र है और कुछ क्षेत्र पूर्णतया पिछड़े हुए है । क्षेत्रों की संरचना में मौलिक परिवर्तनों का प्रयास औद्योगीकरण के द्वारा किया जाता है । औद्योगिक विकास का उद्देश्य क्षेत्रों के विशाल

अप्रयुक्त व अदोहित साधनों का दोहन कर क्षेत्र के लौगों की समाजार्थिक दशाओं में सुधार करना है ।

औद्यौगिक विकास की क्षेत्रीय संरचना को रूपान्तरित करने में कुछ समस्याएँ है । कुछ ऐसे उद्योग है जिनकी स्थापना तकनीकी परिभाषित क्षेत्रों में की जाती है । क्षेत्रीय औद्योगिक विकास नियोजन का उद्देश्य साधनों का इष्टतम उपयोग एवं औद्योगिक रुग्णता की समस्या को दूर करना है । क्षेत्रीय औद्योगीकरण की संरचना का निर्धारण भौतिक, आर्थिक व सामाजिक पहलुओं के सम्बन्ध में उपलब्ध साधना से होता है । क्षेत्रीय औद्योगिक संरचना का निर्धारण औद्योगिक इकाईयों के आकार–वितरण मूल्य वृद्धि (Value–added) अंशों में परिवर्तन व रोजगार अवसरों की रचना से होता है । किसी भी स्थान पर उद्योगों की स्थापना कुछ चुने हुए विकास बिन्दुओं और विकास बिन्दु या क्षेत्र के चयन की अनिवार्यताओं से होता है । औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय विविधता विकासशील देशों की सामान्य विशेषता है ।

क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की व्यूहरचना का उद्देश्य औद्योगिक स्थानीयता व संरचनात्मक (Infrastructural– आधार ढांचागत) सुविधाओं का गहनीकरण व फैलाव होता है । इसके लिये स्थानीय स्तर पर उद्योगों कें विकास के लिये एक समन्वित दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है । सन 1951 के पश्चात औद्योगिक विकास की क्षेत्रीय संरचना में परिवर्तन आया है । औद्योगिक संरचना जो कुछ क्षेत्रों व कुछ राज्यों क ही सीमित थी, परम्परागत जूट व सूती वस्त्र उद्योंगों से पूंजीगत उद्योगों में परिवर्तित हुई है ।

केन्द्रीय कार्यक्रमों व परियोजनाओं को पिछड़े हुए क्षेत्रों में स्थापित करने पर जोर दिया गया, और बहुत से क्षेत्रों में औद्योगिक बस्तियों की स्थापना की गयी थी । क्षेत्रीय औद्योगिक विकास को आइ.आर.डी.पी., एन.आर.ई.पी. जैसै कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से आवश्यक शक्ति प्राप्त हुई है । औद्योगिक नीति व निर्यात आयात सहित आर्थिक नीति ने भारत में क्षेत्रीय औद्योगीकरण की संरचना के परिवर्तन को सुविधाजनक बनाया है ।

22.7 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) "एक देश के आर्थिक विकास के लिये क्षेत्रों का तीव्र औद्योगीकरण आवश्यक है ।" परीक्षण कीजिये ।

(2) भारत में क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की संरचना की व्याख्या कीजिये ।

(3) सरकारों के द्वारा औद्योगिक विकास की क्षेत्रीय संरचना में परिवर्नन के लिए किये गये प्रयासों का विवेचन कीजिये ।

(4) औद्योगीकरण की क्षेत्रीय संरचना में परिवर्तन के लिये अपनायी गयी व्यूहरचना की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये ।

(5) क्षेत्रीय औद्योगिक विकास की व्यूहरचना के क्रियान्वयन में किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है ।

22.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. G.k Shirokov, Industrialisation in India, Peoples Publishing house New Delhi 1973.

2. Rane Pratap , Growth and Regional Pattern of Industrial Computers. Concept Publishing Co. New Delhi, 1993.
3. R.R Barthwal, Indian Economic Structure, Wiley Eastern India Ltd., New Delhi, 1984.
4. Kulwinder Kaur, Structure of Industries in India, Deep and Deep Publication, New , 1982.
5. Kuznets. S. Economic Growth and Structure, Selected Essays, Nortons & Co. Inc. Massachureter,
6. Majumdar, A. Structural Transformation and Economic Development. BISRER, Bombay, 1979.
7. Vakil C.N. Edt. Industrial Development of India. Policy & Problems, Orient Longman New Delhi. 1979.
8. Gersherenkran A ; Economic Backwardness in Historial Perspective, Harivard University, 1962.
9. Planning Commission, Govt. of India, Second Five Year Plan, 1956. New Delhi.
10. Mr. A Bhattacharya, Evaluation of Resource Political of a Less Developed Regions in India Gokhale Institute, Pune, 1969.

इकाई 23
सामाजिक आर्थिक आधार भूत ढाँचे के विकास मे क्षेत्रीय असंतुलन

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 आधार ढाँचा
23.2.1 अर्थ
23.2.2 भूमिका
23.2.3 माप
23.3 क्षेत्रीय असंतुलन
23.3.1 आर्थिक आधार ढाँचा
23.3.2 सामाजिक आधार ढाँचा
23.3.3 मिलाजुला (Composite) सूचकांक
23.4 स्वयं के द्वारा सीखने के अभ्यास प्रश्न
23.5 सारांश
23.6 शब्दावली
23.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
23.8 स्वय के द्वारा सीखने के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

आधार ढाँचे का अर्थ समझने के लिये सामाजिक व आर्थिक आधार ढांचे के बीच अन्तर करना, विकास में आधार ढांचे की भूमिका को बतलाना, आधार ढांचे के विकास में विभिन्न क्षेत्रों के बीच विषमता की मात्रा का ज्ञान करना, और समय के साथ अंतर्क्षेत्रीय विषमताओं में परिवर्तन के स्वरूप का परीक्षण करना है ।

23.1 प्रस्तावना

क्योंकि यहां क्षेंत्रों के बारे में वर्णन है, इसलिये पहले यह आवश्यक है। कि विचार किये जाने वाले क्षेत्र की परिभाषा की जाये । चूंकि क्षण्ड IV केवल भारतीय अर्थव्यवस्था का वर्णन करता है, इसलिये हमें अपना ध्यान केवल उप–राष्ट्रीय क्षेत्रों तक ही सीमित रखना है । इस स्तर पर कोई भी सजातीय, सहमति पूर्ण, और राजनैतिक प्रशासनिक क्षेत्रों पर विचार कर सकते है ।[1] सजातीयता व सहमति की अवधारणा क्षेत्रीय स्तर पर अर्थपूर्ण विश्लेषण सुविधाजनक बनाती है, लेकिन सजातीय व सहमति पूर्ण क्षेत्रों के उपयोग करने में सु–लेख्यात्मक प्रमाणित सैद्धान्तिक कठिनाइयाँ है । दूसरी और यद्यपि राजनैतिक–प्रशासकीय क्षेत्र अक्सर तथ्य

एकत्रीकरण व उपलब्धता के रूप मैं सजातीय होते है, मगर न तो वे अन्य अधिकांश दृष्टिकोण से सजातीय होते और न ही कार्यात्मक दृष्टिकोण सें सहमतिपूर्ण होते है, और इसीलिये विश्लेषण में समस्याएँ उत्पन्न करते है । इसलिये यह कोई आश्चर्य नही हैं कि इसार्द (Isard) सहित बहुत से विद्वानों के अनुसार क्षेत्रीय विश्लेषण के सभी उद्देश्यों के लिये कोई आदर्श क्षेत्र नहीं होते है ।[2]

भारत के सम्बन्ध में यह भी कठिनाई हें कि अन्त–समय सम्बन्धी तुलनाएँ इस तथ्य से नष्ट (दूषित) हो जानी है कि इन राजनैतिक–प्रशासकीय क्षेत्रों का क्षेत्रफल व संख्या कभी–कभी समय के साथ परिवर्तित हो जानी हैं । इसके साथ ही राजनैतिक–प्रशासकीय स्तर पर भी, यह प्रश्न उठना हैं कि हमें क्या राज्यों या उप–राज्य इकाइयां जैसे जिला या इससे भी निम्न स्तर की इकाइयों को क्षेत्रों के रूप में लेना चाहिए । भारतीय राज्य जिन्हें भाषायी आधार पर पुनगर्ठन और बाद में सत्तर के दशक में किये गये परिवर्तनों मे भाषा व संस्कृति के रूप मैं काफी सजातीय बनाया गया है, और जो भारतीय संघ की घटक इकाइयाँ है, उन्हें ही इस अध्ययन के उद्देश्य से क्षेत्र मान लिया गया है । यहां इस अध्ययन से निष्कर्ष निकालते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि उत्तर प्रवेश, बिहार व उड़ीसा जेंसे कुछ राज्यों की भीतरी विषमताएँ कहीं अधिक निर्णय रूप में अन्तर्राज्यीय विषमताएँ है । अपने वर्तमान रूप में भारतीय राज्य मुख्यतया पचासवें के दशक में भाषायी आधार पर राज्यों के पुर्नगठन के परिणामस्वरूप आये । तब से लेकर सतरवें के दशक के आरम्भिक वर्षो तक इनकी सीमाओं में कई परिवर्तन किये गये थे । इससे भी आगे भारत में क्षेत्रीय नियोजन के आलोचनात्मक स्र्वेकाण स्पष्टतया इस तथ्य की ओर सकेत करते है कि, विकास में क्षेत्रीय असंतुलनों को दूर करने के व्यवस्थित प्रयास सत्तरवें के दशक में किये जाने शुरू हुए थे ।[3] इन सबके विचार के अन्तर्गत इस अध्ययन में क्षेत्रीय असंतुलनों का विश्लेषण सत्तरवें दशक के बाद की अवधि तक ही सीमित है ।

23.3 आधार ढाँचा (Infrastructure)

23.2.1 अर्थ :

आर्थिक साहित्य में हर्षमेन (Hirschman) सहित बहुत से अर्थशास्त्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं जैसे कृषि, विनिर्माण आदि क्रियाओं व सामाजिक ऊपरी व्यय (Overhead) पूंजी के बीच अन्तर किया जाता है, जिसे आर्थिक आधार ढांचा के रूप में भी व्यक्त किया जाता है । जैसा कि नामकरण से स्पष्ट है आर्थिक आधार ढांचा उन सेवाओं की ओर संकेत करता है जो अर्थव्यवस्था के शेष भागों में उत्पादन संभव (योग्य) बनानी हैं । ये उस अर्थ में "आधार", "ऊपरी व्यय" या "आधारभूत" है कि इन आधार ढांचागत सुविधाओं की आवश्यकता सभी वस्तुओं के उत्पादन में होती है । कड़े शब्दों में हम आधार ढांचागत पूंजी व उन सेवाओं के बीच अन्तर कर सकते है जो इनसे प्राप्त होती है । आधार ढांचे को व्यक्त करते समय कुछ लेखक उन सेवाओं की ओर संकेत करते है जो इनसे प्राप्त होती है, जबकि कुछ अन्य इन्हें इनके प्रावधान में विनियोजित पूँजी के अर्थ में लेते है ।[4] हालांकि यह अन्तर

बहुत कम किया जाता है और आधार ढांचे के दोनों पहलुओं का परस्पर रूप में उपयोग किया जाता है । अक्सर संदर्भ पूंजी या उन सुविधाओं की ओर– होता है जो आधार ढांचागत सेवाओं के प्रावधान के लिये उपलब्ध होती है ।

सभी समान्यतया आधार ढांचे की आधारभूत विशेषताओं पर सहमत है । प्रवेश वे वाद्य बचतों की स्त्रोत है और इस प्रकार वे अन्य उद्योगों में उउत्पादन की लागतों में कमी लाने में अग्रणी रहती है । द्वितीय, वे अक्सर नवीन विचारों में सहायक होती है, जिससे उत्पादन के साधनों के नये संयोग बनते है । तृतीय, इस बात पर सामान्यतया सहमति है कि जो इकाइयाँ आधार ढांचागत सेवाएं उपलब्ध कराती है, वह वृहत आधार की उद्देश्य या दीर्घ निर्माण काल की होती है । चतुर्थ, यह भी स्वीकार जाता है कि ये सेवाएं इस प्रकार की है कि इन्हें राष्ट्रीय सीमापार से प्राप्त नहीं किया जा सकता । इन सभी बातों के परिणामस्वरूप, एड्म स्मिथ के समय से ही यह विचार है कि आधार ढांचे को प्रदान करने का प्राथमिक उत्तरदायित्व सरकार पर है ।

इस प्रकर संकुचित अर्थ में आधार ढांचे के अन्तर्गत यातायात, संदेशवाहन, ऊर्जा, सिंचाई व बैकिंग सुविधाओं को लिया जा सकता है । व्यापक अर्थ में आधार ढांचे में शिक्षा, स्वास्थ्य, नालियां आदि भी शमिल होंगी । आर्थिक क्रियाओं व शेष क्षेत्रों पर इनका शीघ्र प्रभाव इतना दृश्य नहीं होता, इसलिये उन्हें साधारणतया सामाजिक आधार ढांचे के रूप में लिया जाता है । आधार ढांचे के किसी भी अर्थपूर्ण विवरण में आर्थिक व सामाजिक आधार ढांचे दोनों को शामिल करना होगा इसके अलावा क्षेत्रोत्तर व समष्टि दृष्टिकोण के अनुसार आर्थिक व सामाजिक आधार ढांचे के बीच अन्तर करने के साथ–साथ एक व्यष्टिगत दृष्टिकोण के अन्तर्गत एक विशेष आर्थिक क्षेत्रों तक सीमित रहा जा सकता है, और कृषिगत आधार ढांचा, यातायात आधार ढांचा व शिक्षण आधार ढांचा पर विचार किया जा सकता है ।

23.2.2 भूमिका :

यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त प्रमाण है कि आर्थिक विकास और आधार ढांचागत विकास साथ–साथ चलते है । तालिका 23.1 में दिये गये तथ्य इसके लिये प्रर्याप्त प्रमाण है ।

1. अन्य के साथ विभिन्न प्रकार के क्षेत्रों पर एक विस्तृत वर्णन के लिये देखिये Mahesh Chand and Puri (1983)
2. इस प्रकार के निष्कर्ष के लिए देखिये: Isard, W & T. Victoring (1959), Industrics Complex and Regional Development, John Viley, New York.
3. अन्य के अलावा देखिये: Nair (1982), Regional Experience in a Developing Economy, Wiley–Eastern, Delhi.
4. यद्यपि Penguin Economic Dictonary (1977) सुविधाओं के पहलू पर जोर देती है , मगर बटर वर्थ (1977) की Dictonery of Economic Terms आधार ढांचे को इनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं के रूप मे देखती है ।

तालिका 23.1 : आधार ढांचा एवं आर्थिक विकास

क्रमांक	मद	मूल्य निम्न आय के देशों में	मूल्य उच्च मूल्य उच्च में
1.	जन्म पर जीवन की सम्भावना (वर्ष)	65	76
2.	प्रति व्यक्ति ऊर्जा का उपभोग (कि.वा.)	330	4867
3.	माध्यमिक शिक्षा में भरती होने वाले आयु वर्ग का प्रतिशत	37	93
4.	प्रतिशत शहरी जनसंख्या	36	77

स्रोत : World Bank(1991), World Development Report, 1991. The Challenges of Development, Oxford University Press, Washington.

अर्थशास्त्री इस बात पर एकमत है कि दीर्घकाल में प्रत्यक्ष आर्थिक क्रियाओं के स्तर के संचालन की सहायता के लिये प्रर्याप्त आधार ढांचा उपलब्ध होना चाहिए । यहां विचार इस बात को निश्चित करना है कि आधार ढांचे की अनुपलब्धि के कारण न तो कोई बाधाएँ (Bottlenecks) है और न ही आधार ढांचे में अप्रयुक्त क्षमता है । अल्पकाल में यदि संसाधन न्यून है तो प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं व सामाजिक उपरि व्यय पूंजी में विनियोग के बीच चयन की समस्या उत्पन्न हो सकती है । इस प्रकार की स्थिति में कोई सर्वसम्मत राय नहीं है कि सामाजिक आधार ढांचे (ऊपरी व्यय) पर विनियोग, प्रत्यक्ष आर्थिक क्रियाओं के पूर्व हो या बाद में हो ।[5] इस सम्बन्ध में अन्य के साथ हर्षमेन इस मत के है कि यदि हम पहले प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में विनियोग करके जानबूझकर असंतुलित विकास लाते है, तो अपर्याप्त आधार ढांचे के कारण सरकार पर पर्याप्त दबाव होगा कि वह पर्याप्त आधार ढांचे की व्यवस्था करें । दूसरी और नर्वस आधार ढांचे के द्वारा जानबूझकर असंतुलन पैदा करने की विनियोग नीति को पसंद करते है । उनका विचार है कि इस प्रकार की परिस्थितियों में आधार ढांचे की सरल उपलब्धि के कारण प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं की स्थापना के लिये पर्याप्त प्रोत्साहन (प्रलोभन) रहेगा। हर्षमेन जो आधार ढांचे को आर्थिक विकास की दासी (साथी) मानते है और नर्वस जो आधार ढांचे को आर्थिक विकास का मुख्य चालक मानते है, दोनों ही अल्पकाल में जानबूझ कर असंतुलन लाने के समर्थक है, ताकि दीर्धकाल में आधार ढांचे व प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं के बीच संतुलित विकास किया जा सके ।

23.2.3 माप (Measurement) :

आधार ढांचे के कई अंग (भाग) होते है, और ढांचागत विकास का मूल्यांकन करने के लिये इसके प्रत्येक भाग का परीक्षण करना आवश्यक होता है । आधार ढांचे का काफी वर्णनात्मक विचार इसके प्रत्येक भाग के विकास के विस्तृत दृश्य से प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन इस सम्बन्ध से सांख्यिकी की भूल–भूलैया से भ्रम होने की संभावना है, क्योंकि विभिन्न अंग समय के साथ एक ही गति या एक ही दिशा में परिवर्तित नहीं होते । विश्लेषणात्मक

उद्देश्य से इससे भी अधिक अक्सर आवश्यकता सर्वांगीण आधार ढांचे के विचार का एक स्पष्ट एवं सारांशीय दृश्य (विवरण) आवश्यक होता है ।

समस्या और भी विकट (विषय) इस तथ्य के कारण हो जाती है, क्योंकि आधार ढांचे में निहित किसी भी क्षेत्र के विकास स्तर के नापने के लिये सर्वसम्मत विचार नहीं है । इसका उदाहरण उचित रूप में दो क्षेत्रों–यातायात व शिक्षा, के परीक्षण से दिया जा सकता है । यातायात के क्षेत्र में प्रश्न यह है कि यातायात के सभी रूपों में से किस पर विचार किया जाये? यदि हम केवल सड़क यातायात तक ही सीमित रहने का निर्णय लेते है तो भी कई प्रश्न फिर भी बने रहते है । प्रथम, क्या हम सभी सड्कों या केवल धरातलीय (सतही) सड्कों पर ही विचार करें, इससे भी आगे, क्या हम प्रति व्यक्ति सड़क लम्बाई या प्रति 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र की सड़क लम्बाई पर विचार करें ।

इसी प्रकार यह भी विवादास्पद है, कि क्या हम शिक्षा के विकास के विश्लेषण में केवल साक्षरता पर ही विचार करें? यदि हमें शिक्षा के अन्य पहलुओं पर भी विचार करना है तो क्या हम भरती एवं स्कूल छोड़ने वाले विद्यार्थियों की दरों पर भी विचार करें? इससे भी अधिक केवल विद्यार्थियों की संख्या पर विचार करने के अलावा, क्या हमें अध्यापक– विद्यार्थी अनुपात, ब्लेक बोर्ड आदि आधारभूत सुविधाओं के स्कूलों की संख्या आदि के रूप में, शिक्षा की गुणवत्ता का भी परीक्षण नहीं करना चाहिए ।

आधार ढांचे की स्पष्ट स्थिति प्राप्त करने के लिये इन समस्याओं के समाधान का एक सामान्यतया स्वीकार्य उपाय यह है कि, आधार ढांचागत विकास का एक संयुक्त (मिलाजुला) सूचकांक तैयार किया जाये। ऐसा करने में आधारभूत प्रश्न यह है कि इसके प्रत्येक भाग के विकास का माप करने के लिये उपयोग में लानेवाले विभिन्न अवयवों को किस प्रकार सापेक्ष महत्व दिया जाये। इसी प्रकार की एक समस्या प्रत्येक अंग (भाग) के सूचकों को आधार ढांचागत के सामान्य सूचकांक में मिलान की है। इस प्रकार के सूचकांक तैयार करने के कई पूर्व प्रयास भी किये जा चुके है।[6] लेकिन इनमें से अधिकांश विशेष राज्यों के कुछ वर्षों के लिये या कई राज्यों के बहुत ही कम समय अवधि के लिये है।

ऐसे कुछ ही प्रयास है जो कई राज्यों के कई वर्षों के लिये किये गये है। इनमें से सबसे अधिक पूर्णता का प्रयासों में एक Centre for Monitoring Indian Economy–CMIE के द्वारा, और दूसरा पूनम कपूर के द्वारा है। इनमें से पहला 16 सूचकों पर विचार करता है, मगर यह आत्म चेतना सम्बन्धी (Subjective) भारो का उपयोग करता है। दूसरा 23 सूचकों पर विचार करता है और प्रधान अंगीय विश्लेषण (Principal Component) का उपयोग करता है, जो विभिन्न सूचकों को सापेक्षिक महत्व देने का और आधार ढांचागत विकास के सूचकांकों को बनाने की साकार (पदांश विषयक) विधि है। हम भारत में आधार ढांचागत अन्तर्राज्यीय असमानताओं के विश्लेषण के लिये पूनम कपूर के द्वारा तैयार किये गये आधार ढांचागत विकास के मिले जुले सूचकों को प्रस्तुत करेंगे।

5. इसके विस्तृत वर्णन के लिये देखिये हर्षमेन : Hirschman
6. पूर्व के प्रयासो के लिये देखिये, महेश चन्द व पूरी ओर पूनम कपूर(1992)

23.3 क्षेत्रीय असमानताएँ

23.3.1 आर्थिक आधार ढांचा :

आर्थिक आधार ढांचे के सूचकांक को तैयार करने में जिन अवयवों पर विचार किया जाता है वे है:

1. विद्युत शक्ति का प्रति व्यक्ति उपभोग ।
2. प्रति लाख जनसंख्या पर शक्ति चालित किये गये पम्प–सेट्स की संख्या ।
3. विद्युतीकृत गांवों का प्रतिशत ।
4. प्रति लाख जनसंख्या पर जनित ऊर्जा शक्ति ।
5. कुल सकल फसल क्षेत्र की तुलना में शुद्ध सिंचित क्षेत्र का प्रतिशत ।
6. प्रति 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में किलोमीटर सड़क की लम्बाई ।
7. क्षेत्र के प्रति 100 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में धरातलीय सड़कों की लम्बाई ।
8. प्रति लाख जनसंख्या पर मोटर वाहनों की संख्या ।
9. प्रति 100 किलोमीटर के क्षेत्र में रेल मार्ग की लम्बाई ।
10. प्रति लाख जनसंख्या पर डाक घरों की संख्या ।
11. प्रति लाख जनसंख्या पर बैक की शाखाओं की संख्या ।
12. साख–जमा अनुपात ।

तालिका 23.2 : भारत में राज्यों के आर्थिक आधार ढांचे के सूचकांक

क्रमांक	राज्य	सूचकांक 1971–72	1984–85
1.	आध्र प्रदेश	2.55 (7)	4.47(7)
2.	आसाम	2.55 (8)	4.03(12)
3.	बिहार	2.53 (9)	4.38(10)
4.	गुजरात	2.53 (10)	4.96 (3)
5.	हरियाणा	2.11 (14)	5.14 (2)
6.	हरियाणा	2.85 (4)	4.30 (11)
7.	केरल	2.92 (3)	4.43 (9)
8.	मध्य प्रदेश	2.00 (15)	3.62 (15)
9.	महाराष्ट्र	2.60 (6)	4.49(5)
10.	उड़ीसा	2.29 (13)	3.92 (13)
11.	पंजाब	3.40 (1)	5.35 (1)
12.	राजस्थान	2.33 (12)	3.91 (14)
13.	तमिलनाडू	3.03 (2)	3.91 (14)
14.	उत्तर प्रदेश	2.46 (11)	4.48 (6)

15.	पश्चिमी बंगाल	2.77 (5)	4.53 (4)

स्रोत : पूनम कपूर (1992) पर आधारित। बेंकट के अंग (संख्याएं) क्रम है।

तालिका 23.2 भारत के विभिन्न राज्यों के लिये वर्ष 1971–72 व वर्ष 1984–85[7] के लिये उपरोक्त वर्णित अवयवों के आधार पर/प्रधान अंगीय विश्लेषण (Principal Component Analysis) विधि के द्वारा तैयार किये हुए आर्थिक आधार ढांचे के सूचक को प्रस्तुत करता है। यह तालिका आर्थिक ढांचे के आधार पर राज्यों को क्रम देती है। इस तालिका का अध्ययन स्पष्टतया बतलाता है कि, भारत के निम्न आय वाले राज्यों जैसे मध्य प्रदेश, उड़ीसा व राजस्थान दोनों ही समय बिन्दुओं में अति निम्न क्रम पर स्थितं है। एक अन्य निम्न आय वाला राज्य बिहार इस क्रम में कुछ बेहतर स्थिति में है, यद्यपि समय के साथ यह भी अपनी सापेक्षिक स्थिति खोता जा रहा है। उच्च आय वाले राज्य जैसे पंजाब व महाराष्ट्र दोनों समय अवधियों में आधार ढांचे के रूप में भी उच्च क्रम पर बने रहे है। दो अन्य उच्च आय वाले राज्य गुजरात व हरियाणा में सत्तरवें के दशक में सुविकसित आधार ढांचा नही पाया जाता प्रतीत होता है। लेकिन इन्होंने इस अवधि में बहुत अधिक प्रगति की है, और अंतिम वर्षो में वे काफी उच्च क्रम पर स्थित है। इन व अन्य परिवर्तनों के कारण आधार ढांचे के सम्बन्ध में राज्यों के क्रमों के बीच सहसम्बन्ध गुणांक प्रारम्भिक व अन्तिम वर्ष में +0.35 तक निम्न रहा है।

23.3.2 सामाजिक आधार ढांचा :

सामाजिक आधार ढांचे के सूचकांक को बनाने में जिन अवयवों पर विचार किया गया है वे निम्न है :

1) शिक्षक के प्राथमिक स्तर पर भरती अनुपात।
2) उच्च प्राथमिक स्तर पर भरती अनुपात।
3) प्राथमिक स्तर पर शिक्षक– शिक्षार्थी अनुपात।
4) उच्च प्राथमिक (मिडिल) स्तर पर शिक्षक शिक्षार्थी अनुपात।
5) उच्च माध्यमिक स्तर पर शिक्षक– शिक्षार्थी अनुपात।
6) प्रति लाख जनसंख्या पर प्राथमिक स्कूलों की संख्या।
7) प्रति लाख जनसंख्या पर मिडिल स्कूलों की संख्या।
8) प्रति लाख जनसंख्या पर माध्यमिक विद्यालयों की संख्या।
9) प्रति लाख जनसंख्या पर अस्पताल में बिस्तरों की संख्या।
10) प्रति लाख जनसंख्या पर नर्सों व दाइयों (मिड वादब्स) की संख्या।
11) चिकित्सक (डाक्टर)– जनसंख्या अनुपात।

7. सन 1984–85 वह अंतिम वर्ष है जिसके लिये ये तथ्य उपलब्ध है । इन्हें यहाँ पर विचार किये गये 15 राज्यों के लिये प्रकाशित किया गया है।

तालिका 23.3 भारत में राज्यों के सामाजिक आधार ढांचे के सूचकांक

क्रमांक	राज्य	सूचकांक	
		1971–72	1984–85
1.	आध्र प्रदेश	3.08(9)	3.41(10)
2.	आसाम	3.00 (11)	3.13(15)
3.	बिहार	2.76(12)	3.26(13)
4.	गुजरात	3.27(5)	3.98(4)
5.	हरियाणा	3.08(8)	3.66(8)
6.	हरियाणा	3.20(6)	3.72(7)
7.	केरल	3.59(2)	4.32(1)
8.	मध्य प्रदेश	2.66(15)	3.39(11)
9.	महाराष्ट्र	3.64(1)	4.21(2)
10.	उड़ीसा	2.70(14)	3.44(9)
11.	पंजाब	3.18(7)	3.80(6)
12.	राजस्थान	2.72(13)	3.15(14)
13.	तमिलनाडू	3.32(4)	4.00(3)
14.	उत्तर प्रदेश	3.01(10)	3.31(12)
15.	पश्चिमी बंगाल	3.48(3)	3.92(5)

स्रोतः पूनम कपूर (1992) पर आधारित । ब्रेकट के अंग (संख्याएं) क्रम है ।

सामाजिक आधार ढांचे के सूचकों के मूल्य जिनकी गणना प्रधान अंगीय (भाग) विश्लेषण (Principal Component Analysis) और उपरोक्त वर्णित अवयवों के आधार पर की गयी है तालिका 23.3 में सन 1971–72 व 1984–85 वर्षों के लिये भारत के विभिन्न राज्यों के लिये दिये गये है, जो इस गणना के विभिन्न राज्यों को क्रम भी देती है । तालिका स्पष्ट संकेत देती है किं भारत के निम्न आय वाले राज्य –बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान व उत्तर प्रदेश सामाजिक आधार ढांचे के रूप में निम्न क्रम पर स्थित है, यद्यपि इस समय अवधि में उड़ीसा ने अपनी स्थिति में काफी विचारणीय सुधार किया है ।

उच्च आय वाले राज्यों में केवल महाराष्ट्र ने ही सामाजिक आधार ढांचे में पर्याप्त विकास कर लिया हुआ प्रतीत होता है । मध्य आय वर्ग वाले राज्य जैसे केरल, तमिलनाडू व पश्चिमी बंगाल ने सुविकसित सामाजिक आधार ढांचा प्राप्त कर लिया प्रतीत होता है । सामाजिक आधार ढांचे के रूप में भारतीय राज्यों के क्रम में प्रारम्भिक व अंतिम वर्षों के बीच अधिक परिवर्तन हुआ प्रतीत नहीं होता । वास्तव में 14 में से 9 राज्यों में जिनके क्रमों में परिवर्तन हुए, वह परिवर्तन एक तक निम्न था। इसलिये यह कोई आश्चर्य नहीं है कि दो समय बिन्दुओं के बीच राज्यों के श्रेणी सहसंबन्ध गुणांक (Rank Correlation Coefficent) + 0.87 तक उच्च पाया गया ।

23.3.3 मिला जुला सूचकांक (Composite Index)

मिला बुला सूचकांक आधार ढांचे के सूचक सभी 22 अवयवों पर विचार (शामिल) करता है । इसे आर्थिक व सामाजिक आधार ढांचे के. सूचकों के प्रथम प्रधान अंगों (अवयवों) को लेकर प्राप्त किया गया है ।[8]

तालिका 23.4 : भारत में राज्यों के आधार ढांचेगत सुविधाओं का मिलाजुला सूचकांक

क्रमांक	राज्य	सूचकांक	
		1971–72	1984–85
1.	आध्र प्रदेश	1.28(10)	1.53(9)
2.	आसाम	1.28(12)	1.46(12)
3.	बिहार	1.29(9)	1.49(10)
4.	गुजरात	1.38(7)	1.71(5)
5.	हरियाणा	1.41(5)	1.92(2)
6.	हरियाणा	1.28(11)	1.47(11)
7.	केरल	1.45(4)	1.73(4)
8.	मध्य प्रदेश	0.97(15)	1.39(15)
9.	महाराष्ट्र	1.38(6)	1.65(7)
10.	उड़ीसा	1.24(13)	1.45(13)
11.	पंजाब	1.87(1)	2.11(1)
12.	राजस्थान	1.16(14)	1.44(14)
13.	तमिलनाडू	1.53(3)	1.91(3)
14.	उत्तर प्रदेश	1.32(8)	1.54(8)
15.	पश्चिमी बंगाल	1.64(2)	1.70(6)

स्रोत : पूनम कपूर (1992) पर आधारित । बेकट के अंग (संख्याएं) क्रम है ।

आधार ढांचागत सुविधाओं का भारत का सर 1971–72 व 1984–85 वर्षों के लिये मिलाजुला सूचकांक तालिका 23.4 में दिया गया है, जो इनके आधार पर राज्यों का क्रम भी देना है । तालिका में यह स्पष्ट है कि निम आय वाले राज्यों में मध्य प्रदेश राजस्थान व उड़ीसा आधार ढांचागत विकास के रूप में भी निम्न क्रम पर स्थित है । उच्च आय वाले राज्यों में केवल पंजाब इसके आधार पर भी दोनों समय बिन्दुओं पर सापेक्षित रूप में अपने उच्च स्थान पर कायम है । दो अन्य उच्च आय वाले राज्य हरियाणा व गुजरात के प्रारम्भिक वर्ग

8. अन्य के साथ कुंडु (kundu) 1980 ने मिले जुले सूचकांक की गणना के लिए इस प्रकार की विधि को अपनाने के कारण दिये है देखिये Kundu, A (1980) : Measerment of Urban Processes : A Study of Regionalisation, Popular Prakashan (Bombay)

में समानुपाती क्रम पर. नहीं है, लेकिन समय के साथ अपनी सापेक्ष स्थिति में काफी सुधार करते है, और अंतिम वर्ष में काफी उच्च क्रम पर स्थित है । कुछ मध्यम आय वर्गी राज्य जैसे केरल व तमिलनाडू इस गणना के आधार पर काफी उच्च क्रम पर स्थित है, जबकि आसाम मध्यम वर्गी राज्यों में एक ऐसा ज्वलंत उदाहरण है जो आधार ढांचागत विकास के रूप में काफी निम्न क्रम पर है । आधार ढांचागत विकास के रूप में राज्यों के क्रम में प्रारम्भिक व अंतिम वर्षों के बीच बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ प्रतीत होता है । विचार किये गये 15 राज्यों में से 9 राज्यों के क्रम में वास्तव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था । 6 राज्यों में जिनके क्रम में परिवर्तन अनुभव किया गया, उनमें से 3 राज्यों में परिवर्तन मात्रा केवल एक थी । इन: सभी के परिणामस्वरूप, आधार ढांचे के रूप में प्रारम्भिक व अंतिम वर्षों के बीच राज्य का श्रेणी (Rank) सहसंबन्ध उच्च + 0.94 तक है ।

23.4 स्वयं के द्वारा सीखने के अभ्यास के प्रश्न

सही उत्तर पर टिक का निशान लगाइये।

1. आर्थिक आधार ढांचा किसका माप है?
   (क) सड़के
   (ख) संदेशवाहन
   (ग) ऊर्जा सुविधाएँ
   (घ) बैक
   (ङ) उपरोक्त सभी।
2. सामाजिक आधार ढांचा।
   (क) सर्च समाज को प्रभावित करता है।
   (ख) अर्थव्यवस्था पर अल्प–कालीन व शीघ्र प्रभाव डालता है।
   (ग) केवल दीर्घ कालीन प्रभाव डालता है जो अल काल में उतरने प्रभावी नहीं होते।
3. आधार ढांचे का परिणाम होता है–
   (क) उत्पादन के साधनों का नवीन संयोग।
   (ख) उत्पादन की लागतों की कमी में सहायक।
   (ग) आयात नहीं किया जा सकता। ।
   (घ) दीर्घ कालीन निर्माण अवधि। ।
   (ङ) सभी गुणों से समान है।
4. असंतुलित विकास का अर्थ हो सकता है–
   (क) आधार ढांचे, में अतिरिक्त क्षमता।
   (ख) आधार ढांचे की कमी ।
   (ग) या तो (क) या (ख)
5. प्रधान अंगीय विश्लेषण (Principal Component Analysis) एक विधि है जो–
   (क) आधार ढांचे को अवयवों (भागों) में विभाजित करती है।

(ख) आधार ढांचे में सर्वाधिक महत्व के क्षेत्र को स्पष्ट करती है ।

(ग) विभिन्न सूचकों को एक मिले जुले सूचकांक में मिलाती है ।

6. भारतीय राज्यों की क्रम स्थिति में काफी परिवर्तन निम्न में से किसके सम्बन्ध में हुआ है?

(क) आर्थिक आधार ढांचा ।

(ख) सामाजिक, आधार ढांचा ।

(ग) संपूर्ण आधार ढांचा ।

7. आधार ढांचागत उच्च विकास किस राज्य में हुआ है?

(क) राजस्थान

(ख) हरियाणा

(ग) केरल ।

23.5 सारांश

आधार ढांचा जिसे सामाजिक ऊपरी व्यय (Social Overheads) के रूप में भी किया जाता है, आधारभूत सुविधाओं का होता है, जिनकी आवश्यकता अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में क्रियाओं को करने के लिये आवश्यक होती है । यह सामान्य हें कि आर्थिक आधार ढांचे जैसे सड़कें, रेल मार्ग, संदेशवाहन, बैक आदि, और सामाजिक आधार ढांचे जैसे स्वास्थ्य व शिक्षा सुविधाओं के बीच अन्तर किया जाये । आर्थिक विकास आधार ढांचे के विकास के साथ–साथ होता है । यद्यपि सभी अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों और आधार ढांचे के बीच संतुलित विकास पर जोर देते है, मगर इस बात पर विवाद है कि क्या आधार ढांचे को आर्थिक विकास का मुख्य चालक (कार्य करने का प्रेरक) माना जाये अथवा, इसे आर्थिक विकास का साथी (दासी) माना जाये? इस तथ्य के कारण उठने वाली कठिनाइयों के कारण कि आधार ढांचे के भागों (अंगो) को एक बड़ी संख्या के सूचकों के द्वारा मापा जा सकता है, और आधार ढांचे के विकास का एक संक्षिप्त व सारगर्भित माप निकालने के लिये उन विभिन्न अंगों को भार (Weight) दिया जाना आवश्यक है । प्रधान अंगीय विश्लेषण का उपयोग आधार ढांचागत विकास के मिलेजुले सूचकांक की गणना के लिये किया जाता है इस विचार की जानकारी के अधीन कि सभी प्रकार के विश्लेषणों के लिये कोई भी आदर्श क्षेत्र नहीं है । और यह तथ्य कि राज्य कुल सीमा तक भाषा, संस्कृति, तथ्य (आकड़ों) एकत्रीकरण व नियोजन के रूप में सजातीय है । और कि राज्य राजनैतिक प्रशासकीय क्षेत्र है, राज्यों को क्षेत्रों के रूप में लिया गया है ।

प्रधान अंगीय विश्लेषण की सहायता से तैयार किये गये मिले जुले सूचकांक के आधार पर आधार ढांचागत विकास के अभी हाल के अध्ययन के परिणामों को सन 1971–72 व सन 1984–85 के वर्षो के लिये प्रस्तुत किया गया है । ये सूचकांक आधार ढांचागत विकास में अन्तर्राज्यीय विषमताओं के पाये जाने को सूचित करते है । निम्न आय वाले राज्य जैसे मध्य प्रदेश, उड़ीसा व राजस्थान दोनों समय बिन्दुओं पर आधार ढांचे के सम्बन्ध में निम्न क्रम पर स्थित है । इसी प्रकार, पंजाब जो एक उच्च आय वाला राज्य है, वह आर्थिक व संपूर्ण आधार

ढांचे के सम्बन्ध में काफी उच्च क्रम पर है, यद्यपि हम अगर सामाजिक आधार ढांचे पर विचार करें नो यह स्थिति सही नहीं पायी जाती । केरल और तमिलनाडू मध्य आय वर्ग के राज्य है, जिनका सामाजिक व संपूर्ण आधार ढांचागत विकास के रूप में उच्च क्रम है । हरियाणा व गुजरात उच्च आय वर्ग वाले राज्यों के ऐसे उदाहरण प्रतीत होते है, जो आधार ढांचागत विकास के सम्बन्ध में अपनी सापेक्ष स्थितियों (क्रमों) में तीव्र छलांगें लगा रहे है । आर्थिक ढांचे के सम्बन्ध में कुछ राज्यों की सापेक्ष स्थिति में कुछ विचारणीय परिवर्तन है मगर यह बात सामाजिक व सम्पूर्ण आधार ढांचे के सम्बन्ध में सही प्रतीत नहीं होती।

23.6 शब्दावली (Key Words)

क्षेत्र – (Region)

आधार ढाँचा – (Infrastructure)

सामाजिक ऊपरी–व्यय ली – (Social Overhead Capital)

प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाएँ – (Directly Productive Activities)

असंतुलित विकास – (Unbalanced Development)

आर्थिक आधार ढाँचा या संरचना – (Economic Infrastructure)

प्रधान अंग या अंगीय विश्लेषण – (Principal Component Analysis)

23.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Hirschman, A.O.(1961), The Strategy of Economic Development, Yale University Press, New Haven.

Mahesh Chand and V.K. Puri(1983), Regional Planning in India, Allied, Delhi.

Poonam Kapur(1992) Mimeographed, Inter–State Disperities in Infrastructural Facilities in India, Department of Business Economics, University of Delhi.

23.8 स्वयं के द्वारा सीखने के अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

(1) अ	(2) ग	(3) अ	(4) ख
(5) ग	(6) ख	(7) ग	

इकाई 24

राज्यों के अन्तर्गत अंत: क्षेत्रीय विषमतायें, राजस्थान के विशेष संदर्भ में

विषय सूची

24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में राजस्थान की स्थिति

24.3 राजस्थान में अन्त: क्षेत्रीय विषमता के सूचक

24.3.1 जनसंख्या – घनत्व व वितरण

24.3.2 लिंग अनुपात

24.3.3 कार्मिक जनसंख्या

24.3.4 साक्षरता के अनुसार जनसंख्या का अनुपात

24.3.5 ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या

24.3.6 औद्योगिक विकास

24.3.7 खनिज संसाधन

24.3.8 शक्ति संसाधन

24.3.9 सड़कों विकास

24.3.10 कृषि

24.4 क्षेत्रीय असमानताओं के कारण

24.5 क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के सुझाव

24.6 सारांश

24.7 निबन्धात्मक प्रश्न

24.8 शब्दावली

24.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

24.0 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य राजस्थान के विशेष संदर्भ में अन्त: क्षेत्रीय विषमताओं का अध्ययन करना है । इसमें यह बताया गया है कि विषमताओं के सूचक क्या है? विभिन्न क्षेत्रों में विषमताओं के कारण क्या है, तथा इनको दूर करने के क्या उपाय अपनाये जा सकते है ।

24.1 प्रस्तावना

भारत जैसे संघीय राज्य के समुचित विकास के लिये संतुलित वृद्धि आवश्यक है, किन्तु यहां अत्यधिक क्षेत्रीय विषमतायें देखने को मिलती है । कुछ राज्य आर्थिक रूप से विकसित है,

जबकि कुछ सापेक्षतया पिछड़े है । यहां तक कि प्रत्येक राज्य में कुछ क्षेत्र ज्यादा विकसित है, जबकि कुछ प्राथमिक अवस्था में है ।

सापेक्षतया विकसित तथा आर्थिक रूप से कमजोर राज्यों तथा राज्यों में विकसित तथा कमजोर क्षेत्रों की उपस्थिति को अन्त:क्षेत्रीय विषमता कहते है। अन्त: क्षेत्रीय विषमतायें प्राकृतिक संपदा की विषमता अथवा मनुष्यकृत अर्थात कुछ क्षेत्रों की उपेक्षा तथा निवेश तथा विकास प्रयासों के लिये कुछ की प्राथमिकता के कारण हो सकती है।

प्रादेशिक असमानताओं का अध्ययन विभिन्न राज्यों के बीच किया जा सकता है जिसे अन्तर्राज्यीय असमानता (Inter–State Inequality) कहते है। यह एक राज्य के अन्दर या विभिन्न जिलों के बीच या खण्डों के बीच किया जा सकता है जिसे राज्य के अन्दर की असमानता (Intra - State Inequality) कहते है।

इस अध्याय में हम राजस्थान के विशेष संदर्भ में क्षेत्रीय विषमता का अध्ययन करेंगे।

राजस्थान अपने वर्तमान रूप में 1 नवम्बर, 1956 में 19 देशी रियासतों तथा 3 सामन्ती राज्यों के एकीकरण से गठित हुआ था। वर्तमान में राज्य 32 जिलों में विभक्त है। राजस्थान का क्षेत्रफल 3.42 लाख वर्ग किलोमीटर है और मध्य प्रदेश के बाद यह भारत का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है।

24.2 भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की स्थिति

भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में राजस्थान की अर्थव्यवस्था के कुछ प्रमुख सूचक निम्न तालिका में प्रस्तुत किये गये है –

तालिका 24.1

भारतीय अर्थव्यवस्था मे राजस्थान की स्थिति

सं.	मद	वर्ष	राजस्थान	भारत	राजस्थान का समस्त भारत में अंश या अन्य टिप्पणी
1.	जनसंख्या	1991	4.40 करोड़	84.63 करोड़	5.2 प्रतिशत
2.	क्षेत्रफल	1991	3.42 करोड़ वर्ग किमी.	32.76 करोड़ वर्ग किमी. (संघीय प्रदेश छोड़कर)	10.45 प्रतिशत (देश में दूसरा स्थान)
3.	जनसंख्या की वाषिक चक्रवृद्धि दर	1981–91	2.50 प्रतिशत	2.14 प्रतिशत	भारत से ज्यादा
4.	कुल साक्षरता–दर (7 वर्ष व अधिक आयु वर्ग में)	1991	38.55 प्रतिशत	52.21 प्रतिशत	भारत से नीची

5.	घनत्व (प्रति वर्ग किमी. में जनसंख्या)	1991	129	274	भारत से कम
6.	अनुसूचित जाति का जनसंख्या में अनुपात	1991	17.29 प्रतिशत	16.33 प्रतिशत	भारत से थोड़ा ज्यादा
7.	अनुसूचित जनजाति का जनसंख्या में अनुपात	1991	12.64 प्रतिशत	8.01 प्रतिशत	भारत से काफी ज्यादा
8.	खाद्यानों में क्षेत्रफल	1995	11.88 मिलियन हेक्टेयर	123.5 मिलियन हेक्टेयर	9.6 प्रतिशत (लगभग1/10)
9.	रिर्पोटिंग फैक्ट्रियों प्रतिशत की संख्या	1992–93	3958	119494	3.3 प्रतिशत
10.	प्रति हैक्टेयर उर्वरकों का उपयोग	1995–96	31.86 किलोग्राम	74.81 किलोग्राम	भारतीय स्तर का 43 प्रतिशत
11.	जोतों का औसत आकार	1990–91	4.11 हैक्टेयर	1.68 हैक्टेयर	भारत का 2.5 गुना
12.	इन्फ्रास्ट्रक्चर के सापेक्ष विकास का सूचकांक	1992–93	80	100	राष्ट्रीय स्तर का 4/5
13.	विद्युत का प्रति उपभोग	1993–94	254कि.वाट घंटे	299कि. वाट घंटे	राष्ट्रीय स्तर का व्यक्ति 85 प्रतिशत
14.	सड्कों की लम्बाई (प्रति 1०० वर्ग किमी. क्षेत्र में)	1995–96	39.3 किलोमी.	62.1 किलोमी.	राष्ट्रीय औसत के आधे से कुछ अधिक
15.	ग्रामीण विहुतीकरण	1995–96	82.3 प्रतिशत	85 प्रतिशत से अधिक	राष्ट्रीय स्तर से कुछ कम
16.	प्रति व्यक्ति आय (1980–81 के मूल्यों पर	1995–96	2051 रुपये	2573 रुपये	राष्ट्रीय स्तर से कुछ कम

स्रोत : Report on Currency and Finance, Vol.1, 1995–96 Economic Survey 1996–97 (GOI) and Economic Review 1996–97(GOR)

24.3 राजस्थान में अन्त:क्षेत्रीय विषमता के सूचक

राजस्थानके अन्दर विभिन्न जिले लंबे क्षेत्रों के मध्य विषमताओं का अध्ययन हम निम्नलिखित सूचकों के आधार पर करेगें –

(1) जनसंख्या

(2) लिंग अनुपात

(3) कार्मिक जनसंख्या

(4) ग्रामीण व नगरीय जनसंख्या

(5) ग्रामीण तथा नगरीय केन्द्रों का विकास

(6) औद्योगिक विकास

(7) खनिज उत्पादन

(8) शक्ति संसाधन

(9) सड़को विकास

(10) कृषि फसलों का वितरण

24.3.1 जनसंख्या

वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की कुल जनसंख्या 440.05 लाख थी जो 3.42 लाख वर्ग किमी क्षेत्र पर विस्तृत है। समग्र राज्य में जनसंख्य का वितरण एक सा नहीं है। राज्य में जनसंख्या के औसत घनत्व 129 व्यक्ति (1991) प्रति वर्ग किमी. के संदर्भ में यह देश सत्रहवे स्थान पर है ।

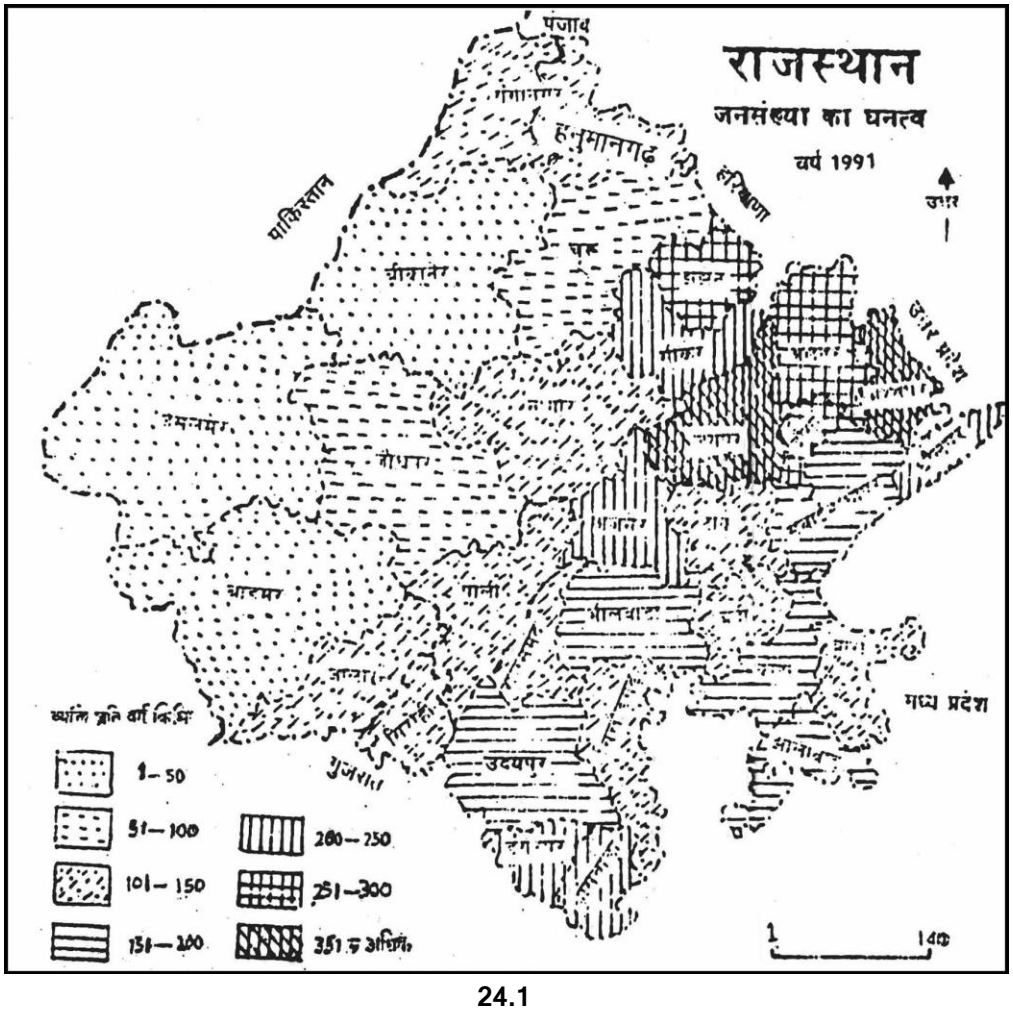

24.1

जनसंख्या घनत्व के मानचित्र देखने से स्पष्ट होता है कि अरावली के पूर्व में स्थित जिलों में जनसंख्या का औसत घनत्व 130 से 335 व्यक्ति प्रति वर्ग कि. मी. के बीच है । ट्रांस–यमुना भू–भाग में राज्य के उत्तर पूर्व में स्थित झुन्झुनू, सीकर, जयपुर, अलवर आदि जिलों में तथा दक्षिण में स्थित डूंगरपुर व बांसवाड़ा जिलों में भी जनसंख्या का घनत्व अधिक जाता है । इन जिलों में औसत घनत्व 229 से 335 व्यक्ति प्रति वर्ग कि. मी. है । बीकानेर, बाड़मेर और जैसलमेर जिलो में जनंसख्या का घनत्व 50 व्यक्ति प्रति वर्ग कि. मी. से भी कम हें । जयपुर में जनंसख्या का घनत्व अधिकतम (335) है तथा जैसलमेर में न्यूनतम (9) है ।

जनसंख्या घनत्व कई कारणों का परिणाम है । इनमें प्राकृतिक, सामाजिक, कृषि व ऐतिहासिक आदि कारकों को गिनाया जा सकता है । राज्य में जनसंख्या के केन्द्र की अवस्थिति प्राय : उपजाऊ भूमियो के चारों ओर दिखाई देती है । कृषि उपयुक्त क्षेत्रों मैं जहां जल आपूर्ति निश्चित व धरातल समतल है, जनसंख्या का घनत्व अधिक देखने को मिलता है ।

राजस्थान में जनसंख्या के औसत घनत्व की प्रकृति को देखते हुये यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जनंसख्या पूर्व से पश्चिम की ओर कम होती जाती है तथा पश्चिमी शुष्क प्रदेश में दक्षिण से उत्तर की तरफ बीकानेर तक कम होती जाती है ।

जनसंख्या का सामान्य वितरण –

वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में जनसंख्या 440.85लाख है जिसका

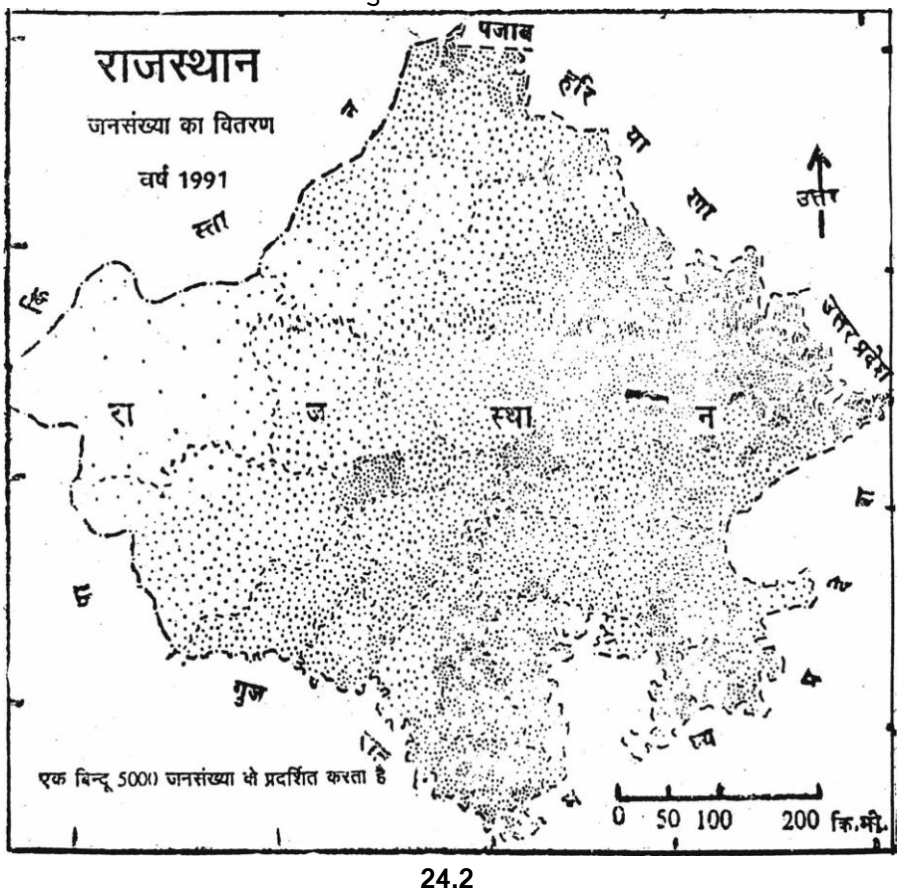

24.2

वितरण राज्य के विभिन्न भागों तथा जिलों में एक सा नहीं है। जनसंख्या के वितरण मानचित्र से स्पष्ट होता है कि जनसंख्या के वितरण को कई प्रकार के कारक प्रभावित करते हैं। राज्य की भूगर्भीय संरचना, उच्चावचन, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति तथा विभिन्न क्षेत्रों की कृषि क्षमताओं के संदर्भ में जनंसख्या के प्रतिरूपों तथा वितरण की व्याख्या की जा सकती है। सामान्यतया अरावली सृखला के पश्चिम ओर उत्तर पश्चिम की तरफ जनसंख्या का घनत्व कम होता जाता है जबकि इसके पूर्व और उत्तर पूर्व में बढ़ता जाता है।

जल की सुविधा व उत्तम खेतीहर भूमि तथा घनी जनसंख्या के बीच घनिष्ट संबंध पाया जाता है।

राज्य में सबसे अधिक जनंसख्या जयपुर जिले (47.19लाख) में और सबसे कम जनसंख्या जैसलमेर (3.43लाख) जिले में मिलती है। इस प्रकार राजस्थान की जनसंख्या का लगभग 1075 प्रतिशत जयपुर जिले में तथा 0.78 प्रतिशत जैसलमेर में निवास करता है।

राजस्थान में घनी जनसंख्या वाले जिलो में भरतपुर, जयपुर, अलवर, झुन्झुनू, धौलपुर आदि मुख्य है। जनसंख्या के वितरण पर भागों का प्रभाव स्पष्ट देखा जाता है। घनी जनसंख्या राज्य के उन्हीं भागों में पायी जाती हैं जहा उपजाऊ कच्छारी मैदान है, जहां सिंचाई की सुविधायें उपलब्ध है, अथवा जहां अच्छी वर्षा होती है। इसके विपरीत न्यूनतम जनसंख्या शुष्क अथवा पहाड़ी भागों में पाई जाती है। जनसंख्या के वितरण से संबंधित तथ्य तालिका में दर्शाये गये है।

राजस्थान के समस्त जिलों में बीकानेर जिले में सबसे अधिक वृद्धि दर लगभग 42.40 प्रतिशत रिकार्ड की है। राज्य में न्यूनतम वृद्धि दर पाली जिले मे (16.49) पाई गई है।

24.3.2 लिंग अनुपात

राजस्थान की कुल जनसंख्या में 229.36 लाख पुरूष तथा 209.45 लाख स्त्रियां है इस प्रकार राज्य में एक हजार पुरूषों के पीछे 913 स्त्रियां है। यह अनुपात राष्ट्रीय अनुपात 929 से कम हैं। भारत के संदर्भ में स्त्री–पुरूष अनुपात में राज्य सोलहवें स्थान से अठारहवें स्थान पर आ गया है। 1991 में राज्य के पन्द्रह जिलों में स्त्री–पुरूष अनुपात राज्य के औसत अनुपात से अधिक पाया गया है। ये जिले है –

डूंगरपुर (997), बांसवाड़ा (969), उदयपुर (966), पाली (957), सीकर (952), सिरोही (950) चित्तोडगढ (950), झून्झुनू (949), भीलवाड़ा (946), जालौर (942), पुरू (940), टोंक (925), अजमेर (924), एवं झालावाड़ (918), । राजस्थान के लिंग अनुपात में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में विषमता दृष्टिगत होती है। जिला स्तर पर इस अनुपात में 796 (धोलपुर) से 997 (डूंगरपुर) के बीच विषमता परिलक्षित होती है।

राज्य स्तर पर ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों के लिये लिंगतपात क्रमश: 934 और 885 है। जिला स्तर पर नगरीय क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में लिंगानुपात सामान्यतया अधिक है।

अन्त में राजस्थान में वर्ष 1981 में डूंगरपुर (1045) के अलावा बाकी सभी जिलों में पुरूषों से स्त्रियों की संख्या कम है। लेकिन वर्ष 1991 में डूंगरपुर जिले में भी पुरूषों से स्त्रियों की संख्या (997) कम रिकार्ड की गई है। मुख्यत: गंगानगर, बीकानेर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, सवाई माधोपुर, जयपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, बूदी तथा कोटा जिलों में तो 1000 पुरूषों के पीछे 900 से भी कम स्त्रियां है। इस तथ्य की पुष्टि राजस्थान के सांख्यिकीय विवरण से हो जाती है ।

तालिका 24.2

राजयस्थान की जनसंख्या से सबंन्धित तथ्यों का संखियकीय विवरण 1991

संखियकीय विवरण 1991

1. राज्य/जिला	क्षेत्रफल वर्ग किमी.	जनसंख्या	घनत्व	दस वर्षीय वृद्धि दर		वृद्धिदर		पुरुष/स्त्री अनुपात	
				1981–91	1971–81	1901–81	1901–91	1981	1991

	राजस्थान	342239	44005990	129	+28.44	+32.97	+232.83	+327.18	919	913
1.	गगांनगर	11934	1402444	117	+29.01	+45.62	+1315.60	+1725.77	874	878
2.	बीकानेर	27244	1211140	44	+42.06	+48.08	+446.70	+534.85	891	887
3.	चूरू	16830	1543211	92	+30.52	+34.88	+453.64	+491.68	954	940
4.	झुंझुनू	5928	1582421	265	+29.21	+30.39	+354.90	+358.32	956	949
5.	अलवर	8380	2296580	274	+30.25	+27.32	+207.60	+168.55	892	889
6.	भरतपुर	5066	1651584	326	+26.74	+36.43	+210.03	+175.28	848	835
7.	सवाई माधोपुर	10527	1803471	171	+27.21	+28.68	+149.75	+217.65	867	857
8.	जयपुर	10801	3887895	360	+37.24	+37.79	+282.50	+289.12	895	892
9.	सीकर	7732	1842914	239	+33.35	+32.09	+186.29	+293.59	963	952
10.	अजमेर	8481	1729207	204	+19.63	+25.50	+172.72	+226.46	922	924
11.	टोंक	7194	975006	137	+24.18	+25.21	+200.24	+273.13	928	925
12.	जैसलमेर	38401	344517	9	+44.37	+45.77	+222.66	+354.86	811	810
13.	जोधपुर	22850	2153483	94	+27.57	+44.68	+292.47	+401.24	909	904
14.	नागौर	17718	2144810	121	+31.23	+29.04	+210.87	+307.70	958	949
15.	पाली	12387	1486432	120	+16.49	+31.39	+223.60	+227.98	947	949
16.	बाडमेर	28387	1435222	51	+28.10	+44.41	+257.50	+357.79	904	891
17.	जालौर	10640	1142563	107	+26.41	+35.20	+233.31	+320.69	942	942
18.	सिरोही	5136	654029	128	+20.53	+27.90	+332.50	+300.90	963	950
19.	भीलवाड़ा	10455	1593128	152	+21.43	+24.22	+371.10	+351.10	942	946
20.	उदयपुर	11651	2066380	177	+22.41	+30.68	+326.99	+422.56	977	966
21.	चितौड़गढ़	10856	1484190	137	+20.27	+30.32	+423.40	+385.96	951	950
22.	डूंगरपुर	3770	874549	232	+28.04	+28.78	+583.00	+773.43	1045	997
23.	बांसवाड़ा	5037	1155600	229	+30.27	+35.44	+443.17	+598.50	984	969
24.	बूंदी	5550	770248	138	+25.51	+30.72	+242.69	+328.52	887	891
25.	कोटा	5111	1220505	239	+32.10	+36.36	+337.70	+347.00	888	888
26.	झालावाड़	6219	956971	154	+21.72	+26.21	+310.30	+276.70	926	918
27.	धौलपुर	3034	749479	247	+27.91			+150.66	796	796
28.	दौसा	3466	994431	287						898
29.	बारा	7195	810326	113						892
30.	राजसमन्द	4734	822721	174						961
31.	हनुमानगढ	9965	1220333	123						902

स्रोत : जनगणना समंक 1991

24.3.3 कार्यिक जनसंख्या

राजस्थान में मुख्य श्रमिक (Main worker) सीमान्त श्रमिक (Marginal workers) तथा अकार्यरत श्रमिक (Non workers) आदि के आकड़ों का तुलनात्मक अध्यन्न करने पर यह स्पष्ट होता है कि राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग 63 प्रतिशत भाग अकार्यरत श्रमिकों का है । मुख्य कार्मिक जनसंख्या लगभग 30 प्रतिशत से कुछ अधिक है । जबकि सीमान्त कार्मिक जनसंख्या कुल जनसंख्या की केवल 6 प्रतिशत है । जिला स्तर पर भीलवाड़ा में सबसे अधिक अनुपात लगभग 38.41 प्रतिशत मुख्य कार्मिक जनसंख्या का है जबकि

निमतम 24.45 प्रतिशत झुन्झुनू जिले में है । इस प्रकार सीमान्त श्रमिकों का अधिकतम प्रतिशत 17.21 डूंगरपुर जिले में मिलता है और सबसे कम 3.18 प्रतिशत अजमेर जिले में है। कुल जनसंख्या के अकार्यरत श्रमिकों का अधिकतम अनुपात सीकर जिले में पाया जाता है जबकि चितौडगढ में यह सबसे कम है ।

राज्य की कुल पुरूष जनसंख्या का 49.65 प्रतिशत पुरुष कार्मिक जनंसख्या है । पुरूष कार्मिक जनसंख्या में से विभिन्न वर्गों में जैसे कृषि कार्यो में 61.4 प्रतिशत, खेतीहर श्रमिक के रूप में 5. 97 प्रतिशत, पारिवारिक उद्योगों मे 3.7 प्रतिशत और अन्य आर्थिक क्रियाओं में 28.9 प्रतिशत कार्मिक श्रमिक संलग्न थे ।

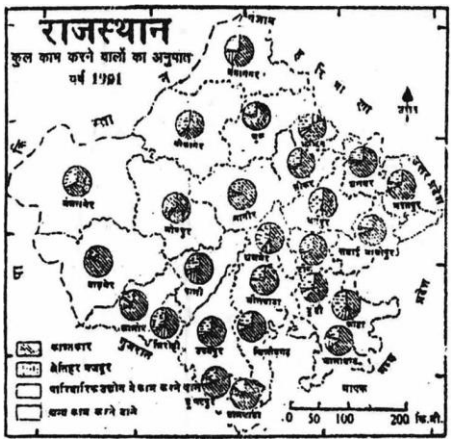

राजस्थान में कायिर्क जनसंख्या का अनुपात

24.3

कुल स्त्रियों की जनसंख्या में से लगभग 9.4 प्रतिशत मुख्य श्रमिक 11.7 प्रतिशत सीमान्त श्रमिक तथा शेष 78.85 अकार्यरत श्रमिकों के रूप में है । मुख्य स्त्री श्रमिकों का सबसे अधिक केन्द्रीकरण अजमेर जिले में (18.95) मिलता है । और सबसे कम भरतपुर जिले (2.75) है सीमान्त स्त्री श्रमिकों में डूंगरपुर में 30.98 प्रतिशत अधिकतम केन्द्रीकरण दृष्टिगत होता है । जहां आदिवासी साधारणतया वनों की उपज तथा स्थानांतरित कृषि अथवा मजदूरी पर निर्भर है । अजमेर जिले में सीमान्त स्त्री, श्रमिकों का सबसे कम प्रतिशत (5.71) मिलता है ।

24.3.4 साक्षरता के अनुसार जनसंख्या का अनुपात

देश के अन्य राज्यों की तुलना में राजस्थान में साक्षरता बहुत कम है । भारत में साक्षरता का औसत 52.11 प्रतिशत है जबकि राजस्थान में यह 38.81 प्रतिशत ही है । 1991 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या में पुरूषों की साक्षरता दर 55.07 एवं स्त्रियों में 20.84 प्रतिशत है।

राज्य में ग्रामीण क्षेत्रों की औसत साक्षरता दर 19.73 प्रतिशत है । जिला स्तर पर बाड़मेर जिले में यह 10.35 प्रतिशत है । जो ग्रामीण क्षेत्रों की दृष्टि से सबसे कम है । झुन्झुनू जिले में साक्षरता दर अधिकतम 24.81 प्रतिशत मिलती है । राज्य में नगरीय क्षेत्रों की

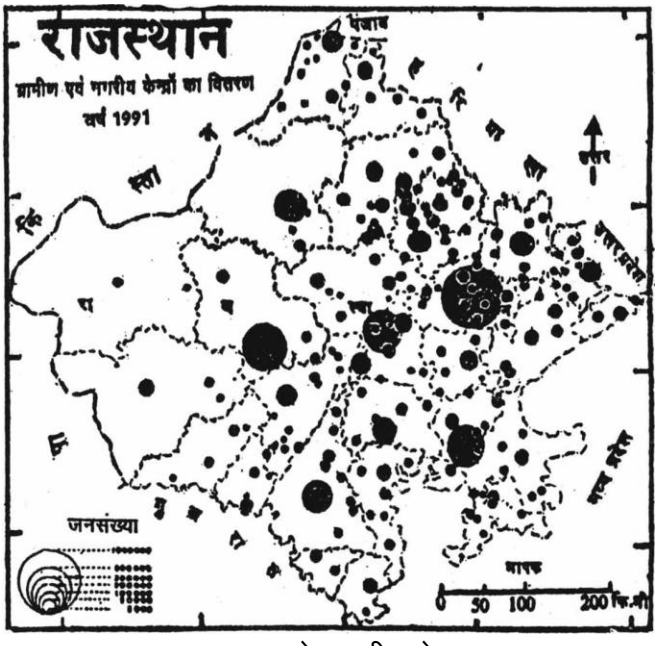

राजस्थान के नगरीय केन्द्र

24.4

साक्षरता दर लगभग 48 प्रतिशत है । बांसवाड़ा जिला जो कि आदिवासी जिला है, राज्य में नगरीय क्षेत्रों की दृष्टि से सबसे अधिकतम 59.28 प्रतिशत साक्षरता दर दिखाता है जबकि सबसे कम 36.12 प्रतिशत साक्षरता दर नागौर जिले में मिलती है ।

समग्र राज्य में जिला स्तर पर अजमेर जिले में सबसे अधिक साक्षरता दर 42.83 प्रतिशत तथा सबसे निम्नतम बाड़मेर जिले में 18.35 प्रतिशत पाई जाती है । इसी प्रकार बिल्कुल एक जैसा प्रतिरूप पुरूषों और स्त्रियों की साक्षरता दर में पाया जाता है ।

24.3.5 ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या

1991 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या में ग्रामीण जनसंख्या 338.4 लाख है। राज्य की जनसंख्या का लगभग 1००. 4 लाख है । राज्य की जनसंख्या का लगभग 77. 12 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 2288 प्रतिशत नगरीय क्षेत्रों में निवास करता है ।

राजस्थान मौलिक रूप से कृषि और ग्रामीण राज्य है । ग्रामीण जनसंख्या लगभग 37124 गांवों में रहती है । उक्त गांवों में से लगभग 60 प्रतिशत गांव छोटे आकार के है । जिनकी जनसंख्या 500 से भी कम है जो ग्रामीण का 29.5 प्रतिशत बनाते है । लगभग 22.80 प्रतिशत गांव ऐसे है जिनकी आबादी 500 – 999 के बीच है । जहां जनसंख्या का 28 प्रतिशत निवास करता है । इस प्रकार 83 प्रतिशत गांव 1000 या इससे कम आबादी वाले गांव है । जिनमें राज्य की लगभग 52 प्रतिशत जनसंख्या रहती है । ये आकड़े स्पष्ट करते है कि राजस्थान छोटे आकार के कृषि गांव रखता है ।

इन गांवों का प्रादेशिक वितरण बताता है कि ये अधिकांशत : पश्चिमी रेतीले मैदानी क्षेत्र और अरावली पहाड़ी प्रदेश में छितरे हुये स्थित है । इन प्रदेशों में शुष्कता व उच्चावचन की दशायें बड़े आकार के गांवों के विकास के लिये अनुकूल नहीं है ।

देश के अन्य राज्यों की भांति राजस्थान में भी नगरीय जनसंख्या बड़ी तेजी सें बढ़ रही है । राज्य में नगरीय जनसंख्या जो 1991 में 22.88 प्रतिशत थी । राज्य के मुख्य बड़े शहरों कें द्वारा गत तीन दशकों में रिकार्ड की गई वृद्धि दरों को निम्न तालिका में दिखाया गया है–

तालिका 24.3

राजस्थान के प्रमुख शहरों की वृद्धि दर

1961–91

शहर	61–71	स्थान	71–81	स्थान	81–91	स्थान
कोटा	77.0	1	62.9	1	49.8	4
जयपुर	52.5	2	57.1	2	48.9	6
उदयपुर	45.1	3	42.5	7	32.3	9
जोधपुर	4.3	4	55.4	3	28.1	12
अलवर	38.1	5	39.5	9	44.8	7
बीकानेर	25.3	6	30.4	11	64.1	1
अजमेर	14.3	7	41.6	8	7.0	14
भरतपुर	–	–	54.7	4	48.9	5
भीलवाड़ा	–	–	48.9	5	49.9	3
गंगानगर	–	–	37.4	10	30.5	10
सीकर	–	–	45.1	6	44.0	8
पाली	–	–	–	–	50.8	2
व्यावर	–	–	–	–	18.6	13
टोंक	–	–	–	–	29.0	11

तालिका 24.3

राजस्थान के प्रमुख शहरों की जनसंख्या

शहर	1961	1971	1981	1991
जयपुर	403.5	615.3	977.2	1454.7
अजमेर	281.2	264.6	375.6	401.9
जोधपुर	224.8	317.7	506.3	648.7
बीकानेर	150.7	188.5	253.2	415.4
कोटा	120.3	213.0	358.2	536.5
उदयपुर	111.1	161.3	232.6	307.7
अलवर	72.7	100.4	145.8	211.2

भरतपुर	–	68.0	105.3	156.9
भीलवाड़ा	–	82.2	122.6	183.8
गंगानगर	–	90.0	123.7	161.3
सीकर	–	71.0	103.0	148.2
पाली	–	–	90.7	136.8
व्यावर	–	–	90.0	106.7
टोंक	–	–	77.7	100.2

24.5 औद्योगिक विकास

राजस्थान को औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ राज्य माना जाता है । 1992 – 93 में भारत में पंजीकृत फैक्ट्रीयों का 3.3 प्रतिशत राजस्थान में था । फैक्ट्री में रोजगार की दृष्टि से राजस्थान का समस्त भारत में अंश 3 प्रतिशत, जबकि महाराष्ट्र का 14.7 प्रतिशत था । विनिर्माण द्वारा जोड़े गये शुद्ध मूल्य में भी राजस्थान का अंश 3.3 प्रतिशत ही था जो समस्त भारत का 1/33 वां भाग था । इस प्रकार फैक्ट्री क्षेत्र में विभिन्न सूचकों जैसे की संख्या, विनियोजित पूंजी रोजगार, उत्पति के मूल्य व विनिर्माण द्वारा वर्जित मूल्य में राजस्थान का अंश समस्त भारत की तुलना में 3.0 प्रतिशत ही आता है । इस प्रकार राजस्थान का फैक्ट्री क्षेत्र में अपेक्षाकृत नीचा स्थान है ।

राजस्थान में 27 जिलों में फैक्ट्रियों का वितरण काफी असमान पाया जाता है । निम्नांकित तालिका में 1970 तथा 1992 – 93 के लिये विभिन्न जिलों के अनुसार फैक्ट्रीयों की संख्या व उनमें संलग्न कर्मचारियों की संख्या दी गई है, जिससे जिलेवार तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है ।

अग्र तालिका से स्पष्ट है कि 1970 से 1992 – 93 के बीच रिपोर्टिंग फैक्ट्रीयों की संख्या 1022 से बढ़कर 3839 हो गई । इसमें संलग्न कर्मचारियों की संख्या 1.1 लाख से बढ़कर 2.63 लाख हो गई है ।

तालिका 24.5

राजस्थान मे उद्योगों कार प्रादेशिक अथवा जिलेवार फैलाव

क्र.	जिले का नाम	फैक्ट्रीयो की संख्या		कर्मचारियों की संख्या	
		1970	1992–93	1970	1992–93
1.	अजमेर	149	277	17118	20421
2.	अलवर	14	237	470	18785
3.	बांसवाड़ा	5	26	227	1843
4.	बाडमेर	2	102	147	1679
5.	भरतपुर	21	69	318	6368
6.	भीलवाड़ा	45	279	5043	22174
7.	बीकानेर	46	164	3099	5786

8.	बूंदी	12	30	2370	2571
9.	चित्तौडगढ	35	68	1637	6347
10.	चूरू	5	22	113	681
11.	डूंगरपुर	–	2	–	1697
12.	धौलपुर	–	5	–	660
13.	गंगानगर	114	328	7292	12172
14.	जयपुर	234	उच्चतम 863	36891	उच्चतम 83002
15.	जैसलमेर	1	3	15	70
16.	जालौर	2	निम्नतम 1	21	निम्नतम 20
17.	झालावाड़	12	22	1377	3150
18.	झुझुनू	3	10	36	3587
19.	जोधपुर	76	338	6240	14359
20.	कोटा	75	97	11835	16748
21.	नागौर	41	63	1206	1604
22.	पाली	47	389	5431	10803
23.	सवाई माधोपुर	10	18	2724	1583
24.	सीकर	5	34	153	2362
25.	सिरोही	9	69	208	4344
26.	टोंक	3	25	96	1770
27.	उदयपुर	56	298	4764	18372
	कुल	1022	3839	111693	262958

स्रोत : ASI Reports for 1970 and 1992–93, DES, jaipur (1992–93 Report published in July 1996) P. 114.

(1990–91 व 1991–92 जिलेवार के आकड़े तैयार नहीं किये गये है)

1992 – 93 में 200 से अधिक फैक्ट्रियों की संख्या निम्न 8 जिलों में पायी गयी थी। इसे क्रमवार निम्न तालिका में दर्शाया गया है–

तालिका 24.6

200 से अधिक कारखाने वाले जिले

क्र. संख्या	जिले का नाम	फैक्ट्रियों की संख्या	कर्मचारियो की संख्या
1.	जयपुर	863	88002
2.	पाली	389	10803
3.	जोधपुर	338	14359
4.	श्रीगंगानगर	328	12172

5.	उदयपुर	298	18372
6.	भीलवाड़ा	279	22174
7.	अजमेर	277	20421
8.	अलवर	237	18785
	कुल	3009	205088
	8 जिलों में कुल फैक्ट्रियों का अंश = 78.4%		
	इनमें कुल रोजगार का अंश = 78%		

इस प्रकार राज्य में उपर्युक्त 8 जिलों में कुल फैक्ट्रियों का लगभग 78% अंश पाया गया तथा शेष 19 जिलों में 22% अंश ही पाया गया। इन्हीं आठ जिलों में कुल फैक्ट्री–रोजगार का 78% अंश पाया गया। इस प्रकार अधिकांश फैक्ट्रियाँ व फैक्ट्री–रोजगार इन आठ जिलों में पाया गया है। वैसे रोजगार की दृष्टि से आठ जिलों का क्रम भिन्न रहा है, जो इस प्रकार है। जैसे– जयपुर, भीलवाड़ा, अजमेर, अलवर, उदयपुर, जोधपुर, गंगानगर व पाली।

यह ध्यान देने की बात है कि 1992–93 में भी निम्न जिलों में फैक्ट्रियाँ की संख्या 10 से भी कम रही-

तालिका 24.7

10 से कम कारखाने वाले जिले

क्र. सं.	जिले	फैक्ट्रियों की संख्या
1.	धोलपुर	5
2.	डूंगरपुर	2
3.	जैसलमेर	3
4.	जालौर	1
	कुल	11

स्थलाकृति, जल, शक्ति साधनों, परिवहन व संचार साधनों व कच्चे माल की उपलब्धता उद्योगो के क्षेत्रीय वितरण को प्रभावित करते है, जैसे कोटा में औद्योगिक विकास शक्ति के साधनों को उपलब्धता के कारण अधिक हो रहा है। राज्य के जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर आदि जिलों में प्राकृतिक व स्थलाकृति संबंधी बाधाओं के कारण औद्योगिक विकास की गति कम है।

राजस्थान के प्रमुख उद्योग निम्नाकित मानचित्र में दिखाये गये है।

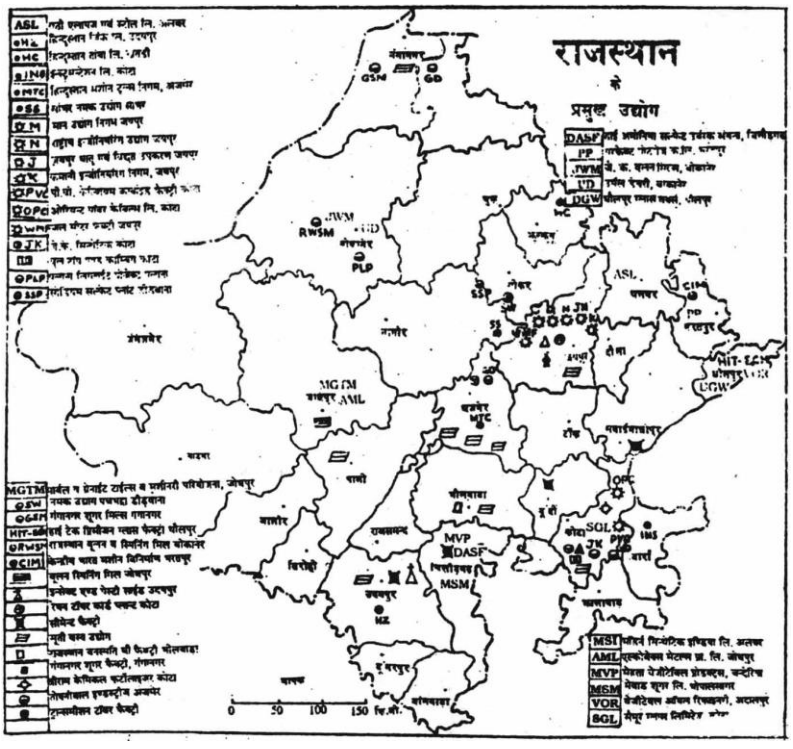

24.5

24.3.7 खनिज संसाधन

राजस्थान को खनिजों का अजायबघर कहा जाता है । यहां लगभग 46 प्रकार के खनिज उपलब्ध है । उनमें से लगभग 39 प्रकार के खनिजों का निरंतर खनन हो रहा है ।

राजस्थान में खनिजों का क्षेत्रीय विवरण किसी एक प्राकृतिक विभाग में संकेन्द्रित न होकर छितरा हुआ मिलता है तथा साथ ही खनिजों की मात्रा भी असमान है । राज्य के अधिकांश उत्पादित खनिज भीलवाड़ा, कोटा, अजमेर, जोधपुर, जयपुर, सवाई माधोपुर और टोंक आदि जिलों से खनन किये जाते है । इन जिलों में राज्य के खनिज कार्य में लगे कुल व्यक्तियों का लगभग 72 प्रतिशत संलग्न है और कुल खनिज मूल्य का 70 प्रतिशत प्राप्त होता है ।

भीलवाड़ा मुख्य रूप से अभ्रक स्टेटाइट, घीया पत्थर तथा तामडा के उत्पादन में राजस्थान में प्रथम है । कोटा चूने के पत्थर तथा अन्य इमारती पत्थरों में धनी है । अजमेर का स्थान अभ्रक, संगमरमर, एस्वेस्टास, तामडा व इमारती पत्थर में प्रमुख है । जोधपुर जिला बलुआ पत्थर, संगमरमर, इमारती पत्थर, मुलतानी मिट्टी, वालफ्राम और जिप्सम का उत्पादन करता है । उदयपुर जिला सीसा, जस्ता, गया, लोह अयस्क, अभ्रक, रॉक फॉस्फेट, संगमरमर, चूना पत्थर, स्टेटाइट और एस्वेस्टास के उत्पादन में प्रथम है । जयपुर जिले में नमक, घीया पत्थर, अभ्रक, लोह अयस्क और चूना पत्थर तथा सवाई माधोपुर जिले में इमारती पत्थर आदि का उत्पादन किया जाता है । जबकि टोंक जिले में अभ्रक व तामडा निकाला जाता है । राजस्थान में खनिज का क्षेत्रीय विवरण निम्नांकित मानचित्र में दिया गया है ।

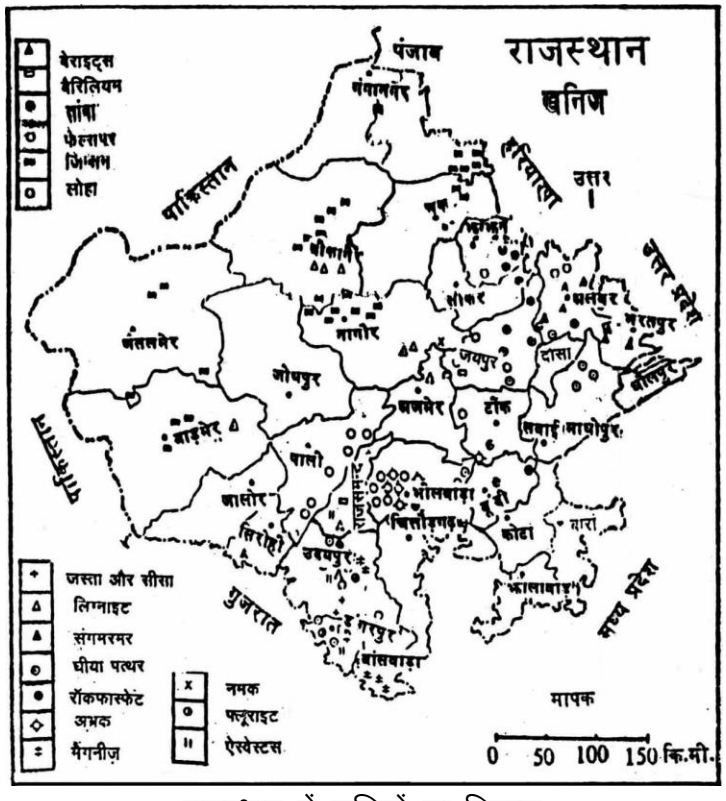

राजस्थान में खनिजों का वितरण

24.6

24.3.8 शक्ति संसाधन

आधुनिक शक्ति के साधनों कोयला, पेट्रोल एवं जल विघुत संसाधनों में राजस्थान अभाव वाला राज्य माना जाता रहा है । प्रति व्यक्ति विद्युत की खपत में राजस्थान का स्थान भारत मे आठवां है ।

यहां कोयला बीकानेर, जोधपुर व जैसलमेर क्षेत्रों में पाया जाता है । बीकानेर, नागौर व बाड़मेर जिलो में अनुमानित 10 करोड़ मीट्रिक टन लिग्नाइट के नये भण्डारों का पता चला है ।

खनिज तेल की प्राप्ति केवल अवसादी क्षेत्रों में संभव है । राजस्थान के बीकानेर व जैसलमेर जिले में तथा पश्चिमी जोधपुर में अवसादी चट्टाने पाई जाती है । इसलिये खनिज तेज की संभावनाओं से इंकार नहीं किया जा सकता है । जैसलमेर में भारती ढालपुर तेल तथा कमली ताल, घोटास व मनिहारी टिब्बा नामक स्थान पर प्राकृतिक गैस के भण्डार मिले है ।

जैसलमेर जिले का ही घोटारू क्षेत्र हीलियम मिश्रित गैस की खोज की दृष्टि से भारत का एक महत्वपूर्ण बिन्दु बन गया है ।

सितम्बर 1992 में राज्य में विदयुत उत्पादन की संस्थापित क्षमता 2775 मेगावाट है जबकि 1949 में राज्य निर्माण के समय यह क्षमता मात्र 13.27 मेगावाट थी ।

राजस्थान में शक्ति संसाधनों का विवरण तथा ऊर्जा खपत को निमांकित मानचित्र में दिखाया, गया है ।

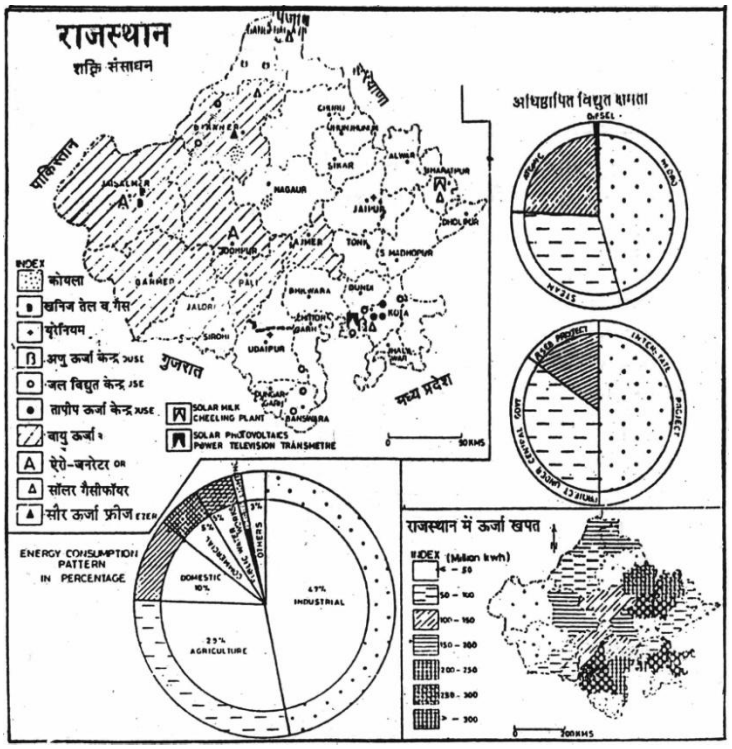

24.7

24.3.9 सड़कों का विकास

आर्थिक विकास में सड़को की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । कृषि, उद्योग, परिवहन, व्यापार, लोगों का आवागमन आदि की प्रगति बहुत कुछ सड़को के विकास पर ही निर्भर करती है ।

31 मार्च 1951 में राजस्थान में सड़को की लंबाई केवल 17,339 किलोमीटर थी, जो बढ़कर 31 मार्च 1995–96 में 70,229 किलोमीटर हो गई । इसका वर्गीकरण निम्न तालिका में दिया गया है–

तालिका 24.8

31 मार्च 1996 को राज्य में सड़कों की लम्बाई

क्र. स.		लम्बाई (किलोमीटर में)
1.	राष्ट्रीय राजमार्ग	2,846
2.	राष्ट्रीय राजमार्ग	10,006
3.	बड़ी जिला सड़कें	5,707
4.	अन्य जिला सड़कें	12,615
5.	ग्रामीण व सीमावर्ती सड़कें	39,055
	कुल	70,229

आजकल सड़को को किस्मों के अनुसार निम्न श्रेणियों में रखा जाता है -

(1) B.T.(Bitumen Treated) या डामर की सड़कें

(2) WBM (Wster Bounde Macadam) या पक्की सड़कें (Metalled Roads)

(3) Gravel Roads या मिट्टी व छोटे गोले पत्थरों को मिलाकर बनी सड़कें तथा

(4) Fair Weather Road या साधारण मौसमी सड़कें ।

तालिका 24. 9

विभिन्न प्रकार की सड़कों की लम्बाई

	(किलोमीटर में)
1. बी टी. या डामर की सड़कें	49,138
2. डब्ल्यू बी. एम (पक्की सड़कें)	3,395
3. ग्रेवल की सड़कें	10,256
4. साधारण सड़कें (एफ. डब्ल्यू. आर.)	289
कुल	67,078

राज्य में 31 मार्च 1993 को निम्न पाँच जिलो में सभी प्रकार की सड़कों की लंबाई(राष्ट्रीय राज मार्गों सहित) कुल राज्य का लगभग 1/3 अंश पायी गयी थी –

तालिका 24.10

क्रम	जिला	(किलोमीटर में)
1.	जोधपुर	4,812
2.	पाली	3,786
3.	नागौर	3,508
4.	बाड़मेर	3,502
5.	भीलवाड़ा	3,458
	कुल	19,066

31मार्च1993 को सभी जिलों में सड़र्को की लम्बाई 61,520 किलोमीटर आंकी गयी थी, उपरोक्त पांच जिलों में राज्य की सड़को की कुल लम्बाई का लगभग 31 प्रतिशत अथवा 1/3 अंश पाया गया था । इस प्रकार जिलेवार सड़र्को की लम्बाई में काफी असमानता पायी जाती है ।

मार्च 1994 के अन्त तक राज्य में ग्रामीण सड़को की प्रगति निम्न तालिका में दर्शायी गयी है –

तालिका 24.11

1971 की जनगणना के अनुसार

जनसंख्या	गावों की संख्या	मार्च 1994 के अंत तक अर्थात् 1993–94 तक सड़कों से जुड़े गांव	सड़को से जुड़े गांव (प्रतिशत के रूप में)

1.	1,5000 व अधिक	3,300	3,263	98.9
2.	1,000–1,500	2,407	1,837	76.3
3.	1,000 से कम	27,598	9,025	32.7
	योग	33,305	14,125	42.4

इस प्रकार 1971 की जनगणना के अनुसार 1993–94 के अंत तक लगभग 42 प्रतिशत गांव ही सड़को से जुड़े पाये है और आधे से अधिक गांव सड़कों से बिना जुड़े रह गये है। इनकी संख्या 19180 आकी गयी है ।

1981 की जनगणना के आधार पर सड़को से जुड़े गांवों की स्थिति अग्र तालिका में दर्शायी गयी है ।

इस प्रकार 1981 की जनगणना के अनुसार सड़को से बिना जुड़े गावों की संख्या 20,306 थी, जो कुल गांवों का लगभग 72 प्रतिशत थी । अत: आज भी राजस्थान में काफी गांव सड़को से नहीं जुड़ पाये है राज्य में सड़को के संबंध में कई प्रकार के काम करने बाकी है। जैसे सड़क की परत को मोटा करना, सड़को को चौड़ा करना तथा मार्ग में पड़ने वाले बिना पुल के नदी नालों पर पुल बनाना आदि ।

तालिका 24.12

	जनसंख्या	कुल गांव	सड़को से जुड़े गांव	सड़को से जुड़े गांवों का कुल गावों से प्रतिशत
1.	1,500 व ऊपर	4,455	4,089	91.8
2.	1,000–1,500	3,691	2,542	68.9
3.	1000 से कम	26,822	8,031	29.9
	कुल	34,968	14,662	28.0

राज्य में 31 जिले (नये करोली जिले सहित 32) है जो 207 उप खण्डों, 237 तहसीलों व 9,174 पंचायत मुख्यालयों में विभाजित है ये प्रशासनिक, आर्थिक व सामाजिक क्रियाओं के मेरूदण्ड है । इनको सड़को से जोड़ना अत्यावश्यक है ।

पंचायत मुख्यालयों में 31 मार्च 1994 तक 7,376 ही किसी तरह की सड़को से जुड़ है । शेष 1798 पी. एच क्यू. आज भी सड़को से नहीं जुड़ पाये है । भविष्य में इनकी सड़को से जोड़ने की व्यवस्था करनी होगी । यह काम आठवीं योजना के अन्तिम वर्ष 1996–97 तक काफी सीमा तक पूरा करने का लक्ष्य था ।

राजस्थान की प्रथम पंचवर्षीय योजना में सड़क विभाग पर कुल सार्वजनिक परिव्यय का 9.2 प्रतिशत आवंटित हुआ था जो घट कर सातवीं योजना में 2.9 प्रतिशत हो गया और आठवीं योजना में यह 6 प्रतिशत रखा गया था ।

राजस्थान में 1995–96 के अंत में सड़को का घनत्व बहुत कम था । यह 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के पीछे केवल 39.3 किलोमीटर था, 'जबकि राष्ट्रीय औसत 62.1 किलोमीटर

आंका गया था। भविष्य में सड़क विकास के विभिन कार्यक्रमों पर ध्यान देना होगा, जैसे बड़ी गायब कड़ियों का निर्माण करना, अन्तर्राज्यीय सड़को का निर्माण करना तथा बिना पुल के क्रोसिंग के स्थानों पर पुल बनाना आदि । स्वाभाविक है कि इसके लिए काफी पूंजी का विनियोजन करना होगा ।

सड़क विकास की नागपुर योजना के अनुसार सड़कों की लम्बाई प्रति 100 वर्ग किलोमीटर 42 किलोमीटर होनी चाहिए, जो 1961 तक प्राप्त करनी थी । लेकिन 31 मार्च 1993 के अंत में यह राजस्थान में 31.2 किलोमीटर तक ही आ पायी थी । अत : राज्य आज भी सड़क विकास की दृष्टि से काफी पीछे है ।

24.3.10 कृषि

राजस्थान की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है । राज्य की 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि व पशुपालन से ही अपना जीविकोपार्जन करती है ।

राजस्थान में कृषि तापक्रम, वर्षा के वितरण, उच्चावचन तथा मिट्टी की दशाओं से प्रभावित होती है । उच्चावचन तथा शुष्कता द्वारा निर्धारित सीमाओं के कारण राज्य के अधिकांश भाग का उपयोग कृषि कार्यों के लिये नहीं हो सकता । यहां तक कि कृषि के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र में उत्पादकता भारत के कुछ अन्य भागों की अपेक्षा काफी कम है ।

1994 में भूमि उपयोग के कुल क्षेत्रफल के 7.848 प्रतिशत पर वन थे, गैर कृषि उपयोग में 4.85 प्रतिशत भूमि, 7.84 प्रतिशत बंजर भूमि, कुल फसली क्षेत्रफल 56.25 प्रतिशत था ।

50 से. मी. की वर्षा रेखा राज्य को दो भागों में बांटती है –

(1) पश्चिमी शुष्क व अर्धशुष्क रेतीले मैदान

(2) पूर्वी अरावली पहाडी प्रदेश, बनास बेसिन और पठारी क्षेत्र

बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर, नागोर व चुरू जिलों में राज्य के कुल फसली क्षेत्र का लगभग 39 प्रतिशत तथा कृषि योग्य खाली भूमि का लगभग 73 प्रतिशत क्या जाता है । इन जिलों में कुल फसली क्षेत्र के अधिकांश भाग में बाजरा उगाया जाता है ।

राज्य में कुल बोये गये क्षेत्रफल का 28.90 भाग ही सिंचित है ।

राज्य में फसलों को अध्ययन की दृष्टि से निम्न प्रकार विभाजित किया जाता है -

1. खाद्यान्न	– गेहूं, जौ, बाजरा, ज्वार, मक्का, 'चावल, दालें, चना
2. व्यवसायिक फसलें	– गन्ना, तिलहन
3. पेय पदार्थ	– तम्बाकू
4. रेशेदार पदार्थ	– कपास

पूर्वी भाग में जहां गेहूं, मक्का, कपास, गन्ना तिलहन व चना अधिक बोया जाता है वहीं पश्चिमी भाग में बाजरा, ज्वार, मोठ, मूंग, आदि प्रमुख फसलें है।, राज्य में खाद्य फसलों के अन्तर्गत कुल फसली क्षेत्र का 71 प्रतिशत है जबकि 29 प्रतिशत क्षेत्र में बाजरा उगाया जाता है।

राजस्थान में फसलों का क्षेत्रीय विवरण इस रेखा चित्र 24.7 के द्वारा दिखाया गया है।

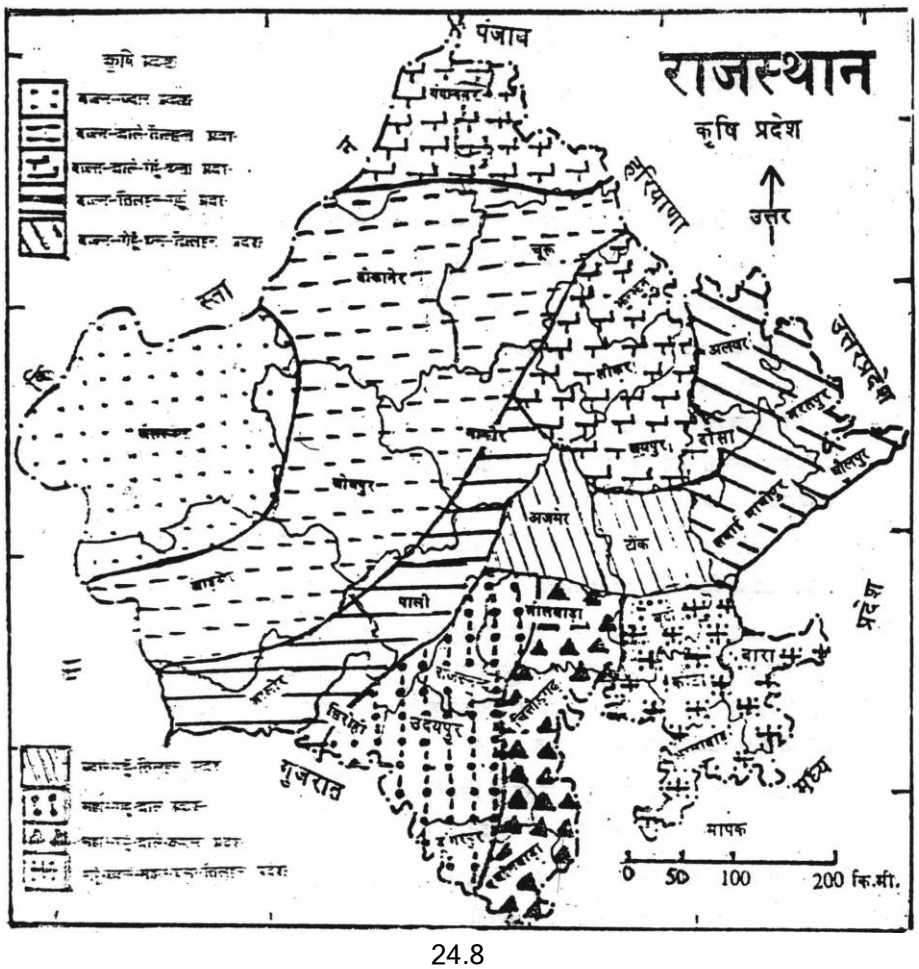

24.8

24.4 क्षेत्रीय असमानताओं के कारण

(1) **प्राकृतिक व आर्थिक साधनों मे अन्तर**

जलवायु, वर्षा, मिट्टी, खनिज पदार्थ, वन सम्पदा, शक्ति संसाधन आदि की दृष्टि से प्रदेश के भिन्न भागों में अन्तर पाये जाते है । जो विपिन क्षेत्रों के भिन्न–भिन्न विकास के लिये उत्तरदायी है ।

(2) **विनियोग की मात्रा में अन्तर**

विकास का विनियोग से सीधा संबंध होता है । आज के अपेक्षाकृत विकसित प्रदेशों में भूतकाल में काफी विनियोग हुआ है और अन्य क्षेत्रों या प्रदेशों में संभवत: कम विनियोग किया गया है । जिससे उनके बीच विषमतायें न केवल उत्पन्न हुयी है बल्कि बढ़ती गई

(3) **भारत में केन्द्रीकृत विनियोजन**

भारत में नियोजन केन्द्रीकृत कहा है जबकि राज्य के अन्दर की क्षेत्रीय असमानताओं को राज्य सरकार ही क्षेत्रीय व स्थानीय नियोजन के द्वारा दूर कर सकती है।

(4) पिछड़े तथा विशेष समस्याग्रस्त क्षेत्रों के लिये विशेष प्रयास न किया जाना ।

(5) **विविध कारण**

विकास पर जनता के दृष्टिकोण, सहयोग व साझेदारी, लोगों की सांस्कृतिक परंपराओं, ऐतिहासिक परिस्थितियों आदि अनेक तत्वों का प्रभाव पड़ता है ।

इस प्रकार विकास में निर्धारक तत्वों के असमान प्रभावों के कारण राज्य के विभिन्न जिलों कें बीच विषमतायें उत्पन्न हुयी है ।

24.5 क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने के सुझाव

(1) **आधार ढांचे को सुदृढ़ करने की नीति**

आधार ढांचे का विकास जैसे ऊर्जा, परिवहन, जल की पूर्ति आदि का समुचित विकास एक तरफ उत्पादन बढ़ाने के लिये जरूरी होना है । तों दूसरी तरफ सर्वसाधारण के उपभोग को बढ़ाने के लिये भी आवश्यक माना जाता है । ये पूंजी निर्माण में सहायक होते है । इनका विकास न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (एम.एन.पी.) के अन्तर्गत भी किया जाता है, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम सुविधायें बढ़ाई जा सकें । पिछड़े प्रदेशों में आधार भूत ढांचे को सृदृढ करने से प्रादेशिक असमानताओं को कम करने में मदद मिलती है । इससे ग्रामीण व शहरी असमानतायें भी कम होती है । अत : सर्वाधिक बल आधार भूत ढांचे को मजबूत करने पर दिया जाना चाहिये ।

(2) **बहुस्तरीय नियोजन प्रणाली**

क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के लिये बहुस्तरीय नियोजन प्रणाली को सफल बनाना होगा । इसके लिये (अ) राज्य, जिला व अन्य' नीचे के स्तरों जैसे खण्ड स्तर पर कार्यकुशल नियोजन प्रणाली को अपनाना होगा। इस प्रकार की विकेन्द्रीत नियोजन प्रणाली क्षेत्रीय असंतुलनों को कम करने के लिये आवश्यक मानी गई है ।

(आ) केन्द्र से राज्यों को एवं राज्यों से जिलों व खण्डों को विलीय साधनों का हस्तान्तरण किया जाना चाहिये और हस्तान्तरण में पिछड़ेपन को मुख्य आधार बनाया जाना चाहिए ।

(3) **अनेक केन्द्र प्रवर्तित योजनायें (Centrally Sponosored Scheme (CSS) राज्यों को हस्तान्तरित की जा सकती हैं –**

आज भी केन्द्र के पास वे बड़ी योजनायें है जिन पर व्यय की जाने वाली धनराशी बहुत ऊँची होती है जैसे एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.), जवाहर रोजगार योजना (जे.आर.वाई.) आदि । एक जैसे उद्देश्यों वाली केन्द्र प्रवर्तित योजनाओं का परस्पर विलयन किया जा सकता है । जिससे कम व्यय से अधिक लाभ प्राप्त किये जा सकें । केन्द्र द्वारा केन्द्र प्रवर्तित बड़ी स्कीमों को राज्यों को हस्तान्तरित करने से उन्हें अपनी जरूरत के मुताबिक केन्द्र द्वारा प्रदत्त कोषों का उपयोग करने का अवसर मिलेगा । इससे क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने का अवसर मिलेगा ।

इसके अलावा सामाजिक सेवाओं के विभिन्न कार्यक्रमों जैसे महिला विकास कार्यक्रम, बच्चों के कल्याण कार्यक्रम, परिवार नियोजन, प्राइमरी स्वास्थ्य सेवायें, साक्षरता आदि को एक

ही एजेंसी द्वारा उपलब्ध किये जाने से व्यय में किफायत होती है तथा अधिक लोगो को लाभान्वित किया जा सकता है ।

(4) केन्द्र को चाहिये कि वह राज्यों की विविध स्कीमों (जैसे ताप बिजली की परियोजना आदि) की स्वीकृति अधिक शीघ्रता से प्रदान करें ताकि उनका समयबद्ध तरीके से क्रियान्वयन प्रारंभ हो सके । स्वीकृति में विलम्ब होने से परियोजनाओं की लागत काफी बढ़ जाती है ओर इनको पूरा करने में भी विलम्ब होता है ।

(5) क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों व गैर सरकारी संगठनों (एन. जी. ओ.) से वित्तीय व तकनीकी सहयोग लिया जाना अत्यावश्यक है । राजस्थान ने व्यापक कृषिगत विकास फसलों के उत्पादन, पशुपालन, भू–संरक्षण, क्षारीय मिट्टी की समस्या के हल तथा सहकारिता के विकास आदि के लिये विश्व बैक से कर्ज तथा जापान, कनाडा, स्वीडन आदि से आर्थिक मदद ली है । इससे विकास प्रक्रिया को तेज करने में मदद मिलती है ।

इस प्रकार क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने में केन्द्र व राज्य के मिले जुले प्रयासों की आवश्यकता है । लेकिन प्रमुख जिम्मेदारी स्वयं पिछड़े प्रदेशों को वहन करनी होगी और इसके लिये कठिन परिश्रम करना होगा ।

24.6 सारांश

अंत: क्षेत्रीय विषमताएं कुछ तो प्रकृति की देन होती है और कुछ मानव की देन होती है। प्रकृति द्वारा कुछ क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक –संसाधन प्रदान किये जाते है और कुछ क्षेत्रों को इस मामले में एकदम कंगाल रख दिया जाता है । मानव अपने नियोजन द्वारा कुछ क्षेत्रों को विकसित कर देता है और कुछ क्षेत्रों को अविकसित छोड़ देता है । इस प्रकार क्षेत्रीय विषमताएं बनी रहती है । बल्कि मानव उन क्षेत्रों को भी प्राकृतिक संपदा का विदोहन नहीं करके गरीब ही रहने पर विवश कर देता है जिनको प्रकृति ने भरपूर प्राकृतिक संपदाएं प्रदान की है ।

राजस्थान भूमि के संबंध में देश का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है । और पूरे देश की जनसंख्या का 5.2 प्रतिशत भाग इस राज्य में निवास करता है यह देश में 17वां स्थान रखता है । और लिंग–अनुपात में देश में 18वाँ स्थान रखता है । शिक्षा के क्षेत्र में राजस्थान का स्थान बहुत नीचे है । और राज्य की 77.2 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है ।

औद्योगिक दृष्टि से राजस्थान पिछड़ा हुआ राज्य है । देश की पंजीकृत फैक्ट्रियों का मात्र 3.3 प्रतिशत राज्य में और देश की फैक्ट्रीयों में मात्र ३ प्रतिशत राजस्थान के मजदूर कार्यरत थे । खनिजों के मामले में राजस्थान समृद्धिशाली प्रान्त है । यहां पर 46 प्रकार के खनिज उपलब्ध है।

क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने के लिए आधार ढाँचें को सुदृढ़ करने की नीति बनानी चाहिए, बहुस्तरीय नियोजन प्रणाली लागू की जानी चाहिए केन्द्र प्रवर्तित योजनाओं में राज्य का हिस्सा अधिक होना चाहिए ।

24.7 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) अन्त: क्षेत्रीय विषमताओं के सूचक क्या है? राजस्थान राज्य के अन्दर की क्षेत्रीय विषमताओं की व्याख्या कीजिये ।

(2) राजस्थान के विशेष संदर्भ में अन्त: क्षेत्रीय विषमताओं की व्याख्या कीजिये । अत: क्षेत्रीय विषमताओं के क्या कारण है, तथा इन्हें कैसे दूर किया जा सकता है ?

24.8 शब्दावली

1. राजस्थान की अर्थव्यवस्था	– लक्ष्मीनारायण नाथूरामका, कालेज बुक हाऊस, जयपुर
2. राजस्थान की अर्थव्यवस्था	– बी. एल. ओझा, आदर्श प्रकाशन, जयपुर
3. भारतीय अर्थव्यवस्था	– रूद्रदत्त एव के. पी. एम. सुंदरम,एस.चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा.) लि. नई दिल्ली

24.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

MNP	= Minimum Needs Programme
IRDP	= Integrated Rural Development Programme
JRY	= Jawahar Rojgar Yojna
CSS	= Centrally Sponsored Scheme
NGO	= Non Government Organisation

इकाई–25

भारत में नियोजन प्रक्रिया के क्षेत्रीय आयाम

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.1.1 ऐतिहासिक कारण

25.1.2 प्राकृतिक कारण

25.1.3 आयोजन में संतुलित विकास का अभाव

25.2 क्षेत्रीय असंतुलन के सूचक

25.2.1 राष्ट्रीय आय व राज्य घरेलू उसाद

25.2.2 प्रति व्यक्ति आय

25.2.3 गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या

25.3 कृषि क्षेत्र

25.4 औद्योगिक क्षेत्र

25.5 सेवा क्षेत्र

25.6 आयोजन एवं क्षेत्रीय असन्तुलन

25.7 प्रादेशिक असमानताएं कम करने के लिए किये गये उपाय

25.8 संतुलित विकास के उपाय

25.9 सारांश

25.10 निबन्धात्मक प्रश्न

25.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

25.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पायेंगे –

(i) क्षेत्रीय असंतुलन के कारण

(ii) क्षेत्रीय असंतुलन के सूचक

(iii) क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र एवं सेवा क्षेत्र में पाये जाने वाले क्षेत्रीय असंतुलन के बारे में

(iv) संतुलित विकास एवं प्रादेशिक असमानताओं को कम करने के उपाय

25.1 प्रस्तावना

सन्तुलित विकास भारत जैसे संघीय देश (Federal State) के विकास के लिये आवश्यक है । मगर भारत में अत्यन्त क्षेत्रीय विषमताए पाई जाती है, चाहे आप प्रतिव्यक्ति आय, राज्य घरेलू उत्पाद और गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या की दृष्टि से देंखें या कृषि, उद्योगों व सेवा क्षेत्रों के विकास की दृष्टि से । तुलनात्मक रूप से देखते हुए कुछ प्रदेश अधिक

विकसित व अन्य पिछड़े हुए होते है। विकसित व पिछड़े हुए प्रदेशों या राज्यों, अथवा राज्यों के भीतर पिछड़े या विकसित क्षेत्रों के सहअस्तित्व को हम क्षेत्रीय असन्तुलन कह सकते हैं ।

क्षेत्रीय असन्तुलन कई कारणों से पैदा हो सकते है– ऐतिहासिक कारण, प्राकृतिक कारण और आयोजन में संतुलित विकास के अभाव का कारण

25.1.1 ऐतिहासिक कारण

पिछली दो शताब्दियों में अनेक देशों के पिछड़ेपन का एक मुख्य कारण उपनिवेशवाद रहा है । भारत में भी न केवल आर्थिक पिछड़ेपन का बल्कि अन्तर्राज्यीय आर्थिक असन्तुलन का कारण भी अंग्रेजी राज में पाया जा सकता है । अंग्रेजों ने केवल उन क्षेत्रों के विक़ास पर ध्यान दिया जिनमें उद्योगो व वाणिज्यिक विकास के लिये पर्याप्त संसाधन उपलब्ध थे । अँग्रेज़ी उद्योगपतियों को उद्योग लगाने योग्य संसाधन महाराष्ट्र व पश्चिमी बंगाल के क्षेत्रों में दिखाई दिये इसलिये कलकत्ता, बम्बई व मद्रास के शहरों में अधिकतर उद्योगों की स्थापना हुई और इन्हीं क्षेत्रों का माल बन्दरगाहों तक लाने–ले जाने के लिये विभिन्न आवश्यक स्थानों तक परिवहन का विकास किया गया और अन्य प्रदेशों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया । सो अन्य प्रदेश पिछड़े रह गये । इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भूमि प्रणाली के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र निरन्तर गरीब होता चला गया। प्रभावशाली भूमि सुधार कभी लागू नहीं किये गये इसलिये कृषक वर्ग का शोषण होता रहा। केवल जमींदार व महाजन वर्ग ही ग्रामीण क्षेत्र में सम्पन्न रह पाया । इस प्रकार भारत के ग्रामीण क्षेत्र का विकास नहीं हो पाया । न केवल उद्योग, कृषि व परिवहन की दृष्टि से बल्कि उपरिव्यय की दृष्टि से भी ब्रिटिश काल में विभिन्न क्षेत्रों में असन्तुलित विकास हुआ । इस काल में सिंचाई में विनियोग तो हुआ मगर केवल कुछ गिने–चुने क्षेत्रों में । इन क्षेत्रों में ही कृषि का विकास हो पाया । कुछ क्षेत्रों में जहां अंग्रेजी सत्ता का ज्यादा जोर नहीं था और राज–रजवाड़े अभी भी चल रहे थे, कुछ राजाओं ने अपने–अपने राज्य में उपरिव्यय बनवाने पर काफी ध्यान दिया । वे राज्य इस कारण ज्यादा विकास कर गये।

25.1.2 प्राकृतिक कारण

किसी क्षेत्र का विकास बहुत सीमा तक इस बात पर निर्भर करता है कि प्रकृति की ओर से उस प्रदेश को कितने संसाधन उपलब्ध हैं । कुछ राज्यों में कृषि योग्य उर्वर भूमि अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है तो अन्य क्षेत्रों में धातुओं के भण्डार प्रचुर मात्रा में हो सकते हैं। जिन क्षेत्रों में सभी प्रकार के प्राकृतिक संसाधन अधिक मात्रा में पाये जाते है, वहां विकास अधिक व सर्वागीण हो पाता है । और जहां प्राकृतिक संसाधन कम हो, वह प्रदेश पिछड़े रह जाते हैं । एक अन्य प्राकृतिक कारण है किसी क्षेत्र विशेष की भौगोलिक स्थिति व विकसित क्षेत्रों से उसकी निकटता या दूरी । अनेक हिमालय के पहाडियों वाले क्षेत्र जैसे उत्तरी कश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, व बिहार के पहाड़ी इलाके इसलिये पिछड़े रह गये है कि वहां तक पहुँच पाना कठिन हो जाता है ।

25.1.3 आयोजन में सन्तुलित विकास का अभाव

क्षेत्रीय विकास में असन्तुलन का एक अन्य कारण हो सकता है आयोजन में कुछ क्षेत्रों पर अधिक व अन्य पर कम ध्यान दिया जाना । ऐसा राजनैतिक कारणों से हो सकता है या फिर विकसित क्षेत्रों को और अधिक विकसित करके पूरे देश का विकास करने के उद्देश्य से । इससे पिछड़े क्षेत्रों पर अधिक ध्यान नहीं दिया जा सकता । भारत में आयोजन काल में प्रति व्यक्ति योजना व्यय को देखने से– यह स्पष्ट हो जाता है कि सघन व विकसित प्रदेशों पर सामान्यत: अधिक व पिछड़े प्रदेशों पर कम व्यय किया जाता है । (तालिका– 25.1)

तालिका 25.1

प्रति व्यक्ति योजना व्यय (1951–1990)

राज्य	प्रथम योजना 1951–56	द्वितीय योजना 1956–61	तृतीय योजना 1961–66	चतुर्थ योजना 1969–74	पांचवी योजना 1974–78	छठी योजना 1980–85	सातवीं योजना 1985–90
हरियाणा				358	481	1385	1871
पंजाब	175	146	212	316	591	1170	1695
गुजरात	58	76	108	204	376	1037	1485
महाराष्ट्र	37	57	103	199	372	983	1434
मध्य प्रदेश	34	48	84	114	254	687	1146
तमिलनाडु	28	57	98	134	201	651	1063
कर्नाटक	46	62	100	128	276	615	749
पं. बंगाल	54	48	80	82	200	600	653
आन्ध्र प्रदेश	33	52	91	98	236	584	841
केरल	31	49	101	156	224	578	727
राजस्थान	39	53	97	120	237	577	718
उड़ीसा	56	54	120	113	207	536	897
उत्तर प्रदेश	25	32	72	132	237	535	803
आसाम	29	57	103	136	190	526	850
बिहार	25	40	67	85	155	456	626
सम्पूर्ण भारत	38	51	92	142	262	687	1026

स्रोत: Centre for Monitoring Indian Economy: Basic Statistics Relating to Indian Economy, Vol.2(States) 1989.

25.2 क्षेत्रीय असन्तुलन के सूचक

भारत में अनेक सामाजिक व आर्थिक कारक क्षेत्रीय असन्तुलन की ओर संकेत करते है जैसे कि राज्य घरेलू उत्पाद, प्रतिव्यक्ति आय, गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या, कृषि का विकास, औद्योगिक, परिवहन सुविधाओं व वाणिज्यिक सुविधाओं का विकास इत्यादि।

25.2.1 राष्ट्रीय आय व राज्य घरेलू उत्पाद

आजकल वित्त आयोग व योजना आयोग अन्तर्राज्यीय विषमताओं के अध्ययन के लिये राज्य घरेलू उत्पाद के आकड़ो का प्रयोग कर रहे है।

तालिका 25.2

1980–81 के मूल्यों पर विशुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद

राज्य	1980–81 के मूल्यों पर प्रति व्यक्ति विशुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद 1980–81	स्थान	1980–81 के मूल्यों पर प्रति व्यक्ति विशुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद 1991–92	स्थान	गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या 1987–88	प्रतिलाख जनसंख्या पर रोजाना कारखाने में कार्यरत श्रमिक
पंजाब	2674	1	3864	1	12.7	1400
महाराष्ट्र	2427	2	3440	3	40.1	1750
हरियाणा	2370	3	3456	2	16.6	1630
गुजरात	1948	4	2526	4	32.3	1890
जम्मू–कश्मीर	1776	5	1687	13	23.2	NA
हिमाचल प्रदेश	1704	6	2074	7	15.5	NA
पं. बंगाल	1611	7	2084	6	44.0	1510
कर्नाटक	1528	8	2171	5	38.1	1340
केरल	1510	9	1886	10	32.1	1080
तमिलनाडु	1498	10	2056	8	45.1	1400
आन्ध्र प्रदेश	1380	11	1839	11	27.2	910
मध्य प्रदेश	1333	12	1588	16	43.4	750
उत्तर प्रदेश	1278	13	1606	15	42.0	470

उड़ीसा	1231	14	1652	14	55.6	400
राजस्थान	1222	15	1717	12	34.6	520
आसाम	1200	16	1915	9	36.8	400
बिहार	919	17	1142	17	53.4	600
सम्पूर्ण भारत	1630		2250		39.3	1050

स्रोत : CMIE, Basic Statistics Relating to States of India, 1994. Draft Mid– term Appraisal of Viet five year Plan (1992–97); Report of the Expert Group on Estimation of Proportion and Number of Poor (1993)

इन आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि सबसे सम्पन्न राज्य पंजाब व सबसे निर्धन राज्य बिहार के बीच अन्तर का अनुपात 1980–81 में 2.9 से बढ़कर 1991–92 में 3.4, हो गया। इस काल में आसाम, कर्नाटक, तमिलनाडु, आदि राज्यों में स्थिति में सुधार हुआ। जैसे कि आसाम का स्थान 16 वें से बढ़कर 9 वां हो गया । कर्नाटक आठवें स्थान से उठकर पांचवें स्थान पर, राजस्थान पन्द्रहवें स्थान सें बढ़कर बारहवें स्थान पर तथा तमिलनाडु दसवें से आठवें स्थान पर आ गया । दूसरी ओर जम्मू– कश्मीर में राजनैतिक अस्थिरता के कारण विकास दर इस काल में ऋणात्मक हो गई और यह राज्य पांचवे से तेरहवें स्थान पर हो गया । इसी प्रकार मध्य प्रदेश 12 वें से गिर कर 16 वे स्थान पर आ गया ।

केवल चार राज्यों. पंजाब, हरियाणा, गुजरात व महाराष्ट्र में राष्ट्रीय आय के औसत से राज्य घरेलू उत्पाद अधिक है व अन्य सभी राज्यों में कम है । राज्य घरेलू उत्पाद व कृषिजन्य व उद्योग जन्य आय की वृद्धि दरें भी विभिन्न राज्यों के असमान वितरण की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं ।

तालिका 25.3

वृद्धि दरों के सूचकांक (1970–71 के मूल्यों पर)

राज्य	1970–71 से 1980–81			1980–81 से 1985–86		
	राज्य घरेलू उत्पाद	कृषि में मूल्य वृद्धि	उद्योगों में मूल्य वृद्धि	राज्य घरेलू उत्पाद	कृषि में मूल्य वृद्धि	उद्योगों में मूल्य वृद्धि
महाराष्ट्र	5.4	6.0	6.4	3.1	0.1	3.8
पंजाब	5.2	3.8	8.8	5.1	5.7	3.7
हरियाणा	4.9	2.7	8.0	5.1	3.4	6.5
गुजरात	4.7	3.6	5.8	1.1	–2.9	2.0
कर्नाटक	4.0	2.3	7.7	3.1	1.8	3.3
आंध्र	3.3	1.5	6.0	4.1	0.5	7.0

प्रदेश						
बिहार	3.1	1.1	2.7	4.3	3.3	6.2
उत्तर प्रदेश	3.0	1.9	6.8	5.1	3.1	12.6
पं. बंगाल	3.0	2.9	1.9	4.4	5.0	0.5
उड़ीसा	2.8	2.0	6.0	1.2	1.9	8.6
तमिलनाडु	2.8	–0.2	6.3	6.9	2.1	3.3
राजस्थान	2.6	1.1	4.9	7.8	9.4	7.8
मध्य प्रदेश	1.9	0.7	5.6	6.0	4.4	8.5
केरल	1.8	0.1	3.7	6.4	0.9	–0.3

Source : Ruddandalt and KPM Sundaram Indian Economy who have compilet it from Ishar J Ahuluwalia and Krishna Stinivasan: Income and Growth A Regional Profile: Economic Times, February 25& 26, 1988.

इस तालिका से हम विभिन्न राज्यों के घरेलू उत्पाद की तुलनात्मक वृद्धि दर देख सकते है। कृषि और उद्योग उत्पादन के दो प्रमुख क्षेत्र है। विभिन्न राज्यों में इनकी विकास दर को देख कर हम राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के विकास के विषय मैं जानकारी प्राप्त कर सकते है ।

1990–71 – 1980–81 के दौरान महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा, गुजरात व कर्नाटक राज्यों में तीव्रतम वृद्धि हुई । इन सभी में 4% से अधिक वृद्धि दर देखी गई । इन सभी राज्यों में औद्योगिकरण की दर लगभग 6% से 9%' रही मगर कृषि की धीमी विकास की गति के कारण कुल विकास दर कम हो गई । 1980–81 और 1985–86 कें बीच महाराष्ट्र, गुजरात तथा कर्नाटक में कृषि विकास दर गिर गई जिससे राज्य घरेलू उत्पाद की कुल वृद्धि दर में भी काफी कमी आ गई । इन सभी राज्यों में सिंचाई के साधन पर्याप्त मात्रा में नही हैं इसलिये इन प्रदेशों को वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है एवं इनके भाग्य मानसून से जुड़े रहते है । पंजाब व हरियाणा में क्योंकि कृषि विकास की दर ऊंची रही इसलिए यही राज्य घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर भी अधिक रही । पं. बंगाल, राजस्थान व मध्य प्रदेश में भी कृषि में विकास के कारण राज्य घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर अधिक रहा । दूसरी और केरल व उड़ीसा में कुछ विकास की दर कम होने से सम्पूर्ण वृद्धि दर भी कम रही । एक तो कृषि क्षेत्र का आर्थिक विकास में वैसे ही बहुत महत्व होता है । दूसरे निर्धन राज्यों मे औद्योगिकरण कम होने से कृषि क्षेत्र के परिवर्तनों का राज्य के सकल उत्पाद पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है ।

25.2.2 प्रति व्यक्ति आय

न केवल राज्य घरेलु उत्पाद बल्कि प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से भी भारत के विभिन्न राज्यों में बहुत अन्तर है । उपर तालिका न.3 में हमने तीन आर्थिक सूचकांक देखे

(1) प्रति व्यक्ति उत्पाद, (2) गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या व (3) कारखानों में कार्यरत श्रमिकों की संख्या

किसी राज्य की प्रति व्यक्ति आय को देख कर उस राज्य की आर्थिक स्थिति का अन्दाजा लगा सकते हैं । उपरोक्त तालिका में 1991–92 के आकड़े देखे तो राष्ट्र की औसत प्रति व्यक्ति आय 1980–81 के मूल्यों पर 2250रु. थी । केवल चार राज्यों की प्रति व्यक्ति आय उससे अधिक थी– पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र व गुजरात। इन राज्यों में कृषि व उद्योग दोनों क्षेत्र तीव्र गति से विकसित हुए हैं । 1971–72 से पहले पं. बंगाल तथा कर्नाटक भी अधिक आय वाले राज्य थे मगर उसके बाद इनकी विकास दर में कमी आ जाने से यह पिछड़ गये । पंजाब और हरियाणा सदैव अग्रणी रहे है । इसका मुख्य कारण है कुल बोये गये क्षेत्र के अनुपात में सिंचित क्षेत्र का अधिक होना । यह अनुपात पंजाब में 93% व हरियाणा में 73% है । इससे कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि होने के कारण समस्त विकास दर व प्रति व्यक्ति आय ऊंची रही है ।

न्यूनतम आय वाले प्रदेश हैं बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, जम्मू कश्मीर व केरल । यह राज्य आरम्भ से ही सबसे अधिक निर्धन राज्य रहे हैं । एक और ध्यान देने योग्य तथ्य यह हें कि पिछड़े व सम्पन्न राज्यों में न केवल आय में अन्तर है बल्कि यह अन्तर बढ़ भी रहा हें । उदाहरणार्थ 1971–72 में पंजाब की प्रति व्यक्ति आय बिहार की तुलना में 2.7 गुणा अधिक थी, 1991–92 में 3.2 गुना हो गई थी । सो क्षेत्रीय अन्तर घटने के बजाय बढ़ गये है ।

25.2.3 गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या

गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या भी क्षेत्रीय असन्तुलन की द्योतक है । 1987–88 में न्यूनतम प्रति व्यक्ति आय वाले चार राज्यों में यह प्रतिशत संख्या अधिकतम थी । यह राज्य थे बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश । मगर कुछ राज्यों में प्रति व्यक्ति आय अधिक होते हुए भी जनसंख्या का काफी बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे रहता है जैसे महाराष्ट्र, कर्नाटक, पं.बंगाल व तमिलनाडु । इन प्रदेशों में गरीबी रेखा के नीचे अधिक जनसंख्या होने का मुख्य कारण यहां व अनुसूचित जनजातियों व आदिवासियों का होना है । गरीबी की रेखा से नीचे जनसंख्या पंजाब में न्यूनतम (12.7%) व उड़ीसा में अधिकतम (55.6%) है ।

राज्य घरेलू उत्पाद, प्रति व्यक्ति आय व गरीबी की रेखा से नीचे जनसंख्या– इन सभी सूचकांकों को देखने से अनुभव होता है कि देश के विभिन्न भागों में बहुत विषमताएं है व देश की अर्थव्यवस्था का विकास सन्तुलित रूप से नहीं हो रहा । यदि हम गरीबी की रेखा के नीचे की जनसंख्या के कुल जनसंख्या से अनुपात में 1973–74 व 1987–88 के बीच परिवर्तन देखें तो केरल में सबसे अधिक कमी आई है । कुल 27.63% या 2% वार्षिक व बिहार व उड़ीसा में सबसे कम परिवर्तन हुआ है क्रमश: 8.4% व 10. 63% कुल कमी या 0.6 व 0.7 प्रतिशत वार्षिक कमी।

इसी प्रकार प्रति लाख जनसंख्या में से कारखानों में कार्यरत जनसंख्या को भी देखा जाये तो विकसित राज्यों में यह संख्या भारत की औसत 1050 से अधिक व पिछड़े राज्यों में उससे कम है ।

25.3 कृषि क्षेत्र

1981–82 के पश्चात अधिकतर राज्यों में कृषि उत्पाद से प्राप्त आय में ज्यादा तेजी से वृद्धि हुई और राज्य घरेलू उत्पाद में कृषि के भाग का बहुत योगदान रहा । पंजाब में यह वृद्धि दर 1968–69 से 1981–82 और 1981–82 से 1991–92 के बीच 2.93% से बढ़कर 4.77% और हरियाणा में 3.44% से बढ़कर 4.77% हो गई । केरल और तमिलनाडु में 1968–69 और 1991–92 के बीच जहां कृषि से प्राप्त आय में नगण्य वृद्धि हुई, 1981–82 और 1991–92 के बीच क्रमश: 2.75% व 3.66% वृद्धि हुई । कर्नाटक में यह दर केवल 2.47% से बढ़कर 3.21% हो पाई । आघ्र प्रदेश में तो यह दर 2.48% से गिर कर 1.81% रह गई ।

पश्चिमी राज्यों में कृषि से प्राप्त राज्य घरेलू उत्पाद में इस काल में वृद्धि नहीं बल्कि कमी आ गई । गुजरात में यह दर 3.23% से गिर कर शून्य रह गई और महाराष्ट्र में 4.48% से गिर कर 2.24% हो गई । शेष सभी राज्यों में कृषि से प्राप्त घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 1970 की अपेक्षा 1980 के दशक में अधिक रही । पश्चिम बंगाल में तो उल्लेखनीय वृद्धि हुई जहां यह दर 2.46% से बढ़ कर 6.88% हो गयी । मध्यप्रदेश में इस काल में यह 0.67% से बढ़ कर 2.51%, राजस्थान में 3.11% से बढ़ कर 4.91%, उत्तर प्रदेश में 2.14% से बढ़ कर 3.34%, आसाम में 1.72% से बढ़ कर 2%, बिहार में 1.39% से बढ़कर 2.34% व उड़ीसा ने 2.57% से बढ़कर 3.4% हो गई ।

कृषि उत्पादन में बहुत प्रादेशिक असन्तुलन दिखाई देता है । कुछ ही राज्य जैसे पंजाब, हरियाणा, पं. बंगाल, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु जहां सिंचाई की अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध थी, नई कृषि तकनीकी का लाभ उठा पाये व कृषि क्षेत्र में उन्नति कर पाये । यही राज्य आज भारत में सर्वाधिक कृषि अतिरेक उत्पन्न करते हैं । यही राज्य देश के सार्वजनिक वितरण प्रणाली के आधार हैं दूसरी ओर पूर्वी व उत्तरी पूर्वी राज्यों में कृषि विकास की दर बहुत धीमी रही है । इन राज्यों के विकास न कर पाने का मुख्य कारण है कि इन राज्यों में आदिवासी जनसंख्या का एक बड़ा अनुपात रहता है जो आमतौर पर अलग–थलग रहना पसन्द करते हैं व झूम खेती करते हैं । इन्होंने कृषि की नई विधियों का अपनाने का कभी प्रयत्न नहीं किया । वैसे भी इन राज्यों में अधिकतर क्षेत्र पहाड़ी इलाकों में हैं जहां उपरिव्यय (Infrastructure) बनाना कठिन व महंगा पड़ता है । राज्य सरकारों ने भी इन क्षेत्रों के विकास दर अधिक ध्यान नहीं दिया । शायद इसलिए कि आदिवासी राजनैतिक सत्ता में कोई आवाज नहीं उठा पाते व अपनी आर्थिक समस्याएं व माँगे सरकार के सामने नहीं रख पाते ।

25.4 औद्योगिक क्षेत्र

भारत में आधुनिक औद्योगिकरण का विकास उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय अर्ध में आरम्भ हुआ। 1853 में बम्बई में प्रथम सूती कपड़ा मिल, रिश्रा में 1859 में पहली जूट मिल, रानीगंज में 1854 में कोयले का खनन, 1857 में आसनसोल के पास कुलटीं में लोहा व इस्पात उद्योग व 1852 में पहले चाय के कारखाने की स्थापना के साथ भारत में उद्योगों का अविर्भाव हुआ । 1853 में रेल यातायात की शुरुआत के साथ वस्तुओं का परिवहन तीव्र, आसान व सुरक्षित हो जाने मे देश में उद्योगों को और बढावा मिला।

यद्यपि कच्चे लोहे का उत्पादन 1857 में कुलटी मे शुरु हो चुका था, बड़े पैमाने पर लोहा–इस्पात का उत्पादन 1911 में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड से आरम्भ हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद कुछ उद्योगों को विशेषत : चीनी व सूती कपड़ा उद्योगों को संरक्षण मिलने की वजह से इनके उत्पादन में तीव्र वृद्धि आई । भारत में चाय उद्योग जो मुख्यत: अंग्रेजी पूंजी की सहायता से ही विकसित हुआ, पिछली शताब्दी के अन्त तक संसार का सबसे बड़ा निर्यातक बन गया । सो द्वितीय विश्वयुद्ध सें पहले भारत सूती कपड़ा व चीनी का बड़ा उत्पादक तथा चाय और पटसन वस्तुओं का निर्यातक बन गया था । द्वितीय महायुद्ध के कारण आवश्यक युद्ध वस्तुओं के आयात बन्द हो गये । अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये अनेक प्रकार के इस्पात मिश्रित धातुओं (alloys) व रसायन, मशीन टूल व अन्य मशीनें व साईकिलों का उत्पादन देश में आरम्भ हो गया ।

1947 में देश के विभाजन से हमारे सूती कपड़ा व पटसन उद्योगों को गहरा आघात पहुचा, क्योंकि बढ़िया कपास व पटसन उगाने वाले क्षेत्र पाकिस्तान के पास चले गये जिससे हमारे कारखानों को बढ़िया कपास व पटसन की आपूर्ति बंद हो गई । इन दोनों उद्योगों का उत्पादन आवश्यकता से बहुत कम हो गया ।

1951 में भारत ने आयोजित विकास शुरू किया । प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रथम अप्रैल 1951 को शुरू की गई । इस योजना में भारत सरकार नें अधिक ध्यान कृषि विकास की ओर दिया । औद्योगिक विकास कुछ अधिक नहीं हुआ । मगर द्वितीय योजना, जो 1 अप्रैल 1956 से शुरू हुई, में उद्योगों पर ज्यादा जोर दिया गया । 1956 में इस द्वितीय योजना के साथ ही साथ औद्यौगिक नीति प्रस्ताव पारित किया गया । इसके अनुसार देश के विभिन्न भागों में उद्योगों का निकास या संकेन्द्रीकरण (या उनका अभाव) कच्चे माल या प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धि पर निर्भर करना हें । साथ ही उर्जा, जल व परिवहन सुविधाओं का किसी क्षेत्र में विकास भी वहां के औद्योगिकरण को प्रभावित करता है । इसलिये इस प्रस्ताव के द्वारा राष्ट्रीय आयोजन द्वारा प्रयत्न किया गया कि जिन क्षेत्रों में औद्योगिकरण कम हुआ था या जहां अधिक रोजगार उपलब्ध कराने की आवश्यकता थी वहाँ अगर स्थान उपयुक्त हो. तो यह सब सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाये। सो सरकार ने उद्योगों कें लिये कच्चा माल व मशीने आयात करने के लिये सुविधाएँ दीं, व नये उद्योगों को संरक्षण प्रदान करके औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन दिया । परिणामस्वरूप औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक (आधारवर्ष1960=100),

1951 में 54.8 से बढ़कर 1961 में 109.2, 1966 में 153.2, 1970 में 180.8, 1972 में 199.4 हो गया । 1980–81 को आधारवर्ष (=100) मानने हुए 1989–90 में यह सूचकांक 196 हों गया ।

इस प्रकार योजना काल में भारत में उद्योगों का बहुत विकास हुआ मगर यहां भी फिर वही क्षेत्रीय असंतुलन देखने में आता है। देश के विभिन्न हिस्सों में उद्योगों का विकास बहुत असमान तरीके से हुआ है। इसके कुछ मुख्य कारण इस प्रकार से हैं –

(1) उद्योगों के लिए कृषिजन्य कच्चा माल व धातुएँ बहुत असमान रूप से उपलब्ध है,

(2) अधिक गहन जनसंख्या वाले प्रदेशों में बाजार का विस्तृत आकार व सस्ते श्रम की उपलब्धि के कारण वहाँ औद्योगिकरण अधिक होता है व इसलिए पहाड़ी इलाकों में आमतौर पर कम औद्योगिकरण हुआ है।

(3) कोयला जो कि उर्जा का मुख्य साधन है देश के उत्तरी पूर्वी भाग में उपलब्ध है।

(4) जल विश्रुत शक्ति का विकास कुछ हिमालय की तलहटी के क्षेत्रों में पश्चिमी घाट व कुछ अन्य क्षेत्रों में हुआ है।

इसलिए भारत मे विभिन्न कारणो से औद्योगिकरण की गति में बहुत अन्तर है। केन्द्रीय सरकार द्वारा विभिन्न परियोजनाओं में बडी मात्रा में विनियोग किया गया कि इनका प्रभाव छोटे और सहायक (ancillary) उद्योगों के विकास पर पड़ेगा। मगर अनेक राज्यों, जैसे बिहार, उड़ीसा व मध्य प्रदेश में ऐसा नहीं हुआ। निवेशकर्ता सामान्यत: वहां निवेश करते हैं जहां उन्हें लाभ अधिक हो और इसके लिये आवश्यक है कि उस स्थान पर उपरिव्यय व अन्य सुविधाएं जैसे बैंकिंग, इंश्योरेंस परिवहन, उर्जा, जल इत्यादि उपलब्ध हो व साथ ही बाजार भी पास हो।

हाल के एक अध्ययन से पता चला है कि भारत में औद्योगिकरण की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार है :

1) पिछले कुछ वर्षो में अन्तर्राज्यीय विषमताएं बढ़ी है।

2) विकसित राज्यों के अन्दर विभिन्न क्षेत्रों के बीच अन्तर कम हुए है; और

3) अल्पविकसित राज्यों में राज्यों के विभिन्न भागों के बीच अन्तर बढ गये है।

देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिक या कम औद्योगिकरण होने के अनेक विभिन्न कारण देखने में आते है देश के अनेक भागों में बाक्साईट के अलावा कोई धातु उपलब्ध नहीं है। उत्तरी–पूर्वी पठार धातुओं में सम्पन्न है। लोहा इस्पात, इलमुनियम, सिमेंट, ताम्बा आदि बनाने के लिये कच्चा लोहा, बाक्साईट, चूना, पत्थर, मैगनीज इत्यादि बहुत मात्रा में उपलब्ध है। उत्तरी पूर्वी आसाम व कुछ तटीय स्थानों पर कच्चा तेल उपलब्ध है जो कि बिहार व गुजरात में साफ किया जाता है। जिन क्षेत्रों में धातुएँ नहीं है वहां कृषिजन्य कच्चा माल प्रचुर मात्रा में प्राप्त है। गुजरात के मैदानी क्षेत्र, कपास व मुँगफली के मुख्य उत्पादक हैं जो यहां सूती कपड़ा उद्योग व तेल उद्योग के लिये अग्रणी प्रदेश है। पश्चिमी बंगाल में बूट कपड़ा उद्योग का विकास हुआ। पंजाब व हरियाणा क्षेत्रों में होजरी व सूती कपड़ा उद्योग तथा चीनी उद्योग व बिहार व उत्तर प्रदेश में चीनी, सूती कपड़ा व चमड़ा उद्योग प्रमुख है। सूती कपड़ा उद्योग तमिलनाडू में भी पाया जाता है। केरल में नारियल के छिलके व कॉयर (coir) के सामान का व

काजू उद्योग विशिष्ट, है। बम्बई क्षेत्र का विकास औद्योगिक क्षेत्र के रूप में हुआ क्योंकि उसके पास समुद्री बन्दरगाह की सुविधा थी। और देश के अन्य हिस्सों से यह रेल व सड़क यातायात से जुड़ा हुआ था। सो इस क्षेत्र में सूती कपड़ा, रसायन, फार्मास्यूइटकल, सिन्थेटिक कपडा, औद्योगिक मशीने, बिजली के उपकरण, स्वचलित वाहन, प्लास्टिक का कच्चा माल व तैयार सामान व रबड़ की वस्तुएँ व पेट्रोलियम पदार्थो के उद्योगों का समुचित विकास हुआ।

औद्योगिक विकास में दूसरा स्थान कलकत्ता के आसपास के क्षेत्र का है। पटसन उद्योग वहां प्रमुख उद्योग है। नदी बन्दरगाह, रानीगंज कोयला खानों का सामीप्य व पास के क्षेत्रों में लोहा–व इस्पात उपलब्ध होने के कारण यहां इन्जिनियरिग व विद्यूत उद्योग भी पनपे। उड़ीसा व पहाड़ी इलाकों में बाँस की उपलब्धि के कारण कागज उद्योग का भी विकास हुआ । साथ ही यहां स्वचलित वाहन, रसायन, रबड़ व औद्योगिक मशीनों के उद्योग भी पाये जाते है ।

दक्षिण में बंगलौर क्षेत्र में उद्योगों का काफी विकास हुआ। हवाई जहाज, विद्यूत मशीने, रेल के डिब्बे मशीन टूल व घड़ियों का उत्पादन इस क्षेत्र में होता है कोइम्बटूर में सूती कपड़ा, पम्प. स्वचलित वाहनों के हिस्से पूर्जे, विद्युत का सामान आदि के उद्योग है । मद्रास में रेल के डिब्बे, रबड़ की वस्तुएं, बिजली की मशीनें, स्वचलित वाहन, मोटर साईकिल, औद्योगिक मशीनों व रसायन के उद्योग पाये जाते हैं । इसके अलावा यहां चमड़े की रंगाई का काम, कच्चे तेल की सफाई, उर्वरकों व बढ़िया किस्म के कपड़े का भी उत्पादन होता है ।

बिहार के पठार व पश्चिमी बंगाल का उड़ीसा में लोहा, कोयला व अन्य धातुएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है इसलिये वहां लोहा और इस्पात उद्योग अत्यन्त विकसित है ।

1991–92 में प्रति व्यक्ति उद्योगों से प्राप्त मूल्य वृद्धि (Value Added), महाराष्ट्र व गुजरात में अधिकतम थी दुसरे छोर पर बिहार व उत्तर प्रदेश में न्यूनतम मूल्य वृद्धि प्रति व्यक्ति थी और गुजरात व महाराष्ट्र के स्तर से 1/4 या 1/5 हिस्सा था । हरियाणा, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा पश्चिमी बंगाल कही मध्य में थे ।

तालिका 25.4

1992–93 के उद्योगों का क्षेत्रीय स्थानीकरण (प्रतिशत)

राज्य	कारखानों की संख्या	रोजगार	रोजगार	मूल्यवृद्धि
महाराष्ट्र	13.8	14.7	21.2	22.9
तमिलनाडु	14.8	12.3	10.3	10.2
गुजरात	9.4	8.3	11.2	11.3
पश्चिमी बंगाल	4.9	8.7	5.6	5.9
आन्ध्र प्रदेश	14.6	10.7	6.8	6.0
कर्नाटक	5.2	5.0	4.8	5.8
इन छ : राज्यों का योग	62.7	57.7	59.9	62.0
समस्त भारत	100	100	100	100

स्रोत : रुद्रदत्त एवं सुन्दरम Indian Economy p.438 New Delhi, 1997 ।

25.5 सेवा क्षेत्र

भारतीय रेलवे यद्यपि काफी विकसित है मगर अभी भी देश के आर्थिक विकास के लिये पर्याप्त रूप से विकसित नहीं है । रेल की पटरियां बिछाने का कार्य मुख्यत : लोगों के यातायात व कृषि व उपभोक्ता वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने ले जाने के लिये किया गया । इसलिये आर्थिक विकास की नई चुनौतियों के लिये पर्याप्त नहीं है । देश के खनिज एवं वन संसाधनों के पूर्ण उपयोग व अनेक दूर दराज के प्रदेशों को देश के अन्य भागों से जोड़ने के लिये अभी रेलों के जाल का और विस्तार करने की आवश्यकता है । अब तक बड़े मैदान व गुजरात और तमिलनाडु में रेलों का पर्याप्त विकास हुआ है मगर देश के पूर्वी भागों में जिसमें नागालैड. मेघालय, मनीपुर, त्रिपुरा, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम शामिल है, में रेल यातायात का अधिक विकास नहीं हुआ। इसी प्रकार जम्मू कश्मीर व हिमाचल प्रदेश भी रेल के माध्यम से देश के अन्य भागों से अभी तक नहीं जुड़े।

सड़क यातायात आधुनिक समाज का मुख्य एवं आधारभूत यातायात का साधन है। जहां रेल केवल महत्वपूर्ण क्षेत्रों में ही जाती है, सड़के गावों व शहरों, ग्रामीण व नागरिक क्षेत्रों, कारखानों, खेतो, खदानों को जोड़ती है। यद्यपि हमारी योजनाओं के अनुसार मैदान में 2000 जनसंख्या वाली बस्ती, अर्धपर्वतीय क्षेत्रो में 1000 जनसंख्या वाली बस्ती व पर्वतीय क्षेत्रो मे 500 जनसंख्या वाली बस्ती को कच्ची सड्कों से जोड़ने का प्रस्ताव है। अभी भी जनसंख्या के अनुपात में सड़क परिवहन व्यवस्था बहुत विकसित नहीं हो सकी। 1960–61 व 1990–91 के बीच केरल, दिल्ली, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु व पांडेचेरी में सड्कों का विस्तार सबसे अधिक हुआ है। गुजरात, बिहार, मध्यप्रदेश, मणीपुर, मिजोरम, राजस्थान, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश व पं. बंगाल में सडको की लम्बाई दो से पांच गुणा तक बढ़ी है।

25.6 आयोजन और क्षेत्रीय असन्तुलन

प्रथम पंचवर्षीय योजना में क्षेत्रीय असन्तुलन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। दूसरी योजना में, जैसा हमने उपर देखा, 1956 में औद्योगिक नीति प्रस्ताव में क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता पर जोर दिया गया। द्वितीय और तृतीय योजनाओं में कम विकसित क्षेत्रों में आधारभूत उद्योग लगाने की बात की गई बशर्त्ते कि वहां आवश्यक तकनीकी व आर्थिक सुविधाएँ उपलब्ध हो। मंगर शीघ्र ही देखने में आया कि सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं का कोई अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। इस प्रकार प्रथम तीन योजनाओं में तो क्षेत्रीय असन्तुलन को कम करने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया, और जो किया गया उसमें विशेष सफलता नहीं मिली।

चौथी योजना में औद्योगिक रूप से पिछड़े प्रदेशों को चिन्हित करने का प्रयत्न किया गया। 1968 में राष्ट्रीय विकास समिति (National Development Council) ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये पांच आधार सुझाए :

1) कुल प्रति व्यक्ति आय व कृषि व खनन का योगदान
2) प्रति एक लाख जनसंख्या में से कारखानों में कार्यरत श्रमिकों की संख्या

3) विश्रुत उर्जा का प्रति व्यक्ति वार्षिक उपभोग

4) राज्य की जनसंख्या व क्षेत्रफल को देखते हुए पक्की सड़कों की लम्बाई; तथा

5) राज्य की जनसंख्या व क्षेत्रफल को देखते हुए रेल पटरियों की लम्बाई।

राष्ट्रीय विकास समिति ने दो कार्यवाही समितियाँ बनाई– एक तो उपरोक्त पांच आधारों पर पिछड़े क्षेत्र चिन्हित करने के लिये व दूसरी इन क्षेत्रों में उद्योगों के विकास के लिये वित्तीय व पूंजीगत प्रोत्साहनों के विषय में सुझाव देने के लिये।

प्रथम समिति ने जिन राज्यों को पिछड़ा हुआ माना वे थे आन्ध्र प्रदेश, आसाम, बिहार, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, मध्य प्रदेश, नागालैड, उड़ीसा, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश, व चन्डीगढ व दिल्ली के अतिरिक्त अन्य सब संघीय क्षेत्र (Union Territories) इस समिति ने प्रत्येक राज्य में पिछड़े जिलों की पहचान के लिये निम्नलिखित सूचक बताये :

(1) जो जिले बड़े शहरों से औद्योगिक परियोजनाओं से 50 मील दूर की परिधी से बाहर हो

(2) जिनकी प्रति व्यक्ति आय राज्य की औसत प्रतिव्यक्ति आय से कम से कम् 25% कम हो;

(3) जिनमें द्वितीय व तृतीय क्षेत्र में जनसंख्या का राज्य के औसत से 25% से कम भाग लगा हो;

(4) जिनमें कारखानों में राज्य औसत से 25% से कम जनसंख्या को रोजगार प्राप्त हो;

(5) जहां प्राकृतिक व आर्थिक संसाधनों का अधूरा उपयोग हो या उपयोग बिल्कुल न हो; तथा

(6) जहां बिजली पानी, परिवहन, व संचार जैसी सुविधाओं की अपर्याप्त पूर्ति हो।

चौथी योजना में इस कार्यवाही समिति ने देश में 20 से 30 क्षेत्र बताये जहां विकास की सम्भावना थी । उन्होंने इन क्षेत्रों को विशेष प्रोत्साहन दिये जाने का सुझाव दिया । मगर राज्य सरकारें चाहती थी कि उनके कुछ क्षेत्र पिछड़े हुए ही घोषित हों ताकि उनके लिये उन्हें विशेष रियायतें मिले । इसलिये राज्य सरकारों ने इस कार्यवाही समिति द्वारा दिये गये सुझावों को ठुकरा दिया।

तब योजना अयोग ने विभिन्न राज्यों में पिछड़े क्षेत्रों की पहचान के लिये निम्नलिखित आधार बताये :–

1) प्रति व्यक्ति खाधान्न व अखाद्यान्न फसलों का उत्पादन;

2) कृषि श्रम का कुल जनसंख्या में अनुपात

3) प्रति व्यक्ति औद्योगिक उत्पादन;

4) प्रति एक लाख जनसंख्या में से कारखानों में कार्यरत जनसंख्या का अनुपात;

5) प्रति एक लाख जनसंख्या में से द्वितीय व तृतीय क्षेत्र में लगी जनसंख्या;

6) प्रति व्यक्ति विधुत उर्जा उपयोग; तथा

7) जनसंख्या को देखते हुए सड़कों या रेल पटरियों की लम्बाई ।

इन आधारों पर एक सूचकांक बनाया गया । इस सूचकांक को देखते हुए योजना अयोग ने 246 क्षेत्रों को पिछड़ा हुआ और वित्तीय सहायता व अन्य सुविधाओं को प्राप्त करने योग्य निर्धारित किया । इनमें से 118 क्षेत्रों में कोई उद्योग नहीं थे।

दूसरी कार्यवाही समिति ने पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिकरण के लिये वित्तीय प्रोत्साहन देने के लिये कुछ उपाय सुझाये जैसे कि पिछड़े क्षेत्रों में लगे उद्योगों को अधिक विकास छूट देना, उन्हें पांच वर्षों तक निगम आय कर तथा बिक्री कर से मुक्ति, उनके द्वारा आयातित मशीनों व उपकरणों पर आयात कर पर मुक्ति व उन्हें परिवहन सहायता देना।

सरकार ने इन सुझावों को शीघ्र ही कार्यान्वित कर दिया ।

छठी पंचवर्षीय योजना काल (1980–85) में 1980 में पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिये एक विशेष उच्च स्तरीय राष्ट्रीय समिति (National Committee for Development of Backward Areas, NCDBA) का गठन किया गया। इस समिति को भी पिछड़े क्षेत्रों को चिन्हित करने व उस समय पिछड़े क्षेत्रों के लिये चलाई जा रही परियोजनाओं व प्रोत्साहनों का जायजा लेने का कार्यभार सौंपा गया । इस समिति ने सुझाव दिये कि केन्द्र व राज्य, दोनों में पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिये एक उपयोजना (Sub Plan) होनी चाहिये, स्थानीय आयोजन के लिये विशेष धनराशि दी जाये व विशेष समितियाँ इन योजनाओं को कार्यरूप देने के लिये गठित की जायें व इस बात पर ध्यान दिया जाये कि इस प्रयोजन के लिये दी गई राशि का उपयोग अन्य कार्यो, वस्तुओं या क्षेत्रों के लिये न किया जाये । एक और सुझाव यह था कि क्योंकि विकास विभागों के कार्यकर्ता पिछड़े क्षेत्रों में जाना नही चाहते क्योंकि वहां शिक्षा, स्वास्थ्य, मकान, आदि की सुविधाएं उपलब्ध नहीं होती, उन्हें इन इलाकों में जाकर काम करने के लिये विशेष प्रोत्साहन दिये जायें ।

सातवीं योजना (1985 –90) और आठवीं योजना में प्रादेशिक सन्तुलन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया सिवाय इसके कि पूर्वी राज्यों, कम वर्षा वाले क्षेत्रों, पहाड़ी इलाकों व आदिवासी क्षेत्रों में कृषि उत्पादन में वृद्धि लाने का प्रयत्न किया गया। इसके अतिरिक्त न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (Minimum Needs Programme) पर जोर देने का व मानव संसाधनों का विकास करने का भी प्रयत्न किया गया ताकि समन्वित विकास हो सके ।

25.7 प्रादेशिक असमानताएं कम करने के लिये किये गये उपाय

भारत में प्रादेशिक असमानताओं को दूर करने के लिये अनेक कदम उठाये जा रहे हैं–

(1) केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को संसाधन देते समय पिछड़े वर्गों के लिये अधिक धनराशि देना।

(2) ऐसी परियोजनाओं को प्राथमिकता देना जो सबसे कम समय में सबसे अधिक क्षेत्र में लागू हो सकें व विकास ला सके ।

(3) औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार इत्यादि की सुविधाएं उपलब्ध कराना।

(4) छोटे व ग्रामीण उद्योगों का विस्तार लगभग सभी राज्यों में औद्योगिक केन्द्र स्थापित किये गये हैं जो कि अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में है ।

(5) बड़े उद्योग लगाते समय भी यह प्रयत्न किया गया है कि यथासम्भव यह पिछड़े क्षेत्रों में लगाये जायें ।

यद्यपि बड़े, पूंजीगत उद्योग लगाते समय तो शायद कच्चे माल के स्त्रोत का सामीप्य आवश्यक है मगर उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योग तो लगभग सभी जगह लगाये जा सकते हैं । अत: कपड़ा, सिलाई की मशीनें, रेडियो, टी.वी., साईकिलें, प्लास्टिक का सामान, दवाईयाँ जैसे अनेक उद्योग लगा कर पिछड़े प्रदेशों का विकास किया जा सकता है । इसी दिशा की ओर भारत में कदम उठाये गये हैं ।

मगर इन उपायों के पूर्ण रूप से कार्यान्वित होने में कुछ समस्याएं सामने आती हैं । पहला तो यह कि यह योजनाएं कहां तक वास्तव में लागू की जा रही है इसके विषय में कुछ सूचना नही प्राप्त होती । दूसरे देखने–सुनने में पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिये दी गई राशि बहुत अधिक लगती है मगर प्रति व्यक्ति व्यय के रूप में बहुत कम बैठती है । तीसरे पिछड़े वर्गों को चिन्हित करने के लिये उनके लिये आय कर छूट या निवेश सहायता देने के लिये कोई एक जैसा व नियमित नियम नहीं है ।

25.8 संतुलित विकास के उपाय

इसलिये राज्यों के सन्तुलित विकास के लिये कुछ विशेष उपाय आवश्यक हैं : राजकृष्णा ने इसके लिये तीन सुझाव दिये है :

(1) उपरिव्यय (Infrastructure) सुविधाओं का विस्तार किया जाये जैसे जल, बिजली, परिवहन आदि ।

(2) नियोजन का विकेन्द्रीकरण करके राज्य स्तर पर आयोजन किया जाये; तथा

(3) वित्तीय संसाधनों का राज्यों में आवण्टन करने का आधार बदला जाये। यह आवण्टन चार आधारों पर किया जाता है– (अ) जनसंख्या, (व) राज्य द्वारा कर प्राप्ति, (स) पिछड़ेपन का कोई सूचकांक, व (ड) सिंचाई या उर्जा परियोजनाओं पर किया जाने वाला व्यय।

इनमें से दूसरे व चौथे आधार का विपरीत असर होता है। कर प्राप्ति व परियोजना पर व्यय अधिक ज्यादा प्रति व्यक्ति आय वाले क्षेत्रों में होगा इसलिए उन्ही को अधिक वित्तीय संसाधन भी प्राप्त होते हैं । व वास्तव में पिछड़े क्षेत्रों को कम साधन ही प्राप्त हो पाते है। इसलिये इन आधारों में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है।

25.9 सारांश

इस अध्ययन से यही देखने में आता है कि भारत में क्षेत्रीय असमानताएं बहुत है व योजनाकाल में इसमें कोई विशेष कमी नहीं आई। अपितु अनेक क्षेत्रों में इनमें वृद्धि हो गई है। आश्चर्य और खेद की बात यह है कि यद्यपि सरकार ने इस दिशा में छुटपुट उपाय किये है मगर लगन से एकजुट हो कर कोई विशेष प्रयास नहीं किये गये। आठवीं योजना के पश्चात फिर इस ओर सरकार बहुत कम ध्यान दे रही है। समस्या गम्भीर है– उस पर गम्भीरता से गौर होना चाहिये व गम्भीरता से उस समस्या का हल ढूँढना चाहिये। अभी इस दिशा में बहुत कुछ करना बाकी है।

25.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1) भारत में विभिन्न क्षेत्रों के असन्तुलित विकास के क्या कारण हैं? इस असन्तुलन को दूर करने के लिये किये गये उपायों का विवेचन करें।
2) विभिन्न क्षेत्रों के विकास के स्तर का अनुमान लगाने के लिये किन सूचकांकों का प्रयोग किया जा सकता है? इन सूचकांकों के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यों में क्या विषमताएं पाई गई है?
3) भारत में योजना काल में विभिन्न क्षेत्रों में सन्तुलित विकास लाने के लिये क्या कदम उठाये गये है? यह उपाय किस सीमा तक सफल हुए है, विवेचन करें।
4) भारत में योजनाकाल में विभिन्न क्षेत्रों के सन्तुलित विकास पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया क्या आप इस बात से सहमत है? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दें।

25.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Ruddar Datt and K PM Sundharam: Indian Economy 36th and 37th Edition; s. chand and Co., New Delhi, 1997
2) IC Dhingra– The Indian Economy; Sultan Chand and Sons, Delhi 1997
3) Sharma T C and C Coutino: Economic and Commercial Geography of India, Vikas Publishing house Delhi, 1996
4) Gopal Singh: A Geography of India, Atma Ram & Sons, Delhi 1970

5) Planning Commission :	तृतीय पंचवर्षीय योजना
योजना आयोग	छटी पंचवर्षीय योजना
	सातवी पंचवर्षीय योजना
	आठवी पंचवर्षीय योजना

6) Indian Economic Association–Balanced Regional Development; conference Number 1969 and 1974
7) A Vaidya Nathan -Poverty and Economy: The Regional Dimension in Barbara Harrio (etal(eds):Poverty in India; oup Bombay 1992
8) Susheela Subrahmanya & MVSrinivasa Gowda (eds)–Regional Econonomic Development in India (Deep, ND,1995)

इकाई–26

भारत में बहु–स्तरीय नियोजन (राज्य स्तर तथा जिला स्तर नियोजन के विशेष संदर्भ में)

इकाई की रूपरेखा

परिचय

26.0 उद्देश्य

26.1 प्रस्तावना

26.2 विश्व–अर्थव्यवस्थाओं में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की नियोजन व्यवस्थायें अथवा प्रणालियाँ

26.2.1 साम्यवादी बनाम प्रजातांत्रिक नियोजन

26.2.2 अधिकारात्मक नियोजन बनाम मार्ग निर्देशात्मक या दिशा निर्देशात्मक नियोजन

26.2.3 केन्द्रित बनाम विकेन्द्रित नियोजन

26.3 पिछड़े क्षेत्रों और अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए नियोजन तकनीक

26.4 भारत में नियोजन की विधियाँ और संगठन

26.4.1 भारत में पंचवर्षीय योजना निर्माण की अवस्थायें

26.4.2 नियोजन के प्रकार या विधियां

26.5 सारांश

26.6 शब्दावली

26.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

26.0 उद्देश्य

भारत जैसी, एक अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्था अनेक क्षेत्रीय असन्तुलनों से ग्रसित होती है । यह क्षेत्रीय असन्तुलन अनेक कारणों, परिस्थितियों, दुराग्रहों व कुत्सित एवं स्थितियों के सामूहिक फल हैं जो कालान्तर में अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन के पर्यायवाची बन जाते है । इन क्षेत्रीय असन्तुलनों के रहते कोई वास्तविक आर्थिक विकास तथा परिवर्तन सम्भव नहीं है । इसलिए इन्हें कम करना तथा शनै :शनै : समाप्त करना, अर्थव्यवस्था की आवश्यकता भी है और अनिवार्यता भी । इन क्षेत्रीय असन्तुलनों के बारे में विशेष बात यह है कि विषमताओं तवा विविधताओं के इस देश में यह असन्तुलन एक प्रकार के, एक स्वरूप के, एक प्रकृति के, एक आकार के और एक समस्या से ही सम्बन्धित नहीं होते बल्कि अलग–अलग और भिन्न–भिन्न होते है । इनसे निपटना भी एक चुनौती है । और इस चुनौती का सामना किये बिना विकास तथा प्रगति सम्भव नहीं । इस प्रक्रिया में राष्ट्रीय सोच, समय व साधन सभी का समन्वित प्रयोग, योगदान व सूझबूझ अनिवार्य हो जाता है । इसके लिए योजनाबद्ध तरीके से काम करना होता है । बस यही से अर्थव्यवस्था के विकास की नियोजित व्यवस्था प्रारम्भ हो जाती है ।

इसी कारण से एक नियोजित आर्थिक प्रक्रिया एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था में स्थायी तथा प्रावैगिक विकास लाने के लिए, एकल महामन्त्र सिद्ध होता है ।

संसार की लगभग सभी अर्थव्यवस्थायें अपने विकास के लिए नियोजन का सहारा लेती है और आर्थिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन्होंने नियोजित अर्थव्यवस्था का सहारा लिया है ।

प्रो. रोबिन्स ने कहा है "यदि स्पष्ट व सख्त शब्दों में कहें तो कहना होगा कि समस्त और सम्पूर्ण आर्थिक जीवन में कहीं न कहीं नियोजन अनिवार्य रूप से अन्तर्निहित है । योजना बनाने का अर्थ है कि एक चुने हुए उद्देश्य के साथ और अनुसार कार्य करना तथा चयन, आर्थिक क्रिया का निचोड़ है, तत्व है, आधार है । इस बात से यह स्पष्ट है, कि प्रत्येक उस आर्थिक क्रिया को, जो एक निश्चित लक्ष्य अथवा उद्देश्य को लेकर की जानी है, किसी न किसी प्रकार के नियोजन की आवश्यकता होती है । यह नियोजन की, मोटी–मोटी परिभाषा भी समझनी चाहिए । वास्तव में, किसी भी आर्थिक क्रिया को सम्पन्न करने या पूरा करने या पूरा करने के समय–बद्ध, साधन–बद्ध तथा लक्ष्य बद्ध कार्यक्रम को योजना कहते है । नियोजन एक प्रक्रिया है, योजना उसका स्वरूप है, इसकी वास्तविक एवं व्यावहारिक क्रियान्त्रिति उसका कार्य व कार्यक्रम है तथा आर्थिक विकास उसका फल। इसके साथ यह बात भी स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि नियोजन कोई निरपेक्ष क्रिया या लक्ष्य और अन्तिम क्रिया नहीं है, यह तो एक सापेक्षिक प्रयास है जिसमें निरन्तर परिवर्तन तथा दृष्टव्य प्रावैगिकता अपना वृद्धिमान रूप स्वरूप दिखाते ही रहते है और अर्थव्यवस्था में वांछित परिवर्तन लाने की प्रक्रिया तथा लक्ष्य को सफल उपलब्धि की सीमा तक ले जाते ही रहते है । अर्थशास्त्र के अधिकतर विद्यार्थियों के लिए नियोजन का अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसमें सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन लाने और उसे प्रभावी करने तथा कतिपय पूर्व निश्चित या पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्राकृतिक साधनों के प्रयोग के लिए, एक जागरूक, चेतनशील और साधिकृत केन्द्रीय नियन्त्रण निहित है । मोटे–मोटे अर्थों व शब्दों में नियोजन सत्ता कहलायेगी । इस नियोजन सत्ता का मुख्य कार्य है किसी योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु अधिकतम मितव्ययी साधनों की खोज करना। इसके लिए, नियोजन सत्ता को यह बात प्राथमिकता के आधार पर ध्यान में रखनी है कि यह इस बात को देखे तथा आश्वस्त हो जाये कि नियोजित अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र, भाग, अंग व खण्ड में, उत्पाद और उत्पादन का लक्षित उद्देश्य और साक्षित–स्तर बहुत ही मितव्ययी तरीके से प्राप्त हो जाये, हो सके या हो ।

नियोजन के समस्त संयन्त्र को हम उस समय भली भांति से समझ जायेंगे और समझने लगेंगे यदि हम यह देखने लगें कि नियोजन कर्ता वह लोग है जो भविष्य की आर्थिक समृद्धि के लिए एक कार्य योजना, कार्य रूप रेखा तथा कार्यक्रम तैयार करते है । जो अर्थव्यवस्था सरकार तथा जनता के समुख रखते है, और फिर उसकी वास्तविक तथा सम्पूर्ण तथा ठोस उपलब्धि के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते है । इस प्रकार की रूप रेखा तैयार करने में प्रयासरत रहते हुये, इस नियोजन सत्ता को, देश के वर्तमान आर्थिक विकास के स्तर को ध्यान में रखना होगा और उस स्तर पर विचार करते हुए, एक और तो, विविध तथा विभिन्न

उत्पादन व उत्पादक क्षेत्रों की प्रतिस्पर्द्धात्मक मांगों और दूसरी और, उपलब्ध साधनों के बीच समन्वय तथा सामंजस्य स्थापित करना होगा जिससे कि देश के साधनों का सर्वोत्तम उपयुक्त, सम्भव तथा मितव्ययी तरीके से प्रयोग और विदोहन हो सके ।

इस प्रकार संक्षेप में यह कहना होगा कि, आर्थिक नियोजन एक जागरूक, चेतनापूर्ण तथा सावधानी पूर्ण तरीके से अपनायी गयी प्रक्रिया है जो सतत है । जिसकी पहल, राज्य द्वारा, देश की सम्भावी छिपी हुयी सम्पदा का अनुमान लगाने व आकलन करने तथा साथ ही साथ, देश के उपलब्ध साधनों के कुशलतापूर्वक विदोहन के लिए प्रयुक्त करने, जिससे कुछ स्पष्ट, निश्चित एवं निर्दिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके, की जाती है । दूसरे शब्दों में, आर्थिक नियोजन का उद्देश्य है राष्ट्रीय साधनों तथा क्षमताओं और आर्थिक प्रतिभूतियों को संपूर्ण राष्ट्र के उच्चतम तथा सर्वहितकारी हितों के लिये प्रयुक्त करना। पर यह कैसे किया जाये, यह बात निश्चित ही देश की आर्थिक परिस्थितियों, उसके द्वारा प्राप्त आर्थिक विकास की अवस्था, उसके सामाजिक ढाँचे अथवा संरचना और सरकार तथा शासन के तरीकों पर निर्भर करेगा ।

यह इकाई निम्न उद्देश्यों की पूर्ति करेगी –

1. "भारत एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था वाला देश है जो साधनों के अभाव के कारण नहीं बल्कि उनके पूर्ण विदोहन के अभाव के कारण गरीब है । पर यह साधन भी देश के प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से मात्रा व गुण में नहीं पाये जाते । उनके विविध विदोहन के लिए विविध स्तरों से भौतिक, तकनीकी, आर्थिक, नीतिगत और प्रशासनिक प्रयास करने हेतु नियोजन निश्चित ही बहुस्तरीय होगा जिसमें प्रत्येक क्षेत्र व जनपद अपना महत्व रखता है ।

2. देश के सन्तुलित विकास के लिए क्षेत्रीय असन्तुलनों को समाप्त करना होगा। इन असन्तुलनों के सुक्ष्म एवं व्यापक स्तरीय प्रसंग है । इसके लिए आवश्यक है कि अलग–अलग क्षेत्र के अलग–अलग आर्थिक असंतुलन से निपटने के लिए सुक्ष्म स्तरीय नियोजन किया जाये और फिर व्यापक स्तरीय उपचार हेतु देश के लिए अपनाये जायें ।

3. जो नियोजन एक क्षेत्र की विषमताओं और असन्तुलनों से निपटने के लिए आवश्यक और उचित है, आवश्यक नहीं कि वही नियोजन दूसरे क्षेत्र की दूसरी समस्या या असन्तुलन को दूर करने या हल करने के लिए उपयुक्त बैठे । इस कारण बहु–स्तरीय नियोजन आवश्यक हो जाता है ।

4. बहु–स्तरीय नियोजन क्षमता, वृद्धि, साधन व सहयोग का हर स्तर पर प्रयोग और विदोहन करने हेतु आवश्यक है ।

5. भारत की नियोजन व्यवस्था न तो रूस की तरह अधिनायकवादी अथवा निरंकुश शासकवादी है, और न ही अमेरिका की तरह स्वतन्त्र व्यापार वाली पूँजीवादी अर्थ–व्यवस्था है जिसमें मिश्रित अर्थव्यवस्था का भी महत्वपूर्ण स्थान व भूमिका है । ऐसे नियोजन की सफलता हर स्तर पर हर प्रकार का सहयोग व साधन–प्रयोग से सम्भव है तभी भारत में बहुस्तरीय नियोजन का चलन है ।

6. प्रजातान्त्रिक मिश्रित अर्यव्यवस्था में केन्द्रीय सरकार से लेकर ग्राम पंचायत तक प्रत्येक सार्वजनिक सत्ता इकाई अपने अधिकार व कर्तव्य से बंधी हुयी है । नियोजन के महान

कार्य में सबका सहयोग परामर्श व योगदान आवश्यक है जिसके कारण बहु–स्तरीय नियोजन ही एक मात्र उपचार है ।

7. हर आर्थिक क्षेत्र व इकाई की समस्या कहीं–कहीं तो इतनी छोटी है कि उसका ज्ञान केवल क्षेत्रीय लोगों तक ही सीमित है। एक गांव से दूसरे गांव तक पहुँचने के लिए सड़क बनवाना केन्द्र सरकार का काम नही है और न ही वह सूक्ष्म रूप से केन्द्रीय नियोजन का भाग बन सकती है । इस प्रकार की समस्यायें क्षेत्र विशेष की होती है और सूक्ष्म रूप से सदैव ही अलग होंगी तथा उनके लिए नियोजन भी स्थानीय या क्षेत्रीय सत्ता करेगी । इस दृष्टि से भी बहु–स्तरीय नियोजन विशेषकर क्षेत्रीय या ग्राम्य–स्तर नियोजन आवश्यक व उपयुक्त है ।

8. केन्द्रीय स्तर पर संगठित होने वाले नियोजन आयोग के सदस्य एकदम अनुभवी तथा सिद्ध उत्पन्न नहीं हुए है । वे सभी कहीं न कहीं प्रारम्भिक अवस्था और स्थिति में नगर स्तरीय नियोजन या जिला स्तरीय नियोजन या मण्डल स्तरीय नियोजन या राज्य–स्तरीय नियोजन से सम्बद्ध अवश्य रहे होंगें या रहे है जिससे उनका वास्तविक स्थितियों से परिचय रहा होगा या रहा है । तभी वे व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय नियोजन व्यवस्था के लिये लाभकारी और उपयुक्त रहे है या रहे होंगे । इस सीढ़ी को पूरा करने तथा निर्माण करने के लिए भी विभिन्न स्तर पर नियोजन आवश्यक है जो व्यवस्था के अगले स्तर के लिए अनुभवी व सिद्ध नियोजन कर्ता उत्पन्न कर सकें।

9. प्रावैगिक जानकारी की दृष्टि से, यह उपयुक्त है कि जिस स्तर की समस्या हो उसी स्तर पर उसके नियोजन कर्ता भी कार्यरत हों । पंजाब की समस्या को सुलझाने के लिए केरल का मुख्यमन्त्री नहीं आयेगा और न ही उसका कोई स्थान अथवा औचित्य है । इसीलिए बहुस्तरीय नियोजन करके हर क्षेत्र की समस्या को उस क्षेत्र की क्षमता, जनशक्ति, साधन शक्ति के प्रयोग से फलीभूत किया जा सकता है हल निकाला जा सकता है या सुलझाया जा सकता है ।

26.1 प्रस्तावना :-

मार्च 1950 में, देश में, नियोजन आयोग की स्थापना की गयी । इसके प्रारम्भ से ही, देश का प्रधानमंत्री इसका अध्यक्ष रहता है । आयोग के दिन–प्रति–दिन का कार्य देखना उपाध्यक्ष का दायित्व है । दूसरे शब्दों में, आयोग का नित्य प्रति का कार्य देखने हेतु इसका एक उपाध्यक्ष होता है । स्मरण रहे, उपाध्यक्ष का पद और नियोजन मंत्री का पद अलग–अलग होते है यह दो पद है एक नहीं । नियोजन आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद को एक सचिवालय प्रदान करता है और सुविधा देता है । यह सचिवालय राष्ट्रीय स्तर पर राज्य सरकारों को, नियोजन के राष्ट्रीय संगठन से, एक अंग के रूप में जोड़े रखता है ।

नियोजन आयोग अनेक विभागों और उपविभागों की सहायता से कार्य करता है । इनमें से प्रत्येक विभाग अथवा उपविभाग का मुखिया एक वरिष्ठ अधिकारी होता है । यह अधिकारी भिन्न–भिन्न नामों जैसे सलाहकार, मुख्य सचिव अथवा संयुक्त सचिव, जैसे नामों से जाना जाता है । कुछ विभागों के अधिकारी मध्यम ग्रेड के अफसर होते है । इन्हें निदेशक कहा जाता है यह अपने वरिष्ठ अधिकारियों के सहयोग से कार्य करते है । आयोग के पूर्ण कालिक सदस्यों

का यह दायित्व है कि वे विभागों तथा उपविभागों के नित्यप्रति कार्यों को देखें यद्यपि सम्पूर्ण आयोग एक पूरे अंग की तरह कार्य करता है और सभी महत्वपूर्ण नीतिगत मामलों पर संयुक्त रूप से सभी को सलाह देता है । विभिन्न विभाग, दो बड़े भागों में विभक्त होते है (1) सामान्य विभाग, जिसका सम्बन्ध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कुछ विशिष्ट पहलुओं से होता है । और (2) विषय विभाग (जो कई होते है) जिनका संबंध विकास के विशेष क्षेत्रों से होता है । इसके अतिरिक्त, नियोजन आयोग का दूरगामी भविष्य जनित नियोजन के लिए भी एक अलग विभाग है जिससे यह आशा और अपेक्षा की जाती है कि विभिन्न विभागों और उप विभागों द्वारा किये जा रहे दीर्घगामी विकास कार्यक्रम के लिए उन्हें समय–समय पर सामान्य उचित और सामयिक मार्ग दर्शन दे ।

सामान्य विभाग इस प्रकार है :–

(1) आर्थिक विभाग

(2) भविष्यगामी सम्भावी नियोजन विभाग,

(3) श्रम और रोजगार विभाग,

(4) सांख्यिकी तथा सर्वेक्षण विभाग,

(5) कार्यक्रम और प्रशासन विभाग,

(यहविभाग, राज्यों द्वारा अपनायी गयी योजनाओं की निगरानी करता है तथा समन्वय स्थापित करता है और नियोजन आयोग द्वारा अधिक पिछड़े हुए क्षेत्रों व राज्यों में किए जा रहे कार्यो का भी समन्वय करता है।)

(6) साधन और वैज्ञानिक अन्वेषण विभाग

(7) सामाजिक– आर्थिक खोज (एस.ई.आर) विभाग,

(8) योजना समन्वय उप विभाग,

(2) विषय विभाग हैं ।

(1) कृषि विभाग,

(2) सिंचाई तथा चालक शक्ति विभाग,

(3) भूमि सुधार विभाग

(4) उद्योग खनिज विभाग

(5) ग्रामीण तथा लघु स्तरीय उद्योग विभाग,

(6) यातायात तथा संचारवाहन विभाग,

(7) ग्रामीण कार्य विभाग

(8) शिक्षा विभाग

(9) स्वास्थ्य विभाग

(10) आवास विभाग

(11) समाज कल्याण विभाग

(12) जन सहयोग विभाग

(3) बहुस्तरीय नियोजन ढाँचा :–

अधिकार क्षेत्र, शक्ति, क्षमता, कार्य–क्षेत्र, भौगोलिक क्षेत्र, क्षेत्रीय आधार इत्यादि के संदर्भ मे, देश में नियोजन व्यवस्था इस प्रकार है:–

(1) नियोजन आयोग : समपूर्ण देश की अर्थव्यवस्था के लिए नियोजन के लिए उत्तरदायी संस्था।

(2) राज्य नियोजन आयोग : देश के प्रत्येक राज्य तथा केन्द्र शासित क्षेत्र के लिए एक–एक

(3) मण्डलीय नियोजन समिति : प्रत्येक राज्य के प्रत्येक मण्डल में एक –एक।

(4) जिला या जनपद नियोजन समिति : प्रत्येक जिले के लिए एक ।

(5) ग्राम पंचायत, ग्राम सभा अथवा जिला पंचायत ।

(6) सामूदायिक विकास योजना एवं ग्राम्य प्रसार सेवा ।

26.2 विश्व–अर्थ व्यवस्थाओं में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की नियोजन व्यवस्थायें अथवा प्रणालियाँ :

26.2.1 साम्यवादी बनाम प्रजातान्त्रिक नियोजन :–

सोवियत रूस ने, जो नियोजन के क्षेत्र में अग्रणीय और अगुआ माना जाता है, एक सख्त, दृढ़, लोचविहीन, सर्वशक्तिवादी रूप की नियोजन व्यवस्था अपनायी जिसे " साम्यवादी नियोजन" कहते है । इस व्यवस्था को अपनाते हुए, सम्पूर्ण सोवियत संघ में, अर्थव्यवस्था के "समाजिकरण करने के अथक व चहुँमुखी प्रयास किये गये और इस प्रक्रिया में, निजी साहस व उद्यम तथा स्वतंत्र बाजार संयंत्रों को सुनियोजित और क्रमिक रूप से कुचल दिया गया । सोवियत नियोजन कर्ता देश में, तीव्रगामी तथा चमत्कारिक गति से बड़े उद्योगों के विकास चाहते थे और इसी दिशा में प्राथमिक और प्रमुख रूचि रखते थे जिसके कारण, उपभोग–वस्तु उद्योगों की ओर अरूचि और उदासीनता उत्पन्न हो गयी । इसका परिणाम हुआ समस्त यू. एस. एस. आर. की जनता के लिए कष्ट व संकट तथा अभाव । नियोजन कर्ताओं की हर हालत में तथा हर कीमत पर योजना की सफलता के लिए अंधे और क्रूर प्रयास और उसकी दिन प्रति दिन की उपलब्धि में अतिव्यस्तता का परिणाम यह हुआ कि आम जनता में क्रूरता, विद्रोह, कठोरता, प्रतिक्रिया और विभागीकरण तथा वर्गीकरण को बढ़ावा मिला और चारों ओर आर्थिक सामाजिक असन्तोष पनपने लगा।

इस प्रकार के दृढ़ अलोचपूर्ण तथा कठोर प्रकार के "सामावादी नियोजन " के विपरीत प्रजातान्त्रिक नियोजन है जो दो प्रकार का होता है । एक हल्के–फुल्के प्रकार के प्रजातान्त्रिक नियोजन का प्रारम्भ, अमेरिका में, महान तीसे की मन्दी से निपटने व संघर्ष करने के लिए किया गया तथा ब्रिटेन में, द्वितीय महायुद्ध के बाद के काल में ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण हेतु किया गया। अमरीका और ब्रिटेन में नियोजन ने आर्थिक सम्बन्धों के एक प्रकार

के जागरूक पुनर्व्यवस्थापन का रूप लिया । इसने "स्व नियत्रणकारी स्वचालित व्यवस्था " की अभिपूर्ति की जिसका आधार था प्रतिस्पर्द्धा और निजी उद्यम जो प्रतिस्पर्द्धा पर आद्यारित था । इस प्रकार का प्रजातान्त्रिक नियोजन, आम जनता की आर्थिक सामाजिक दशाओं को सुधारता है और साथ ही साथ किसी प्रकार की तंग व कंटकीय जटिलता अथवा जन असन्तोष को भी जन्म नहीं देता ।

दूसरे प्रकार का प्रजातान्त्रिक नियोजन, पहले प्रकार के प्रजातान्त्रिक नियोजन की तुलना में ज्यादा संकेन्द्रित, ज्यादा समन्वित और ज्यादा गहन होता है । इस प्रकार का नियोजन, एक ओर तो दृढ़ लोंचविहीन, दमनकारी व क्रूर साम्यवादी नियोजन तथा दूसरी ओर, कल्याण–प्रेरित, हल्के–फुल्के प्रकार के प्रजातान्त्रिक नियोजन, दोनों के बीच का मध्य वर्ग है और इसलिए उस अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था वाले देश की प्रजातान्त्रिक सरकार के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है जो सरकार के आर्थिक विकास को गतिमान करने के दायित्व को ओढ़ लेता है । नियोजन की इसकी तकनीक व प्रणाली को अपनाने का अर्थ होगा कि राज्य यह देखे और सुनिश्चित करले कि राष्ट्रीय आय के उस अंश में अनिवार्य रूप से वृद्धि हो रही है जो अंश उपभोग की ओर से तो खींच लिया जाता है तथा निवेश को समर्पित किया जाता है । अर्थात उपभोग के स्थान पर उत्पादक कार्यो के लिए निवेश बढ़ाया जाता है । पर मुश्किल तो यह है कि प्रजातान्त्रिक देश की सरकार के लिए यह लगभग असम्भव सा हो जाता है कि वह तीव्र विकास को प्राथमिकता देने के चक्कर व अभियान में, उपभोग को निरपेक्ष न्यूनतम स्तर पर बनाये रखे । प्रजातान्त्रिक नियोजन के अन्तर्गत जनता का कल्याण तथा उसकी खुशहाली भी बहुत महत्व के होते है । इसलिए आवश्यक रूप से, "विकास" उद्देश्य तथा "कल्याण" उद्देश्य के बीच समझौता करना होता है । यही है वह तकनीक व व्यवस्था जो हमने भारत में अपनायी है।

भारत, मानव–स्वतंत्रता और गौरव में अटूट विश्वास रखता है इसलिए उसकी विकास योजनायें, यद्यपि वे उच्चस्तरीय संकेन्द्रण और समय का विषय व आधार है, मूलरूप से तथा आधारभूत ढांचे में, कल्याण–जनित है । भारत की पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी व छठी योजनायें, सुनियोजित, सुसंगठित, समन्वित और केन्द्रित नियोजन के उत्तम और आदर्श उदाहरण है । जिनका उद्देश्य रहा है, एक पिछड़ी हुयी धीमी गति से चलने वाली शिथिल अर्द्धविकसित अर्थ–व्यवस्था के करोड़ों लोगों की जीवन–दशाओं और कल्याण सम्बन्धी आवश्यकता की आपूर्ति में वृद्धि करें । जिसके लिए साधनों का प्रभावपूर्ण प्रयोग व विदोहन किया जाय जो अन्त में स्थायी रूप से अर्थव्यवस्था में प्रावैगिक विकास और गतिमानता का मार्ग प्रशस्त करे । भारत में, उत्तरोतर वृद्धिमान आर्थिक विकास को प्राप्त करने के लिए, केंन्द्रित और कल्याण–जनित नियोजन प्रणाली को इसलिए समर्थित तथा प्रोत्साहित नहीं किया गया कि यहाँ पर एक प्रजातान्त्रिक सरकार है बल्कि इसलिए भी अपनाया गया क्योंकि उस सामाजिक व्यवस्था की रीढ़ की हड्डी या आधार शिला, जो सामाजिक व्यवस्था कि मूल रूप से, आर्थिक विकास की बैलगाड़ी व्यवस्था और हथकरघा अवस्था के अनुकूल चल रही थी, अब सोद्देश्य–पालित सक्रिय राज्य–क्रिया के सकारात्मक प्रभाव के कारण शनै : शनै : क्षीण खण्डित व भूमिल होती जा रही है । भारतीय अर्थव्यवस्था में, स्वतंत्र–बाजार संयन्त्रो ने निरन्तर ही एक

स्पष्ट भूमिका निभायी है । पंचवर्षीय योजनाओं से जो आर्थिक ढ़ाँचा भारत के संदर्भ में उभर कर आया है वह है "मिश्रित अर्थव्यवस्था" जिसमें सार्वजनिक उपक्रम और उद्यम तथा निजी उपक्रम और उद्यम का अस्तित्व सम्भव है ।

26.2.2 अधिकारात्मक नियोजन बनाम मार्ग निर्देशात्मक या दिशा निर्देशात्मक नियोजन:–

आज कल कुछ रिवाज सा बन गया "अधिकारात्मक अथवा आदेशात्मक नियोजन या सर्वशक्ति मानता परक नियोजन, निर्देशन के अनुसार नियोजन, आदेश के अनुसार नियोजन इत्यादि और "दिशा निर्देशात्मक नियोजन " या मार्ग दर्शनात्मक नियोजन या रजामन्दी से तैयार किया गया नियोजन, प्रेरणाजनित नियोजन, नियन्त्रित नियोजन या मार्गदर्शित नियोजन इत्यादि के बीच के अन्तर को जाने, पहचाने, खोज करें तथा इन दोनों के बीच के अन्तर को स्थापित करें । निर्देशात्मक अथवा मार्गदर्शनात्मक नियोजन प्रणाली के अन्तर्गत जैसा कि हम फ्रांस में पाते है, नियोजन सत्ता या संस्था, मात्र एक समन्वयात्मक ऐजेन्सी है और यह, योजना–निर्माण हेतु, सम्बन्धित संस्था अथवा सत्ता को केवल मार्गदर्शन दिया जाता है । विस्तृत क्षेत्रीय लक्ष्यों की रूप रेखा अनेक छोटी–छोटी समितियाँ, जिनमें उन सभी वर्गों के प्रतिनिधि होते है जो कि मिले हुए अथवा प्राप्त हुए अथवा लिए गए निर्णयों को कार्य व व्यवहार में परिणित करेंगे और इस तरह लक्ष्य, योजनाओं के लिए निर्मित तथा निर्धारित होते रहेंगे । कहीं पर किसी प्रकार का दबाव या धौस नहीं है । इस प्रजातान्त्रिक नियोजन व्यवस्था के अन्तर्गत, नियोजन एक प्रकार की सहकारी, समयक समन्वित, समरूप, सहज व सरल प्रक्रिया है जो एक ओर तो नियोजन आयोग तथा दूसरी ओर, छोटी–छोटी उप समितियों के संयुक्त कार्यकरण, कार्यशैली और कार्य क्षमता तथा गति पर निर्भर करेगी ।

लेकिन, आदेशात्मक नियोजन प्रणाली के अन्तर्गत, एक प्रकार का दमन, दबाव, अनिवार्यता का तत्व निहित रहता है । इस प्रकार की नियोजन प्रणाली की एक विशेषता और भी है और वह यह है कि इसके क्रियान्वयन के लिए एक प्रशासनिक तंत्र या संयन्त्र या व्यवस्था होती है जो निवेश तथा उत्पादन सम्बन्धी निर्णयों को क्रियान्वित करवाने की विपुल शक्ति व संज्ञा रखती है । जिस शक्ति के कारण, वह निर्णय क्रियान्वयन हेतु अन्तिम आर्थिक इकाइयों तक पहुंचते है और उन्हें कार्य करना पड़ता है । भारत की पहली चार योजनाओं में इस प्रकार की मोटी–मोटी विशेषता दिखाई पड़ती है ।

26.2.3 केन्द्रित बनाम विकेन्द्रित नियोजन: –

ऊपर हम देख चुके है कि अनिवार्य अथवा आदेशात्मक नियोजन व्यवस्था के अन्तर्गत, नियोजन की शक्ति व संज्ञा एक "केन्द्रीय नियोजन संस्था" या "बोर्ड" में निहित व केन्द्रित रहती है । जो सत्ता न केवल योजना का प्रारूप ही तैयार करती है बल्कि साथ ही साथ उन लक्ष्यों को भी तैयार करती है और देश के सामने रखती है जो लक्ष्य अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में क्रियान्वित किये जाते है और उपलब्ध होते है । इस प्रकार के नियोजन में अनिवार्यता शत प्रतिशत होती है और यह अनिवार्यता उस केन्द्रीय सत्ता से प्रवाहित होती है जिस

अनिवार्यता का प्रयोग उस केन्द्रित सत्ता द्वारा योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने व पूरा करने के लिए किया जाता है ।

यह केन्द्रित नियोजन मॉडल जिसका पालन व प्रयोग सोवियत संघ में, किया गया है, भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का भी आधार है । जिसने भारत पर लगभग $2^1/_2$ वर्ष (1977 से 1979) तक राज्य किया था, भारत ने भी धीरे–धीरे विकेन्द्रित नियोजन मॉडल का प्रयोग किया था। जनता राज्य की अवधि में, निर्देशात्मक अथवा मार्गदर्शनात्मक नियोजन पर बहुत बल दिया गया था और हम सभी देशवासियों ने एक कीमत निर्देशित अर्थव्यवस्था का अनुभव किया था । और इस प्रकार की व्यवस्था की तुलना फ्रांस में पायी जाने वाली नियोजन व्यवस्था से की जा सकती है । एक कीमत–निर्देशित (नियन्त्रित) विकेन्द्रित नियोजन मॉडल में, पूरी समस्या, अनेक उप समस्याओं में विभक्त कर ली जाती है । इस व्यवस्था में, सर्वोपरि (शीर्षपर) होती है एक केन्द्रीय नियोजन सत्ता (सी. पी .ए) अर्थात सेन्ट्रलप्लानिंग ओथोरिटी जो कि मुख्य समन्वयक का कार्य करती है । सबसे नीचे अनेक छोटे वर्ग, विभाग अथवा खण्ड होते है जो कतिपय कुछ गुणों के आधार पर अथवा विशेषताओं के आधार पर विभक्त किये जाते है (जैसे निवेश–वस्तु संवर्ग, उपभोग–वस्तु संवर्ग, इत्यादि) जो संवर्ग कि केन्द्रीय नियोजन सत्ता के द्वारा निर्धारित मार्ग बिन्दुओं और प्रदर्शन दिशाओं के अनुसार व आधार पर कार्य करते है और अपनी प्रतिउत्तरता प्रदर्शित करते है । यह सभी उप भाग व उप खण्ड व अंचल क्षेत्र केन्द्रीय सत्ता के प्रति उत्तरदायी है । इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय सत्ता तथा उप वर्गो के बीच, एक और वर्ग होता है जिसे दोनों सिरों के बीच सूचना प्रसार या प्रवाह की नियमित्तता और सुचारू क्रियान्विति देरवने का दायित्व सौपा जाता है । यह एक प्रकार का बिचौलिया भाग है जिसमें स्वयं अनेक उप भाग या खण्ड होते है । इस सारी व्यवस्था के अतिरिक्त कुछ सम्पर्क समितियाँ (लायजन कमेटीज) भी होती है जिनमें दल के प्रतिनिधि या कार्यकर्ता होते है और बिचौलिया संवर्ग के प्रतिनिधि (जिन प्रतिनिधियों में कृषि, उद्योग, व्यापार व व्यवसाय के प्रतिनिधि सम्मिलित है) होते है । यह सब मिलकर, विविध प्रकार की अधीन इकाइयों को जोड़ने एवं समन्वित करने का काम करते है । यहां यह ध्यान में रखना होगा कि एक विकेन्द्रित नियोजन विधियन, मूलरूप से, एक प्रकार का "अधिकिकरण प्रकार का नियोजन मॉडल" है । यहाँ "अधिकिकरण" दो स्तरों पर चलता है । एक ओर तो क्षेत्र, वैयक्तिक रूप से अधिकिकरण करते है और दूसरी और केन्द्रीय सत्ता, सम्पूर्ण समुदाय के अधिकतम सामाजिक कल्याण की उपलब्धि अथवा प्राप्ति का लक्ष्य निरन्तर अपने मस्तिष्क में रखती है । इस प्रक्रिया में, वह, सामाजिक उद्देश्य कार्यकरण के अधिकिकरण को स्वत: ही अपना लक्ष्य बना लेती है ।

26.3 पिछड़े क्षेत्रों और अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए नियोजन तकनीक

यह सर्वविदित है कि पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं में, “चालू आय के असामान्य निम्न स्तर" तथा “हीन उत्पादकता" के इन क्षेत्रों के लिए नियोजन तकनीक ऐसी हो जो आय और

उत्पादकता के स्तरों में निरन्तर, वृद्धिमान तथा प्रावैगिक वृद्धि का मार्ग प्रशस्त करें । जिससे एक ओर तो लोगों की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और दूसरी ओर भविष्य में प्रगति, विकास व समृद्धि का मार्ग गतिमान हो ।

पिछड़ेपन की अवस्था, जैसा कि दिन–प्रतिदिन के आधार पर दृष्टिगत होती है, "प्रति व्यक्ति निम्न आय" वाले सन्तुलन के चारों ओर चरों variables के उच्चावचन या उतार चढ़ाव का प्रतिनिधित्व करती है । इन चरों के मूल्य, किसी आर्थिक अवस्था के संदर्भ में एक दूसरे के साथ, स्थैतिक और स्थिर रहते है । लेकिन यह निम्न आय सन्तुलन अवस्था जो कि अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था वाले देश को अर्द्ध स्थैतिक अवस्था में बनाए रखती है, एक ऐसे चुम्बक का कार्य करती है कि चरों के मूल्य उस अवस्था की ओर आकर्षित हो चलें तथा उसके इर्दगिर्द केन्द्रित, होने लग जायें । "आत्म–संयत आर्थिक विकास" अथवा "आत्म–स्फूर्ति–आर्थिक विकास" के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह परमावश्यक है कि विकास के लिए जो भी प्रारम्भिक उत्प्रेरक हों वह ऐसे हो कि उनका एक प्रभावी–न्यूनतम आकार अवश्य हो अर्द्ध–विकसित अर्थ व्यवस्थाओं में, दीर्घगामी आर्थिक विकास इसलिए प्रभावी तथा उपलब्ध नहीं हो पाता क्योंकि उत्प्रेरकों का आकार बहुत छोटा होता है । इसका अर्थ यह हुआ कि आर्थिक पिछड़ेरान से बचने के लिए, विकास की समस्या से सम्बद्ध उत्प्रेरक अथवा कार्यकारी प्रभावी घटक प्रचुर मात्रा में मजबूत अथवा सशक्त हों और नए निवेश का आकार व मात्रा, उस “प्रभावी" न्यूनतम आकार स्तर से ऊपर की मात्रा और स्तर वाला हो जिससे कि अब तक "स्थिर–आय–सृजक–हासात्मक घटक, नये आय–वर्धक–घटकों की उत्प्रेरित प्रभावशाली कार्यकरण के सम्मुख फीके पड़ जायें, अर्थहीन हो जायें, अकारण हो जाए या तटस्थ हो जाये । और यह है वह स्थिति तथा कार्य जिसमें एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था वाले देश की सरकार, सशक्त और विस्तृत विकास योजना बनाने के माध्यम से, महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है । यह व्यापक, विस्तृत तथा सशक्त योजनायें, विकास उत्प्रेरको में उत्साहित वृद्धि करके, प्रभावशाली तरीके से नए निवेशों के आकार में वृद्धि करने का प्रयास कर सकती है, और विकास को गतिमान करने की दिशा में सफलता प्राप्त कर सकती है ।

वह "अवधि अथवा काल जिसमें अर्थव्यवस्था में सुधार लाने, आय स्तर में सकारात्मक वृद्धि लाने तथा प्रभावी निवेश को बढ़ाने और मूल रूप से पिछड़ेपन तथा गरीबी का निवारण करने हेतु सशक्त योजनायें बनायी गयी है । जो योजनायें अपने कार्यकरण अथवा क्रियान्विति के माध्यम से अर्थव्यवस्था की "अर्द्ध–स्थैतिक दशा" को सुधारेगी, –गतिशील अवस्था " अथवा "आत्म–स्फूर्ति” अवस्था का काल कहलाता है । विकास की प्रक्रिया प्रचुर मात्रा में, द्रुतगामी होनी चाहिए इस “आत्म–स्फूर्ति" अथवा "गतिमान अवस्था" काल में – यह तभी सम्भव है जब कि निवेश में प्रशंसनीय वृद्धि करने हेतु प्रचुर मात्रा में अतिरेक उत्पन्न होकर आयें या उभर कर आये – और तब यही अवस्था, अर्थव्यवस्था को आवश्यक गति व प्रवाह प्रदान करेगी जो अन्ततोगत्वा (अन्त में) एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था को एक सामान्य, स्वपरक तथा स्थायी विकास दर तथा स्तर प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करेगी अर्थात इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की

उसमें सामर्थ्य उत्पन्न करेगी । इस तरह, मध्यान्तर काल की अवधि का प्रश्न उभर कर सामने आता है । गत्यावरोधन अथवा स्थैतिकता जैसी प्रारम्भिक अवस्था से प्रारम्भ होकर, वह अवधि क्या होगी और कितनी होगी जो कि "गतिशील अवस्था" अन्तिम अवस्था अर्थात "आत्म स्फूर्ति अवस्था विकास" तक पहुंचने में लेगी । प्रो. रोस्टोव जिन्होंने ही आर्थिक साहित्य में "गतिशील अवस्था" जैसी शब्दावली का प्रयोग किया है, इस अवधि की सीमा पन्द्रह और पच्चीस वर्षों के बीच की अवधि बताया है । इस पन्द्रह से पच्चीस वर्ष की अवधि को मानने की प्रक्रिया में उन्होंने उन अनेक देशों की विकास प्रक्रिया को ध्यान में रखा है जो देश की आर्थिक विकास की बहुत ऊँची अवस्था और स्तर को बहुत पहले ही प्राप्त कर चुके है । "गतिशील–अवस्था" की यह अवधि इसलिए, बहुत महत्वपूर्ण है और "अर्द्धस्थैतिक अवस्था" से "गतिशील अवस्था" में और अन्त में "आत्म स्फूर्ति अवस्था" में द्रूतगामी परिवर्तन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विकास नियोजन की एक बहुत प्रभावी तथा अच्छी तरह से समन्वित प्रक्रिया अपनानी होगी तथा अपनानी भी चाहिए ।

अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति कुछ इस प्रकार की होती है कि बहुत छोटी–छोटी मात्राओं में निवेश, एक वृद्धिमान तथा द्रुतगामी आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गतिशील करने की दिशा में न तो प्रभावी होता है और न ही फलदायक । द्रुतगामी आर्थिक विकास दर तो तब ही सम्भव है जबकि विद्युत निर्माण, यातायात और संचार वाहन के विकास और आधारभूत बडे तथा भारी उद्योग के आधार निर्माण इत्यादि पर प्रचुर तथा समुचित मात्रा में निवेश किया जाये । इनमें निवेश करने पर ही अर्थव्यवस्था को अर्द्ध स्थिर, स्थैतिक अवस्था और अर्द्ध स्थैतिक वातावरण से ऊपर उठाया जा सकता है । इस प्रकार के और इन भागों में किये गये बड़े निवेशों को गतिमान करके ही "स्थैतिक अवस्था" को "आत्म स्फूर्ति अवस्था" में परिवर्तित किये जाने– वाले काल को कम किया जा सकता है । जो एक अर्द्ध–विकसित अर्थव्यवस्था की पहली माँग है । इसलिए नियोजन कर्ताओं का मूलभूत कार्य होगा ऐसी नियोजन तकनीक पर ध्यान केन्द्रित करना जो तकनीक भारी उद्योग, यातायात और विद्युत निर्माण जैसे क्षेत्रों में प्रशंसनीय विकास ला सके । क्योंकि इस प्रकार के निवेश तुरन्त लाभ उत्पन्न व सृजित नहीं करते इसलिए निजी उद्यमियों या साहसिकों के द्वारा मुश्किल से ही किये जाते है । विकास नियोजन का आधार कूटनीति का सम्बन्ध, सरकार द्वारा भारी उद्योग, यातायात सुविधाओं के विकास और विद्युत–निर्माण इत्यादि के तीव्र विकास स्तर व दर को प्राप्त करने से होना चाहिए।

आधार भूत भारी उद्योगों का विस्तार नए निवेश के समय पथ को प्रोत्साहित करेगा । वास्तव में, भारी उद्योग के विकास पर निश्चित तौर पर, योजनाओं को समेटने वाले काल–अन्तराल में कुल निवेश का तेजी से ऊपर चढ़ता हुआ मार्ग सृजित करेगा। यह तेजी से ऊपर चढ़ता हुआ निवेश मार्ग ही एक विकासशील अर्थव्यवस्था की मूल विशेषता और पहचान है और यह "गतिशील–अवस्था" के प्रारम्भ होने का प्रमाण भी बन सकती है । सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि औद्योगिकरण के कार्यक्रम में, भारी उद्योग का विकास शीर्ष प्राथमिकता को प्राप्त होना चाहिए जिसके लिए निरन्तर नया निवेश होते रहना चाहिए ।

यातायात, सिंचाई और बिजली विकास सुविधायें बाजार के कुल आकार का विस्तार करती है । और एक विस्तृत क्षेत्र में निवेश–विस्तार को प्रोत्साहित करती हैं जो कि आवश्यक संरचना निर्माण में सहायक होता है । इन सुविधाओं के विकास और विस्तार पर किया गया प्रचुर मात्रा का सार्वजनिक व्यय पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि करेगा जिससे जनता के कल्याण में वृद्धि होगी । जब तक इन सुविधाओं में आशानुकूल विकास नहीं होता तब तक वृद्धिमान आर्थिक विकास की पहल भी सम्भव नहीं और फल यह होगा कि "अर्द्ध स्थैतिक अवस्था से" प्रावैगिक गतिशील अवस्था" में परिवर्तन आने में भी बहुत विलम्ब हो जायेगा और वह परिवर्तन पिछड़ जायेगा।

भारी उद्योग, परिवहन, सिंचाई और विद्युत सुविधाओं के विकास के क्षेत्र में, राज्य की भूमिका के महत्व को उस समय पूरी तरह समझा व आका जा सकता है यदि हम आर्थिक विकास के मुख्य निर्धारकों का विश्लेषण करें । यदि सरल शब्दों में अभिव्यक्त करें तो आर्थिक विकास की दर (विकास नियोजन की प्रजातांत्रिक प्रणाली में) निम्न बातों पर निर्भर करेगी (अ) आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने और जनता के कल्याण – सामाजिक तथा आर्थिक विकास में वृद्धि करने के लिए की गयी सार्वजनिक व्यय की राशि, (ब) पूंजी निर्माण की दर (या नए निवेश का अर्थव्यवस्था में प्रवाह) और (स) सार्वजनिक सहयोग, सार्वजनिक तथा जन उत्साह और सामाजिक ढांचे में परिवर्तन से मुख्य रूप से जुड़े हुए सामाजिक राजनैतिक घटक । यदि हम आर्थिक विकास की ऊंची दर चाहते हैं तब उचित प्रकार का प्रयोजनाओ पर किये जाने बाले सार्वजनिक व्यय का राशि में वृद्धि करनी होगी और उसे बढ़ाना होगा, नए निवेश के प्रवाह में वृद्धि करनी होगी, सामाजिक ढाँचे का उचित समायोजन करना होगा और जन–उत्साह के द्वार पूरी तरह खोलने होंगे।

इस तरह, सार्वजनिक व्यय में की गयी भारी वृद्धि, भारी उद्योग, परिवहन, विद्युत विकास इत्यादि में तथा बाजार विस्तार में प्रशंसनीय विकास सम्भव करेगी जिससे नया निवेश और पूंजी निर्माण निश्चित ही बढेंगे । इसी से विकास की दर भी बढेगी ।

पर प्रजातान्त्रिक नियोजन कर्ताओं के लिए विकास की उच्चतम दर प्राप्त करना मात्र एकल लक्ष्य ही नहीं है । उन्हें तो, एक ओर, उपलब्ध साधनों को, प्रतिस्पर्द्धात्मक राज्य परियोजनाओं के बीच न्यायोचित आवन्टन करना होगा और साथ ही साथ जनता के कल्याण तथा खुशहाली भी ध्यान रखना होगा। यह तथ्य इस बात का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है कि क्यों, राज्य कोषों के एक भाग को एक कृषि जनित या कृषि प्रधान अर्द्ध विकसित अर्थव्यवस्था में, सामुदायिक विकास योजनाओं तथा ग्रामीण प्रसार सेवाओं की ओर मार्गान्तरित करना होता है । कोषों और साधनों का इस प्रकार का स्थानान्तरण तथा मार्गान्तिकरण, पूंजी निर्माण की उच्चतम या ऊँची दर प्राप्त करनें के मार्ग में निश्चित ही एक अवरोधक सिद्ध होता है और होगा भी । यह इसलिए है क्योंकि भारी उद्योंगों के विकास के लिए किया गया सार्वजनिक व्यय, पूंजीगत उपकरण के वृद्धिमान अथवा बड़े प्रभाव को जन्म देगा और उसे उत्तरोत्तर बढ़ायेगा । और इस तरह एक ज्यादा स्पष्ट तरीके से पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि करेगा बजाय उस सार्वजनिक व्यय के जो कि सामुदायिक विकास योजनाओं तथा ग्रामीण प्रसार सेवाओं पर व्यय

किया गया है । लेकिन प्रजातान्त्रिक और कल्याण प्रेरित नियोजन व्यवस्था को, एक ओर तो अधिकतम आर्थिक विकास और दूसरी ओर, जनता के कल्याण और खुशहाली में अधिकतम वृद्धि, दोनों के बीच एक समझौता और समन्वय स्थापित करना पड़ेगा ।

प्रजातान्त्रिक नियोजन में, जन सहयोग भी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । सामुदायिक विकास परियोजनाओं तथा दूसरे प्रकार की विस्तार सेवाओं पर, जिनके माध्यम से ग्रामीण जगत का उद्धार तथा उत्थान सम्भव होता है, उपयुक्त तथा वांच्छित जोर अवश्य दिया जाना चाहिए । इस प्रकार का ग्रामीण जनता के उद्धार व विकास के लिए किया गया कार्य, ग्रामीण जनता में एक नए विश्वास का संचार करेगा और साथ ही ग्रामीण जनता की कल्याण और विचार शक्ति को जागृत करेगा जो कि भारत जैसे अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था वाले कृषि प्रधान देश की विकास प्रक्रिया को सफल बनाने में बहुत सहायक सिद्ध होगा । वास्तविकता तो यह है कि जन–उत्साह तथा जन सहयोग, सामाजिक, राजनैतिक घटको को प्रेरित करते है जो कि आर्थिक विकास की गति व दर को बढ़ाता है तथा विकास वातावरण को प्रखर तथा मुखर करता है ।

पर स्मरण रहे कि कल्याण उद्देश्यों की ओर उदासीन रहते हुए या उदासीन रहकर, मात्र आर्थिक विकास को दुगूनी गति से तीव्र करने का प्रयास एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था के संदर्भ में न तो उपयुक्त है और न ही वांच्छित है। इस प्रकार की स्थिति की, एक प्रजातान्त्रिक कल्याण प्रेरित नियोजन व्यवस्था में गुजर नहीं है । इसलिए नियोजन के माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक घटकों को भी प्रभावित करना है और उचित तथा उपरोक्त तरीके से प्रभावित करना है जिसके कारण, साधारण व आम जनता यह अनुभव करने लगे कि उन्हें भी नियोजन और विकास कार्यक्रम का लाभ मिला है और मिल रहा है । यह अनुभव तथा अनुभूति स्वपरक जन–सहयोग उत्पन्न करेगी और उपलब्ध करायेगी । एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था वाले कृषि प्रधान देश में सामुदायिक विकास परियोजनायें तथा ग्रामीण विस्तार सेवायें, ग्रामीण लोगों के हृदयों में नई आशायें व आकांक्षायें उत्प्रेरित व उत्पन्न करने का काम कर सकती हैं और करती हैं । इसलिए, नियोजन तकनीक ऐसी होनी चाहिए जिससे कि एक ओर भारी उद्योगों, यातायात और बिजली तथा दूसरी ओर सिंचाई और ग्रामीण विस्तार सेवाओं का साथ–साथ विकास हो सकें । संक्षेप में वृद्धिमान विकास दर को स्थापित करने के लिए, संरचनात्मक सुविधाओं का भी प्रचुर विकास करना चाहिए ।

संक्षेप में, इसी प्रकार की विकास कूटनीति हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में अपनायी गयी है । भारत की दूसरी, तीसरी, चौथी और छठी पंचवर्षीय योजनाओं में, भारी उद्योगों के विकास पर बहुत जोर दिया गया था। और साथ ही साथ परिवहन, विद्युत और अन्य संरचनात्मक सुविधाओं के विकास पर भी, जिससे कि यह समन्वित और संयुक्त प्रयास, आर्थिक विकास की दर के ऊपर बताये गए दो प्रमुख निर्धारक तत्व अनुकूल रूप से प्रभावित हो सकें । यह दो तत्व है, एक तो सार्वजनिक व्यय की राशि और दूसरे नए निवेश का प्रवाह । पर क्योंकि भारत की पंचवर्षीय योजनायें, कल्याण–उद्देश्य–प्रधान प्रजातान्त्रिक नियोजन के आधारभूत तथा सशक्त प्रयोग हैं इसलिए सार्वजनिक व्यय का एक बहुत बड़ा भाग, सामुदायिक विकास परियोजनाओं

और अन्य कल्याण–प्रधान और कल्याण उद्देश्य प्रेरित परियोजनाओं पर लगाना पड़ा, उसकी ओर मार्गान्तरित करना पड़ा । यह कार्य, सामाजिक राजनैतिक घटकों को सही दिशा में अग्रसर होने में आशिक रूप से सहयोग कर रहा है और इस तरह, सतत् तथा समयक आर्थिक विकास की प्रक्रिया को स्थापित करने के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर रहा है ।

हमारे द्वारा किये गये, आर्थिक विकास की दर के तीनों निर्धारक तत्वों के विश्लेषण से निकलने वाली, सामने आने वाली और उभर कर मुखर होने वाली आधार भूत विकास कूट नीति, प्रजातान्त्रिक नियोजन कर्ताओं द्वारा सफलता पूर्वक प्राप्त की जा सकती है । अगर विकास नियोजन की दरें आवश्यक संगतियों पूर्ण रूप से सन्तुष्ट की जा सकें । पहली संगति का सम्बन्ध, "उत्पादक कोषों के प्रभावशाली एकीकरण" से है जो कोष कि एक ओर तो, ग्रामीण श्रम अतिरेक में पाये जाते है । और दूसरी ओर, हथकरघा तथा कुटीर उद्योगों में एक पूंजी अभावग्रस्त अर्द्ध–विकसित अर्थव्यवस्था वाले देश में । विकास नियोजन की प्रारम्भिक अवस्था में, यदि ज्यादा जोर भारी उद्योगों के विकास पर दिया जाता है तो मशीन प्रधान लघु उद्योग या फैक्ट्री का जो उपभोग वस्तुओं का उत्पादन करती है, प्रशंसनीय स्तर तक विकसित व विस्तरित करना सम्भव नहीं होगा । एक बढ़ती हुयी, विकासशील अर्थ–व्यवस्था में, उपभोग वस्तुओं की बड़ी माँग होगी और इस माँग की आपूर्ति, आरम्भिक अवस्था में, अर्द्ध रोजगार में लगे ग्रामीण लोगों को हथकरघा और कुटीर उद्योगों में कार्यरत करके की जा सकेगी । इस तरह, आरम्भ में, हथकरघा उद्योग तथा कुटीर उद्योग, उपभोग वस्तु की आपूर्ति की अल्पकाल और समय विशेष की व्यवस्था का माध्यम बन जायेंगे जिन उद्योगों को धीरे–धीरे छोटी–छोटी मशीनयुक्त और मशीन प्रधान इकाइयों में बदला जाना चाहिए । इस प्रकार का परिवर्तन दीर्घकालीन प्रक्रिया में इन्हें बिजली भी मिलने लगेगी और बडे उद्योगों से बड़ी तथा वृद्धिमान मात्रा में इनकी आवश्यकता वाले यन्त्र तथा उपकरण भी मिलने लगेंगे ।

विकास नियोजन की दूसरी संगति, एक विकासशील अर्थव्यवस्था में पायी जाने वाली उद्योग और कृषि के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी पर प्रकाश डालती है और उसके महत्व की ओर इशारा करती है। यह इस बात पर जोर देती है कि कृषि का गहन तथा सम्पूर्ण पुनर्गठन और तीव्रगामी कृषि विकास, वृद्धिमान औद्योगिक विकास दर को कायम अथवा सतत् रखने के लिये नितान्त और अपरिहार्य रूप से आवश्यक है । इसका कारण यह है कि औद्योगिक क्षेत्र की विकास दर, कृषि क्षेत्र की ओर से आपूरित की जाने वाली खाद्य पदार्थो व कच्चे माल की पूर्ति की प्रवृतियों. पर निर्भर करती है । द्रुतगामी कृषि विकास और साथ में गहन तथा समूर्ण संस्थागत परिवर्तन तथा चमत्कारिक औद्योगिक विकास प्रक्रिया को गतिमान करने की पहली आवश्यक पूर्व दशा है । इस सत्य और तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि क्यों हमारी प्रथम पंचवर्षीय योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता, कृषि के पुनर्गठन व विकास को दी गयी थी लेकिन भारत के कृषि क्षेत्र की क्षमताओं के प्रयोग व विकास के लिए जो पहल प्रथम पंचवर्षीय योजना में की गयी थी तथा उपचार हाथ में लिए गये थे वे पूरी तरह दूसरी पंचवर्षीय योजना से चौथी योजना तक रही। इसका फल यह हुआ कि तीसरी पंचवर्षीय योजना की अन्तिम अवस्थाओं में और चौथी योजना के अन्तिम के दो वर्षों में, एक भारी कीमत वृद्धि हुयी जिसके लिए केवल

दोषपूर्ण और बुरा कृषि नियोजन ही मूल रूप से उत्तरदायी कहा जायेगा। इसके बाद कृषि उत्पादकता को बढ़ाने और उसे स्थिर रखने के बहुत प्रयास किये गए जिसमें राज्यों व देश के औद्योगिक क्षेत्र ने, अच्छे तथा उन्नत प्रकार के उर्वरक, कीट–नाशक दवायें, पौध–पोषक उत्पाद, सरल पर आधुनिक कृषि यन्त्र प्रदान करने और आपूर्ति करने के माध्यम से सहायता प्रदान की। जब तक की कृषि और औद्योगिक क्षेत्र एक दूसरे की मदद नहीं करेंगे और एक दूसरे को पारस्परिक सहयोग नहीं देंगे तब तक देश का औद्योगिक विकास निर्वाध रूप से नहीं चलेगा ।

26.4 भारत में नियोजन की विधियाँ और संगठन :–

26.4.1 भारत में पंचवर्षीय योजना निर्माण की अवस्थायें–

राष्ट्रीय योजना, एक ओर तो, केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों की योजनाओं तथा दूसरी ओर, निजि क्षेत्र या विशिष्ट भाषा में निगम क्षेत्र के लिए योजनाओ से मिलकर बनता है।

योजना निर्माण की पहली अवस्था में, पंचवर्षीय योजना के निर्माण के लिए सामान्य दृष्टिकोण या सामान्य पहुँच दृष्टि को निर्धारित किया जाता है, उस पर विचार किया जाता है । इस पहली अथवा प्रारम्भिक अवस्था में कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रीय स्थितियों, परस्थितयो, समस्याओं, प्रवृतियों, उत्पादकताओं जैसे अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति, अर्थव्यवस्था की सामाजिक आर्थिक और संस्थागत कमजोरियों, अर्थव्यवस्था की प्रगति की दीर्घकालीन दृष्टि के संदर्भ में उत्पादन के अतीत में रही प्रवृतियाँ और परिस्थितियों तथा विकास दर, असन्तुलनों को ठीक करने के प्रस्तावित सुझाव तथा मार्ग दर्शन बिन्दु इत्यादि पर प्रारम्भिक निर्णय और निष्कर्ष प्रस्तुत किये जाते है । यह काम नियोजन आयोग द्वारा किया जाता है और यह आख्यान उसके द्वारा केन्द्रीय मंत्रिमण्डल और राष्ट्रीय विकास परिषद के सुमुख प्रस्तुत किये जाते है ।

दूसरी अवस्था में वे सभी अध्ययन आते है जो इस उद्देश्य से किए जाते है कि यह सामने आये और स्पष्ट हो कि सम्बन्धित पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित किये जाने वाले भौतिक और स्थूल तथ्यों का एक मोटा–मोटा विचार करने योग्य प्रारूप तैयार हो सके और लक्ष्य निर्धारित हो सके ।

विभिन्न अध्ययन दलों द्वारा किये गए अध्ययनों से, नियोजन आयोग उन सभी मुख्य, मूल और विशिष्ट बातों तथा बिन्दुओं को एकत्रित करता है जो सम्बन्धित योजना के बनाने का आधार होंगे और फिर स्मरण प्रारूप (ड्राफ्ट मेमोरेण्डम) तैयार करके उसे केन्द्रीय मंत्रिमण्डल और राष्ट्रीय विकास परिषद के सम्मुख उनकी– औपचारिक स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करता है ।

यहाँ पर, यह स्पष्ट कर देना अनावश्यक नहीं है कि नियोजन आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद का कोई वैधानिक अथवा अधिकारिक अस्तित्व नहीं है । फिर भी, राष्ट्रीय विकास परिषद की संस्तुतियाँ, केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा बड़े आदर से ली जाती है । राष्ट्रीय विकास परिषद का अन्तिम उद्देश्य है हमारी योजनाओं को एक वास्तविक राष्ट्रीय चरित्र,

रूप और स्वरूप–देना और सभी राज्यों की नियोजन तथा योजना–क्रियान्विति से सम्बद्ध सभी क्रियाओं का समन्वय करना।

26.4.2 नियोजन के प्रकार और विधियाँ:

1. समाजवादी और पूँजीवादी नियोजन :– आर्थिक नियोजन को दो भागों – एक तो सख्त निर्देश और अधिकारिक आदेश से नियोजन और दूसरे, प्रेरित नियोजन अथवा प्रेरणा प्रधान नियोजन – में विभक्त किया जा सकता है । पहले प्रकार के नियोजन को प्राय: अनिवार्य या "आदेशात्मक" (शासक के और सत्ता के आदेशानुसार) नियोजन कहा जाता है और दूसरे को सामान्य रूप से आदर्शात्मक, दिशानिर्देशात्मक नियोजन कहते है । पहला नियोजन अधिनायकवादी, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के अन्दर पाया जाता है । यह सदैव, राजनैतिक अधिनायक के आदेश और अधिकार पर ही बनता है और चलता है । यह स्थिति, एक प्रकार से, एक अलोचपूर्ण, दृढ़ और स्थिर अर्थव्यवस्था की ओर इशारा करती है जिसमें निवेश तथा कीमत–निर्धारण सम्बन्धी निर्णय, एक केन्द्रीय सत्ता (निरंकुश शासक या अधिनायक) द्वारा लिए जाते है और वे निर्णय, अर्थव्यवस्था की अन्तिम आर्थिक इकाईयों और क्रियाशील इकाइयों पर क्रियान्विति के लिए थोप दिये जाते है । इस प्रकार की नियोजन व्यवस्था में, राज्य को निरंकुश शासकवादी भूमिका अदा करनी पड़ती है और इसमें सारी आर्थिक क्रियाओं का समाजीकरण पाया जाता है तथा होता है । इस व्यवस्था में, नियोजन, ऊपर से चलता है । इस नियोजन व्यवस्था के अन्तर्गत यह मान लिया जाता है कि राज्य ही सामाजिक लाभों कों अधिकतम कर सकती है या अधिकतम करने की क्षमता और बुद्धि रखती है । स्वाभाविक भी है कि एक शक्तिशाली औद्योगिक पारस्परिक निर्भरता वाले ढाँचे और व्यवस्था में उचित अन्त औद्योगिक नियोजन और भिन्न–भिन्न "निवेश सम्बन्धी निर्णयों" के समन्वय के लिए राज्य का कार्य व योगदान तो महत्व का होगा ही । फिर, साधनों के ज्यादा अच्छे प्रयोग, विदोहन और संरक्षण के लिए जिनका प्रयोग समाज के सामान्य लाभ के लिए किया जाता है, और संरचनात्मक और बाह्यीय अर्थव्यवस्था सुविधाओं को सुधारने और सामाजिक कल्याण की सुविधाओं को प्रोत्साहित करने की दिशा राज्य के पास रचनात्मक, सकारात्मक और सत्तात्मक शक्ति तो है ही जिसका उसको एकल लाभ मिलता है । सोवियत रूस इस प्रकार के नियोजन का प्रमाणित उदाहरण है ।

माना कि, समाजवादी नियोजन व्यवस्था के अपने गुण है पर इसका सबसे बड़ा दुर्गण है. इस व्यवस्था में निजी साहस या निजि उद्यम का गला घुट जाना उसका पूर्ण अवरोधन हो जाना। इतना ही नहीं समाजवादी नियोजन व्यवस्था अन्तिम स्थिति में सरकारी अफसरवाद अथवा नौकरशाही के अधीन हो जायेगी और यह वर्ग इस व्यवस्था के बड़े लाभों को हड़प जायेगा।

समाजवादी–नियोजन व्यवस्था के विपरीत, हम देखते है कि पूँजीवादी अर्थ–व्यवस्था में राज्य प्रशासन के भीतर एक नियोजन उपखण्ड (प्रकोष्ठ) का अस्तित्व पाया जाता है । उत्पादन

के साधनों का निजी स्वामित्व भी मौजूद होता है । और वह व्यवस्था को स्वीकार भी होता है । अमेरिका इस प्रकार के स्वतन्त्र व्यापार पूँजीवाद का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

इसे स्थिति से निपटने के लिए और स्थिति को नियमित रखने के लिए, एक और प्रकार के नियोजन का समर्थन किया जाता है जैसा फ्रांस अपनाता है और वह है "निर्देशन प्रधान अर्थव्यवस्था" (गाइडेड इकोनोमी) इसमें दबाव या जोर नहीं होता बल्कि प्रेरणा या नैतिक प्रभाव होता है ।

2. भविष्यजनित–नियोजन (रोलिंग प्लान) प्रोस्पेक्टिव प्लानिंग एवं रोलिंग प्लान:– समय–सारिणी पर आधारित आर्थिक नियोजन या तो अल्पकालीन हो सकता है या दीर्घकालीन।

अल्पावधि नियोजन, एक वार्षिक योजना का स्वरूप ले सकता है और यह पांच अथवा सात वर्ष की अवधि का भी हो सकता है । इतनी अवधि वाली योजना मध्यम कालीन नियोजन का उदाहरण कहलायेगी । ऐसी अनेक अल्पावधि योजनाओं अथवा मध्यम कालीन योजनाओं का एक दूरगामी भविष्य–जनित लक्ष्य हो सकता है और होगा भी । यह दूरगामी नियोजन बीस और पच्चीस वर्ष की अवधि तक अपने पैर व पंख फैला सकता है । नियोजन कर्ताओ के समुख कुछ अल्पकालीन उद्देश्य हो सकते है जिन्हें वे वार्षिक और पंचवर्षीय योजनाओं को बना कर तथा उन्हें क्रियान्वित कर हल कर सकते है । पर इनके साथ–साथ कुछ दूरगामी उद्देश्य भी निश्चित ही होते है जिन्हें वे दीर्घावधि नियोजन के माध्यम से हल करते है । इस प्रकार के दीर्घावधि नियोजन को अर्थशास्त्री "प्रोस्पेक्टिव प्लानिंग" कहते है जिसका सम्बन्ध लम्बे अर्से में, निश्चित अवधि की छोटी व मध्यम कालीन योजनायें बनाकर पूरा करते है । यह तो एक तरह से रेलगाड़ी का एक एक डिब्बा जोड़कर पूरी है । भारत में, छठी और सातवीं योजनाओं में यह दृष्टिकोण अपनाया गया है । वास्तविकता तो यह है कि भारतीय नियोजन दूरगामी और भविष्य प्रधान योजनाओं "लक्ष्यों और उद्देश्य पूर्तियों को प्रदर्शित करने वाले "प्रोसैक्टिव प्लानिंग" का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

भारत की इस प्रकार की सावधि नियोजन प्रणाली में, एक और नया विचार अथवा प्रयोग हमारी नियोजन संरचना या संयंत्र में प्रविष्ट किया गया था 1978 में और वह विचार था "रौलिंग प्लान" का । जबकि 1974 से 1979 तक चलने वाली पांचवी योजना का असूचित अन्त कर दिया गया। और जनता सरकार के सत्तारूढ होने के कारण, 1978 से 1983 तक चलने वाली छठी योजना का प्रारूप (रूपरेखा) तैयार किया गया। पूरी छठी योजना "रोलिंग प्लान्स" की एक क्रमिक क्षृखला पर आधारित थी जिसके अन्तर्गत वार्षिक योजनाओं का परिवर्तन एक दूरगामी भविष्य प्रधान लक्ष्य युक्त "प्रोस्पेक्टिव दृष्टि" में पांच वर्षो की अवधि के लिए करना था।

इस तरह हमारी नियोजन प्रणाली के इस नए, संरचनागत ढांचे में, यह प्रावधान किया गया कि प्रत्येक योजना एक एक वर्ष की अवधि की एक एक "रोलिंग योजना' होनी चाहिए । जिसकी दृष्टि दूरगामी व भविष्य प्रधान लक्ष्य की प्राप्ति होनी चाहिए । इस "रोलिंग प्लान" व्यवस्था के अन्तर्गत एक वर्षीय योजनाओं का, निरन्तरता रखते हुए एक परिवर्तित दृष्टिकोण होता है जो पांच वर्ष की अवधि तक फैलकर एक पंचवर्षीय योजना को पूरा करता है । इस

दृष्टि से 'रोलिंग प्लान' नियोजन की विचार धारा के अन्तर्गत यह अन्तर्निहित है कि, हर वर्ष अगले पांच वर्षो के लिए एक योजना होनी चाहिए ।

इस "रोलिंग प्लान" व्यवस्था का लाभ यह है कि इस प्रकार की योजना में कीमतों के उतार चढाव, विदेशी विनिमय भण्डार में प्रतिकूल परिवर्तन (गिरावट) प्रकृति की प्रतिकूलता, अर्थव्यवस्था में उपलब्ध संसाधनों की कमी अथवा तंगी इत्यादि के कारण उतम, बदलती हुयी परिस्थितियों के अंनुकूल और अनुसार, वांच्छित समायोजन करना, बहुत सुविधाजनक हो जाता है । इस व्यवस्था के अन्तर्गत यह आशा की जाती है कि जब योजना में निरन्तरता भी बनी रहेगी और समय तथा परिस्थिति के अनुसार योजनाओं में प्रत्येक वर्ष आवश्यक परिवर्तन तथा समायोजन भी होते रहेंगे, तो एक तो योजना वास्तविकता धारण करती जायेगी और दूसरे हर अगली वार्षिक योजना पूरे तथा आधुनिकतम आकड़ों के आधार पर ही बनेगी । इसका फल यह होगा कि योजना के प्रत्येक स्तर पर सुधार, समायोजन और परिवर्तन अपने आप ही होता रहेगा।

पर "रोलिंग प्लान" की इस तथाकथित परिवर्तनशीलता और वांछित समायोजनशीलता ने एक नए प्रकार की विषमता तथा दोष उत्पन्न कर दिया । किन्हीं दो सम्पूर्ण पंचवर्षीय योजनाओं की विकास दर की तुलना असम्भव व कठिन हो गयी । प्रशासन तंत्र के सम्मुख भी अनेक जटिलतायें आ गयी और योजना निर्माण का कार्य दूरूह हो गया।

26.5 सारांश

भारत में बहुस्तरीय नियोजन (राज्य स्तरीय और जनपद स्तरीय नियोजन के विषय संदर्भ में) विषयक उपरोक्त विस्तृत अध्ययन के पश्चात हम सारांश में यह कह सकते है कि भारत जैसी अर्धविकसित अर्थव्यवस्था के लिए जिसमें व्यापक विकास तथा सूक्ष्म विकास की अलग–अलग आवश्यकता को पूरा करने वाली विकेन्द्रित प्रजातान्त्रिक नियोजन प्रणाली अपनायी गयी है । जो न तो रूस की तरह है, और न ही अमेरिका की तरह । जिसमें मिश्रित अर्थव्यवस्था का समुचित स्थान, महत्व, मान्यता, उपादेयता तथा औचित्य है । बहुस्तरीय नियोजन (राज्य स्तरीय और जनपद स्तरीय नियोजन के विशेष संदर्भ में) न केवल उपयुक्त वांछित और आवश्यक ही है अपितु व्यावहारिक भी । क्योंकि सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, जनसंख्या–घनत्व परक, आर्थिक असन्तुलन, खनिज सम्पदा वितरण विषमता व (विविधता सम्बद्ध स्थितियों, परिस्थितियों और समस्या के रहते एक सत्तात्मक और एक दिशात्मक निरपेक्ष तथा स्थैतिक नियोजन न उपयुक्त ही है और न ही व्यावहारिक ।

दूसरे, देश का सामाजिक और वैधानिक आधार तथा दृष्टिकोंण प्रजातान्त्रिक है । जिसमें सभी स्तरों की क्षमता का उपयोग, प्रयोग और सहभागिता आवश्यक भी है और व्यवस्था की दृष्टि से व्यावहारिक भी । समाज कल्याण कार्य, सरकार तथा जनता दोनों के अपरिहार्य सहयोग से ही पूरा होता है और हो सकता है । सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति में जन सहयोग परमावश्यक है । बहु–स्तरीय नियोजन में सभी स्तर के लोगों की क्षमताओं व प्रतिभाओं का, साधनों व उपलब्धियों का, सफलता और विफलताओं का वांछित योगदान सहज तथा स्वाभाविक है । इससे

समूर्ण अर्थव्यवस्था को लाभ होता है । विशेष रूप से, जब प्रत्येक राज्य स्तर पर तथा जनपद स्तर पर नियोजन इकाइयों का गठन कर दिया जाता है । तब उस स्तर के लोग अपने–अपने दायित्वों को समझने लगते है और गौरवान्वित अनुभव करते है कि उनके हित में किये जा रहे सामाजिक आर्थिक कार्यो में उनकी भी साझेदारी व सहभागिता है । तथा उनकी वास्तविक समस्याओं पर उनके विचार लिए जा रहे है । स्वाभाविक है कि इस प्रकार के हर स्तर के नियोजन में जन–सहयोग, नियोजन की सफलता का साधक तत्व सिद्ध रहेगा ।

हाँ, यह अवश्य ध्यान रखना होगा कि बहुस्तरीय नियोजन के जहाँ अनेक व्यावहारिक लाभ व गुण है वहाँ उससे सम्बन्धित अनेक सावधानियाँ भी है जिनका ध्यान यदि नहीं रखा गया तो सम्पूर्ण नियोजन व्यवस्था, वास्तविक सफलता और प्रावैगिक क्रियान्विति से दूर हो जायेगी और दूर रहेगी । यह ध्यान रखना होगा कि प्रत्येक स्तर पर चाहे वह जिला और जनपद स्तर हो अथवा राज्य स्तर हो या केन्द्र स्तर, क्रियान्विति में कोई ढिलाई या शिथिलता या उत्तरदायित्व का अभाव, अकुशलता जैसे दोष नहीं आने चाहिए । नियोजन तो एक श्रृंखला है जिसकी प्रत्येक कड़ी महत्वपूर्ण है ।

26.6 शब्दावली

इस पाठ में प्रयुक्त व सम्मिलित कुछ मुख्य शब्द, शब्दावली और उपवाक्य इस प्रकार है :–

1. प्रजातान्त्रिक नियोजन व्यवस्था।
2. अद्धविकसित अर्थव्यवस्था ।
3. अधिनायकवादी नियोजन व्यवस्था ।
4. प्रावैगिक विकास दर ।
5. केन्द्रित बनाम विकेन्द्रित नियोजन व्यवस्था।
6. निर्देशात्मक नियोजन व्यवस्था।
7. मिश्रित अर्थव्यवस्था।
8. समाजवादी अर्थव्यवस्था।
9. वितरणात्मक न्याय।
10. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था तथा नियोजन।
11. तानाशाही अथवा निरंकुश शासकवादी कार्य।
12. अधिकीकरण की प्रक्रिया।
13. रोलिंग प्लान।
14. सम्भावी अथवा भविष्यगामी नियोजन।

बोध प्रश्न– 1

1. आपके गांव में खरंजा निर्माण होना है। उसका नियोजन कौन करेगा।
2. दो गांवों के बीच एक छोटी नदी पड़ती है। उस पर कलवर्ट बनना है। उसके निर्माण की योजना कौन बनायेगा।

3. जिले में अम्बेदकर गांवों को सड़कों से जोड़ने की योजना बनाने का दायित्व किस सत्ता व संस्था का है।
4. राजस्थान के सूखाग्रस्त, क्षेत्रो को केन्द्रीय सहायता का आवण्टन करना है। कौन करेगा।
5. विश्व बैंक से मिलने वाली विकास राशि सर्वप्रथम कौन प्राप्त करता है।
6. पचवर्षीय योजना में प्रस्तावित वार्षिक राशि का प्रत्येक राज्य को आवण्टन कौन करेगा।
7. समूर्ण देश में गरीबी और बेरोजगारी से निपटने की योजना बनाने का मुख्य दायित्व किसका है।
8. देश में अमुक–अमुक नदी पर बाँध बनाने के लिए एक सर्वेक्षण दल की नियुक्ति करना है तथा वांच्छित स्थानों पर (भिन्न–भिन्न राज्यों में) बाँध बनवाने है। यह सब कार्य किसके निर्देशन में होगा।
9. नियोजन आयोग और वित्तीय आयोग में क्या अन्तर है।

   उत्तर: नियोजन आयोग का वैधानिक अस्तित्व कुछ भी नहीं। वह तो. सलाहकार समिति की तरह है। इसके विपरीत, वित्तीय आयोग एक वैधानिक संस्था है।
10. भारतीय नियोजन का मूल, आधार क्या है ।

बोध प्रश्नों के उत्तर संकेत : –

1. ग्राम सभा ।
2. जिला पंचायत या जिला परिषद ।
3. जिला नियोजन समिति तथा मुख्य विकास अधिकारी (जनपद मुख्यालय पर) ।
4. राज्य सरकार तथा राज्य नियोजन आयोग।
5. केन्द्रीय सरकार।
6. नियोजन आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद और वित्त मंत्रालय संयुक्त रूप से।
7. नियोजन मंत्रालय, नियोजन मंत्री तथा साथ में नियोजन आयोग का सर्वेक्षण दल।
8. सिंचाई विभाग और मंत्रालय, केन्द्रीय सरकार तथा नियोजन आयोग।
9. उत्तर प्रश्न के नीचे दिया हुआ है।
10. प्रजातान्त्रिक।

26.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. I.C. Dhingra : The Indian Economy

2. Planning Commission :	तृतीय पंचवर्षिय योजना
	छठी पंचवर्षिय योजना
	सातवीं पंचवर्षिय योजना
	आठवीं पंचवर्षिय योजना

3. Susheela Subrahmanya & M.V. Srinivasa–Gowda (Ed.)–Regional Economic Development in India.

इकाई 27
नगर एवं महानगर नियोजन

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य
27.1 प्रस्तावना
27.2 महानगरों की मुख्य समस्याएं
27.3 नगरों व महानगरों की प्रमुख समस्यायें व नियोजन
27.4 समन्वित अंचल क्षेत्रीय नियोजन
27.5 अध्ययन व समस्याओं का सारांश
27.6 शब्दावली
27.7 एक केस स्टडी–कलकत्ता का सन्दर्भ (स्वअध्ययन मॉडल)
27.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

27.0 उद्देश्य

(1) इस पाठ का उद्देश्य भारत के सन्दर्भ में नगरों व महानगरों की समस्याओं अध्ययन करना है।

(2) इसके बाद कतिपय सुझाव देना है जो भारतीय नगरों को उन्नत करें, अगर वे पश्चिम के उत्तम नगरों की भांति ना भी हो पायें तो ।

(3) महानगर का नियोजन ठीक रखने के लिए आस–पास के नगरों को उन्नत होना चाहिए । छोटे नगरों की समस्यायें न बढ़ें, इसके लिए ग्रामीण नियोजन भी इसका अंग होना चाहिए।

27.1 प्रस्तावना

भारत जैसे देशों में शहरीकरण अनियोजित तथा dysfunctional रहा है । यह प्रक्रिया ग्रामीण अर्थव्यवस्था की शोषक ज्यादा और पोषक कम रही है । शहरी आबादी का तेजी से बढ़ना (Population Impiosion) कहाता है जो देश में जनसंख्या विस्फोट का परिणाम है । हम महानगरों, नगरों और कस्बों के बारे में इस पाठ में अध्ययन करेंगें । अधिकतर महानगर एक मिलियन या 10 लाख से ऊपर जनसंख्या, शहर / बडे शहर 50000 से 10 लाख तक, कस्बे 50000 से कम आबादी के होते है ।

परन्तु अलग–अलग देशों की स्थिति अलग–अलग होती है आस्ट्रेलिया में कतिपय 25000–50000 के शहरों में ऐसे अस्पताल होते है जैसे दिल्ली में भी नहीं है ।

शहर व गांव दुहरी अर्थव्यवस्थायें है बीच के शहर बीच की अर्थव्यवस्थायें है । शहरों–शहरों मे बड़ा फर्क है । उद्योग के कारण एक शहर उन्नत परन्तु प्रदूषित हो सकता है, दूसरा शहर स्वच्छ परन्तु उद्योग व ऊँची आय रहित हो सकता है । किसे ठीक मानें ? वास्तव में प्रदूषण रहित औद्योगीकरण के शहर होने चाहिए ।

सभी कोटि के शहर यातायात–संचार–शिक्षा–ट्रेनिग–स्वास्थ्य–व्यापार–रोजगार–आय सृजन तथा अनेक सुविधाओ के केन्द्र है । हर शहर अपने आस–पास के स्थानों को Central Place function देता है परन्तु बड़े शहरों से वह यह लेता है ।

27.2 महानगरों की प्रमुख समस्याएँ

एक पाठ / पेपर का आकार पुस्तक के आकार के बराबर तो हो नहीं सकता। अत : हम अपने विषय को मात्र 12 बिन्दुओं में समेटेंगे । इन्हें हम dirty dozen problems की संज्ञा दे सकते है

महानगरों व नगरों की समस्यायें निम्न रख सकते है तथा इन्हें हल करना ही नियोजन के बिन्दु होंगे।

1. Crisis, disaster and Clamity management. संकट कालीन स्थितियों से निपटने का नियोजन
2. आवासीय नियोजन
3. उद्योग स्थापना नियोजन बाजार नियोजन
4. यातायात व सड़कों का नियोजन
5. पेय जल नियोजन (चाहे तो इसे सर्वप्रथम रख सकते है परन्तु नम्बरीकरण महत्व के आधार पर नहीं है)
6. बिजली, संचार, शिक्षा व स्वास्थ्य नियोजन
7. कूड़ा निकासी नियोजन
8. पर्यावरण प्रबन्धन : प्रदूषण चचनियंत्रण
9. वायु प्रदुषण
10. ध्वनि प्रदूषण
11. जमीन प्रदूषण
12. प्रशासनिक नियोजन

27.3 नगरों व महानगरों की प्रमुख समस्यायें व नियोजन

(1) नगरों व महानगरों का आपातकालीन समस्याओं से निपटने का नियोजन

नगरों व महानगरों में अनेक आपातकालीन स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती है जैसे

(अ) अग्नीहादसा

इसके लिए हरजोन में इस तरह से अग्निशमन वाहन होने चाहिए कि वे 5– 10 मिनिट में संबंधित स्थान पर पहुंच जायें । इन्हें व्यक्तियों को घर से निकालने के लिए सीढ़ी–रस्सी (जो अग्निफ्रूफ हों) लेकर चलना चाहिए । बहुमंज़िला इमारतें या तो उतनी ही ऊँची हों जितनी कि अग्निशमन वाले बुझा सकते हों या उनमें अपने इन्तजाम होने चाहिए । पानी व पंपिंग की व्यवस्था समयोचित "हायड्रेन्ट पुआंट्स" से होना चाहिए । गलियों व तंग बस्तियों में पहुंचने के dry–wins करना चाहिए, अर्थात पहले से नकली बचाव प्रयास के अभ्यास करने चाहिए ।

(ब) सूखा–बाढ़ इन्तजाम

कभी पानी कम बरसे तो आपातकालीन वैकल्पिक पानी व्यवस्था की तैयारी पहले से नियोजित होनी चाहिएं । अभी VIPs को इस कष्ट से मुक्त रखते है सभी पर पानी राशन लागू होना चाहिए।

नदियो के किनारे बसे या समुद्र किनारे बसें लोग हर वर्ष हजारों में कहीं न कहीं मरते है । शासन यह कह कर हाथ धो लेता है कि वे गैर कानूनी बस्तियों में रहते थे । रूके अस्थाई केम्पों के लिए कम्बल, टेन्ट, बड़े कम्यूनिटी किंचित बर्तन आदि राज्य भंडारण में होने चाहिए कतिपय स्थान (स्कूल ज्यादातर) इसके लिए होने चाहिए।

(स) भूकम्पों का नियोजन तो होता नहीं है परन्तु जो क्षेत्र इसके क्षेत्र है, जहां भू–स्खलन होता है वहां कहीं न कहीं कुछ पूर्व तैयारी एक बड़े अंचल क्षेत्र में होती है, पूल के रूप में ।

(द) दुर्घटना क्रेन, एम्बुलेन्स तथा अस्पतालों में स्पेशल Trauma wards नगरीय नियोजन का अंग है ।

(इ) यातायात व्यवस्था अस्थाई रूप से भंग होने की स्थिति में आवश्यक सामान की पूर्ति का इन्तजाम होना चाहिए ।

(फ) अगर नगर में मेले या अन्य प्रकार के जमघट होते है, जैसे इलाहाबाद, हरिद्वार या अन्य अनेक शहरों में तो सम्पूर्ण प्रशासन व शहर में सारे बन्दोंबस्तों का तब सक्रिय होने का इन्तजाम होना चाहिए।

(2) आवासीय नियोजन

हर बड़े नगर व महानगर की योजनायें होती है तथा होनी चाहिए। ये 50 वर्ष की अग्रिम होनी चाहिए जिनमें से हर वर्ष एक वर्ष घट जाता है व एक जुड़ जाता है जैसे 1998–2048 फिर 1999–2049 तथा 2000–2050.....इनमें मुख्य अवयव 4 भाग के होते है।

(1) भावी भू–प्रयोग के लिए स्थान छोड़ना / वकसित करना।

(2) भविष्य में किन क्षेत्रों / बिल्डिंगों (भवनों–मकानों) को तोड़ना ताकि वे गिरने के समय व्यक्तियों को काल ग्रसित न करें, या उन्हें तोड़कर सड़क निकालना या बाजार, बस स्टेंड या कुछ भी बनाना जिससे भू–प्रयोग. ठीक हो । इनसे विस्थापित व्यक्तियों का इन्तजाम करना।

(3) यह स्वीकारते हुए कि अतिउच्च, उच्च, उच्च मध्यम, निम्न मध्यम, निम्न तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग सभी महानगरों में रहेंगें । इनके लिए भावी विकास के लिए जमीन आवंटन करना परन्तु अमीरों के लिए राजाओं जैसी कोठियों के लिए बड़े बगीचों सहित नहीं। या तो महानगर प्रशासन स्वयं फ्लेट निर्माण हाथ में ले या निजी फर्मो को सहायता दे । अभी महानगर प्रशासन अतिक्रमण रोकने में सारे तंत्र को लगा देता है । सकारात्मक कार्य तो भविष्य में आवास की कमी दूर करना है । पश्चिमी देशों के महानगरों में गन्दी बस्तियाँ नही होती ।

(4) जल–मल निकासी की योजनायें सुधारना तथा नयी को पूर्ण रूप से सक्षम बनाना। यथा सम्भव नदियों को भी प्रदूषण से बचाना । यह माना गया था कि गन्दी बस्तियाँ भारत समाप्त नहीं कर पायेगा । मात्र उनकों प्रदूषण रहित किया जाना जाहिए।

अर्बन सीलिंग या शहरी भूमि परिसीमन तो सफल नहीं हुआ परन्तु शहरों का विकास माफिया ताकतों से अलग नहीं किया जा सका । शहरों के मालिक–मकान व किरायेदार दोनों असंतुष्ट है । पुराने मकानदार अपने मकान या आय (वाजिव बाजार किराये से) प्राप्त नहीं कर पाते । हजारों फाइलें ही गुम हो जाती हैं, माफिया के आदेश पर । शक्तिमान लोग अच्छे मकान बनाकर उनकी कम्पनियों व सरकार को किराये पर देकर अच्छी आय प्राप्त करते है और सम्पत्ति की सुरक्षा भी पाते है । बहुत भूमि शहरी उद्योगों के लिए लेकर फिर उनमें उद्योगों का वास्ता देकर अत्यन्त अधिक मात्रा में धन, अयोग बदलकर माफिया कमाती है तथा भारत के बड़े महानगरों शहरों में गरीब व मध्यमवर्ग का अस्तित्व खो गया हैं ।

आज के महानगर उपनिवेशवादी जमाने के निर्यातक केन्द्र नही है उन्हें तो आन्तरिक (Hierarchy of Settlements) को पोषण करना है । अभी भी भारत के बड़े शहरों ने अपने (Hinterland) से पोषण ज्यादा पाया है, दिया कम है । भारत का औद्योगिक मूल्य सृजन (Value - Adding by Manufacturing) लगभग एक चौथाई महाराष्ट्र में होता है व उसका 78% मुंबई–पूणे–थाणें से होता है । जरूरत विकेन्द्रीकरण की भी है, चाहे यह बम्बई हो या दिल्ली, कानपुर या अन्य ।

(3) औद्योगिक नियोजन तथा महानगर नियोजन

बड़े शहरों को न केवल Locational poles बल्कि Functional poles भी बनना है। इन महानगरों का विकास मात्र उनके लिए ही नहीं बल्कि तत्सम्बन्धी अंचलक्षेत्रों के हित में भी होना चाहिए । अच्छी स्थिति तो यह है कि महानगर ही Growth poles न बने रहें । महानगरों के आस पास चारों ओर Growth foci उन्नत होना चाहिए । सूक्ष्म (Micro) बड़े (Meso) वृहद (Mano) सभी अंचल क्षेत्रों में महानगरों व गांवों से सम्बंधित आर्थिक क्रियायें पोषित होनी चाहिए। महानगरों की यह जिम्मेदारी है कि वहां अन्दरूनी क्षेत्रों के लिए औद्योगिक सेवाओं का उत्पादन हो । औद्योगिकरण महानगरों को बड़ा, प्रदुषित, महंगा व मुश्किल जीवन केन्द्र बना देती है । अदाहरणतया : महानगरों में कृषि उत्पाद पर आधारित उद्योग नहीं होने चाहिए । महानगर नियोजन में औद्योगिक इकाई स्थापना के ये नियम पालन होने चाहिए ।

(1) केवल उच्च मूल्य सृजन के तथा आवाज प्रदूषण न करने वाले उद्योग (जो वायु व जमीन प्रदूषण भी न करें) ही महानगरों में नये सिरे से स्थापित होने देने चाहिए ।

(2) जो प्रदूषण फैलाने वाले तथा कम मूल्य सृजन के उद्योग पहले से हों, तो उन्हें उसी जगह पर नया परन्तु दूसरी लाइन का उद्योग स्थापित करने या हाउसिंग कॉलोनी बनाकर बेचने देने से पुराने उद्योगपति इतना धन प्राप्त कर सकें जिससे वे पुराने उत्पाद उद्योग को नयी–अन्दरूनी जगह स्थापित कर पायें ।

बाजार के नियोजन के लिए Commercial Complexes के लिए जगह रखनी चाहिए। फुटकर बाजार तो उपभोक्ताओं के निकट होते है । हर महानगर में वस्तु–विशिष्ट थोक

बाजार होते है । अगर ये बहुत बीच में होते है तो सफाई का ध्यान रखना होता है तथा सामान लाने व ले जाने वाले ट्रकों के लिए सड़कों की तथा पार्किंग व्यवस्था होनी चाहिए । बाकी काम तो निजी क्षेत्र के व्यापारी स्वयं कर लेते है ।

1 फुटकर दुकानें : प्रत्येक मोहल्ले में एक काम्पलेक्स गुमटियॉ न होकर सड़कों पर अतिक्रमण न करने वाली पक्की दुकानें होनी चाहिए ।

2 पार्किग व्यवस्था : साइकिलों, स्कूटरों, कारों, ट्रकों, हाथ ठेलों, टेम्पो सभी के लिए होनी चाहिए । बेचने वाले ठेले अगर स्वीकृत हों तो चलायमान रहें।

3 गोदाम व्यवस्था : जहाँ पर भवन सुरक्षा को कोई खतरा न हो वहाँ पर अंडर ग्राउन्ड गोदाम बड़े काम्पलेक्स में बनें ।

4 अस्थाई बाजार : जैसे हाट, सब्जी हाट (Weekly Markets), श्रम बाजार, जहाँ रोजनदारी के लोग खड़े रहते है, उनके लिए स्थान होना चाहिए ताकि यतायात अवरूद्ध न हो ।

(4) महानगर यातायात : उसका नियोजन

1 बड़े उद्योगों में Locational weights ऊँचे होते है, अर्थात जो कच्चा माल आता है तथा जो निर्मित माल जाता है उसका वजन बहुत होता है । इसके कारण ये उद्योग सड़कों को नष्ट करते है । इनके आस पास की सड़कों के रख रखाव का दायित्व कुछ उद्योगों पर भी होना चाहिए । अनेक रेलवे स्टेशन जो महानगर के बाद होते है उन पर समान रूप से लदान–उतार का भार बांटना चाहिए। अगर सम्भव हो तो नई इकाइयाँ इन्हीं स्टेशनों के पास स्थापना के लिए बांट दें । यह वहां पर उपलब्ध जमीन पर निर्भर करेगा।

2 हर महानगर में यथा सम्भव निरन्तर ट्राफिक फ्लों की व्यवस्था होनी चाहिए चाहे यह सर्कुलर रेल से हो, या अंडर ग्राउन्ड रेल से हो, या बसों से हो। परन्तु भारत के सन्दर्भ में बम्बई की बस सेवा का अनुशासन पालन योग्य है तथा दिल्ली का बचने योग्य। अगर नयी कालोनियाँ बनती है तो चार लेन ट्राफिक की व्यवस्था पहले से करनी चाहिए । बिजली की लाइने इस तरह ऊंची हों कि double decker चलना संभव हो।

3 पुराने इलाकों की समस्या अत्यन्त गम्भीर रहती है । यहाँ की सडकों को चौड़ी करना सम्भव नहीं हो पाता । आस–पास के घर व दुकानों को तोड़ना सम्भव नहीं होता क्योंकि मुआवजे की मात्रा तथा विरोध बहुत ऊँचा होगा। यहां की निकासी समस्या कम करने के लिए बाजारों को उन्नत करना तथा मिनी यातायात साधनों का विकास जरूरी होता है । इसके लिए इन सडकों का रखरखाव विशिष्ट रूप से जरूरी होगा।

4 कोई भी यातायात प्रणाली घाटे पर नहीं चल सकती । सार्वजनिक नगर यातायात प्रणाली में सहायता (Subsidy) होने से वे घाटे में जाती हैं और धन की कमी से सक्षम नही रह

V.Nath, Eln, jan.30,1998 on “Regional Planning for Large Metropolitan Cities.

वर्ष 2001 के लिए दिल्ली का स्थान तब ही बना था । इसके लिए "authority ने आस–पास के राज्यों को शामिल करके बनाने की सिफारिश की ।

पाती हैं । अत : कुछ चार्टर बसे जिनकी सहायता से चलाया जाये उन्हें छोड़ निजी यातायात कारगर होता है परन्तु पुलिस बन्दोबस्त होना ही चाहिए ।

5 महानगरों में कम से कम 5 टर्मिनल होनी चाहिए। एक केन्द्रीय तथा चार, चारों दिशाओ में, इनके बीच शटल सेवा चलने से भीड कम व सस्ता परिवहन होगा। अन्यथा कभी यह होता है कि दूर से महानगर में आने का जितना व्यय होता है, उससे अधिक महानगर में घर पहुंचने पर हो जाता है ।

6 भारी वाहन का प्रवेश व निकासी रात को 1 बजे से सुबह 6 बजे के बीच होनी चाहिए। अन्तत : Inter-modal model स्वयं बन जाते है ।

सड़कें

भारत के महानगरों में तीन तरह की सड़कें होती है– वी. आई. पी. सड़कें जिन पर विशिष्ट लोगों के आने जाने की बारम्बारता अधिक है और वे हमेशा अच्छी रहती है । गरीबों के मोहल्लों की सड़कें तथा मध्यम श्रेणी की सड़कें जो हमेशा खराब रहती है ।

समतल महानगरों में पानी की निकासी बड़ी समस्या है–जैसे बम्बई में सड़कें व रेल पटरियाँ बहुत जल्द पानी में डूब जाती हैं । यहाँ पर सड्कों को बीच में ऊँची तथा दोनों तरफ ढाल वाली होना चाहिए । कई महानगरों में ऐसे स्थान बनने चाहिए जहाँ से पम्पिंग द्वारा पानी को आगे बढ़ाया जा सके । भारत की सड़कें ऐसी है जो कि टायर बनाने वालों की पसंद है । उनकें कारण ही भारत में इनकी विक्री जरूरत की दो गुनी है । महानगरों में सड्कों में दो तरफा ट्राफिक का "डिवाइडर" द्वारा पृथ्थकिकरणं तथा प्रकाश व्यवस्था उचित होनी चाहिए । विदेशों में तो क्लोज सर्किट टी. वी. तथा रेडियो निर्देश से ट्राफिक का नियंत्रण होता है तथा मोड़ पर ब्रेक के लिए तकनीकी शोध तक होते है । ट्राफिक सिगनल तो अत्यन्त जरूरी होते हैं तथा सड्कों की प्रकृति के अनुसार स्पीड सीमा भी ।

(5) पेय जल की व्यवस्था

महानगरों के लिए बड़ी नदियाँ, तालाब, झीलें या बांध से पानी की व्यवस्था होती है परन्तु अनेक स्त्रोतों से दो तरह की समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं । एक तो इनमें पानी कम पड़ने लगा है । अकसर नदियों का पानी पहले पड़ने वाले habitats भी अधिक प्रयोग करते है या ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई होने लगती है । और दूसरे पानी प्रदूषित होने लगा है । पर्याप्त तथा स्वच्छता बनाये रखना जरूरी है । यह सर्वविदित है कि अब शहरों में शुद्ध पानी का एक लीटर, शुद्ध दूध के भाव मिल रहा है । सभी महानगरों में पानी की लाइनों के बारे में आद्यतन चिंतन इस तरह है–

1 पानी की लाइनों में वाह्य झिरन न हो, न जंग लगे न उनमें प्रदूषण जायें ताकि hepatitis B जैसी बीमारियों से बचा जा सके ।

2 कच्चे पानी की लाइनें अलग हों ।

3 स्वच्छ पानी की योजनायें अगले 50 वर्षों के लिए भी नियोजित हो ।

शिक्षा–स्वास्थ्य–अन्य सेवायें

नगर नियोजन में विभागीय कार्यक्रमों के कार्यो तथा भवनों के लिए जगह का प्रावधान करना पड़ता है । स्कूल तो शिक्षा विभाग खोलता है परन्तु उसके लिए भवन व खेल के मैदान का बन्दोबस्त तो नगर नियोजन में होता है । निजी क्षेत्र वाले अपने स्कूल उच्च वर्ग के लिए खोल सकते है, परन्तु निम्न व निम्म मध्यम वर्ग की संस्थायें तो सरकारी होती है ।

यही बात अस्पतालों, बस स्टेंड, पेट्रोल पम्प से लेकर पोस्ट आफिस तथा सार्वजनिक दफ्तरों, मंडियों आदि सभी के लिए लागू होती है । बम्बई में तो महानगर की म्यूनिसिपल कार्पोरेशन ने बहुत अच्छा अस्पताल बनाया।

महानगरों में कलाकेन्द्र, रंगमंच केन्द्र, सार्वजनिक वाचनालय, घूमने के लिए पार्क, चिड़ियाघर, अजायबघर, जू तथा अनेक संग्रहालयों के लिए स्थानों का प्रावधान होता है, तथा होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त जहाँ पर सतही प्रदूषण न हो वहाँ पर महानगरों में tube–wells की संख्या अच्छी होनी चाहिए। महानगरों में Crisis management के लिए इतने टेंकरों की व्यवस्था होनी चाहिए कि अगर पानी की लाइनें कुछ मोहल्ले में गड़बड़ हो तो आन्तरिक इन्तजाम हो ।

भारत जैसे देश में पानी की व्यवस्था के लिए शासकीय अनुदान ही मुख्य है । 60 से 100 रूपया प्रतिमाह का जो किराया, शासन / महानगर परिषद लेते है वह अपर्याप्त होता है । पूरा खर्चा तो जनता से नहीं ले सकते परन्तु differential rates या विभेदपूर्ण चार्ज लेकर अब अधिक से अधिक राशि लेनी चाहिए ताकि लोग "पानी का मूल्य जाने" । महानगरों में ऐसे पेड लगाने चाहिए जो रोज पानी न चाहें ।

(6) बिजली–संचार–अन्य सिरोपरी सुविधाएं

महानगरों में शासकीय तंत्र बिजली प्रदान करने में अक्षम रहा है । बम्बई में टाटा की बिजली निरन्तर प्राप्त होती है तथा जरूरत के अनुसार मिलती है । दिल्ली में दोनों बातें निश्चित रूप से अनिश्चित है । कलकत्ते में साम्यवादी सरकार भी सार्वजनिक उपक्रम को ठीक है चलाने का उदाहरण प्रस्तुत न कर सकी ।

संचार क्षेत्र में निजी क्षेत्र के आने से सक्षमता बढ़ रही है । स्वास्थ्य सुविधाओं का quarternary क्षेत्र महानगरों में रहता है । सभी functions व facilities या सुविधायें उच्च वर्ग की होती हैं । निजी क्षेत्र की सक्षमता रखने वाली स्वास्थ्य, शिक्षा, बिजली, बैकिंग, यातायात संचार आदि का होना जरूरी है ।

(7) कूड़ा निकासी नियोजन

इसके लिए भी भारत के महानगरों को पश्चिमी देशों के मॉडल अपनाने चाहिए । सर्विस लेट्रिन तो मानवता पर कलंक है इन्हें समाप्त कर Sewerage System या Soakpitsystem होना चाहिए। ऊँचाई–नीचाई के अनुसार बूस्टर पम्पों से कहीं एक जगह ले जाकर शहर से दूर खाद बन सके तो वह करके अन्तत: पानी को Treat करके नदियों या समुद्र में छोड़ना चाहिए ।

इसके वित्त प्रबन्धन के लिए पर्यावरण सुधारने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें

अनुदान दे सकती है, बशर्ते कि धन का सही प्रयोग सामने आये । गंगा एक्शन प्लान के भ्रष्टाचार ने भारत की साख गिरायी है । इन कार्यो में विदेशी आयातीत सामग्री नहीं लगती, न ही कोई आयात जरूरी होता है । विदेशी अनुदान तो आन्तरिक व्ययों को इस प्रकार के कार्यों में divert या दिशा देने में सहायता करता है । रिकार्डो ने ऐसे कार्यों के लिए Cess या Capital levy दफा या विशिष्ट विकास कर लगाने को कहा था ।

निम्न बिन्दु जरूरी हैं

- सार्वजनिक मूत्रालय व शौचालय जिन्हें स्वच्छ रखा जाये ।
- अस्पतालों का कचरा दूर जाकर स्पेशल प्लाटों में जलाना ।
- सड़क पर कचरा फैंकना सर्वथा मना व भारी जुर्माना
- बँगलोंर की तरह चार रंग के डिब्बों में (i) प्लास्टिक, कांच, (ii) biodegradable waste खाद कचरा, (iii) धात्विक कचरा, व, (iv) अन्य एक स्थान पर रखें ।
- सीवरेज के पाइप व मेन होल कहीं से लीक न करें ।
- आधुनिक व पुराने तरीकों को मिलाकर वातावरण स्वच्छ रखें ।

भारत वे महानगरों में यही सबसे बड़ी समस्या है । "यमुना पार" की दिल्ली जहाँ दिल्ली की एक तिहायी आबादी रहती है वहाँ गलियाँ मोहल्ले नर्क है । इस सम्बन्ध में सूरत एक उदाहरण है जो एक –अत्यन्त गन्दे शहर से एक साफ शहर में जनआन्दोलन व जनता के सहयोग से ठीक हुआ ।

आज के महानगरों में हजारों अरबपति रहते है । उनकी तथा सभी व्यापारियों की एवं आम जनता सभी का सहयोग जरूरी है । धन राशि दूसरे नम्बर पर महत्वपूर्ण है ।

(8) पर्यावरण प्रबन्धन : प्रदूषण नियंत्रण

महानगरों में eutrophic stress है जो मानव उपभोग जानवरों के शरीर के अवयवों के सड़ने से होती है । फिर exploitature stress है जो धात्विक शोधन व कारखानों के कचरों से होती है । इसके बाद disruptive stress है जो महानगरों में निर्माण कार्य से होती है। उसके बाद development stress है जो बढ़ते वाहनों के प्रदूषण से लेकर आबादी के सभी पहलुओं के कारण है । कोई भी नदी शहर में आने पर जितनी साफ रहती है शहर से निकलने पर वह गन्दा नाला बन जाती है। आज नदियों की स्वयं को साफ करने की क्षमता गांवों से नहीं बल्कि महानगरों के कारण समाप्त हुई है।

(9) वायु प्रदूषण

धूल, धुआँ गैसें, यातायात साधनों से निकला सीसा सहित धुआँ, फोटो केमीकल तथा फिजियो–केमीकल परस्पर–प्रतिक्रिया से वायु प्रदूषण है। महानगरों में रहना अपनी आयु कम करना बन गया है। एक के पीछे एक लगी हुई कारें, चिमनियाँ, धूरे(कचरे के ढेर) वायु प्रदूषण करते है ।

महानगरों में वायु में निम्न प्रदूषण तत्व करते है–

1 सल्फर कम्पाउन्ड SO2 तथा SO3 तथा तेल से उत्पन्न धुआ गैस ।

2 कार्बन मोनोक्साइड जो कारों, ट्रकों आदि के आन्तरिक कम्बश्चन से उत्पन्न होती हैं।

3 नाइट्रोजन कम्पाउड NO तथा NO2 जो कोयले या केरोसीन आदि के प्रयोग से हवा में जाते है।

4 बेन्जथाइरीन (जो कि केन्सर पैदा करती है) जो कि वाहनों के धुँऐ से आती है।

5 सीसा जो वाहनों के धुएँ से आता है।

6 अनेक प्रकार की धूल व दुर्गन्ध।

कतिपय कम्पाउन्ड–संयोग तो अत्यन्त घातक हो जाते है। महानगरों में " In the Presence of sunlight, nitrogen oxides in combinations with hydrocarbons undergo a chemical reaction and generate irritating noxious substances called oxidants.

फैफड़ों की बीमारियाँ बान्क्राइटिस, एम्फे सीमा, अस्थमा (asthama) तथा bronchiectasis अत्यन्त घातक होती है। इसके लिए महानगरों में सीसा–रहित प्रैट्रोल प्रयोग जरूरी है व कतिपय घन्टों में gas marks जरूरी है। Carbonmonoxide combines with haemoglobin much more earily than does oxygen. High concentrations of carbon monoxide in the blood interfare with supply of oxygen necessary to maintain metabolism in cells. Acute poironing by this substance develops such systems as headache, naurea, dizziness, temporary blackout and impaired muscular co–ordination. Lead Poironing causes anaemia Photochemical amog brings eye irritations and cough.

वायु प्रदूषण को रोकने का नियोजन

सारा नदी प्रदूषण बड़े शहरों के कूड़े कचरे व मल निकासी से होता है। औद्योगिक "वेस्ट" भी नदियाँ प्रदूषित करती है। शराब के कारखाने के वेस्ट (शराब तो पेय है) तो पानी को पीने योग्य नहीं छोड़ते । ये सब रासायनिक प्रदूषण करते है। जब औद्योगिक वेस्ट नदियों में मिलती है तो नदियाँ अपने आप को साफ नहीं कर पाती। बनारस, कानपुर व पटना में गंगा वास्तव में गटर जितनी प्रदूषित रहती है। प्रदूषित पानी से सब्जी, कच्चे बीज, फल, मछली, दूध व अनाज भी प्रदूषित हो जाता है। पानी में रंग आ जाता है(रासायनिक वेक्टेरियल प्रदूषण से जिगर, आतों व समूर्ण पेट की बीमारियाँ होती है जो अन्य अंगों को भी रोग ग्रस्त करती है।

महानगरों में फिटकरी से ठीक किया गया, क्लोरीन से साफ किया गया तथा फिल्टर पानी देना चाहिए। यह कर्त्तव्य है। अगर पानी साफ करके नहीं दे सकते तो कम से कम नदियों या पीने के पानी के स्त्रोतों को प्रदूषित होने से बचाना चाहिए। अगर इनमें डेटरजेन्टस जाते है तो पानी अपने आप को साफ नहीं कर पाता । उर्वरक भी अंतत: बहकर पानी में प्रदूषण करते है। पानी में महानगरों की पानी प्रणाली में आरसेनिक, केडीमियम, क्रोमियम, लेड, सेलेनियम तथा नाइट्रेटस रहते है। जैविक प्रदूषण से तो हजारों किस्म की बीमारियाँ फैलती है।

(10) ध्वनि प्रदूषण कम करना

वाहनों के चलने, उनके हॉर्न, मशीनों के चलने, हवाई–जेट की उड़ान भरने, रेलों के गुजरने से कहाँ तक बचें, जहाँ ध्वनि प्रदूषण 70 डेसीबल से ऊपर हो वहाँ "ईअर प्लग" की सलाह दे सकते है। खिड़की दरवाजों में ध्वनि–रोक पेडिंग की सलाह दे सकते हैं। ध्वनि प्रदूषण दिल की धड़कन पर बुरा असर डालती है।

(11) जमीन प्रदूषण हटाने का नियोजन

महानगरों में कूड़े के ढेर जहाँ तहाँ लगे रहते है। विदेशों के महानगरों में तो घर के सामने साफ डिब्बों या बेगस में कचरा, कचरा–गाड़ी आने पर ही दिया जाता है। सुअर व मवेशी खुले रूप से गन्दगी करते रहते है। कचरे उठाने की गाडियाँ, व्यक्ति, रखने के डिब्बे सभी का नितान्त अभाव है। सिविक सेन्स नहीं है, कोई भी सड़क पर कचरा फैक सकता है या पेशाब कर सकता है। समस्त झुग्गीवासी तो रेल पटरी के किनारे या कहीं भी खुली जगह में शौच करते है। कचरा जलाने से बहुत ऊँचे ताप की स्थिति आती है और "कास्टिक गैस (Caustic gases)उत्पन्न होती है। सुलभ शौचालय व हर समय साफ होते रहने वाले सार्वजनिक मूत्रालय नियोजन अत्यन्त जरूरी है। मक्खियों, चूहों तथा मच्छरों की भरमार से शहर भरे है। भारत के शहरों के निवासी चाहें तो जनआन्दोलन से किसी एक शहर को पहले विदेशी महानगर बनाने की पायलाट योजना बनानी चाहिए।

निम्न बातों का नियोजन जरूरी है–

1 शहरों में अप्रवास की एक नीति होना, परन्तु इसके लिए छोटे कस्बों व गांवों में विकास होना परन्तु यह ही तो सम्पूर्ण "विकास का अर्थशास्त्र" हो गया।

2 अमीर लोगों व सम्पत्ति वालों पर जो कर लगते हैं उनमें से अच्छा भाग सफाई पर व्यय होना चाहिए।

पेय जल की व्यवस्था

भारत में यह कानूनी रूप से सम्भव नहीं है, इसलिए इस सम्बन्ध में संविधान में यह प्रावधान होना चाहिए कि मेट्रोपोलिटन शहरों की आबादी रोकने के लिए, केन्द्रीय सरकार (राज्य सरकार तथा शहर–प्रशासन की सिफारिशों को जाँचते हुए) अधिकतम सीमा के बाद अप्रवास जो बसने के लिए हो उसका नियन्त्रण कर सकती है।

The soil must be regarded as a living community of fungi, bacteria,protozoa and metazoa. Composting and open dumping may in erase population of plies, rats and vectors of diseases. Buried organic wastes are subject to anaerobic decomposition and production of methane and carbon dioxide may result in pollutions of the ground waters.

बम्बई, दिल्ली या कलकत्ते में हर दिन सैकड़ों लोग नये अप्रवासी बनते है, अगर ठीक काम नहीं पा सकते तो वापिस भी चले जाते है, परन्तु शुद्ध रूप में तो अप्रवास धनात्मक ही रहता है। गन्दी बस्तियों का उदय होना/बढना तथा जुर्म इनके कारण बढ़ते है।

अगर जनसंख्या कम की जाये तो कई कार्यो के लिए व्यक्तियों की कमी पड़ जायेगी। इसके लिए Moscow जैसे नियम बनायें जाने चाहिए । यद्यपि यह आसान न होगा क्योंकि भारत साम्यवादी देश नहीं है ।

इसके अतिरिक्त शहरों की ओर प्रवास रोकना ग्रामीण गरीबों के लिए समस्या उत्पन्न करेगा। जरूरत इस बात की है कि satellite township बने तथा वहाँ से सस्ता यातायात उपलब्ध कराया जाये । इसी तरह से बहुत बड़े शहरों के पास urban centres को आर्थिक रूप से सिरोपरी सुविधायें प्रदान करके युष्ठ करें । इनमें समन्वय जरूरी है ।

परन्तु हर बिन्दु के अन्त में हमकों सकल जनसंख्या नियन्त्रण के लिए तो बोलना ही पड़ता है ।

(12) प्रशासन नियोजन

Cities must have “management” approach instead of “administration” approach.

समस्त शहरों व महानगरों का प्रशासन प्रजातान्त्रिक है । आज भारत में केन्द्रीय, राज्यीय, शहरी व ग्रामीण चार स्तरों पर प्रजातांत्रिक प्रशासन है । परनु हर स्तर पर अक्षमतायें व भ्रष्टाचार है । प्रजातान्त्रिक प्रशासन दिन व दिन महंगा हो रहा है क्योंकि पार्षद भी मंत्रियों की तरह अपव्यय करते है । उन्हें हर विभाग की मांगों पर विचार करते समय गिफ्ट देने की परम्परा है ।

वित्त प्रबन्धन के निम्न स्त्रोत है– ग्रान्ट, सबसिडी, कर, फीस, लेवी व ऋण, सड़क कर, फायर ब्रिगेड कर, पानी फीस, सम्पत्ति कर, ऐंट्री कर, पुल लेवी, विकास लेवी अनेक आय के स्त्रोत है, परन्तु दुरूपयोग है । (भोपाल में जिस वार्ड से सर्वाधिक सम्पत्ति कर मिलता है उसमें सारे गटर के होल खुले है व इस कमर्शियल काम्पलेक्स की सड़कों पर “पानी" बहता है । वार्ड के पार्षद विरोधी पार्टी के थे) राजनीति को शहर प्रशासन से दूर रखना चाहिए ।

27.4 समन्वित अंचल क्षेत्रीय नियोजन

राष्ट्रीय शहरीकरण कमीशन, चार्ल्स कोरिया की अध्यक्षता में बना था, ने शहरों/कस्बों को महानगरों का Countermagnets या “उल्टी चुम्बक" बनाने की सिफारिश की थी ताकि व्यक्ति महानगरों में कम जायें तथा हो सके तो वहाँ से इन Setellite towns में आयें, लेकिन इनके लिए पर्याप्त संसाधन, धनराशि और प्रशासनिक तन्त्र सही मायने में नहीं जुटा पाने से तथा राष्ट्र में बम्बई (मुंबई), दिल्ली, चेन्नाई (मद्रास) तथा कलकत्ता में अप्रवास पर बंदिश न लगने से बगैर घर को फुटपाथ पर सोने वालो झोंपड़पट्टी में रहने वालों की संख्या बहुत हो गयी है, (1998)

बम्बई/मुंबई	50 लाख

दिल्ली	40 लाख
कलकत्ता	10 लाख
मद्रास/चेन्नाई	8 लाख

राष्ट्रीय आयोग ने शहरी भूमि के विवेकपूर्ण प्रयोग के लिए शासकीय नियंत्रण व निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन की एक विवेकपूर्ण नीति की सिफारिश की थी परन्तु इसमें जहाँ पहले भ्रष्टाचार का बोलबाला था, बाद में माफिया का बोलबाला हो गया । बम्बई की जमीन के माफिया वर्ग तो मध्य एशिया के देशों से कार्य चलाते है । यद्यपि बहुत विस्तार से नहीं लिखा, फिर भी परोक्ष रूप से कमीशन ने कृषि भूमि को समाप्त करके शहरों के विस्तार पर चिंता व्यक्त की थी ।

जिस Infrastructure stress की बात थी वह बजाये घटने के बढ़ती जा रही है तथा इसके लिए Populations implosion या अप्रवास जिम्मेदार है । इस संबंध में सेन्ट्रल प्लेस थियोरी के अनुसार Satellite शहर बसने चाहिए ।

" Planned Slum" का विचार भी कमीशन ने दिया था ।

27.5 सारांश

भारत में साफ शहर में रहने का तजुर्बा व चाह ही नहीं दिखती । लोगों को यह Perception ही नहीं है कि सम्पूर्ण रूप से साफ शहर जैसे सिंगापुर हो भी सकता है । भारत में प्रदूषण रहित औद्योगिक नगर चाहिए, और यह अत्यन्त कठिन कार्य है ।

1 अग्निशमन सेवायें, बाढ़, राहत, सूखा स्थिति में पानी का इन्तजाम, दुर्घटना क्रेन, एमुलेन्स, “ट्रामा वार्ड" तथा आपात काल से निपटने के पूर्ण इन्तजाम होने चाहिए ।

2 अमीर, मध्यम वर्ग, गरीब, बहुत गरीब सबकी आवास व्यवस्था होनी चाहिए । जरूरत है भू–माफिया को नियंत्रण में रख कर, निजी बिल्डरस से नगर नियोजन में सहायता लेने की।

3 शहरों से दूर अति प्रदूषणकारी उद्योगों को ले जाना व उस भूमि को फ्लेट के लिए मिल मालिकों को प्रयोग करने देना औद्योगिक re–location में सहायक होगा, जैसे दिल्ली, बम्बई में उच्च मूल्य सृजन के growth poles शहरों में रह सकते है परन्तु चारों ओर growth foci होना चाहिए । हर शहर के बाजार काम्पलेक्स तथा यातायात में समन्वय होना चाहिए ।

4 महानगरों में Locational weights का परिवहन बँटा होना चाहिए । Bypasses, Flyovers, Subways तथा conducts का जाल बनाना होगा । Terminals सड़कों की स्थिति के अनुसार बनने चाहिए । Inter–modal Model को उन्नत करना होगा । सड़कों का रख रखाव व पानी निकासी नियोजन अति जरूरी है ।

5 वर्तमान व भावी पेय जल व्यवस्था नगर नियोजन को चेलेन्ज है । प्रदूषण रहित पानी का इन्तजाम, पानी चार्ज वसूली पर भी नियंत्रण होगा । पानी का मूल्य बढ़ेगा, पानी का मूल्य पहचानना होगा ।

6 भारत में बड़े शहरों की स्वास्थ्य, सफाई, अस्पताल, बिजली, संचार तथा अनेक अन्य सुविधाओं के लिए, विस्तार के लिए जगह का प्रबन्ध व उन्हें सक्षम बनाना Inter – departmental सहयोग का बड़ा चैलेन्ज है ।

7 कूड़ा निकासी शहर नियोजन का बड़ा कार्य है । सार्वजनिक शौचालय, मूत्रालय का न होना, सुअरों का कूड़ा घरों पर विचरना, अस्पतालों के कचरों को नदी तालाबों में जाने देना, Non–biodegradable प्लास्टिक थैलियों का बिखराव, बूचड़ खानों का प्रदूषण (Eutrophic Stress), निर्माण कार्य का मलवा (disruptive stress) वाहन धुआँ (Transport development stress), कारखानों का प्रदूषण (Exploitive) वायु, पानी व सतही प्रदूषण इनसे शहरी जीवन की किस्म घट रही है व उम्र घट रही है ।

8 सभी तरह के बढ़ते प्रदूषणों से भारत की राजधानी को दुनियाँ की अब सबसे गन्दी राजधानी मानते है । हमारे सभी महानगर (चंडीगढ़ को छोड़ कर और कुछ हद तक बेंगलोर को) बहुत प्रदूषित है ।

9 यद्यपि संविधान में प्रवास व बसने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, फिर भी कतिपय शहरों में अप्रवासियों को लेने की चरम सीमा पहुँच चुकी है ।

10 भारत के महानगरों का वित्तीय प्रबन्धन अपर्याप्त है, व्यय में भ्रष्टाचार व अक्षमता है तथा प्रबन्धन में कुप्रबन्धन ज्यादा है । जनता के समक्ष कोई जवाबदारी नही है ।

11 सभी महानगरों व नगरों में Crisis, Disaster व Calamity से निपटने की रूप रेखा तैयार रहे । इसके लिए वांछनीय सामान व मानव संसाधन होने चाहिए । वांछनीय वित्त व्यवस्था थोड़ी–थोड़ी हर वर्ष जुड़नी चाहिए।

12 शहरों के भावी विकास तथा वर्तमान कमियों को दूर करने के लिए तकनीकी व आर्थिक योजना होनी चाहिए । मूल्य सृजन के उद्योग लाना, प्रदूषण के उद्योग बाहर ले जाना, सड़कें चौड़ी करना, टर्मिनल बनाना, नालियां सुधारना तथा भवन निर्माण बढ़ाने के लिए निजी क्षेत्र का सहयोग लेना चाहिए ।

13 नगर विकास के लिए Hierarchy of Settlements का नियोजन समन्वित रूप से होना चाहिए । बाजार व रिहायशी काम्पलेक्स मिले जुले बनने चाहिए ।

14 भारी वाहनों का महानगरों व नगरों में कुछ बिन्दुओं पर Periphery मे प्रवेश होने देना चाहिए । कतिपय सड्कों पर ही यातायात का भार नहीं होना चाहिए । Flyovers, कई Lanes की हीना, Underground सड़कें, रेलमार्ग, Bypasses आदि के बनाने में कई बस्तियों का हटाना जरूरी हो सकता है, उनका Re–location जरूरी होगा । डबल डेकर बसें भी उपयुक्त होंगीं । गरीबोंपयुक्त यातायात सेवायें श्रम वर्ग के लिए जरूरी होती है ।

15 शुद्ध पानी की लाइनें (फिटकरी, क्लोरिन से साफ किया तथा छना) जिसमें अशुद्धता न मिले, बनाना जरूरी है । बगीचों व धुलाई के लिए या लेट्रिन के लिए कच्चे पानी की व्यवस्था की जा सकती है । पानी का अब मूल्य लेना (कम से कम रू 60 से 100 प्रति माह) जरूरी है । भावी योजनायें तैयार रहनी चाहिए।

16 बिजली जिसका Low–Shedding न हो, संचार जो बीच–बीच में ठप न हो, शिक्षा जिसमें खेल का इन्तजाम हो तथा नगर जिसमें स्वास्थ्य सेवायें गन्दी न हों, शहरी नियोजन के लिए जरूरी है ।

17 अफ्रीका के देशों में (जैसे केन्या में) गाँव व शहर कहीं भी कम से कम "सोकपिट" लेट्रिन के बगैर घर को अस्तिव में नहीं आने देते । शहरों में Choked Sewerage Lines कलंक है । यह नहीं कर सकते तो कुछ नहीं कर सकते। कूड़ा निकासी, उसकी Re–cycling व उसका जलाना अति आधुनिक तरीके से होना चाहिए । सार्वजनिक मूत्रालय व शौचालय होना चाहिए ।

1999 में दुनियाँ में 600 करोड़ व्यक्ति होंगें । भारत में विश्व के 2.4% क्षेत्र में 100 करोड़ या 1/6 या 16.67% समस्या है गरीबी, पानी की कमी, धन की कमी और इन सभी की जड़ में है दूषित राजनीति व भ्रष्टाचार । इनके रहते कोई नियोजन संभव नहीं है ।

18 वायु प्रदूषण, पानी प्रदूषण तथा सतही प्रदूषण को रोका जाये। उसके वैज्ञानिक व तकनीकी तरीके तो पता हैं ।

19 कुछ मात्रा में अप्रवास पर नियंत्रण महानगरों में जरूरी होगा ।

20 Cess या विशिष्ट कार्य कर अधिक कारगर होंगें । जनता जो चाहे उसकी लागत वसूल कर उस कार्य को सम्पादन करके देने में भविष्य के लिए जनता सर्वथा तैयार रहेगी । संसाधन जुटाने में प्रगतिशीलता तो रहेगी परन्तु सभी की भागीदारी भी । अभी झुगीवाले उनके लिए 1 रूपये से लेकर 5 रूपये रोज देने पर भी EWS मकानों को झुग्गी की जगह लेने से इन्कार अपने "नेताओं" के कहने पर कर देते है ।

27.6 शब्दावली

शहर	जहाँ कम से कम 5000 की आबादी तथा 75% से अधिक अकृषि कार्य से आय।
महानगर	10 लाख से ऊपर का शहर
केन्द्रीय स्थान	प्रमुख केन्द्र जिसके चारों ओर Honey Comb रूपी Hierarchy
Central Place	of Settlement
अर्बन सीलिंग :	
मूल्य सृजन	शहरों में अधिकतम भूमिधारण की सीमा मूल्यवान परन्तु छोटी ।
इन्टर मोडल–मॉडल Inter–model Model	अनेक प्रकार के यातायात साधनों का एक के वाद एक या एक समय में अलग–अलग व्यक्तियों द्वारा प्रयोग
Cess सेस	कार्य विशिष्ट के लिए आय लेना
Quarternary Function	तृतीय वर्ग के क्षेत्र की अति उन्नत सुविधा जैसे All India Institute of Medical Sciences या कुछ भी ।

Settelite Town	मुख्य शहर के आसपास चारों और के शहर या कालोनियों जो केन्द्र पर जनसंख्या दवाब कम करते है ।

27.7 कलकत्ते का विशेष उदाहरण

कलकत्ता वास्तव में एक बार "Dead City" घोषित कर दिया गया था जो लाइलाज था । 1998 में दिल्ली को केन्द्रीय मंत्री ने यही कहा । परन्तु फिर अपनी कुख्याति को दूर करने के लिए कलकत्ते में कार्य सुधरा । बीस लाख झुग्गीवासियों को पर्यावरण सुधार तथा वहाँ के निवासियों को प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधायें दी । वहाँ पर Express Ways (द्रुतगामी वाहन सड़कें), Bypass (मुख्य शहर से न गुजरने की सड़कें), Flyovers (सड्कों के ऊपर सड़के, खम्बों पर), Truck Terminals (ट्रक अड्डे), Relaying of Conducts, Re–Sectioning of outfall Channels (जल व्यवस्था के पाइप ठीक करना, मल निकासी की लाइनें पुन : बिछाना कि टूटें नहीं व लीक न करें), बनाई ।

कचरा उठाने का कार्य नियमित किया । पूर्वी कलकत्ते में तथा बैशनाबघाटा–पटूली में नयी बस्तियाँ बनाई कि शहर के केन्द्र पर दवाव कम हो । गाल्फ ग्रीन बाधाजातिन, वैरकपुर में अलग–अलग आय वर्ग के लिए आवासगृह बनवायें, “वार्ड पंचायतें" गठन की, तथा पेय जल शुद्धता पर ध्यान दिया ।

कलकत्ता 300 वर्ष पूर्व कलिकाता, गोविन्दपुर तथा सुतानटी नाम के तीन गावों से मि. जाव चार्नक (Job Charnock) ने “शुरू" किया था । पूर्वी पाकिस्तान बनने तथा बंगला देश की स्वतन्त्रता के युद्ध से पूर्व पाकिस्तान द्वारा वहाँ के अल्पसंख्यकों को निकाल देने से कलकत्ते में जनसंख्या विस्फोट हो गया । आज वहाँ Calcutta Metropolitan Development Authority है। इसके अन्तर्गत 41 "अर्बन लोकल बाडीज" तीन म्यूनिसिपेलिटीज तथा 101 ग्राम पंचायतें है । 1991 में आबादी 1.2 करोड़ के प्रक्षेपण थे । यहाँ का घनत्व 8700 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि. मी. था जबकि शहरी भारत का घनत्व 4098 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि मी. था ।

एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि सभी प्रकार की गन्दगी दूर करने तथा सुधारात्मक विकास करने का बजट 1997–98 में भी 300 करोड़ वार्षिक था जो प्रति व्यक्ति मात्र 200 रुपये आता था, अर्थात 1000 रू. प्रति परिवार प्रति वर्ष था। अन्य शब्दों में धन नहीं बल्कि सही व्यय, बगैर भ्रष्टाचार झिरनों के समस्यायें हल कर सकता है ।

दुर्भाग्य से अगर पिछली गंदी बस्तियां सुधर जाती है तो नये लोगों की नयी गन्दी बस्तियाँ शुरू हो जाती है । यह भी दुर्भाग्य रहा कि गंदी बस्ती वालों ने 4 मंजिली में एक कमरे व 2 कमरों के फ्लेट्स में जाना पसन्द नहीं किया । वे काम के स्थान के पास फ्लेट चाहते थे । गंदी बस्तियों के “नेता" विकास में बाधक ही बनते है ।

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम से लेकर अनेक Adhoc कार्यक्रमों के धन को शहर सुधार (बस्ती विकास, म्यूनिसिपल अंचल विकास, 1971) में लगाया गया। सब कुछ ठीक तो

नहीं हुआ, फिर भी बहुत कुछ हुआ (10 में से नम्बर निम्न है) जज नानी पालखीवाला, मेनका गांधी तथा मृणाल सेन

	कलकत्ता	दिल्ली	मुम्बई	चेन्नाई
1. पानी	7.5	3.33	4.67	6.0
2. सार्वजनिक स्वास्थ्य	6.0	1.33	4.33	5.0
3. प्रदूषण नियंत्रण	3.0	1.00	1.33	2.7
4. गन्दी बस्ती सुधार	5.0	3.00	1.00	2.3
5. यातायात सुधार	6.5	2.67	5.00	2.00

27.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

(1) De Soza, Alfred	The Indian city, Manohar Publication, New Delhi 1983
(2) Dwyer, D.J	The city in the Third world, Macmillan, London 1974
(3) Crose,M.S.	Urban Planning and some Portion of social policy Economic and political weekly, Special Number june 1971
(4) Kureinc. T. Joseph Jawes	Urbanisation and Economic change Economic and Political weekly No.12 July 1975
(5) Mishra, R.P	Million cities of India Vikas Publishing House, New Delhi 19
(6) Dutta, Abhijit	Urban Government Finance and Develoment The world urban Calcuta 1970
(7) Awasthi, R.K	Urban Develoment and Metro Polities In India Chugh Publication Allahabad 1985
(8) Toyanber, Aruold	Cities on the more Oxford University Press, London 1970
(9) Govt.of India	Pattern of Urbanisation and urban

	Planning Rakes Mohan Committee 1992 New Delhi, Ministry of urban Planning
(10) Walsh Annamarie Hanck	Urban Challanges to Government New York Praeger Publishing Co. 1969
(11) Raheja, B.D	Problems of Government in Metro politan area in India All India Inhitubg Local Government 1982
(12) Bosh, Ashish	Urbanisation in India Acolemic Books Ltd, New Delhi 1970
(13) Das, R.B	Urban Planning and Local Authority Oxford and IBH Publishing Co., Calcutta
(14) Hall, Prter	The World Cities Weiden Feld and Nicholson London,1977
(15) Mayur, Rashmi	Urbanisation in India in 2000A.D. Urban System Center National Institute Of Training & Engineering Mumbai
(16) Rosenthon, Donald	City in Indian Politics Faridabad Thomson Press India Ltd. 1976
(17) Sovani, N.V	Urbanisation and Urban India Asia Publishing House Mumbai 1966
(18) Christz, Benjamin	City and suburb The Economies of Metropolitan growth Prentic Hall Inc Englawood Chitts N.J 1967

इकाई 28

ग्रामीण–शहरी समन्वय के लिए नियोजन : ग्रामीण शहरी प्रवास प्रवृत्ति : उपलब्ध स्थान (क्षेत्रों) में अधिकतम आवासीय संरचनाओं में सम्बन्ध कड़ियाँ

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य

28.1 प्रस्तावना

28.2 ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रवास की प्रवृति के कारण

28.3 गांवों से शहरों की ओर प्रवासी प्रवृति के गुण

28.4 गांवों से शहरों की ओर प्रवास करने की प्रवृति के दोष व कमियाँ

28.5 ग्रामीण–शहरी जनसंख्या के अन्तर्गमन के प्रभाव

28.6 ग्रामीण–शहरी जनसंख्या के अन्तर्गमन प्रवास के कारण नई भूमि की खोज

28.7 ग्रामीण–शहरी समन्वय के लिए नियोजन

28.8 स्व–पाठ अभ्यास अथवा स्व–शिक्षण प्रयोग

28.9 सारांश

28.10 शब्दावली

28.11 स्व–शिक्षण के लिए अभ्यास

28.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

आर्थिक जीवन के विकास के इतिहास के संदर्भ में मानवीय सभ्यता के उदय के साथ मानव ने अपने स्थायी आवास जो बस्तियाँ बसायी उन्हें दो भागों 1 – ग्रामीण और 2 – शहरी में विभक्त कर सकते है । पर यह वर्गीकरण न तो दृढ़ और लोचविहीन विभागों में बँटा है और न ही यह वर्गीकरण निरपेक्ष है । इसका अर्थ यह है कि जो बस्ती कल तक गांव कहलाती थी वह आज अनेक कारणों के फलत : या प्रभाव स्वरूप शहर या कस्बा कहलाने लगी । पर गांव की शहर या कस्बा कहे जाने की स्थिति के पीछे क्रियाशीलता रही है । मानव स्वभाव की उस प्रवृत्ति की जिसके धनात्मक और निरन्तर क्रियाशील रहने के कारण मानव गांव से शहर की ओर जाने, जाकर बसने और स्थायी रूप से प्रवासित होने के लिए प्रेरित, आकर्षित अथवा वाध्य हुआ है, होता जा रहा है और होता गया है । इस तरह यह मानना होगा कि गाँवों से शहरों की ओर प्रवास करने की प्रवृति बाध्यता अथवा मनोवृत्ति मानवीय सभ्यता का एक अभिन्न, अन्तरंग और अनिवार्य अंग बन गया है । तभी मानवीय आवासीय आबादियों व बस्तियों के दो रूप सामने है–शहर व गांव । वह विभाग मोटा–मोटा है और इसमें अनेक उप–विभाग भी मौजूद है । जैसा पहले कहा ज चुका है कि यह विभागीय वितरण न तो निरपेक्ष है और न ही इसमें आकारीय समानता पायी जाती है अर्थात कहीं पर किन्हीं कारणों से शहर बड़े व घने बनते गए और कही गांव बड़ें हो गए । पर इस विभाग के पारस्परिक अन्तर्संबंध और सहसम्बन्ध के रूप

में निर्विवाद रूप से एक सत्य के रूप में उभर कर आयी है और वह यह कि शहर और गांव के बीच मानव का आवागमन और आकार बसने की प्रक्रिया कभी समाप्त नहीं हुयी है । यह प्रवृत्ति तो शाश्वत रूप से चलती ही रही है । वर्तमान पाठ के निम्न लिखित उद्देश्य है –

28.0 उद्देश्य

1. गांवों की मूल आवासीय, नागरिक, शैक्षिक, सामाजिक, व्यावसायिक, भविष्य–विकास परक विशेषतायें, बाध्यतायें और कमजोरियों जो गांव वालों को शहर की ओर जाने से नहीं रोक पायी। इस कारण को अध्ययन का विषय बनाना कि इन कमियों से ऊब कर मानव गाँव से शहर की ओर जाने को प्रेरित अथवा आकर्षित हुआ है । उपलब्धियों, आपूर्तियों अथवा परिलब्धियों की व्याख्या करना तथा पहचान करना जो मानव के, गांव से शहर की ओर स्थायी या अस्थायी, अल्पकालिक अथवा दीर्घकालिक, तदर्थ अथवा सामान्य प्रवास के लिए सष्ट रूप से उत्तरदायी है ।
2. मानव की उस सामान्य मानसिकना का अध्ययन करना जो एक न एक समय, उसकी सरल सुविधा के अनुसार, गाँव से शहर की ओर जाने व जाकर बसने के लिए बाध्य करती रही है।
3. शहर की भौतिक परिभाषाओं का अध्ययन करना ।
4. शहर और शहरी जीवन तथा शहरी पर्यावरण की विवेचना करना तथा शहरी जीवन कीं मानवोचित उन सभी सुविधाओं का वर्णन करना जो लोगों को आकर्षित करती हैं ।
5. इस प्रवासीय प्रवृत्ति को जनसंख्या वृद्धि के प्रति किलोमीटर घनत्व और वितरण प्रवृत्ति से सम्बद्ध करना और सहसम्बन्ध स्थापित करना ।
6. गांवों से शहरों की ओंर लोगों की प्रवासी प्रवृत्ति के शहरी जीवन पर अनेकानेक प्रभाव पड़े है और पड़ रहे है । इस दृष्टि के विषय की विषद व्याख्या करना परम आवश्यक है ।
7. भूमि की सीमित्तता के कारण नगरीय आवास एक समस्या भी बन गयी है और चुनौती भी। इसका फल यह हुआ कि आवास समस्या अनेक प्रकारों में, धाराओं में, रूप स्वरूपों में विस्फोट हुआ है । अनेक–मंजिला भवन, छोटे मकान, गन्दी बस्तियाँ इतने प्रकार से इस समस्या का रूप ले रहे हैं कि शहरी जीवन अनेक प्रकार से कुप्रभावित होने लगा है और पर्यावरण स्वास्थ्य तथा सफाई, चिकित्सा, महामारी विस्फोट इत्यादि अनेक समस्यायें, दोष, चुनौतियाँ, बोझे व अनंतुलन उत्पन्न हो गए है तथा भविष्य के नागरिक तथा नगरीय जीवन को दूभर बना रहे है । यह पाठ इस बात के अध्ययन को भी उद्देश्य मानकर चल रहा है ।
8. शहरीकरण की इस दौड़ में आवास की समस्या उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है और उसी के साथ स्वाभाविक है नागरिक सुविधाओं की आपूर्ति की निरन्तर बढ़ती हुयी मांग । इस पाठ का उद्देश्य यह भी देखना है कि क्या आवासीय बस्तियाँ और उनमें आवश्यक नागरिक सुविधाओं की आपूर्ति साथ–साथ विकसित होते रहे है अथवा आवासीय बस्तियाँ तो जल्दी–जल्दी बसती गयी पर उनके लिए आवश्यक नागरिक सुविधाओं की आपूर्ति पिछड़ती गयी जिसके कारण उन बस्तियों में अनेक ऐसी समस्यायें उत्पन्न हो गयी जिनका निराकरण

असम्भव ही हो गया और उनकी ओर समय–समय पर ध्यान देने पर भी कुछ काम नहीं हुआ ।

9. आवासीय बस्तियों को बसाने में नयी–नयी अधिकाधिक भूमियों की आवश्यकता पड़ी । दूसरी ओर, शहरों के भीतर गलियों में रहने वाले सम्पन्न लोग भी बाहर खुले में आने लगे। इसके साथ–साथ जनसंख्या की अनवरत तीव्र वृद्धि ने नएँ आवासों की मांग उत्पन्न कर दी । इस का सामुहिक प्रभाव यह हुआ कि शहरी आवास की परिधि बढ़ने लगी । बेकार भूमि भी काम में आने लगी । सभी जगह, भूमि के अधिकतम आवासीय प्रयोग की बात होने लगी। छोटी–छोटी बगियाये, बाग कट–कट कर बस्तियों में बदलने लगे । शहर के बाहर किनारे–किनारे वाली भूमि जिसपर सब्जी उगाने वाले किसान सब्जी उगा कर प्रात : काल सब्जी मण्डी लाकर बेचते थे, एक तरह से बेदखल होने लगे क्योंकि आवासीय समितियों ने चाहे वे समितियॉ सहकारी आवास समितियाँ थी अथवा निजी कालोनाइजर द्वारा बनायी गयी निजी लाभ से प्रेरित आवासीय समितियॉ थी । आवासीय बस्तियाँ बनाने का काम आरम्भ कर दिया । इस पाठ का एक उद्देश्य उन विसंगतियों का अध्ययन करना है जो इस स्थिति के द्वारा उत्पन्न हुयी हैं, जन्मी है ।

10. जहां शहरी–ग्रामीण जनसंख्या के पारस्परिक अन्तर्गमन थी और प्रवाह सम्बन्धित प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही थी और फलस्वरूप नए कार्य तथा नए कार्यक्रम बन रहे थे वहां सरकार भी इतनी बड़ी आवश्यकता और समस्या के प्रति बेखबर नहीं रह सकती थी । फल यह हुआ कि सरकार की ओर से अनेक कदम उठाए गए जिनका सीधा सम्बन्ध भूमियों के अधिग्रहण, उन पर आवासीय बस्तियों का नियोजित निर्माण करना, नागरिक सुविधाओं, जैसे जलापूर्ति, सफाई, सड़क निर्माण, सीवर इत्यादि से था। राज्य स्तर पर आवास एवं विकास से संवधित संघ की स्थापना हुयी । सरकार में इस सम्बन्ध के मंत्रालय स्थापित किए गए और आवासीय ऋणों की रूपरेखा बनायी गयी । तथा उसकी विविध क्रियान्विति प्रारम्भ हुई । इस पाठ का एक उद्देश्य यह भी अध्ययन करना है कि किस प्रकार सरकारी प्रयास ने इन प्रवासी प्रवृत्तियों के कारण बढ़ती हुयी जनसंख्या की आवासीय आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए कारगर कदम उठाए ।

11. इन आवासीय बस्तियों का विस्तार कहीं पर तो व्यवस्थित और नियोजित तरीके से लेकिन अधिकतर तो अनियोजित, मनमानेपन और बेढंगेपन से हुआ जिसके कारण अनेक प्रकार के असन्तुलन व अव्यवस्थाएँ उत्पन्न हुयी जैसे नीचे स्तर वाली भूमियों पर बसी बस्तियों में जलभराव की समस्या, मच्छरों का प्रकोप, और बीमारियों का फैलना इत्यादि । उन सभी कुप्रभावों का अध्ययन करना जो शहरीकरण के इस अवाच्छित पर अनिवार्य लाचारी के कारण उतपन्न हुए है ।

12. इस गन्दगियों, स्थानाभावों, नागरिकजीवन में आयी दुर्गमताओं और स्वच्छ वातावरण में जीने की लालसाओ ने बहुत से सम्पन्न लोगों को शहर से बाहर आदर्श कालोनियाँ बसाने या उनमें आवास क्रय करने या उनमें भूमि क्रय करके अपने मन–पसन्द नियोजित आवास निर्मित कराने की लालसा ने प्रबल समय लिया है । इसके फलस्वरूप शहरी जनसंख्या का

एक भाग, शहर से बाहर खुलें में निकलने और रहने को प्रेरित हुआ है । इस सबका फल हुआ नए नगर क्षेत्रों का विकास, लेकिन वहां भी धीर–धीरे जनसंख्या के आधिक्य के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं ने प्रवेश करना प्रारम्भ कर दिया हें ।

बिजली, पानी, सीर, सफाई आदि वहां अनेक प्रकार की समस्याएं है और उनका अपने प्रकार का हल है । फिर भी वहां शहरी लोग है और ग्रामीण जीवन जैसा खुला वातावरण है । इस पाठ का उद्देश्य यह भी अध्ययन करना हें कि सामाजिक जीवन की उदमातृ, व्यापकता, सरलता, व सहजता, पारस्परिक प्रेम और सदभाव का जीवन किस प्रकार इस प्रकार की बस्तियों से लुप्त होता जा रहा है और लोग अपने में सिमट कर किस प्रकार का जीवन जी रहे है । यह आधुनिक नगरीय जीवन की मुखर होती हुयी प्रवृत्तियों में से एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है । इस प्रकार के जीवन के कुछ व्यक्तिगत सुख है और कुछ सामाजिक सीमायें भी ।

28.1 प्रस्तावना

आधुनिक औद्योगिक, आर्थिक, तकनीकी विकास और जनसंख्या की तीव्रगति से बढ़ती हुई दर ने, शहरी और ग्रामीण जनसंख्या के बीच अनेक प्रकार के अन्तर्गमन अंन्तर्प्रवासी प्रवृत्तियाँ और अनेक प्रकार के असंतुलन उत्पन्न कर दिए है । जो कि अनेक प्रकार से अच्छे भी है तो अनेक प्रकार से बुरे भी । देश में नियोजन काल के आरम्भ से ही ग्रामीण विकास एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है । वास्तविकता तो यह है कि ग्रामीण विकास, हमारी नियोजन प्रक्रिया व तथ्य का एक महत्वपूर्ण भाग हें क्योंकि मूलत: है तो गांवों का देश । इसलिए हर दृष्टि से इस बड़े भाग की समस्त असमताओं का आकलन करना, उसकी समस्याओं की पहचान करना, उनके निदान के लिए नियोजन करना, विकास तथा गरीबी निवारण और बेरोजगारी निवारण की अनेक कारगर योजनायें बनाना, उस जनसंख्या की मूलभूत नागरिक आवश्यकताओं की आपूर्ति करना, इत्यादि अनेक बातों का सामने आना और उनको प्रकाश में लाकर, सरकार की विकास नीति का एक अंग बनाना हमारी नियोजन व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग है । यह सभी समस्याएं कहीं न कहीं ग्रामीण–शहरी जनसंख्या की प्रवासी प्रवृत्ति और अन्तर्गमन की स्थिति को बढ़ावा देने, उत्पन्न करने और उनके हल किये जाने की माँगें उत्पन्न करने में सहायक तथा प्रभावी सिद्ध हुई है ।

देश की इस प्रकार की स्थिति व समस्या के प्रति न तो सरकार उदासीन रह सकती है और न ही अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, और मीडिया जहां एक ओर समस्याएं उतम हुई है वहां दूसरी ओर उनके निदान की विस्तृत योजनायें भी बनी है उनकी क्रियान्विति भी हुई है । लेकिन समस्या और उसके निदान की क्रियान्विति के बीच साम्य और सन्तुलन नहीं रह पाया है । दूसरे शब्दों में, समस्या तो विकराल रूप धारण करती गयी है लेकिन उसकी निदान, व्यवस्था अनेक आपूर्ति प्रतिबन्धों और नीतिगत शिथिलताओं के कारण अधिकतर मामलों में पिछड़ी ही रही है । इस सबका फल यह हुआ है कि अनेक प्रकार को नई समस्याएं उतम हो गयी है ।

यदि आर्थिक अनिवार्यताओं, विवशताओं, और आकर्षणों ने गांवों से लोगों को शहरों की और खींचा भी है और ढकेला भी, तो दूसरी ओर, शहरी जनसंख्या के एक भाग को यथाशक्ति,

शहर के बाहर खुले में या फार्म–हाउस या आवासीय बस्तियाँ बसाकर उस ओर गमन व प्रवास करने की प्रेरणा मिली है । शहर का दूषित वातावरण और साथ में पर्यावरणीय असन्तुलन।

28.2 ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रवास की प्रवृत्ति के कारण

ग्रामीण लोगों की शहर की ओर प्रवास की प्रवृत्ति के लिए निम्न कारण है अथवा हो सकते है :-

1. गांवों में रहने वाले भूमिहीन श्रमिकों, बहुत छोटे–छोटे लघु व सीमान्त कृषकों को और इसी तरह के पिछड़े वर्ग के गरीब लोगों को जब गांवों में वर्ष भर रोजगार नहीं मिलता तब वे रोजगार की तलाश में शहरों की ओर प्रवास करते है ।
2. कृषि पर जनसंख्या का बढ़ता भार और अधिक लोगों को रोजगार देने में असमर्थता के कारण वहां के लोग जो मूलत: कृषि पर अपने रोजगार के लिए आश्रित है, शहरों की ओर प्रवास करते है।
3. **ग्रामीण ऋणग्रस्तता:** कभी–कभी गांवों के साहूकार सें बचने के लिए भी लोग, शहर की ओर गमन करते है ।
4. निर्धनता और ऋणग्रस्तता का संयुक्त प्रकोप व प्रभाव गरीब लोगों को मजदूरी की खोज में शहरों की ओर ढकेलता है ।
5. **संयुक्त परिवार प्रणाली :** इस व्यवस्था के अन्तर्गत, कुछ सदस्य अपनी भूमि तथा घर को परिवार के अन्य सदस्यों के भरोसे पर छोड़कर नगरों में कार्य करने के लिए चले जाते
6. **पारिवारिक संघर्ष:** गांवों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि की प्रवृत्ति के कारण, परिवारों का आकार जब बड़ा होता जाता है तो घर में अनेक झगड़े तथा पारिवारिक चिन्ताओं के उत्पन होने की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से ही उत्पन्न हो जाती है । इनसे बचने के लिए भी लोग शहरों की ओर गमन करते है ।
7. पारस्परिक कुटीर उद्योग धन्धों का हास तथा प्रतिस्पर्धा में वृद्धि ने गांवों में लोगों के मुंह की रोटी छीन ली जिसके कारण वे शहरों की ओर प्रवास करने लगे।
8. **सामाजिक व्यवहार :** ग्रामीण दलित वर्ग के साथ गांवों मे, सामाजिक व्यवहार इतना सरल वस्तुनिष्ठ तथा धर्मनिरपेक्ष नहीं होता जितना शहरों में । इसलिए इस वर्ग के लोग शहरों में जिस तरह भी हो, रहना पसन्द करते है ।
9. शहरों में, गांवों की तुलना में मिलने वाले रोजगार या मजदूरी या वेतन के मिलने की सम्भावना ऊँची और ज्यादा होती है इसलिए भी लोग गांवों से शहरों की ओर प्रवास करते है ।
10. **उन्नत भविष्य की आशा :** गांव के लोगों को शहरी जीवन में उन्नत भविष्य की आशा दिखाई देती है इसलिए भी वे शहरों की ओर प्रवास करते है ।
11. गांवों के लोग औद्योगिक केन्द्रों की ओर अधिक आकर्षित होते है क्योंकि उन्हें विश्वास है कि वहां उन्हें कुछ काम जरूर मिल जायेगा ।

28.3 गांवों से शहरों की ओर प्रवासी प्रवृत्ति के गुण

1. इस प्रवासी प्रवृत्ति के कारण, कृषि–भूमि पर पड़ने वाले, बढ़ी हुयी जनसंख्या के कुप्रभाव तथा भार में कमी आती है ।
2. लोगों के जीवन–स्तर में सुधार सम्भव हो जाता है ।
3. ग्रामीणों के आर्थिक सुधार की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है ।
4. श्रमिकों का मानसिक विकास भी होने लगता है ।
5. श्रम की गतिशीलता में वृद्धि सम्भव हो जाती है ।
6. श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि होती जाती है ।
7. शहरों में आने पर भी जब उनका सम्बन्ध गांवों से नहीं टूटता तब यह सम्बन्ध उनके लिए एक प्रकार की सुरक्षा का कार्य करता है ।
8. शहरों में आकर बसने वाले लोगों को, गांवों की तुलना में कुछ विशेष सुविधाएं उपलब्ध होने लगती है जैसे बच्चों की पढ़ाई के अवसर खुल जाते है ।
9. नगर व गांव के जीवन में समन्वय स्थापित होता जाता है जो शहर की ओर आने वाले ग्रामीण लोगों और शहरों में स्थायी रूप से रहने वाले लोगों के लिए लाभदायक है ।

28.4 गांवों से शहरों की ओर प्रवास करने की प्रवृत्ति के दोष व कमियां

गांवों के लोगों को, इस प्रवासी–प्रवृत्ति का आर्थिक व सामाजिक लाभ प्राप्त होने लगता है । वहां उनके अपने गांवों व ग्रामीण जीवन से जुड़े अनेंक कारणों के रहते मोह–भंग न होने के कारण, और समय–समय पर अपने गांव के चक्कर लगाते रहने की स्थायी प्रवृत्ति के कारण उन्हें अनेक कष्टों व दुषरिणामों को भी झेलना पड़ता है । यह इस प्रवासी प्रवृत्ति का सबसे बड़ा दोष है । उसके साथ–साथ इस प्रवासी प्रवृत्ति के अन्य दोष इस प्रकार है–

1. शहर जाकर, गांव के लोग, कुछ अलग–थलग से पड़ जाते है और कुछ अपरिचित से रहते है । उसके कारण, उनका जीवन एकांकी सा हो जाता है ।
2. इस प्रकार के प्रवासी लोगों की कार्यकुशलता भी नहीं बढ़ती क्योंकि उनका गांव से शहर और शहर से गांव आना जाना निरन्तर लगा ही रहता है।
3. **स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव:** भौगोलिक दृष्टि से इन प्रवासी लोगों का स्वास्थ्य इसलिए ठीक नहीं रहता या रह सकता क्योंकि वे पैदा हुए एक अलग जलवायु व वातावरण में । कहां तो गांव की शुद्ध वायु, और खुला जीवन और कहां शहर का दूषित वातावरण । इसीलिए बम्बई, कलकत्ता और कानपुर जैसे औद्योगिक नगरों में नारकीय जीवन के कारण, ये लोग कभी स्वस्थ नहीं रह सकते।
4. **संगठन बनाने मे कमजोर तथा अनिश्चित:** क्योंकि गांवों से शहरों की ओर प्रवास करने वाले लोग शहरों में जाकर अधिकतर मजदूरी करते है जो असंगठित और अव्यवस्थित होती है । और गांव में फसल तैयार हो जाने पर ये लोग फिर गांव लौट आते है । इसलिए, इस प्रकार के लोगों का अपने आर्थिक हितों की रक्षा हेतु कोई श्रमिक संघ भी नहीं बन पाता, न

ही ये अपनी अस्थिर रोजगार–स्थिति के कारण किसी श्रमिक संघ का सदस्य बनना ही पसन्द करते है । इसका सामूहिक फल होना है कमजोर श्रमिक संघ और कमजोर आन्दोलन ।

जनसंख्या विस्फोट (explosion) तथा शहरो में अति प्रवास (implosion) ने गावों व शहरों में सभी जगह समस्याये खड़ी कर दी है । भारत में मात्र केरल में ही rural–urban continuum हैं। दोनों के विकास में कम अन्तर है । शिक्षा स्तर बराबर है । अन्य राज्यों में शहरों में मकानों की कमी, झुगियों व गन्दी बस्तियों का उभरना तथा वहां की महंगाई सभी के लिए समस्या है । प्रशासन की उदासीनता व भ्रष्टाचार से भारत के हर बड़े शहर की हालत खराब है । क्वीन एलिजाबेथ ने तो भारत की राजधानी दिल्ली के गन्दा–प्रदूषित कूड़ों के ढेर का पाकिस्तान की स्वच्छ राजधानी की तुलना में उल्लेख किया । शहरों की ओर प्रवास रोका नहीं जा सकता । साम्यवादी देशों में बगैर इजाजत के शहरों में बसने के लिए जाना संभव न था । नियोजन की विफलता व सार्वभौमिक भ्रष्टाचार ने यह सुनिश्चित किया कि कुछ शहरी हिस्से ही ठीक रहें । शहरों में शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों से आये लोग जुर्म के कार्य भी करते है । गांवों से आये लोग ही सभी प्रकार की निम्न घरेलु व श्रमिक की नौकरियाँ करते है ।

आबादी का एक भाग ऐसा भी है जो सम्पन्न है, जिसका शहर से कोई पूर्व सम्बन्ध है या था । जिसका एक भाग शहरों में पहले से ही रह रहा है या जिसका किन्हीं कारणों से शहरी सम्बन्ध अनिवार्य या अपरिहार्य हो गया है । वह भाग शहरों की ओर गमन, आय, रोजगार प्राप्त करने की अनिवार्यता से ही प्रेरित नहीं होता बल्कि इसलिए भी प्रेरित होता है क्योंकि उनका जीवन दर्शन तथा साधन सुलभता उनके सम्मुख सभ्यता, संस्कृति और उन्नत जीवन का रूप–स्वरूप गांवों में नहीं बल्कि शहरों में रखते है । और अपने बच्चों के भावी विकास पढ़ाई–लिखायी, शिष्ट, सभ्य, और आधुनिक जीवन जीने की तलाश व लालसा तथा सुविधा के लिए वे गांवों से शहरों को इस अर्थ में लगभग स्थायी प्रवास करने को प्राप्त रहते है । चाहें उन्हें समय–समय पर अपने पैतृक घर सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने, शादी–विवाहों में सम्मिलित होने इत्यादि के लिए गांव जाना पड़े । पर स्थायी रूप से वे शहर में पहले तो मकान किराये पर लेकर रहना प्रारम्भ करते है और फिर घिरे–धीरे वहां जमीन देखते है, भवन निर्माण के लिए क्रय करके भवन बनाकर रहने लगते है । और फिर शहर के स्थायी निवासी या नागरिक बन जाते है । उनका पैतृक सम्बन्ध गांवों से रहता है पर उनकी नई पीढ़ी शहर में रहने की अभ्यस्त हो जाती है । ऐसे लोग युगों–युगों से शहर में रहने वाले लोगों की तरह रहन–सहन और स्वाभाविक शहरी जीवन के चाहे प्रतीक व प्रतिबिम्ब न बन पायें पर अपने गांव वालों के सामने तो वे अब शहर वाले हो गए । शहरी ग्रामीण जीवन के पारस्परिक अन्तर्गमन से इस प्रकार की प्रवृत्ति के विकास में यथोचित तथा बड़े पैमाने का सहयोग मिला है ।

गांवों से शहरों की ओर प्रवास करने के लिए प्रेरित और आकर्षित होने की इस प्रवृत्ति के पीछे जहां सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक विकास, इत्यादि कार्य कर रहे है वहां व्यवसायिक या व्यापारिक कारक भी कार्य कर रहे है ।

28.5 ग्रामीण–शहरी जनसंख्या के अन्तर्गमन के प्रभाव

1. इस प्रकार के लोगों ने शहरी जनसंख्या की गहराई व विस्तार में वृद्धि की है ।
2. आवास निर्माण के लिए विशुद्ध रूप से शहर में रहने वाले लोगों द्वारा की गयी मांग में जो वृद्धि हुयी उसके फलस्वरूप नई–नई आवासीय बस्तियां बसी और बस रहीं है । जिससे शहरीकरण और शहरी आवास व्यवस्था का बेहिसाब विस्तार हुआ है वो विस्तार अव्यवस्थित और अनियोजित हुआ है, वहां उस मांग वृद्धि में गांवों से अनेक कारणों से स्थायी प्रवास करने वाली जनसंख्या की मांग का भी एक महत्वपूर्ण प्रतिशत है और रहा है ।
3. उपर्युक्त कारणों से बढ़ रहे शहरीकरण के अनियोजित और मनमानेपन से होने वाले विस्तार के साथ–साथ शहरीकरण की मौलिक और नैसर्गिक कमियाँ भी उतम होती गयी है । इन कमियों और दोषों में प्रमुख है नई कॉलोनियो में सड्कों, नालियों, और परिवहन सुविधाओं और नियमित्तताओं का अभाव, गन्दे पानी के निकास की समस्या, स्वच्छ जलापूर्ति की समस्या, बिजली व प्रकाश की समस्या, इधर–उधर से बिजली लेने, चोरी से बिजली काटने, कच्ची व्यवस्था का सहारा लेने की प्रवृत्ति व समस्या इत्यादि इन कॉलोनियो मे एक आम बात हो जाती है ।
4. अस्वीकृत मानचित्र पर कॉलोनी बसाना, आज के ठेकेदारों और कालोनाइजर्स की मिली भगत का जीता जागता उदाहरण, प्रमाण व नमूना है । बाद में बड़ी रकमें देकर सम्बन्धित अधिकारियों या अधिकरणों से यह बस्तियाँ नियमित करा ली जाती है । परन्तु प्रश्न यह भी है कि शहरों में कार्य सेवा देने वाले ये लोग भी रहने का हक तो रखते है वे भी देश के नागरिक है । आज के शहरी के पूर्वज भी कभी गांव वाले आदिवासी थे ।
5. अनियमित आवास–निर्माण या कॉलोनी स्थापन या स्थायी सम्पत्ति निर्माण व सृजन या भूमि संपति के सृजन ने देश में, विशेषकर शहरों में बहुत बड़े भ्रष्टाचार को जन्म दिया है, काले धन के निर्माण में योगदान दिया है और माफिया गैंग को पैदा किया है ।
6. कॉलोनी व आवासीय बस्ती बसाने के चक्कर में शहरों के किनारे वाली भूमि या बाहरी हद वाली भूमि जिस पर सब्जी उगाने इत्यादि का काम राजस्थान में मुराव इत्यादि जाति के लोग किया करते थे आवास निर्माण के कार्य में आ गयी । गरीब लोगों को थोड़ा बहुत झाँसा देकर इन पूँजीपति कालोनाईजर्स ने भूमि सस्ते में खरीद ली। और फिर महगें दामों में उन्हें प्लाट बनाकर उपभोक्ताओं को बेची ।
7. "अपने घर" की कामना हर एक में होती है । एक तो संयुक्त परिवार के लोग होने के कारण, फिर जनसंख्या में वृद्धि के कारण, इसके साथ–साथ गांवों की ओर से स्थायी रूप से शहरों में बसने के इरादे से प्रवास करने वालें लोगों की संख्या में निरन्तर वृद्धि के कारण शहरों में आवासीय भूमियों और भूखण्डों की मांगों में बेहिसाब वृद्धि हुई है ।
8. इस तरह इस नए शहरीकरण ने नए असन्तुलनों और अव्यवस्था को जन्म दिया है ।
9. भूमियों के दाम तेजी से बढ़े है और बढ़ रहे है । यह मुनाफा गिने–चुने लोगों के पास जा रहा है ।

10. देश के सहकारी आवास अधिनियमों का लाभ जैसे सीलिंग नियमों, और प्रतिबन्धों से छूट, रियायत पंजीकरण की सरलता व सुविधा इत्यादि लेने के उद्देश्य से कुछ लोगों ने सहकारी आवास समितियाँ भी निर्मित कर ली है । देश में इनका जाल सा बिछ गया है ।
11. इस क्रम में अनेक और बड़ी माग में आवासीय समितियाँ तो बनी पर उनमें लाभ कमाने का उद्देश्य प्रमुख हो गया और कल्याण तथा सामुदायिक जीवन जीने का उद्देश्य गौण हो गया। इसका फल यह हुआ कि सहकारी आवारा समितियो के बोर्ड सूचक पर या श्यामपट पर तो लग गए पर निर्माण कार्य बाधित तथा अवरोधित ही रहा । फर्जी कार्य में वृद्धि हुयी। आधुनिक भारतीय शहरीकरण की यह एक प्रमुख बात है ।

28.6 ग्रामीण शहरी जनसंख्या के अन्तर्गगत प्रवास, आवास, विस्थापीकरण, शहरीकरण, के विकास व विस्तार और आवास के लिए नई भूमियों की खोज का एक और पक्ष

औद्योगिक नीति, 1948 तथा 1956 के प्रोत्साहनों तथा प्रावधानों की क्रियान्विति के फलस्वरूप होने वाले औद्योगिक विकास के अन्तर्गत नए अधिक औद्योगिक नगरों, बस्तियों. एस्टेटों की स्थापना जिसके कारण नई आबादी को आवासीय सुविधा देने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र में भवन निर्माण कार्य नई बस्तियों की स्थापना और नए स्वरूप को प्रारम्भ करना :–

यदि स्वतंत्रता के पश्चात विशेषकर 1948 की व 1956 की औद्योगिक नीतियों की क्रियान्विति के फलस्वरूए जहाँ एक ओर औद्योगीकरण गति को प्रोत्साहन मिला, वहाँ दूसरी ओर सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में नए–नए औद्योगिक उपक्रम तथा संस्थान स्थापित होने लगे। उनकी स्थापना शहरों में तो हो नहीं सकती थी । अत : शहर के बाहर नई भूमियाँ देखी गयीं और उन पर इनकों स्थापित किया गया । इनकी स्थापना के साथ–साथ आरम्भ हुआ उन सभी आवासीय व नागरिक सुविधाओं को प्रदान करने का कार्य जो कि इस प्रकार के संस्थानों की स्थापना के साथ न केवल एक अनिवार्य अंग ही था पर परिवर्तनशील लागतों का एक अपरिहार्य प्रावैगिक रूप भी था। फल यह हुआ कि नए नगर स्थापित होने लगे और वे नगर स्वयं में प्रसिद्ध तथा महत्वपूर्ण हो गए । उदाहरण के लिए, स्वतन्त्रता से पहले भिलाई, नेपानगर, राउरकेला, दुर्गापुर का नाम भी लोग नहीं जानते थे क्योंकि यह नगर थे ही नहीं ।

अत: नए औद्योगिक कार्यक्रम व विकास ने शहरीकरण तथा जनसंख्या के प्रवास तथा अन्तर्गमन की एक प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी । प्रत्येक फैक्ट्री का अपने कर्मचारियों के लिए कॉलोनी व आवासीय बस्ती बनाना अनिवार्य हो गया। अन्य सेवाओं, सुविधाओं व परिवहन–सुविधा प्रावधानों को उपलब्ध कराने में अन्य लोगों का जो फैक्ट्री के बाहर के थे और फैक्ट्री के इर्द–गिर्द अपने मकान, दुकान, संस्थान तथा कार्यालय बनाकर बैठे थे, हाथ और कार्य बढ़ने लगा। यह जनसंख्या स्वपरक रूप से अन्य स्थानों, गांवों, छोटे नगरों से इन केन्द्रों की ओर आकर्षित तथा प्रभावित होती गयी । नगर बसने लगे रेलवे स्टेशन तथा बस स्टैण्ड स्थापित होने लगे । लोगों को रोजगार मिलने तथा रोजगार अवसरों का विस्तार हुआ यह सब देश में

नवीन शहरीकरण के लिए अनिवार्यतायें थी । क्योंकि जल्दी में किया गया कोई भी काम व्यवस्थित तथा संतुष्टि देने वाला नहीं होता इसलिए इन नगरों की बस्तियों को विशेषकर उनको जो निजी प्रयासों से लाभ कमाने के लिए स्थापित हुई थी व्यवस्थित नहीं कहा जा सकता । जिसको जहां जमीन मिली मकान व दुकान बनाने लगा क्योंकि लोगों को किराये पर दुकान व मकान की आवश्यकता थी । किरायेदार तथा मकान मालिक दोनों ही इन क्षेत्रों की ओर आकर्षित होने लगे । शहरीकरण का एक नया रूप सामने आया। औद्योगिक बस्तियाँ, फैक्ट्री, कॉलोनी इत्यादि तो संयमित, नियमित व व्यवस्थित थी पर उनके बाहर वाली बस्तियाँ तो अधिकतर अव्यवस्थित थी । नगर तो बसने लगे पर व्यवस्थित नहीं । चण्डीगढ़ जैसा नगर तो भारत में एक ही है ।

28.7 ग्रामीण–शहरी समन्वय के लिए नियोजन (Planning for rural urban integration)

अब यह बात एक निर्विवाद सत्य के रूप में स्वीकार करनी होगी कि अनेकानेक कारको, प्रभावों, आकर्षणों तथा प्रवृत्तियों के फलस्वरूप ग्रामीण व शहरी जनसंख्या] का प्रवास सम्बन्धी अन्तर्गमन होगा ही क्योंकि आर्थिक और औद्योगिक विकास कार्यक्रम में इस प्रकार का अन्तर्गमन स्वत : ही अन्तर्निहित है, इसका अनिवार्य अंग है ।

गांवों के लोगों के प्रधान व्यवसाय कृषि में, तथा शहरी जीवन के प्रमुख सशक्त उद्योग के बीच जब एक अपरिहार्य तथा अनिवार्य सह–सम्बन्ध अवश्यम्भावी तथा पूर्व कल्पित है तो इन व्यवसायों पर निर्भर जनसंख्या में सह–सम्बन्ध तथा अन्तर्गमन तो अवश्यम्भावी तथा पूर्व–कल्पित अपने आप ही हो गया ।

इस प्रक्रिया में एक ओर से दूसरी ओर जनसंख्या का प्रवास होगा ही स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से, यह दूसरी बात है ।

जब यह प्रवास और अन्तर्गमन स्वाभाविक सिद्ध हो गया तो इस जनसंख्या की आवासीय समस्या का समाधान भी स्वयं में एक प्रश्न, एक चुनौती, एक प्रयास, एक अभ्यास, और एक नियोजन भी अनिवार्य तथा अपरिहार्य हो जाता है । इस प्रश्न के दो पहलू है –

(अ) आवास के लिए नई भूमियों व भू–खण्डों के अधिग्रहण के प्रश्न का समाधान विशेषकर उस स्थिति में जिसमें बढ़ता हुआ औद्योगीकरण कृषि भूमि पर ही दबाब बनाए हुए है ।

(ब) सीमित भूमि पर अधिकतम आवासीय सुविधा प्रदान करने के लिए नियोजन । दूसरे शब्दों में ग्रामीण शहरी जनसंख्या के प्रवासी अन्तर्गमन को ध्यान में रखते हुए उसकी आवासीय समस्या के समाधान हेतु उन कड़ियों, सम्बन्धों तथा सह अन्तर्क्रियाओं की खोज करना जिससे अधिकतम आवासीय सुविधा उपलब्ध हो सके जबकि भूमि का कम से कम प्रयोग हो ।

(अ) इस बिन्दु के अन्तर्गत उठाए गए प्रश्न के समाधान के सम्बन्ध में निम्न बातें उल्लेखनीय हैं :– सभी शहरों में कारगर बहुमंजिला भवन बने जिससे कम भूमि लगे तो सिरोपरी सुविधाओं को दूर तक न ले जाना पड़े ।

1. जब सार्वजनिक क्षेत्र या निजी क्षेत्र में किसी नए औद्योगिक संस्थान को स्थापित करने की स्वीकृति दी जाये तब साथ ही साथ उसमें कार्य करने वाली सम्भावी जनसंख्या के लिए आवासीय व्यवस्था करने की बात भी उस सम्पूर्ण प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग बनाया जाये।
2. उस संयंत्र अथवा संस्थान के बाहर अनेक आवासीय, व्यापारिक, व्यवसायिक कारणों से जनसंख्या का जमावड़ा प्रारम्भ होगा और आवासीय भूमि की मांग भी बढ़ेगी । इस मांग की आपूर्ति केवल, निजी क्षेत्र में काम कर रहे कालोनाइजर्स व ठेकेदारों पर ही न छोड़ी जाए, उसके लिए एक राष्ट्रीय औद्योगिक आवास नीति व अधिनियम भी पारित किया जाये तथा नियोजन आयोग की नियोजन प्रक्रिया के दायरे में वह सभी प्रश्न आयें ।
3. उदमतावादी नीति के अन्तर्गत इन क्षेत्रों में संरचनात्मक विकास हेतु एक नियमित तथा जागरूक और प्रावैगिक "विदेशी–विनिमय नीति" के अनुपालन से संरचना सुदृढ़ होगी जिसकी देश को बहुत आवश्यकता है ।
4. आवास के लिए नियोजन के साथ–साथ जहां एक ओर नियोजित बस्तियों को स्थापित करने की बात कही जाये वहां एक सरस व सुगम आवासीय वित्त व्यवस्था की भी स्थापना की जाये । भवन निर्माण के लिए वित्तीय व्यवस्था सरल तो हो ही साथ ही साथ उसकी उत्पादकता तथा उचित प्रयोग की प्रक्रिया तथा सामयिक परीक्षण भी आश्वस्त कर लिया जाये । वित्तीय सुविधा सुपात्रों –को मिले कि पैतरेंबाज कुपात्रों को।
5. भू–खण्ड आवचन एक नियोजित आर्डर के अनुसार लें ।
6. मनमाने ढंग से बनाया गया निर्माण, दण्ड का भागी बनाया जा सके ।
7. आगरे के ख्यालबाग में बनी राधा स्वामी कॉलोनी या चण्डीगढ़ में बनी बस्तियों को आदर्श मानकर, भवनों के मानचित्रों में एकरूपता होने से नगरों का विकास बदसूरत नही लगेगा।
8. इन्दिरा आवास योजना जैसी अनेक अन्य योजनायें भी बनाई जायें पर उनकी क्रियान्विति किसी प्रकार की संदिग्धता के प्रश्न के घेरे में न आ जाये ।
9. नगरीकरण एक लम्बा तथा निरन्तर विकसित होने वाला प्रयास है । इसमें प्रशासन और जनता दोनों की सहभागिता अनिवार्य है ।

(ब) इस बिन्दु के अन्तर्गत आवासीय बस्तियों को जो, प्रवासी जनसंख्या के लिए नगर क्षेत्रों में बनेंगी, एक राष्ट्रीय नियोजित आवास निर्माण योजना और कार्यक्रम के तहत रखा जाना चाहिए । जनसंख्या से सम्बन्धित लगभग सभी विषय प्रावैगिक तथा ज्वलन्त है और सदा रहेंगे । और इसी आधार पर उसके लिए आवास की आवश्यकता की आपूर्ति का प्रश्न भी शाश्वत रूप ज्वलन्त नागरिक तथा प्रावैगिक रहेगा । इस दृष्टि से निम्मलिखित बातें ध्यान में रखी जा सकती है :

1. छोटे और सस्ते पर मजबूत और सामान्य नागरिक सुविधाओं से पूर्ण, आवास बनाये जाये जिनका निर्माण केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, नगर निगम, या नगर महा पालिका और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के संयुक्त वित्तीय प्रयास से ही ।

2. विश्व बैक जैसी वित्तीय संस्थाओं को इस प्रकार की आवासीय बस्तियों के लिए वित्तीय सहायता तथा अनुदान देने को राजी किया जाये ।
3. कर–प्रणाली में इस प्रकार की छूट दीजिये कि नियोजित आवास व्यवस्था के अन्तर्गत आवास बनाने पर ही वह छूट सम्भव हों ।
4. आवास–विकास संघों के कार्य को ज्यादा तीव्र, कारगर, समयबद्ध व पारदर्शी बनाया जाये ।
5. आवासीय बस्तियों में बहुत सा काला धन भी सम्मिलित है । अत: वैयक्तिक लाभ पर अंकुश लगे ।
6. भूमि के दामों का विवेकीकरण हो ।
7. भूमि कम होने पर, पूर्व सुरक्षा के साथ तथा सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधानों की ओर विशेष ध्यान देते हुए बहु–मंजिला मकान बनाये जायें ।
8. बेकार भूमि को आवासीय भूमि बना लिया जाये विशेषकर उस भूमि को जिस पर कुछ पैदावार नहीं होती है ।

28.8 स्व–पाठ अभ्यास अथवा स्व–प्रशिक्षण प्रयोग

1. ग्रामीण–शहरी जनसंख्या प्रवास एवं अन्तर्गमन : –

एक ओर तो सामान्य रूप से रोजगार के अभाव से ग्रस्त व त्रस्त गरीब ग्रामीण जनता शहरों की ओर रोजगार की तलाश में आकृष्ट होती है । फिर दूसरी ओर स्वतंत्रता के पश्चात औद्योगीकरण की तीव्र गति, विकास तथा विस्तार के कारण, नगरीय क्षेत्रों में, रोजगार के अवसर ज्यादा दिखायी देने लगे बजाये गांवों के, इसलिए गांव के लोग इधर और भी तेजी से आकर्षित हुए ।

स्वाभाविक ही था कि बड़े नगरों की ओर इन कारणों तथा नए संदर्भो से ग्रामीण जनसंख्या का प्रवास हो ।

(अ) **प्रश्न:** कुछ ऐसे औद्योगिक नगरों के नाम बताइए जिनकी ओर स्वतन्त्रता से पूर्व भी ग्रामीण लोगों का प्रवास रहा हों । कारण भी ।

(ब) **प्रश्न:** स्वतन्त्रता के बाद औद्योगिक विकास के क्रम में देश में औद्योगिक नगर तथा बस्तियाँ बसना आरम्भ हो गए । ऐसे कुछ औद्योगिक नगरों व बस्तियों के नाम बताइए जहां नए सिरे से ग्रामीण तथा अन्य जनसंख्या प्रवास कर गयी? क्यों ।

2. नई जनसंख्या की आवासीय समस्या :–

नए औद्योगिक केन्द्रों, जनसंख्या के जमावड़े ने आवास की समस्या भी उतम कर दी। शहरों के बाहर, उनकी हदों के आस–पास पड़ी भूमि पर धीरे–धीरे आवासीय बस्तियाँ बसने लगी जो भूमि पहले बेकार समझी जाती थी वह नए संदर्भो व आवश्यकताओं को देखते हुए कारगर सिद्ध होने लगी और उसकी कीमतें बढ़ने लगी । मांग और पूर्ति का सनातन नियम लागू होने लगा। रिकार्डो का लगान सिद्धान्त भी लागू होने लगा ।

(अ) **प्रश्न:** भूमि के क्रय–विक्रय ने लाभ कमाने के लिए खर्चे में इस प्रकार की वृद्धि कर दी कि अनेक प्रकार के असामाजिक लोग, वर्ग व हित उत्पन्न होने लगे । कुछ ऐसे लोगों,

संस्थाओं व वर्गों के नाम बताइए जो इस प्रक्रिया में आवासीय भूमि अपनाने व हड़पने के काम में सक्रिय हो गए है ।

(ब) **प्रश्न:** सामान्य वर्ग के लोगों पर इस कार्य का क्या प्रभाव पड़ रहा है ।

(स) **प्रश्न:** वास्तविक अथवा भवन–गत एवं भूमिगत ज्यादातर के निर्माण में और लेन–देन में काले धन का सृजन किस प्रकार होता है ।

3. इस क्षेत्र में किए जा रहे शासकीय तथा संस्थागत प्रयास : –

अनेक कारणों के प्रभाव स्वरूप उत्पन्न होने वाले शहरीकरण की ओर सरकार का ध्यान भी नीतिगत तरीके से और व्यवस्था या समता–सृजन की दृष्टि से यथोचित रहा है । शहरी आवास की समस्या से निपटने तथा उसे नियन्त्रित, अनुशासित व संयमित तथा संतुलित रखने के उद्देश्य सं केन्द्र में हाउसिंग मंत्रालय है, राज्यों में आवास एवं विकास संघों की स्थापना हुयी है । और जिला स्तर पर प्राधिकरण स्थापित हुए है । सहकारी आवास को प्रोत्साहन दिया गया है । विकास संघ से आवास–निर्माण सम्बन्धी ऋण तथा वित्तीय व्यवस्था सम्भव व सुलभ की गयी है । जीवन बीमा निगम जैसे निगम विस्तृत रूप से बीमा धारकों को क्षण देने लगे है । इस तरह आवास विकास के राभी पहलुओं पर सरकारी, सहकारी, संस्थागत, निजी, सभी प्रकार से विचार हुआ है विस्तार हुआ है, कार्यक्रम चलाए जा रहे है । और आवास निर्माण का कार्य देश भर में, विशेषकर नगरों कें बाहर वाली भूमियों पर अथवा औद्योगीकरण के फलस्वरूप विकसित हो रहे नए नगरों में, नए आवास तीव्र गति से बन रहे है ।

(अ) **प्रश्न:** केन्द्रीय सरकार में गृह–निर्माण व्यवस्था तथा विकास व आवास का कार्य कौन देखता है?

(ब) **प्रश्न:** राज्य स्तर पर नगरीकरण के कारण उत्पन्न शहरी में मकान की आवश्यकता की आपूर्ति सम्बन्धी सभी बातें कौर सी संस्था अधिकारिक रूप से देखती है?

(स) **प्रश्न:** जिला स्तर एवं नगरीय आवास सम्बन्धी मामलों के निस्तारण का कार्य किस संस्था को अधिकाधिक रूप से सौपा गया है?

28.9 सारांश

विकास–कार्य में प्रगति तथा परिवर्तन दोनों ही साथ–साथ चलते है । और पारस्परिक जीवन में प्रावैगिक परिवर्तन विकास की पहली स्पष्ट पहचान है । और यही है विकास की सभ्यता का मूल सेशन जिसका दृष्टव्य बिम्ब है नगर, नगरीय बस्ती या जनसंख्या । तथा आवासीय क्षेत्रों का शहरीकरण की प्रक्रिया में ग्रामीण जनसंख्या का रोजगार प्राप्त करने तथा अच्छा सभ्य व नागरिक जीवन जीने की लालसा । प्रवास, शहरों की ओर एक प्रवृत्ति व प्रक्रिया के रूप में अन्तर्निहित है । उसी को ग्रामीण लोगों की शहरों की ओर गमन करने की प्रवासी प्रवृत्ति कहते है।

इस प्रवृत्ति से प्रभावित जनसंख्या की पहली आवश्यकता है आवास, जो धीरे–धीरे एक समस्या भी बनती जाती है और चुनौती भी । इसका नियोजन जितना दीर्घकालीन दूरदर्शिता पर

आधारित व्यवहारिक तथा वस्तुनिष्ठ होगा । समस्या का समाधान उतना ही शीघ्र सरल तथा स्थायी होगा ।

इस सामाजिक आवश्यकता के दो रूप बन जाते है –

1. सामाजिक आवश्यकता तथा सामाजिक कल्याण कीं आपूर्ति की दृष्टि से सरकार इसे वास्तविक लागत का एक भाग माने ।
2. निजी क्षेत्र फुटकर, भूमिधारक, वैयक्तिक हित इत्यादि लोग, पूजींगत लाभार्जन के लिए उल्टे सीधे सौदों को करके लोगों को विक्रेता कीमत पर भवन–खण्ड बेचे ।

स्वतन्त्रता के पश्चात शहरीकरण के अनेक पहलू प्रस्फुटित हुए है । उद्योगों की स्थापना के साथ औद्योगिक नगरों की जनसंख्या का विस्तार, नई जनसंख्या का औद्योगिक केन्द्रों की ओर रोजगार की खोज में प्रवास करना इत्यादि ।

इस बढ़ती हुई जनसंख्या की आवासीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नियोजित आवास व्यवस्था तथा अनियोजित आवास व्यवस्था दोनो ही अपने–अपने तरीके से आगे बढ़ते रहे है ।

धीरे–धीरे सरकारी प्रयास भी इस नियोजन व ग्रामीण शहरी जनसंख्या समन्वय के लिए भारतीय आवासीय बस्तियों को बसाने की दिशा में, संवैधानिक तथा प्रशासनिक रूप से आगे आयी केन्द्र, राज्य तथा जिला स्तर पर व्यवस्थाएं की गयी । संस्थागत तथा सरकारी सखाओं और संस्थाओं ने इस कार्य में साझेदारी की ।

वित्तीय व्यवस्था के लिए भी अनेक वित्तीय संस्थाओं ने ऋण देना प्रदान किया।

लेकिन समस्या है कि इस समन्वय के नियोजन के लिए, उपलब्ध भूमि का अधिकतम उत्तम प्रयोग कैसे किया जाए तथा उसका नियोजन कैसे सम्भव हो। "सब चलता है" का आचरण व भारी भ्रष्टाचार सम्पूर्ण भारत को ही गरीब व गंदा रखे हुए है ।

इसके लिए सरकारी, सहकारी, संस्थागत और निजी चार प्रकार की धाराओं से आवास प्रवाहित हो और प्रतिस्पर्धात्मक हो ।

28.10 शब्दावली

इस इकाई में प्रमुख प्रयुक्त कुछ मुख्य शब्द इस प्रकार है

1. प्रवासी प्रवृत्ति
2. विकास प्राधिकरण
3. आवासीय–भूमि अधिकतम प्रयोग, समीकरण
4. आवासीय–भूमि तथा जनसंख्या, सह–सम्बन्ध
5. संस्थागत वित्त
6. सामाजिक हित जनहित आवास सुविधा विकास व विस्तार
7. आवासीय सुविधा विस्तार नियोजन
8. ग्रामीण–शहरी जनसंख्या समन्वय

28.11 स्वःशिक्षण के लिए अभ्यास

1. शहरीकरण के विकास व विस्तार में एक या दो कारको व घटकों का ही योगदान नहीं है अपितु अनेक घटक क्रियाशील रहकर शहरीकरण की प्रगति, विस्तार इत्यादि में योगदान देते है । जनसंख्या की वृद्धि इन सभी कारकी में से एक महत्वपूर्ण कारक है ।

(अ) प्रश्न: उन सभी कारकों की विस्तृत विवेचना कीजिए जो शहरीकरण के लिए साधक सिद्ध हुए है । क्या गांवों से शहरों की ओर प्रवास करने वाली जनसंख्या शहरीकरण के विकास अथवा उसकी समस्याओं को बढ़ाने में कोई कारक भूमिका निभाती

2. बढ़ती हुयी जनसंख्या के लिए आवास तो निश्चित रूपं से हीं चाहिए । बढ़ती हुयी जनसंख्या के कारण, शहरीकरण के विस्तार के अर्थो में एक अर्थ यह भी है कि जनसंख्या के जमावड़े के कारण आवास सुविधा की मांग भी बढ़ी हैं । बढ़ती हुयी मांग के कारण पूर्ति प्रक्रिया भी सक्रिय हुई है । पूर्ति प्रक्रिया के सक्रिय होने का अर्थ है नई भूमियों को अधिग्रहीत करके उन पर आवासीय बस्तियों की स्थापना की जाये।

(अ) प्रश्न: शहरीकरण में आवासीय समस्या के निदान से सम्बद्ध महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डालिए।

3. शहरीकरण और उसके साथ संलग्न अथवा संयुक्त रूप से उतम आवासीय सुविधा की मांग इत्यादि प्रश्नों के प्रति सरकार भी उदासीन न रह सकी और धीरे–धीरे इस संदर्भ में सरकारी प्रयास भी सक्रिय तथा कारगर सिद्ध हुए। सरकारी प्रयन्त भी व्यापक है ।

(अ) प्रश्न: सरकार द्वारा नगरीकरण के विकास विस्तार व शहरीकरण के साथ–साथ नगरीय आवासीय मांग में भी वृद्धि हुयी है। सरकार ने इस ओर अनेक कदम उठाए है और संस्थाएं स्थापित की है।

(ब) प्रश्न: कुछ ऐसी सरकारी संस्थागत ओर साथ ही निजी क्षेत्र की संस्थाओं की संक्षिप्त चर्चा कीजिए और बताइए कि इन संस्थाओं ने आवासीय बस्तियों को बसाने तथा उपलब्ध भूमि के अधिकतम प्रयोग करने के मामले में क्या योगदान दिया है।

28.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Sudip Mandal	:	District Planning
2. Crose, M.S.	:	Urban Planning and some Portion of Social Policy
3. Awasthi, R.K.	:	Urban Development and Metro Politics in India
4. नाथूरामका	:	भारतीय अर्थव्यवस्था

इकाई 29

अंचल क्षेत्रीय साधन विकास की योजनाएँ : कृषि जलवायु अवस्थाओं पर आधारित क्षेत्रीय नियोजन : नदी घाटी व जल प्रपात (वाटरशैड) क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य

29.1 प्रस्तावना

29.2 साधन विकास के लिये योजनाएँ

29.2.1 संतुलित क्षेत्रीय विकास

29.2.2 क्षेत्रीय योजनाओं का समन्वय

29.3 क्षेत्रीय नियोजन '

29.3.1 विशेष उद्देशीय नियोजन

29.3.2 क्षेत्र सम्बन्धी दृष्टिकोण

29.4 आयोजना क्षेत्रों का विभाजन

29.4.1 कृषि अवस्थाएँ

29.4.2 जलवायु सम्बन्धी अवस्थाएँ

29.5 नदी घाटी परियोजनाएँ

29.6 वाटर शैड प्रबंधन कार्यक्रम

29.7 सारांश

29.8 निबन्धात्मक प्रश्न

29.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

29.0 उद्देश्य

आर्थिक स्थिरता की वर्तमान स्थिति को दूर करने एवं क्षेत्रों की असंतुलित अर्थव्यवस्था को समन्वित करने में साधन विकास की प्रमुख भूमिका है। यह सत्य है कि किसी भी क्षेत्र के लोगों की भविष्य की संपन्नता व कल्याण, मौखिक सामाजार्थिक व संरचनात्मक परिवर्तनों पर निर्भर करती है जो कृषि व जलवायु सम्बन्धी क्षेत्रीय और अधिक विशिष्टतया क्षेत्रों की नदी घाटी परियोजनाओं व वाटरशैड प्रबंधन पर आधारित क्षेत्रीय नियोजन के द्वारा लाये जाने हैं । साधन विकास की इन योजनाओं का क्षेत्रों पर बहुपक्षीय प्रभाव पड़ता है जैसे प्रति व्यक्ति की आय वृद्धि, राज्य व क्षेत्र की आय में वृद्धि, घरेलू उत्पादित व विकसित साधनों के उपयोग से आय को आसमानता में कमी आदि।

उपलब्ध साधनों के अधीन देश के विभिन्न भागों में संतुलित विकास के लिये हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए और क्षेत्रीय असमानता में कमी करने की समस्या पर

निरन्तर ध्यान दिया जाना चाहिए । संतुलित विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये यह अति आवश्यक है कि लोगों को केवल क्षेत्रीय आर्थिक संरचना को सृदृढ आधार पर बनाने में व अपनी बढ़ी हुई सम्भावनाओं का अनुभव करने के लिये उनकी वास्तविक भूमिका के प्रति सजग बनाया जाये ।

इसी विचार से इस अध्ययन को कुछ उद्देश्यों के अनुसार तैयार किया गया है और जो इसका अध्ययन करेंगे उन्हें इसके निम्न पहलुओं के बारे में जानकारी मिलेगी ।

1. साधन विकास कें लिये बनायी गयी योजनाऐं ।
2. स्थानीय साधनों के ईष्टतम उपयोग के द्वारा संतुलित क्षेत्रीय विकास ।
3. संतुलित विकास के लिये क्षेत्रीय नियोजन
4. कृषि जलवायु अवस्थाओं के आधार पर क्षेत्रों का अभिन्नीकरण ।
5. क्षेत्रीय विकास के केन्द्र बिन्दु के रूप में वृहत–परियोजनाएँ ।
6. नदी घाटी परियोजनाओं व वाटर शेड प्रबंधन के द्वारा क्षेत्रीय विकास ।

29.1 प्रस्तावना

विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के साधन उपलब्ध होते है जिनका उपयोग क्षेत्रों के विकास के लिये किया जा सकता है । एक देश में क्षेत्रों के सर्वागीण विकास के लिये, एक क्षेत्र के उपलब्ध साधनों का उसी क्षेत्र में उपयोग के लिये तथा विभिन्न क्षेत्रों के बीच इन साधनों के स्थानान्तरण के लिये सर्वसम्मत प्रयास आवश्यक होते हैं । इसके लिये साधन विकास की योजनाओं के उचित प्रतिपादन व डिजाइन की आवश्यकता है । देश की नियोजन प्रणाली के द्वारा आर्थिक वृद्धि व विकास की प्रक्रिया में क्षेत्रीय असंतुलनों को दूर करने के लिये इस प्रकार के समन्वय को सम्मिलित करना होगा । क्षेत्रीय विकास के दृष्टिकोण से एक विशेष उद्देश्य से नियोजन भारी महत्व का होना है जो एक क्षेत्र के विकास के लिए कार्यक्रमों के पेकेज उपलब्ध कराने के विशेष उद्देश्य से किया गया है ।

एक क्षेत्र के अभिनीकरण एक नियोजन क्षेत्र के अभिनीकरण की प्रक्रिया को उसके विशेष साधनों, समस्याओं व आवश्यकताओं से निर्देशित होना चाहिए । अधिक महत्वपूर्ण आर्थिक तत्व हैं जो एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र से अलग करते है । हालांकि एक क्षेत्र की कृषि जलवायु सम्बन्धी विशेषताएं भी समान रूप से महत्वपूर्ण होती है । वास्तव में वे धारक जो एक क्षेत्र के साधन विकास को प्रभावित करते है वे है– शुद्ध बोया गया क्षेत्र, दोहरी फसल क्षेत्र व सिंचित क्षेत्र । क्षेत्रक सामुदायिक विकास भी क्षेत्रक विकास का एक महत्वपूर्ण प्रयोग है और ये क्षेत्रक दृष्टिकोण विकास नियोजन को नया महत्व प्रदान करता है । क्षेत्रीय नियोजन का उद्देश्य सहायक आगतों (इन्पुट) की व्यवस्था करके, स्थानीय साधनों का पूर्ण उपयोग करना होता है ।

भारत में विकास नियोजन, क्षेत्रों के क्रमश : व निरन्तर विकास के लिये अपनाया गया है । हमारे देश में विनियोग के विकेन्द्रीकरण के द्वारा क्षेत्रीय विकास का नियोजन अति महत्व का है । एक क्षेत्र के विकास का प्रयास कृषि, जलवायु अवस्थाओं के आधार पर अभित्रित क्षेत्रों को कार्यक्रमों के पेकेज देकर किया जाता है । सिंचित क्षेत्र व जल सुविधाओं के आधार पर हमारे देश के बहुत से क्षेत्रों में नदी घाटी परियोजनाओं को क्रियान्वित किया गया है । हाल में

क्षेत्रक विकास के दृष्टिकोण में एक क्षेत्र की समस्याओं को दूर करने के लिये विभिन्न योजनाओं के समन्वय के रूप में एक परिवर्तन आया है । पिछड़े हुए व कृषि जलवायु के अनुसार प्रतिकूल क्षेत्रों के आर्थिक स्थायीकरण के लिये वाटरशैड क्षेत्रक प्रबंधन के आधार पर विकास योजनाओं का समन्वय व क्रियान्वयन किया जाता है ।

29.2 साधन विकास की योजनाएँ

"साधन" जलवायु व संस्कृति के अलावा प्रमुख कारणों में से एक है जो समाज या एक क्षेत्र के विकास में अग्रणी भूमिका निभाता है । नियोजकों का देश के विभिन्न क्षेत्रों के विकास करने में, एक क्षेत्र में साधनों का विकास करना या साधनों को उपलब्ध कराना, प्रमुख कार्य है। एक देश के विभिन्न क्षेत्र, प्राकृतिक व मानवीय दोनों प्रकार के साधनों के विभिन्न प्रकार व मात्राओं से सम्पन्न होते है । इस क्षेत्र में विकास के लिये इन उपलब्ध साधनों का उपयोगीकरण ध्यान देने का विषय है और साधनों के ईष्टतम उपयोग के लिये योजनाओं का निर्माण व क्रियान्वयन आवश्यक है । स्थानीय वातावरण की प्रकृति व आयाम क्षेत्रीय विकास की योजनाओं के लिये रचना व दिशा निर्देश निर्धारित करता है ।

29.2.1 संतुलित क्षेत्रीय विकास

संतुलित क्षेत्रीय विकास एक क्षेत्र के उपलब्ध साधनों के ईष्टतम उपयोगीकरण की माँग करता है जो फिर साधनों के विवेकपूर्ण उपयोगीकरण की आवश्यकता बतलाती हैं । एक क्षेत्र के उपलब्ध साधनों का उपयोग अधिक उत्पादकता से होना चाहिए ताकि अधिकतम संभव लाभ प्राप्त किया जा सके । इसका तात्पर्य क्षेत्रीय साधनों के अविवेकी उपयोग को सीमित करना है । क्षेत्र की चालू मांग की पूर्ति के लिये इनका उत्पादकता से उपयोग होना चाहिए, और भविष्य की बढ़ी हुई मांगों की पूर्ति के लिये इन्हें बचा कर रखना चाहिए । यह उचित नियोजन से ही संभव है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये साधनों के विकास की योजनाएँ भारी महत्व की हैं । संतुलित क्षेत्रीय विकास निश्चित ही एक आर्थिक मुद्दा नहीं बल्कि सामाजिक व राजनैतिक आवश्यकता का मुददा भी है । अनुकूल क्षेत्रों में जहां आर्थिक विकास व संकेन्द्रण हो चुका है वहां प्रवास की गंभीर सीमाएं हैं । मुख्यतया इसके एक नये जीवन सम्बन्धी वातावरण में सम्बन्ध स्थापित किया जाना है यह माना जाता है कि राष्ट्रीय विकास के वर्तमान स्तर पर पूर्ण संतुलित विकास प्राप्त करना संभव नहीं है, इसलिये आधारभूत उद्देश्य क्षेत्रों के बीच असमानता कम करना होगा। चूंकि क्षेत्र अधिकांशत: ग्रामीण है, इसलिये दृष्टिकोण कृषि विकास, कम से कम अल्पकालीन उद्देश्य होना चाहिए। दूसरी और कृषि विकास की व्यापक योजना आवश्यकतानुसार कुछ उद्योगों पर निर्भर करती है, जो कृषि का आधुनिकीकरण करेंगे ।

29.2.2 क्षेत्रीय योजनाओं का समन्वय

एक व्यापक अर्थ में साधनों के विकास की योजनाओं में एक क्षेत्र के कुछ साधनों के बदले किसी अन्य क्षेत्र के कुछ अन्य साधनों के स्थानान्तरण के सम्बन्ध में निर्णय करना निहित है । यह प्रभावपूर्ण ढंग से विभिन्न क्षेत्रीय योजनाओं के प्रभावशाली समन्वय से प्राप्त किया जा सकता है, जिनका उद्देश्य क्षेत्र का तीव्र विकास करना है । राष्ट्रीय नियोजन प्रणाली

को इस प्रकार के समन्वय को स्वीकार करने में लचीला होना चाहिए ताकि आर्थिक वृद्धि व विकास की प्रक्रिया में क्षेत्रीय असमानताओं को कम किया जा सके ।

नियोजन तभी उपयोगी होता है जब इन योजनाओं को पूरा करने के लिये राजनैतिक साधन होते है । इसके अलावा सहयोग उन परिस्थितियों में अधिक प्रभावशाली होता है जहाँ सहयोगी पक्ष जानते है कि स्वार्थ कहाँ पर निहित है । इसलिए प्रभावशाली राज्यीय नियोजन, प्रभावशाली अन्तर्राज्यीय नियोजन व सहयोग से पूर्ववर्ती होना चाहिए । भारत जनाधिक्य व अधिक पिछड़ेपन सहित है जहां राज्य विविध प्रकार की भाषाओं व सांस्कृतिक समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं । और जहां केन्द्रीय सरकार एक नयनगोचज क्षेत्र पर एक राष्ट्र का निर्माण करने का प्रयास कर रही है वही क्षेत्रीय नियोजन में अन्तर्राज्यीय सहयोग का प्रयोग एक अद्वितीय स्थान रखता है ।

संतुलित क्षेत्रीय विकास की प्राप्ति के लिये प्रत्येक क्षेत्र की दीर्घ–कालीन व अल्पकालीन योजनाओं के समुह को क्षेत्रवार अन्तर्सबन्धित व समन्वित करना होता है । स्वाभाविक है कि, इसके प्रकार की योजनाओं के विकास के लिए नीतियों व कार्यक्रमों को ध्यान में रखना होगा, और उन्हें एक कार्यक्रम में रूपान्तरित करना होगा, ताकि उन्हें क्रियान्वित किया जा सके । इस प्रकार सम्पूर्ण देश को शामिल करती हुई केवल क्षेत्रीय योजनाओं की श्रेणियाँ ही विकास स्तरों में विषमता को दूर करने व भविष्य में विकास दर प्राप्त करने में सहायक हो सकती है ।

29.3 क्षेत्रीय नियोजन

"एक क्षेत्र क्या है" । वास्तव में एक क्षेत्र पर तकनीकी, राजनैतिक व आर्थिक तत्वों को ध्यान में रखकर विचार किया जाना चाहिए । आर्थिक तत्व अधिक महत्वपूर्ण है जो एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र से अलग करते है । आर्थिक क्षेत्र राज्यों के आकार से भी छोटे हो सकते है और ऐसे उदाहरण भी है जहां एक आर्थिक क्षेत्र एक से अधिक राज्यों में फैला होता है । तेलंगाना व रायलसीमा क्षेत्र जो आन्ध्र प्रदेश व उत्तरी बंगाल में आते हैं अपने आप में एक क्षेत्र है । इसी प्रकार अभिन्नता–योग्य अर्थ विकसित क्षेत्र है जो उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों व बिहार के उत्तरी पूर्वी जिलों में फैले हुए है।

29.3.1 विशिष्ट उद्देशीय नियोजन

एक क्षेत्र के विकास के लिये कार्यक्रमों के पेकेज उपलब्ध कराने वाला विशिष्ट उद्देशीय नियोजन क्षेत्रीय विकास के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण होता है । पिछड़े हुए क्षेत्रों के नियोजित विकास कें लिये "बाधित क्षेत्रों को सहायता पहुंचाने के उद्देश्य से किया गया निवेश निम्न लागत के ग्रामीण श्रम एवं स्थानीय उपलब्ध साधनों पर आधारित होना चाहिए" । विभिन्न क्षेत्रों के विकास करने वाले विनियोग के चयन के कई विकल्प (प्रकार) है । इसके अतिरिक्त सड़को व ऊर्जा पूति के विकास के कारण देश का लगभग प्रत्येक क्षेत्र विविध प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के योग्य हो गये द्वे । यह मुख्यतया स्थान सम्बन्धी आयामों से अलग विकास नियोजन के स्वरूप के कारण है ।

सामाजार्थिक समस्याऐं स्थानीय स्तर पर ही स्पष्ट (संयोजित) होती है, और विकास नियोजन व नीतियां भी इसी स्तर पर पृथक हो गयी है । अधिकांश आर्थिक समस्याऐं क्षेत्र

विशिष्ट होती है और वातावरण काफी हद तक इस विशिष्टता ला प्रकृति निर्धारित करता है । इन समस्याओं के समाधान में राष्ट्रीय औसतों के आधार पर बने राष्ट्रीय नियोजन की तुलना में समन्वित रूप में प्रतिपादित उप राष्ट्रीय/क्षेत्रीय स्तर पर नियोजन अधिक प्रभावशाली हो सकता है । निम्न आय, उपभोग, बेरोजगारी निम्न उत्पादकता, वातावरण प्रदूषण, शिक्षा व स्वास्थ्य स्थिति से सम्बन्धित समस्याएँ विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए जन समूह के अधिक विशिष्ट होती है। इसलिए क्षेत्रीय समस्याओं को संयोजित करने क्षेत्रीय मुद्दों के समाधान के लिये उप राष्ट्रीय / क्षेत्रीय नियोजन अधिक प्रभावशाली है । यह निर्धनता व आय विषमता की समस्याओं के संघर्ष में राष्ट्रीय नियोजन का पूरक है, और विभिन्न स्थान सम्बन्धी स्तरों पर अधिक समन्वित व व्यवस्थित रूप में विकास आरम्भ करने के उत्प्रेरक (केटेलिस्ट) के रूप में कार्य करने का उद्देश्य रखता है ।

29.3.2 क्षेत्र सम्बन्धी दृष्टिकोण

क्षेत्रीय दृष्टिकोण विकास नियोजन को नवीन महत्व प्रदान करता है । यह विभिन्न क्षेत्रों की विशिष्ट समस्याओं के समाधान के लिये नियोजन में प्रावधान करना सुविधाजनक बनाता है । यह आर्थिक प्रक्रिया के नवीन प्रक्रिया पर आधारित विनियोग कार्यक्रमों का विकेन्द्रीकरण लाता है ।

क्षेत्रीय विकास नियोजन का उद्देश्य सहकारी आगतों की पूर्ति की व्यवस्था करके स्थानीय साधनों का पूर्ण उपयोगीकरण होना चाहिए । आगतों की पूर्ति से संबन्धित कमियों का पूर्व अनुमान लगाकर उन्हें दूर करने की व्यवस्था की जानी चाहिए ।

क्षेत्रीय विकास नियोजन के उद्देश्य व प्रणालियां समय के साथ परिवर्तित होती है । कृषि के आधूनीकरण पर महत्व उपयोगी होगा क्योंकि यह उर्वरक कारखाने गहरे जल कूप शक्ति जनित जुताई, सेवा सुविधाओं, विपणन प्रणाली व कीमत निर्धारण नीति की स्थापना को जोड़ती है । सुपरिभाषित क्षेत्रों के रूप में संतुलित क्षेत्रीय विकास योजनाएं, समायोजन व संशोधनों के द्वारा अल्प व दीर्ध कालीन क्रियान्वयन के लिये लचीला दीर्घकालीन योजनाओं की प्रकृति की होनी चाहिए । क्षेत्रीय नियोजन व विकास की सफलता काफी मात्रा में अन्तर्राज्यीय समन्वित नियोजन पर निर्भर करती है ।

29.4 आयोजना क्षेत्रों का विभाजन

आयोजना क्षेत्र का अभिनीकरण इसके विशेष साधनों समस्याओं व आवश्यकताओं की समरूपता से निर्देशित हो सकता है । इसके आकार का निर्धारण इसकी विकास की संभावनाओं से किया जा सकती है । एक क्षेत्र की सघन्नता एक भाग से दूसरे भाग के बीच उत्पादन के आगतों के बीच गतिशीलता की मान्यता रखती है । जब एक परियोजना क्षेत्र सुपरिभाषित सघन क्षेत्र तक सीमित है तो, इसमें पाये जाने वाले साधनों का श्रेष्ठतम संभव उपयोग किया जाना चाहिए । साधनों के अनावश्यक यातायात के रूप में बहुत कम होना चाहिए । नियोजन के निर्धारण के मानदंड निम्न बिन्दुओं तक घट कर रह जाते है–

1. समाजार्थिक विशेषताओं की विशिष्टता ।
2. एक क्षेत्र की सीमा स्वयं पर्याप्ति व सुस्थिर विकास की मान्यता होगी ।

3. घनता (Compectness) का निर्धारण आर्थिक क्रियाओं के समूह से होगा ।

आयोजन क्षेत्र के आलेखन के सूचक प्राकृतिक साधनों के स्वस्थ, जनसंख्या सम्बन्धी स्वरूप जनसंख्या का घनत्व, प्रति व्यक्ति आय आदि होंगे । एक क्षेत्र की अन्य क्षेत्रों से विशेष प्राकृतिक साधनों की प्रधानता व इसके उपयोग की सीमा से की जायेगी, जो अन्य क्षेत्रों में उपयोगीकरण के स्तर की तुलना में होगी । इसी प्रकार एक क्षेत्र की विशिष्ट जनांकीय विशेषताएं उस क्षेत्र के विकास की विशेष सांस्कृतिक समस्याओं को प्रमाणित करेगी । यदि किसी क्षेत्र की प्रति व्यक्ति आय राज्य की औसत आय या क्षेत्रीय औसत से बहुत कम है तो, यही क्षेत्र को अभिन्नता करेंगी ।

29.4.1 कृषि सम्बन्धी अवस्थाएँ

क्षेत्रीयकरण अर्थात किसी राजनैतिक उद्देश्य के लिये राष्ट्र के विवेकपूर्ण विभाजन का महत्वपूर्ण पहलू इसकी क्रियावार विशेषताएं है । बहुत सी अर्थव्यवस्थाएं अपनी आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में अपनी विशषताओ से कृषि अर्थव्यवस्थाएं थी । अर्ध निकसित व विकासशील अर्थव्यवरथाएं प्रधानतया कृषि (खेती) अर्थव्यवस्थाएं थी । यह मुख्यतया भूमि व जल संसाधनों की उपलब्धि व उनकी संभावनाएं है । कृषि व सिंचाई सुविधाओं सहित क्षेत्रों का सीमांकन किया जाता है औंर इन क्षेत्रों के नियोजित विकास के लिये प्रयास नदी घाटी परियोजनाओं व बहु उद्देशीय परियोजनाओं कं क्रियान्वयन के द्वारा किये जातै हैं । तत्व जो एक क्षेत्र के साधन विकास को प्रभावित करते है वे बोया हुआ शुद्ध स्रोत्र, दोहरी फसल के क्षेत्र, सिंचित क्षेत्र, एक बार से अधिक सिंचित क्षेत्र, फसल स्वरूप, कृषि उत्पादकता (फसलानुसार व कुल दोनों), विभिन्न प्रकार के श्रम की मजदूरी की दरें आदि । इस प्रकार क्षेत्रीयकरण भूमि व जल संसाधन संपन्नता पर आधारित होता है और क्षेत्रीय नियोजन कृषि व सिंचाई से सम्बन्धित साधनों के दक्ष प्रबंधन व विकास का उद्देश्य रखता है ।

सामुदायिक विकास क्षेत्रकीय विकास का एक प्रयोग मात्र हैं । क्योंकि यह स्थानीय साधनों को विशेष महत्व देता है । यह क्षेत्र में सामाजिक उपरिव्यय (Over head) के निर्माण के लिए साधनों के एकत्रीकरण में मुख्य भूमिका निभा सकता है । यह आर्थिक परियोजना व स्थानीय लोगों के बीच एक कड़ी है, और सामूहिक क्रिया में लाभकारी परिणाम लाता है । सामुदायिक विकास कार्यक्रम में क्षेत्रकीय दृष्टिकोण अन्तर्निहित है । कृषि व सिंचाई परियोजनाओ के स्थान कृषि विकास के केन्द्रों के रूप में कार्य करते है । और वे वैज्ञानिक उत्पादन व सभ्य जीवन के सभी आवश्यक तत्वों को क्षेत्र की पहुँच के अन्दर लाते है । वे निकटवर्ती क्षेत्रों में सामुदायिक परिसंपत्ति के निर्माण में योगदान दे सकते है ।

29.4.2 जलवायु सम्बन्धी अवस्थाएँ

साधन विकास के विपरीत, साधनों की न्यूनता, अधिक विशेषतया उपजाऊ भूमि और जल संसाधनों की न्यूनता भी क्षेत्रीयकरण का आधार होती है । दूसरे शब्दों में कृषि की समस्याएं क्षेत्रों के बीच समानताएं दर्शाती है । क्षेत्रों की प्रतिकूल स्थिति मानसून आकर्षित करने में बाधक होती है और इनमें वर्षा की कमी होती है । उदाहरणार्थ, राजस्थान में जैसलमेर जिले,

आन्ध्र प्रदेश में अनन्तपुर जिले, महाराष्ट्र में अहमदनगर जिले, और तमिलनाडू में रामनाथापुरम में बहुत कम वर्षा होती है । क्षेत्रों में होने वाली वर्षा के आधार पर उनका वर्गीकरण सूखे क्षेत्रों में जहां वार्षिक वर्षा 375 मिली मीटर तक होती है, और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में जहां वार्षिक वर्षा 375 से 750 मिलीमीटर होती है, में किया जाता है ।

सूखे की स्थिति समय के साथ विकसित होती है जब एक क्षेत्र में मिट्टी की नमी और वाष्पीकरण के बीच गम्भीर असंतुलन पैदा होता है । वर्षा, तापक्रम, हवा, वाष्पीकरण मिट्टी की विशेषता व दशा, और फसल, विकास को प्रभावित करती है । इन क्षेत्रों में फसल स्वरूप, प्रतिबंधित होता है, प्रति हेक्टेअर उपज कम होती है उत्पादन व उत्पादकता निम्न रहती है, और कृषि अस्थिर होती है ।

एक क्षेत्र कीं प्रतिकूल जलवायु अवस्थाएं उस क्षेत्र की कृषि व उद्योग के विकास को बाधित करती है इन क्षेत्रों में जमीन के अन्दर जल स्त्रोतों के समाप्त होने से इन क्षेत्रों में चारे की कमी हो जाती है, जो डेयरी व भेड़ विकास क्रियाओं को प्रभावित करती है । कृषि व इससे सम्बन्धित क्रियाओं की निम्न स्थिति का परिणाम निम्न प्रति व्यक्ति आय व निम्न क्षेत्रीय आय होता है । क्षेत्रों के बीच इन विषमताओं को दूर करने के लिये कई क्षेत्र विशिष्ट व क्षेत्र लाभोंन्मुखी कार्यक्रम क्रियान्वित किये गये हैं । हाल ही में इन कार्यक्रमों से एक साथ लाभ उठाने के लिये इन सभी कार्यक्रमों के बीच समन्वय स्थापित करने के प्रयास किये गये थे । वाटरशैड विकास के द्वारा विशिष्ट क्षेत्रों में कृषि से सम्बन्धित सभी कार्यक्रमों के बीच समन्वय करना देश के क्षेत्रों के विकास की दिशा में एक कदम है ।

29.5 नदी घाटी परियोजनाएं

आर्थिक विकास के स्तर में क्षेत्रीय विषमताओं में सुधार क्रमानुसार प्रक्रिया है, और यह उन क्षेत्रों में प्रारम्भ हुई थी जिनमें विस्तार के लिये संभाव्य साधन उपलब्ध है, मगर जिनका दोहन नहीं किया जा सका है । अधिकांश स्थितियों में इसका अर्थ कृषि–विकास के लिये सिंचाई सुविधाओं का विस्तार व औद्योगिक विकास के लिये ऊर्जा व यातायात सुविधाओं का पर्याप्त प्रावधान करना है। इसके लिये एक बड़ी संख्या में सिंचाई व ऊर्जा परियोजनाएं सारे देश में स्थापित की जाती है । इनमें सर्वाधिक महत्व की नदी घाटी परियोजनाएं व बहु–उद्देशीय परियोजनाए है । ये उन क्षेत्रों में स्थित है जिनमें जन शक्ति व कच्चे माल के रूप में काफी साधन पाये जाते है । इन क्षेत्रों के भविष्य में विकास केन्द्रों के रूप में उभारने की संभावना होती है ।

नदी–घाटी परियोजनाओं व कार्यक्रमों का प्रतिपादन सभी राज्यों में कुछ क्षेत्रों को गहन विकास के अन्तर्गत लाना है । कृषि में अतिरिक्त उत्पादन इन कार्यक्रमों का उदेश्य है, और सिचाई सुविधाओं के कारण इनसे काफी परिणाम प्राप्त करने के अतिरिक्त प्रयास किये जाते है। इन कार्यक्रमों कों नई विधियों, प्रणालियों और काफी मात्रा में प्रयोगों का समर्थन होता है । जिन क्षेत्रों में नदी–घाटी परियोजनाओं के लिये अनुकूलता उपयुक्त नही है, वहां एक बड़े पैमाने पर लघु सिंचाई परियोजनाओं जैसे तालाब, कुएँ, नहरे और जहा भी संभव है, वहां जलकुप व लिफ्ट सिंचाई के विकास के लिये प्रबन्ध किये गये है ।

विकास के लाभ देश के प्रत्येक भाग में विभिन्न परियोजनाओं के द्वारा पहुंचाये जाते हैं । नदी घाटी परियोजनाऐ बहुत से राज्यों की योजनाओं के सर्वाधिक महत्व के भाग होते हैं और बहुउद्देशीय परियोजनाओं जैसे हीराकूंड, कोसी, चम्बल, रिहन्द, दामोदर घाटी, भाकरा नंगल, कोयना व नागार्जुन सागर आदि में भारी विनियोग किये गये है। ये व अन्य परियोजनाएं देश के विशाल क्षेत्रों के लिये आवश्यक थी, जिनमें से कुछ में कमियाँ या बेरोजगारी या जो अन्यथा निर्धनता पूर्वक विकसित थीं । कृषि विकास, शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से सुदूर क्षेत्रों मे भी विकास के लाभ पहुंचाये गये है । कम विकसित क्षेत्रों, जैसे विदर्भ, मारथवाड़ा व उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में अतिरिक्त कार्यक्रम अपनाये गये है । इनमें बहुउद्देशीय विकास खण्ड और विनर्तित (विसकनेवाली) खेती की प्रणाली में सुधार के प्रयास शामिल है ।

नदी घाटी परियोजनाएं क्षेत्रीय विकास की केन्द्र बिन्दु होती है । यदि कुछ उनसे सम्बन्धिन व पूरक कार्यक्रम अपनाये जायें तो इनका लाभ अधिकांशत: उसी क्षेत्र की जनसंख्या को मिलता है जहां वे स्थित होते है । इसलिये प्रत्येक बड़ी परियोजना के आयोजन की एक आवश्यक विशेषता के रूप में उन्हें सम्पूर्ण क्षेत्र के समन्वित विकास के लिये केन्द्र बिन्दु मानते हैं । उदाहरणार्थ नवीन सिंचाई परियोजनाओं के इर्द गिर्द बहुत सी योजनाएं प्रारम्भ की जाती हैं, जिनका उद्देश्य सुधरी हुई कृषि, उद्यान विद्या, बाजार केन्द्रों व उनत प्रक्रिया और अन्य उद्योगों का विकास करना है ।

नदी घाटी परियोजनाओं से निरन्तर लाभ प्राप्त करने के लिये नदियों के जल पोषक क्षेत्रों का वनीकरण एवं भूमि उपयोग से सम्बन्धित उपाय आवश्यक है । ये कदम नदी घाटी परियोजनाओं के भंडारण जलाधार के जीवन को दीर्घ कालिक करने में, छोटे सिंचाई तालाबों की प्रभावपूर्ण कार्य प्रणाली, बाढ़ों को कम करने, भू–स्खलन को रोकने और इमारती लकड़ी व ईधन की पूर्ति बढ़ाने में सहायक होतें है । नदी घाटी परियोजनाओं के जल पोषक क्षेत्रों में भू–संरक्षण के उपाय भी कृषि के लिये भारी महत्व के होते है ।

29.6 वाटर शैड प्रबंधन कार्यक्रम

जैसे–जैसे आर्थिक विकास होता हें और नदी घाटी परियोजनाएं व अन्य परियोजनाएं प्रारम्भ की जाती है तो वाटरशैड वेल के अधीन साधनों की संरक्षण प्रक्रिया, विकास व प्रबंधन को काफी महत्व दिया जाता है । वाटरशैड प्रबंधन कार्यक्रम प्रत्येक गांव के 500 हैक्टेअर क्षेत्र में क्रियान्वित किया जाता हें । कृषि साधनों के संतुलित विकास के लिये आवश्यक है कि जन भागीदारी के आधार पर वृहद स्तर पर भू–संरक्षण व सूखी खेती के कार्य आरम्भ किये जायें पर्वतीय परिधि रेखा बांध (Contour bunding) के अलावा जिन कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, वे वर्षा के जल का संरक्षण, बेकार घास का नियंत्रण, पटीनुमा खेनी (फलस) और हरी खाद सहित जैविक खाद का समझदारी से उपयोग आदि है ।

वाटरशैड विकास कार्यक्रम भारी विनियोग के कारण देश के सूखा व अकाल संभावित जिलों के एक बड़ी संख्या के गांवों में फैले होंगे । सरकारी विभागों के द्वारा वाटरशैड कार्यक्रमों का क्रियान्वयन साथ ही गैर–सरकारी संस्थाओं, अर्थ–सरकारी संस्थाओं व निजी उधमों से भी

सहायता प्राप्त करता है जो इसके पूरक के रूप में कार्य करते है । जिला परिषद–जिला ग्रामीण विकास ऐजेन्सियाँ भी जैसी भी स्थिति हो जिला स्तर पर इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिये उत्तरदायी होती है । वाटरशैड कार्यक्रमों का उद्देश्य, ग्रामीण समुदाय का विकास करना है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वाटरशैड पर निर्भर है । इस उद्देश्य की प्राप्ति वाटरशैड के प्राकृतिक साधनों जैसे भूमि, जल, पौध संपदा के ईष्टतम उपयोग से हो सकती है, जो सूखे के प्रतिकूल प्रभावों को दूर करेगी और भविष्य के प्राकृतिक वातावरण (Ecological) में गिरावट व अन्य आर्थिक साधनों का विकास करना भी है ताकि बचत व आय वृद्धिजनितक्रियाओं को प्रोत्साहित किया जा सके ।

सूखा संभावित क्षेत्रकीय कार्यक्रम व मरु विकास कार्यक्रमों ने सन 1987 में वाटरशैड दृष्टिकोण अपनाया और सन 1989 में समन्वित वाटरशैड विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था । वर्तमान में क्षेत्र विशिष्ट व क्षेत्र लाभोमुखी कार्यक्रम वाटरशैड परियोजनाओं के अन्तर्गत आते है । दूसरे शब्दों में कृषि विकास क्रियाएं जैसे भू–संरक्षण, अवरोधक बाँध, छोटे सिंचाई कार्य, शुष्क भूमि खेती क्रियाएं, वनीकरण योजनाएं व लाभोमुखी संबंधित क्रियाएं जैसे डेयरी व भेड विकास क्रियाओं सहित पशुपालन क्रियाओ को क्षेत्र की वाटरशैड सीमा में प्रोत्साहित किया जाता है ।

वाटरशैड विकास योजना क्षेत्र की सिंचाई की समस्याओं को ध्यान में रखती है, जैसे सामान्य संसाधन, आधारभूत संरचनात्मक विनियोग जैसे अनाज काटने की व संग्रहण (Harvesting) प्रणालियाँ, एवं कार्य सम्बन्धी क्रियाओं का समग्र (व्यापक) प्रबंधन आदि । यह योजना मापने योग्य कार्य जैसे मैदानी बांधों की मिट्टी का कार्य नाला बांध परिचालन, तालाब अवरोधक बांध, विभिन्न प्रकार के वृक्षों सहित और अधिक भूमि को स्थायी तौर पर इसके अर्न्तगत लाने के लिये पौघरौपड कार्यक्रम, भूमि उपयोग का मापने योग्य मिश्रण (मिक्स) जो न्यूज भूमि व जल संसाधनों का ईष्टतम सुस्थिर स्तरों तक उपयोग करता हो ।

29.7 सारांश

उपलब्ध साधनों के अधीन क्षेत्रीय विषमता कम करने के लिये देश के विभिन्न भागों में संतुलित विकास के लिये प्रत्येक संभव प्रयास किया जाना चाहिए । दूसरे शब्दों में एक क्षेत्र में इन साधनों को उसी क्षेत्र में उपयोगीकरण के लिये तथा क्षेंत्रों के बीच इनके स्थानान्तरण के लिये एक सर्वसम्मत प्रयास किया जाना आवश्यक है । इसके लिये एक विशेष उद्देश्य से नियोजन जो एक क्षेत्र के विकास के लिये कार्यक्रमों का पैकेज दे, भारी महत्व का हो सकता है। क्षेत्रों का अभिन्नीकरण उनके विशेष साधनों, समस्याओं व आवश्यकताओं के आधार पर हो सकता है । स्थानीय वातावरण की प्रकृति व आयाम क्षेत्रीय विकास की योजनाओं की संरचना व दिशा निर्धारित करते है ।

उपलब्ध व अदोहित स्थानीय साधनों का उपयोग चालू मांग की पूर्ति के लिये उत्पादकता से करना होता है, और भविष्य की बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उन्हें रक्षित भी रखा जाता है । वह साधन विकास की योजनाओं की आवश्यकता को महत्व देता है । इन योजनाओं में साधनों के स्थानान्तरण से संबंधित निर्णय भी चिन्हित होंने चाहिए, जिन्हें

क्षेत्रों के तीव्र विकास के उद्देश्य की क्षेत्रीय योजनाओं के प्रभावी समन्वय से प्राप्त किया जा सकता है । सामाजिक समस्याओं को स्थानीय स्तर पर संयोजित किया जाता है और विकास योजनाएं व नीतियां भी उसी स्तर पर कार्यशील होती हैं । क्षेत्रीय दृष्टिकोण विभिन्न क्षेत्रों की विशिष्ट समस्याओं के अनुकूल नियोजन अपनाना सुविधाजनक बनाता है । कृषि एवं सिचाई सुविधाओं वाले क्षेत्रों की सीमा का निर्धारण किया जाता है और नदी–घाटी परियोजनाओं व बहुउद्देशीय परियोजनाओं के द्वारा इन क्षेत्रों के नियोजित विकास के प्रयास किये जाते है । कृषि में अतिरिक्त उत्पादन इन परियोजनाओं का उद्देश्य होता है । नदी घाटी परियोजनाएं विकास के केन्द्र बिन्दु की तरह कार्य करती है, और इन परियोजनाओं के लाभ अधिकांशत: उस जनसंख्या को प्राप्त होते है जिनमें वे स्थित होती है, जहां ये स्थापित होती है । वे लघु सिंचाई तालाबों के प्रभावी कार्यान्वयन बाढ़ों का प्रभाव कम करने, भू क्षरण को रोकने व भूमि की उर्वरता मे सुधार लाने में सहायक होते है ।

प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों के आधार पर क्षेत्र अभित्रित किए जाते हैं जहां वर्षा कम होती है और जल संरक्षण संसाधन न्यून है । इन क्षेत्रों में सुस्थिर कृषि क्रियाओं के लिये वाटरशैड प्रबंधन कार्यक्रम क्रियान्वित किये जाते हैं, इनमें कई प्रकार के कार्य शामिल होते हैं जैसे भू–संरक्षण, अवरोधक बांध, वर्षा जल सुरक्षा कार्य, लघु स्त्रोत जैसे तालाबों व बांधों के रूप में सिंचाई के साधनों का विकास आदि । इसके अतिरिक्त रोजगार के अवसर एवं आय अर्जन के लिये कई लाभोन्मुखी योजनाएं संबन्धित क्रियाओं जैसे, डेयरी व भेड विकास के रूप में अपनायी जाती है । यह सभी कदम देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच विषमताएं कम करने में सहायक होते है ।

29.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक विकासशील अर्थव्यवस्था में साधन विकास की योजनाएं क्यों आवश्यक होती है?
2. संतुलित क्षेत्रीय विकास की योजनाओं को सुदृढ़ बनाने के विशिष्ट प्रयासों की रूपरेखा दीजिये।
3. आय विकास की योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिये क्षेत्रों को किस प्रकार अभिन्नित करते हो ?
4. क्षेत्रीय विकास की योजनाओं के स्वरूप के लिये कृषि–जलवायु संबंधी अवस्थाओं की भूमिका का परीक्षण कीजिये।
5. "नदी घाटी परियोजनाएं जन जल संपन्न व संभाव्य क्षेत्रों के विकास के साधन है।" समालोचना कीजिये।
6. सूखा व अकाल क्षेत्रों में विकास प्रोत्साहित करने में वाटरशैड विकास योजनाओं के प्रभाव का मूल्यांकन कीजिये।

29.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Mahesh Chand and V.K Puri: Regional Planning in India
2. Hirschman, A.O.: The Stretage of Economic Development
3. रमेश चन्द्र बंसल : भारत का भूगोल

4. T.C. Sharma and O. Coutinho: Economic and Commercial Geography of India

इकाई 30
जिला स्तर का विकेन्द्रित नियोजन

30.0 उद्देश्य
30.1 प्रस्तावना
30.2 परिभाषा
30.3 जिला नियोजन :
30.4 जिला नियोजन तथा growth foci पंचायत राज
30.5 जिला नियोजन व परियोजना नियोजन – नगर नियोजन
30.6 सारांश
30.7 शब्दावली
30.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

30.0 उद्देश्य

राष्ट्रीय नियोजन "ऊपर से नीचे की ओर" का नियोजन होता है इसमें यह विश्वास निहित रहता है कि बड़े कार्य, बड़े निवेश व बड़ी परियोजनाओं के सुप्रंभाव जब समूर्ण देश को मिलते है तो नीचे तक भी जाते है (percolation effect) परन्तु जब भारत में गरीबी व बेरोजगारी बढ़ती रही व ग्रामीण विकास, स्थानीय जरुरतों के अनुसार नहीं हुआ तो "नीचे से ऊपर की ओर" नियोजन की जरुरत को माना। इस अध्याय में हम जिला नियोजन का अर्थ, उसका राष्ट्रीय, राज्यीय, अंचलक्षेत्रीय व बहुस्तरीय नियोजन से समन्वय का अध्ययन करेंगे ।

इसके अतिरिक्त उसके लिए आवश्यक कदम उसका पंचायत राज से समायोजन उसके उपयुक्त परियोजना नियोजन उसके अन्तर्गत छोटे नगरों का नियोजन व सीमायें अध्ययन करेंगे:

30.1 प्रस्तावना

जिला नियोजन नया नहीं है वह चर्चा/अध्यंयन का विषय इसलिए है कि क अभी भी Pro–to–type या वांछित रूप में नहीं है ।

द्वितीय योजना में ही "ब्लाक डेवेलणेन्ट आफीसर्स नियुक्त हुए थे तथा उसके साथ–साथ "एफ्लेबान आफिसर्स" भी नियुक्त हुए थे 1952 का कम्यूनिटी डेवेलप्मेंट कार्यक्रम जिला विकासोन्मुख था ।

"समस्या यह है कि राज्यीय योजना को जिलों में तोड़ते रहे है ऊपर की योजना जिलों में टूटती है जिलों की योजना बन कर राज्य की योजना नहीं बनती "

"दूसरी समस्या है साधनों की साधन राष्ट्र से, व राज्य से जिले में आते हैं अत: उनकी योजनाओं को पूरा करना ही जिला नियोजन का दायित्व बनता है।

"तीसरी समस्या यह है कि जिला स्तर पर नियोजक नहीं है वे साधन नहीं जुटा सकते तथा लाभ लागत अनुमान या आदान–प्रदान सम्बन्ध नहीं समझते।

30.2 परिभाषा

जिला नियोजन Multi–Level Planning के जिला नियोजन के अनेक स्तर होते है तदनुसार नियोजन तब होता है परन्तु सभी स्तरों (Spatial levels)तथा क्षेत्रों के नियोजन में समन्वय व सहयोग होता है प्रतियोगिता नहीं (Territorial and sectoral planning criss–cross in intergrated) अंचल क्षेत्रीय नियोजन (regional planning) उस समय Multi–level बहुस्तरीय बनता है जब उसमें समन्वय हो निम्न स्तरीय नियोजन के लक्ष्य राष्ट्रव्यापी नहीं होते अगर एक बहुत बड़ी सिंचाई–बॉध योजना होती है तो वह होगी तो किसी जिले में, रेलवे प्रणाली जिला मे निकलती है परन्तु वे जिला नियोजन के भाग नहीं होते । Multi level नियोजन में स्वतन्त्रता होती है अलगाव ही राष्ट्र के अन्दर राष्ट्र नहीं बन सकते है क्यूँकि खड़ी (vertical) तथा आड़ी (horizontal) कडियाँ (linkages) होती हैं । परन्तु जिला स्तर पर autonomy व autarky (स्वायतता व पूर्ण आत्मनिर्भरता कि बाहर से व्यापार ही न हो) नहीं होती ।

जिला नियोजन में जिले के संसाधनों तथा जिले की जनशक्ति के अनुकूलतम प्रयोग के प्रमुख उद्देश्य रहते है । जिला नियोजन में न्यूनतम आवश्यकता पूर्ति तथा गरीबी निवारण की location specific नीतियाँ लागू करना होता है ।

"District Planning is not single activity planning; it Is multi–department and all activety planning. How–Ever, it will not be a bad idea if in certain districts at solves on problem completely in five years and makes that districe cynosure of all eyes."

जिला नियोजन एक गतिविधि कार्य सम्पादन का नियोजन नहीं है, यह मानते है वह बहु–विभागीय व बहुगतिविधियों का नियोजन है । तजुर्बे के आधार पर अगर कोई एक समस्या का पूर्ण निराकरण पाँच वर्षों में करता है कि सभी की नजरें उस जिले की ओर उठें, तो यह कोई गलत विचार नहीं होगा कुछ अति साफ–सुथरे नियोजित गांव व कस्बे इसमें हो सकते है ।

अपने आप ये छोटे कस्बे व छोटे शहर गांवों के लिए विकास के modal points बन जायेंगे । संसाधनों का प्रश्न बड़ा हें केन्द्रीय व राज्यीय नियोजन का जो भाग जिले को मिल रहा है वह प्रयोग करने के बाद स्व–साधन तो मात्र एक कार्य के लिए जुटाये जा सकते हों, बशर्ते कि फल प्रत्यक्ष रूप से सामने हो । सभी विभागों तथा अस्थायी कार्यक्रमों का धन जनता–जनप्रतिनिधि व सर्वोच्च व्यक्तियों की स्वीकृति से ही यह सम्भव है यह चिन्तन अलग है परन्तु अगर सभी लोग एक सा सोचें तो समझो कोई नही सोच रहा है एक सा सोचने के लिए दूसरा व्यक्ति गैर जरुरी है कही तो विलग कार्य करें ।

इसके स्तर हैं	जिला नियोजन कमेटी, ब्लॉक नियोजन कमेटी, ग्राम पंचायतें जो 20–30 गाँवों का प्रतिनिधित्व करें ।

हितग्राही	1. कृषक 4. हुनरमंद 7. हरिजन	2. छोटे कृषक 5. भूमिहीन श्रमिक 8. आदिवासी	3. सीमान्त कृषक 6. द्वारक श्रमिक 9. पिछड़े वर्ग
	10. सभी वर्गो के गरीब।		
सेल	1. कृषि	2. हार्टिकलचर	3. मवेशीपालन
	4. छोटे उद्योग	5. कुटीर उद्योग	6. सिंचाई
	7. स्वास्थ्य	8. शिक्षा	9. न्यूनतम आवश्यकताऐं
	10. प्रोजेक्ट		
फिसकल बेस साधन	सब कुछ दान व अनुदान पर नहीं चल सकता, स्वसाधन महत्वपूर्ण है वे सभी अतिरिक्त वास्तविक उत्पादन व उत्पादकता से आयेंगे विकेद्रीकरण की मांग व्यय में और आय की मांग केन्द्र से यह नहीं चलेगा । वह राजनीति जिसमें विकास का श्रेय स्वयं लें तथा परेशानी का जिम्मेदार केन्द्र को माने ठीक नहीं।		
डेरा बेस तथा कार्यक्रम की समय सीमायें	आकडों के आधार पर भौतिक व मौलिक लक्ष्यों को समयबद्ध रूप से प्राप्त करना होगा अभी जिला राजनीतिज्ञ 50 साल में मात्र पीने के पानी का इन्तजाम नहीं कर पायें ।		

30.3 जिला नियोजन व विकेन्द्रीकृत नियोजन: जूरुरतें /कदम

विकेन्द्रीकृत नियोजन इसलिए जरुरी होता है कि केन्द्रीय नियोजन में

(i) आंचलिक संसाधनों का ज्ञान नहीं होता

(ii) आंचलिक गरीबों का निवारण नही होता तथा

(iii) आंचलिक समस्याओं का निवारण नहीं होता तथा

(iv) आंचलिक लोगों का सहयोग बड़ी योजनाओं में संभव नहीं होता, तथा बड़ी योजनाओं के लाभ छोटे लोगों तक नही पहुंचते ।

उपर्युक्त के लिए अत:

(i) संसाधन सूचि Resource inventory बनानी चाहिए संसाधन तो हर जिले में होते हैं, खनिज का ही फर्क होता है कुछ जिलों में वन नहीं होते, परन्तु ज्यादातर में होते हैं । इन संसाधनों के भंडारों की पहले estimate या गणना करनी चाहिए फिर उनके अनुकूलतम दोहन की दर निकालनी चाहिए । इसके पश्चात इन्हें फिर से पैदा करने जैसे वनोपज के बारे में नियोजन होना चाहिए खनिज के बारे में तो यह नहीं हो सकता, परन्तु खनिज से

पनपे wastelands बर्बाद भूमि को पुर्नस्थापित किया जाये। जर्मनी में इस तरह की भूमि में 173 भाग में पानी संचय कर झीलें व तालाब बनाते है; 1/3 में वृक्ष लगाते है तथा 1/3 भाग में मिट्टी डाल कर कृषि करते हैं । यह भाग बिखरे बिखरों में होते है, एक जगह नहीं, परन्तु अनुपात 1/3 : 1/3 : 1/3 का बनाने का प्रयत्न रहता है । संसाधन सूचि में कृषि योग्य भूमि का फसलवार आँकलन उपयुक्तता के लिए होता है ।

इसी तरह सें पानी का गिरना, उसके बहाव की मात्रा, उसके संचय की सम्भावना, उसके जमीन के अन्दर की मालायें आदि का भी आकलन करते है ।

सभी संसाधनों की खोज जारी रहती है जिले वार, अंचल क्षेत्रवार जो संसाधन सूचियाँ बनायी जायें या जो बनती हैं उनसे मात्र जिला, नियोजन नहीं होता राज्य व देश के नियोजन में इन्हीं के जोड़ का प्रयोग होता है।

मानव संसाधन बेलेन्स शीट

यह सूचि अभी बनती नहीं है पर बनाई जानी चाहिए, व्यक्तियों की योग्यता / हुनर के अनुसार उन कालमों के विरुद्ध उनके रोजगार/व्यवसाय के स्तर तथा आय लिख सकते है इससे हम को mismatch पता चलता है अगर M.Sc.Chemistry बस चलाने का ड्राईवर है तो mismatch) तो है

सोवियत संघ में यह होता था । जिस हुनर के जितने व्यक्ति चाहिए वैसे ही पहले से तैयार करते थे गैर जरुरी शिक्षा व ट्रेनिग नहीं; तथा कोई व्यक्ति बेरोजगार नही वहाँ पर वोडका की शराब खोरी ने उत्पादन घटाया और युद्ध का साम्यवाद फेल हो गया ।

अत: सूचियों रुक्ष रूप में बनायी जा सकती है

ये लिंग–आयु के अनुसार बनती है इन्हें बाद में region, sectors, activities, functions तथा occupations के अनुसार जिला, वृहद अंचल क्षेत्र, राज्य व देश के लिए compile कर लेते हैं या जोड़ लेते हैं ये तालिकायें criss–cross करती है अन्तत: जोड़ बराबर होते है ।

Prime–moving activities अग्रगामी गतिविधियों की पहचान

हर जिले में कतिपय अग्रगामी गतिविधियाँ पता लगाई जा सकती हैं कही गन्ना उगाना व शक्कर व गुड़ बनाना, कहीं जूट उगाना तथा तत्सम्बन्धी वस्तुएं बनाना, कहीं जड़ी–बूटियाँ उगाना, कहीं फल वृक्ष लगाना, कहीं रेशम उद्योग पनपाना, कहीं बहूमूल्य पत्थर निकालना व उन्हें तराशना आदि आवास सुधार तहत habitat improvement के मॉडल ले सकते हैं हर जिले का एक बड़ा गाँव अगर पक्के मकानों का हो, जिसमें अन्दरुनी शौचालय सांकपिट या sewerage के हों, जहाँ पक्की गलियाँ व गाँव के सामने की सड़क बगैर गढे की हो, जहाँ मवेशी अलग बंधे जहाँ सिंचाई उन्नत हो जहाँ स्कूल तथा प्राइमरी हेल्थ सेंटर के भवन हों आदि बनाया जा सकता है ।

ऐसे आदर्श गांव ग्रामीण स्वयं, सरकारी मदद से बना सकते हैं Denmark ने DANIDA प्रोजेक्ट में ऐसी कल्पना के गांव विकसित करने में मदद दी ।

चीन में ऐसा किया गया ये गांव सभी के लिए प्रेरणा व नकल के स्त्रोत हो सकते है इनके निर्माण में रोजगार व आय सृजन भी होता है इन्हें आस पास में मिलने वाली सामग्री से ही बनाना चाहिए

Infrastructure development बिजली, पानी, संचार, बैंकिंग, यातायात, परिवहन, स्वास्थ्य व शिक्षा की सुविधायें तो स्वयं आती हैं । जरुरत इस बात की रहती है कि वे जिला योजनाओं के अनुरुप हों तथा इतनी हों कि लोगों को प्रेरणा मिले व सहूलियत हो कि वे उत्पादक निवेष बढ़ाये।

जिला नियोजन के लक्ष्य

देश के नियोजन की भांति नहीं हो सकते –

1. यह जिले को आत्मनिर्भर इस तरह बनाने का लक्ष्य नहीं रख सकता कि वह आत्मनिर्भर हो जाये परन्तु लक्ष्य यह हो सकता है कि जिला जरुरत का अनाज उगाये व बहुत कुछ आधिक्य के रुप में उगाये तभी तो उसे बेचकर गैर–अनाज की जरुरतों के लिए क्रय शक्ति प्राप्त कर सकते है।
2. District planning is very specific to desisious about locational of non–agricultural facilities. कृषि के अतिरिक्त उद्योगों व सेवाओं की स्थापना के सम्बन्ध में यह नियोजनअति महत्वपूर्ण है ।
3. एक जिला आदर्श मानकर, उसकी बराबरी में आना एक लक्ष्य हो सकता है । शुरु में यह जिला आसपास का हो सकता है, बाद में आदर्श जिला राज्य का हो सकता है । अन्तत : देश का सर्वोत्तम हो सकता है । इस प्रकार के नियोजन से सभी जिले समान तो नहीं हो सकते परन्तु अन्तर कम हो सकते है फिर संसाधनों से स्थापित अन्तर तो रहेंगे ही ।
4. जिले में कृषि आदान का उत्पन्न करना (सिंचाई सुविधायें बढ़ाना, कम्पोस्ट खाद बनाना, उन्नत बीज स्वयं उगाना बाड़ के लिए कांटेदार झाड़ियों का प्रयोग करना) एक प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए ।
5. साख, उर्वरक, मशीनें, तकनीकि ज्ञान व बाजार सुविधायें विकसित करना इसके बाद का लक्ष्य होना चाहिए ।
6. जिले में शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, परिवहन व संचार की क्या सेवायें राज्य स्तर से लेनी है इनके स्थान आंकना व लेना इसके बाद का लक्ष्य होना चाहिए।
7. जो कार्य जिला नियोजक ऊपर से सुविधायें व धन लेने में करते है वहीं उन्हें ब्लाक स्तर के तन्त्र को देना चाहिए । उन्हे तैयार करना चाहिए । गांवों - ब्लाक – जिला इन सभी में अगली–पिछली विकास कड़ियाँ सृजन करनी होंगी । ग्रामीण व शहरी नियोजन में समन्वय भी रखना होगा ।
8. परियोजनायें जिले के संसाधनों, वातावरण के उपयुक्त व वित्तीय साधनों के अन्दर होनी चाहिए ।
9. एक अच्छी रिहायशी बस्ती व सुविधाओं सहित ब्लाक स्तर के सभी कर्मचारियों को उपलब्ध रखने का लक्ष्य होना चाहिए ।

10. निम्न जिला स्तरीय नियोजन कमेटी बनाये रखने का लक्ष्य होना चाहिए।
    1. मंत्री/एम. एल .ए
    2. कलेक्टर
    3. उपकलेक्टर
    4. जिला कृषि अधिकारी
    5. जिला स्वास्थ्य अधिकारी
    6. कांलेज प्रिंसीपल
    7. अर्थशास्त्र प्रोफेसर
    8. जिला वन अधिकारी
    9. जिला मतस्य अधिकारी
    10. जिला मंत्री (सिंचाई, सड़क, भवन)
    11. जिला शिक्षा अधिकारी
    12. जिला पशु अधिकारी
    13. नगर निगम अधिकारी
    14. जिला पंचायत के लोग
    15. सहकारिता प्रतिनिधि व अधिकारी
    16. जिला बिजली अधिकारी
    17. जिला उद्योग अधिकारी
    18. जिला लीड बैंक अधिकारी
    19. निजी क्षेत्र के उद्योगपति
    20. अन्य

30.4 Growth foci के अनुसार जिला नियोजन तथा उन्हें विकसित भी करना

जिले के गांवों व कस्बों तथा बड़े शहरों में एक पद श्रेणी–श्रंखला होती है, जो छोटे व बड़े होने तथा केन्द्रीय व छोर के क्षेत्रों पर होने से सम्बन्धित है। इनकें बीच आर्थिक व्यापार व उत्पादन की कड़ियाँ बढ़ानी होती है।

1. हर 5–6 से लेकर 10 गांवों के एक गांव को केन्द्रीय ग्राम के रूप में विकसित करना चाहिए जहाँ हरे समय पहुँचा जा सके ।
2. एक 5000 से ऊपर के गाव/कस्बे को Service centre या सेवा केन्द्र के रूप में विकसित करें जो समान फासले से कम से कम सकल 20000 से 30000 की आबादी के चारों ओर के गांवों को सेवायें प्रदान करे ।

   यहाँ बाजार, भंडारण तथा repairs (चीजों को सुधारने) की सुविधायें हों । यही पर बैकिंग, स्कूल, दवाई–इलाज, पोस्ट ऑफिस की सुविधायें भी हों । { तहसील–ब्लाक–मुख्यालय }
3. **विकास केन्द्र**

यहाँ पर Processing units होनी चाहिए, जैसे गल्ला क्रय केन्द्र और दाल मिल, चावल मिल, गना रस निकालने के केन्द्र, जिनिंग मिल आदि । यह जिला मुख्यालय कतिपय उद्योगों सहित अवश्य होना चाहिए, चाहे वह एक तेल मिल या कोई भी कृषि उत्पाद Processing units हो । जिला मुख्यालय के बाजार व प्रशासन तो होंगें ही । Growth point को अन्दरूनी क्षेत्र का पोषण करना चाहिए, शोषण नहीं और यह बात तब भी रहनी चाहिए जबकि Growth points उन्नत होकर Growth Centre बन जायें । यहाँ से गांव वाले विचार तथा विकास की चाह भी लेकर जायें, मात्र वस्तु व सेवा ही नहीं हर क्रिया में Field tested methodologies या अनुभव आधारित ब्यूह रचनायें व रीतियाँ दुहराना/कुछ बदलकर (replicate or adapt न कि adopt) लागू करना चाहिए । कृषि विकास तथा भूमि पर आधारित गतिविधियों को चलाना महत्वपूर्ण है परन्तु विकास प्रक्रिया उससे आगे जाती है ।

गरीबों का "सामान्यीकरण" सतत होता रहता है, जिला नियोजन को इस प्रक्रिया को रोकना है । अब चुकिं बाजार प्रक्रिया का प्रभाव प्रबल है अतं: बाजार में मांग व पूर्ति की स्थितियों से समन्वय करके कार्य करना चाहिए । यह बात फसल संरचना तथा कौशल की वस्तुओं के साथ विशिष्ट रूप से लागू होती है । Dantwala Committee ने लिखा था कि नियोजन के निवेशों से ग्रामीण विकास केन्द्र विकसित होने चाहिए । जिला नियोजन में साधनों का प्रयोग व उससे भी महत्वपूर्ण साधनों का विकास करना है । जिला नियोजन से नीचे नियोजन सम्भव नहीं यद्यपि ब्लाक एक महत्वपूर्ण अंग बनता है ।

> जिला स्तर का नियोजन द्वितीय योजना से ही नियोजन का अंग रहा है परन्तु वह इस रूप से उभर कर नहीं आया कि जिला नियोजन ग्रामीण विकास को ऊपर ले जाये। ऊपर से संयोग से उतरने वाले लाभों ने जरूर कुछ जिलों की काया पलट की है ।

पंचायत व जिला नियोजन

पंचायत राज भी द्वितीय योजना से साथ है भले ही उसका पूनर्जागरण आद्यतन नजर आये । भारत में adhoc कार्यक्रमों को जिलों व ब्लाकों में विशेष रूप से चलाया गया (देखिए अलग पाठ में 54 कार्यक्रम), भारत की छठी योजना में जिला योजना पर यह लिखा

> अभी जब प्लानिग कमीशन राज्यों से जिला स्तर नियोजन के लिए कहता है तो राज्य हर कार्यक्रम को, बजट प्रावधानों को जिलेवार तोड़ देते हैं । योजना ऊपर से बनकर नीचे तोड़ कर बतलाते हैं, नीचे से बनाकर ऊपर नहीं जोड़ते । विभागीय कार्यक्रमों से ये जिले की योजनायें कोई जिला नियोजन नहीं । सभी कुछ टूटा–टूटा है, (It is a little more than a rather disgointed exercise in for mulating and implementing such schemes through a multiplicity of departments.)

The district plan should encompass the total activity in the district;plan and non–plan, a conventional distinction has no place in district planning and should vanish.

जिला नियोजन में जिले की योजना तथा योजनायें सभी विकास क्रियायें आनी चाहिए । अलग–अलग क्रियाओं में कोई भेद नहीं होना चाहिए । ऐसे समस्त भेदों को समाप्त करना चाहिए । हर जिले में कुछ तो जिला विशिष्ट होना चाहिए यह काफी नही; बहुत कुछ जिला विशिष्ट होना चाहिए ।

30.5 जिला नियोजन : बड़ी व छोटी परियोजनायें तथा उनके लाभ–लागत अनुमान

हम राष्ट्रीय व राज्यीय परियोजनाओं का यहाँ अध्ययन नहीं कर रहे है । ऐसी बड़ी योजना के प्रभाव देश व्यापी होते हैं । कोई बन्दरगाह, रेलवे लाइन, सिंचाई बांध, इस्पात का कारखाना किसी न किसी जिले में होता है परन्तु वह जिला नियोजन का भाग नहीं होता । हम जिला परियोजना उसे कहेंगे जो जिले से कच्चा माल व श्रमिक ले, जिसके उत्पाद जिले में उत्पादन दे व कुछ निर्यात से आय बढ़ाये ।

परियोजना वह अच्छी जो कम लागत में ज्यादा लाभ दे । कम से कम समय में लाभ देना शुरू कर दे (gestation period short) तथा जो प्रदूषण आदि जैसे दुष्प्रभावव न छोड़े । सभी में निम्न बातों को ध्यान में रखना होता है –

(अ) विकास का अर्थशास्त्र भावी लाभों को discount करता है । रू. 110 का 1 वर्ष बाद का लाभ वर्तमान में 10% ब्याज दर पर आज के रू. 100 के बराबर है । दो वर्ष का 121 रू तीन का 133 रू. चार वर्ष का 146 रू. सभी आज के रू. 100 के बराबर है। अर्थात भावी लाभ इन मामलों से ऊँचे हों।

(ब) आज का पर्यावरण अर्थशास्त्र वर्तमान को discount करता है, अर्थात आज अधिक विकास के लिए भविष्य के संसाधन न नष्ट हो जायें.।

UNO ने सिफारिश की कि जनकल्याण योजनाओं के लाभों को वहाँ लगाकर न आका जाये।

जिला नियोजन मे नगरीय नियोजन का समावेश

बहुधा जिला नियोजन को कृषि नियोजन का ग्रामीण नियोजन समझा जाता है। जिला नियोजन में भी यह प्रयास किया जाना अनिवार्य है कि छोटे कस्बों की जिन्दगी कैसे उन्नत हो ताकि वे बड़े शहरों व गांवों के बीच conduit का या मध्यस्त का कार्य करें। अभी ये कीचड़ भरे व गन्दे है जिनका core मध्य तो सम्भाला हुआ रहता है और Periphery या छोर के मोहल्ले गंदे रहते है। गरीबों के क्षेत्र आज भी जाति आधार पर है। सुअरों के बाड़े न होने से आज समस्त शहरों में इनका प्रकोप है। { देखिए नगर नियोजन पर पृथक पाठ–पेपर } नगर नियोजन प्लान तथा वास्तविक विकास अलग होते है। Social aspects are neglected in

district or city / town planning. जिला नियोजन मे नगर नियोजन के सामाजिक पहलुओं का ध्यान रखा जाना चाहिए। गरीबों को मकान सस्ता पर यातायात महंगा पड़ता है क्योंकि वे

सम्पूर्ण C-B Analysis मय छाया मूल्यों के यहाँ नहीं लिखा है।

कार्य स्थल पर दूर से आते है। आज जनसंख्या भार इतना है कि अगर रेलवे किसी एक जगह अपनी पटरियों के वासियों को "गोद लेकर" रिहायश सुधारें तो सारे गरीब अन्य स्थानों पर और पहुंचेगें। जिला नियोजन में कुछ pilot projects ऐसे होने चाहिए जो सफलता के द्रष्टान्त बने तथा जिन्हे अन्य नकल करें। EWS (economically weaker section) का जो IAY इन्द्रिरा आवास योजना कार्यक्रम बना है वह अगर एक जिले में सभी की समस्या हल कर दे तो अवश्य इसको लोग दुहरायेंगे। शासन की असफलतायें अब इस ओर इंगित करती है कि या तो शासकीय तब में आमूल परिवर्तन हो या N.G.Os. नान गवर्नमेंट आर्गेनाइजेशन रिहायश नियोजन को कही अपनायें।

30.6 सारांश

- जिला परियोजना व स्कीमों को समस्या निवारक होना चाहिए।
- उनकी समस्त लागतें, अवसर लागत सहित, न्यूनतम होनी चाहिए।
- वस्तु उत्पादन की किस्म में कमी नहीं होनी चाहिए, प्रति यूनिट लागतें कम होनी चाहिए।
- वस्तुएँ बाजार मूल्य व मांग को संतुष्ट करें।
- स्कीम/परियोजना जिले में Waterharvesting, फल उगाना , कृषिउत्पादन, पशुउत्पादन आदि सभी–कीं उत्पादकता बढ़ायें।
- जिनसे व्यापार न करने की सेवायें सृजित हों वे अधिकतम सामाजिक लाभ दें, व नकल की प्रेरणा दें।
- परियोजनायें हानि में न चलें; नगदी की आवक ज्यादा रहे तथा रोजगार व आय का सृजन गुणक रूप से हो।
- आर्थिक रूप से सक्षम, दीर्धकाल तक चल सकने वाली तथा, दीर्धकालिक लाभ देने वाली स्कीमें नियोजन में रहें।
- तकनीकी–आर्थिक feasibility, रिपोर्ट बनाकर ही परियोजनायें शुरू हो ।
- परियोजनायें उत्पादन बढ़ायें परन्तु पिछड़े वर्गों, आदिवासियों व हरिजनों की भागीदारी बढ़ाकर असमानताओं पर प्रहार करें, उन्हें कम करें ।
- परियोजनाओं का monitoring तथा मूल्यांकन तथा सामाजिक "आहित" होना चाहिए ।
- भ्रष्टाचार झिरने पूरी तरह बन्द करने का इन्तजाम होना चाहिए ।
- आन्तरिक बचतों व पूंजी निर्माण तथा स्वस्फूर्त निवेश को बढ़ाने वाली परियोजनायें होनी चाहिए ।
- खड़ी व आड़ी आर्थिक गतिविधियाँ बढ़नी चाहिए ।
- गरीबी की रेखा के नीचे तथा महिलाओं व बच्चों के विशेष कार्यक्रम जिला नियोजन का Core होना चाहिए ।

30.7 शब्दावली

नियोजन	:	कम से कम साधन लगाकर अधिकतम लाभ प्राप्त करना, एक समय
Planning	:	बद्ध कार्यक्रम के अन्तर्गत बाहुल्य घटक का सघन प्रयोग कर अन्तत : उत्पादन, उत्पादकता, रोजगार, आन्तरिक एवं बाह्य आय बढ़ाने –का योजनाबद्ध कार्यक्रम।
बहुस्तरीय नियोजन	:	केन्द्र, राज्य, वृहद अंचल क्षेत्र व जिला स्तरीय समविन्त परन्तु कुछ
Multi-Level Planning	:	स्वास्थ्य नियोजन भी ।
अंचलक्षेत्रीय नियोजन	:	यह एक बड़े या मध्यम क्षेत्र का नियोजन हो सकता है जो जरूरी नहीं
Regional planning	:	कि प्रशासनिक सीमाओं को माने जैसे कोयल बेल्ट का, बड़ी सिंचाई योजना के कमान्ड क्षेत्र का, या वनों का नियोजन।
जिला नियोजन	:	मुख्य लक्ष्य: राज्यीय योजन से सभी जिलों की भागीदारी; दूसरा
District planning	:	मुख्य जिले के साधनों व जरूरतों को देख कर समस्या उसूलन तथा पिछड़ेपन को (backlog) पाटना या कम करना ।
विकेन्द्रित नियोजन	:	लक्ष्य व साधन विकेन्द्रित स्तर पर हों, परन्तु regions are not Decentralised Planning nations within the nation, अत: पूर्ण स्वायत्तता नही।

30.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 भारत की पंचवर्षीय योजनायें

2 Sudip Mandal :	District Planning.
3 O.S. Shrivastava:	Economics of growth, Development and planning.

Yojna के विभिन्न अंक हमेशा हर वर्ष इस पर पेपर प्रकाशित करते रहे है । उनका सार भी इस इकाई में है ।

आप चाहें तो अपने जिले के संसाधनों व समस्याओं को ध्यान में रखकर कार्यक्रम बनाये । उनको एक समयकाल में करने का कार्यक्रमा/योजना बनायें । उनकी लागतें वर्तमान मूल्यों पर आंकने की कोशिश करें । कुछ सम्बंधित व्यक्तियों से interact करें । कतिपय व्यवहारिक अभ्यास भी लाभ दायक होगें ।

* आपको तो वैसे परीक्षा में अकादमिक academic उत्तर ही देना है ।

आप चाहें तो अपने जिले की योजना लेकर उसका परीक्षण व समालोचना कर सकते है। यें चीजें परीक्षा से परे की भी है ।

इकाई 31

भारत में क्षेत्रीय विकास योजनाएं

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य

31.1 प्रस्तावना

31.2 सूखा आशंकित क्षेत्र–कार्यक्रम

31.2.1 भूमिका

31.2.2 कार्यक्रम का प्रारम्भ

31.2.3 कार्यक्रम के उद्देश्य

31.2.4 कार्यक्रम के विवरण

31.2.5 कार्यक्रम की प्रगति

31.2.6 कार्यक्रम का मूल्याचंकन

31.3 मरूस्थल विकास कार्यक्रम

31.3.1 भूमिका

31.3.2 कार्यक्रम का शुभारम्भ एवं इसके उद्देश्य

31.3.3 कार्यक्रम का क्रियान्वयन

31.3.4 कार्यक्रम की उपलब्धियाँ

31.3.5 कार्यक्रम का मूल्यांकन

31.4 पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाएं

31.4.1 भूमिका

31.4.2 कार्यक्रम की रूपरेखा

31.4.3 कार्यक्रम के उद्देश्य

31.4.4 कार्यक्रम की व्यूह रचना

31.4.5 कार्यक्रम की उपलब्धियाँ

31.4.6 कार्यक्रम का मूल्यांकन

31.5 जनजाति क्षेत्रीय विकास योजनाएं

31.5.1 भूमिका

31.5.2 योजना की व्यूह रचना

31.5.3 योजना का शुभारम्भ

31.5.4 योजना का क्रियान्वयन

31.5.5 योजना की उपलब्धियाँ

31.5.6 योजना का मूल्यांकन

31.6 सारांश

31.7 शब्दावली

31.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

31.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य छात्रों को भारत में विशिष्ट क्षेत्रों के विकास के लिए जो विशेष योजनाएं पृथक–पृथक रूप से क्रियान्वित की जा रही है उनसे परिचित कराना है । इससे छात्रों को यह भली–भांति विदित हो जायेगा कि इन विशिष्ट क्षेत्रों के विकास के लिए भारत सरकार द्वारा क्या प्रयास किये जा रहे है तथा वे कहां तक सफल हुए है ।

31.1 प्रस्तावना

भारत में क्षेत्रीय विकास की जो विशेष योजनाएं प्रारम्भ की गई है उनमें प्रमुख योजनाएं सूखा आशंकित क्षेत्र, मरूस्थलीय क्षेत्र, पर्वतीय क्षेत्र एवं जनजाति क्षेत्र के विकास से सम्बन्धित है । इन क्षेत्रों से सम्बन्धित योजनाएं नियमानुसार है :

1. सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम
2. मरूस्थल विकास कार्यक्रम
3. पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाएं
4. जनजाति क्षेत्रीय विकास योजनाएं

31.2 सूखा आशंकित क्षेत्र–कार्यक्रम (Drought prone Area programme)

31.2.1 भूमिका

भारत में वर्षा को "मानसून का जुआ" कहकर सम्बोधित किया गया है । इसका कारण यह है कि भारत में वर्षा अनिश्चित तथा अनियमित है । इससे देश का बहुत सा भौगोलिक क्षेत्र सूखे की चपेट में रहता है जिससे कृषि उत्पादन एवं पशुधन की हानि के साथ ही वहां के निवासियों को भीषण संकट का सामना करना पड़ता है । भारतीय सिंचाई आयोग 1972 ने सूखा के सम्बन्ध में निमांकित क्षेत्र एवं जनसंख्या को सूखाग्रस्त निरूपित किया था :

तालिका 31.1

भारत मे सूखाग्रस्त क्षेत्रफल एवं जनसंख्या

राज्य	जिलों की संख्या	तहसीलों/ ताल्लुकों की संख्या	भौगोलिक क्षेत्र (000 हैक्टेयर्स)	जनसंख्या 1961 (000 में)
आन्ध्रप्रदेश	7	60	9700	9410
गुजरात	11	60	7070	5480
हरियाणा	3	6	810	1490
मध्यप्रदेश	9	24	4090	3070

महाराष्ट्र	9	45	6250	6930
कर्नाटक	12	88	10350	11580
राजस्थान	9	19	7480	2760
तमिलनाडु	7	24	3980	7360
योग	67	326	49730	48080

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत का लगभग 16 प्रतिशत क्षेत्रफल (अब इसे 20 प्रतिशत आका गया है) तथा 11 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या (अब इसे 12 प्रतिशत आकी गयी हैं) सूखे की चपेट में है।

वर्गीकरण की दृष्टि से सूखाग्रस्त क्षेत्र को निर्जल क्षेत्र, अर्द्ध–निर्जल क्षेत्र, शुद्ध–उपनम क्षेत्र तथा उपनय क्षेत्र में विभाजित किया जा सकता है। एक अनुमान के अनुसार देश में लगभग 79 प्रतिशत क्षेत्रफल (26 करोड़ हैक्टेयर) सूखाग्रस्त क्षेत्र है।

अकाल कीं विभीषिका से निपटने के लिंए सरकार को पर्याप्त व्यय करना पड़ता है। वनों को अंधा–धुंध कटाई तथा अत्यधिक चराई के कारण जहां एक ओर पर्यावरणीय प्रदूषण से भू–क्षरण हुआ है वही दूसरी और भूमि की उर्वरता में कमी आई है। ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण एवं भीषण स्थिति से निपटने के लिए सरकार ने सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम की आधारशिला रखी है।

31.2.2 कार्यक्रम का प्रारम्भ

सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम वर्ष 1973 से प्रारम्भ किया गया है। वर्षा का स्वरूप, अकाल का प्रभाव एवं सिंचाई व्यवस्था आदि को ध्यान में रखते हुए 13 राज्यों के 74 जिलों के 615 विकास खंडों को प्रारम्भिक रूप से सूखाग्रस्त क्षेत्र घोषित कर इस कार्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। इन क्षेत्रों में हमारे देश की 12 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। इन क्षेत्रों में प्रमुखत: काली एवं लाल मिट्टी पायी जाती है जिसमें पोषक तत्वों का अभाव होता है। अधिकांश क्षेत्र पठारी होने से मिट्टी उथली होती है। काली मिट्टी के सूखने पर दरारें पड़ जाती हैं तथा लालु मिट्टी सुगमतापूर्वक बह जाती है। सूखे की सम्भावना वाले चुनिंदा क्षेत्रों में यह कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। इसका प्राथमिक ध्येय इन क्षेत्रों में भूमि, जल एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित विकास करके पर्यावरणीय संतुलन को बहाल करना है। कार्यक्रम हेतु वित्त की व्यवस्था केन्द्र व सम्बन्धित राज्य द्वारा 50 : 50 के अनुपात में की जाती है।

31.2.3 कार्यक्रम के उद्देश्य

इस कार्यक्रम के उद्देश्य नियमानुसार है:–

(1) अकाल की गहनता को कम करके धीरे–धीरे समाप्त करने के प्रयास करना।

(2) सूखाग्रस्त क्षेत्र में उपलब्ध समस्त संसाधनों जैसे भूमि, जल, पशुधन एव मानवीय संसाधनों का अनुकूतम प्रयोग करना।

(3) ग्रामीण गरीबों को जौ कि सूखा से सबसे ज्यादा प्रभावित होते है उनके जीवन की दशाओं को सुधारना अर्थात् उनकी आय को स्थिर करना

(4) पर्यावरण में संतुलन बनाये रखना जिस हेतु सामाजिक वानिकी, चरागाहों का विकास आदि के कार्य करना।

(5) सूखे से पीड़ित लोगों के लिए सहायक उद्योग धन्धों का विकास, पशुपालन और दुग्धोपालन, आधारभूत संरचना का विकास, पीने के पानी की व्यवस्था–, ग्रामीण विदुतीकरण और ग्रामीण सड़कों के निर्माण जैसे कार्य प्रारंभ करना।

(6) फसलों के प्रारूप की पुनर्सरचना तथा सस्य विज्ञान में परिवर्तन, एवं,

(7) मिटटी तथा आर्द्रता–रक्षण के उपाय।

उपरोक्त लक्ष्यों के संदर्भ में कार्यक्रम के तीन मुख्य अवयव इस भांति है:–

(अ) भूमि विकास तथा भूमि को समतल बनाना।

(ब) जल संचय और भंडारण के साधनों का निर्माण, सूखा अवरोधक बीज तथा उर्वरकों का प्रयोग और

(स) विशिष्ट उपकरणों व तकनीकों का प्रयोग

31.2.4 कार्यक्रम का विवरण :

एक टास्क फोर्स सन 1980 में इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन के अध्ययन हेतु स्थापित की गयी थी । सन 1982 में इस टास्क फोर्स ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए कहा कि इस कार्यक्रम का क्षेत्रफल बढ़ाया जाये तथा यह कार्यक्रम अधिक प्रभावी ढंग से कार्य करें । इस कार्यक्रम का मूलाधार सूखा आशंकित क्षेत्र में परिस्थितिकीय संतुलन (ecological balance) को नियमानुसार बनाये रखना है –

(1) सिंचाई संसाधनों का विकास एवं प्रबंधन

(2) भूमि एवं आर्द्रता का अनुरक्षण तथा वनारोपण के कार्यक्रम

(3) फसली प्रारूप की पुनर्सरचना एवं चरागाहों का विकास

(4) पशुपालन का विकास

इस कार्यक्रम की मूल व्यूह–रचना अच्छी वर्षा के काल में उपज को अधिकतम करना तथा वर्ग की आपर्याप्तता पर हानि को न्यूनतम करना है । इसे मिट्टी तथा आर्द्रता की अनुरक्षण निधियों को वैज्ञानिक आधार पर अपनाकर प्राप्त करना है ताकि भूमि पर गिरने वाली प्रत्येक बूंद का प्रयोग हो सके । इस हेतु कम अवधि में पक कर तैयार होने वाली फसलों तथा सूखा अवरोधक बीजों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाता है ताकि सूखे की स्थिति में हानि को कम से कम किया जा सके । इसमें किसानों को सहायक उद्योगों को अपनाने के लिए प्रेरित किया जाता है ताकि किसानों को पूरक आय प्राप्त हो तथा कृषि पर उनकी निर्भरता को कम किया जा सके ।

किसानों को उनके उत्पादन की उनके दरवाजे पर ही अच्छी कीमतें दिलाने के लिए आने वाली सभी कठिनाइयों को दूर कर सहायक क्रियाओं को विकसित किया जाता है जैसे – प्रसाधन विपणन आदि । इसमें आधारभूत स्तरों पर योजनाएं बनाई जाती है तथा क्षेत्राधिकारियों को जलवायु की दशाओं के अनुकूल योजना बनाने के लिए प्रशिक्षित एवं प्रोत्साहित किया जाता

हैं । इस कार्यक्रम को एकीकृत भी किया गया है । प्रत्येक क्षेत्र–स्तर पर वित्तीय संस्थाओं के मध्य भी समन्वय स्थापित किया जाता है । इस अनूठे कार्यक्रम को प्रशिक्षण एवं व्यावहारिक अनुसंधान से भी जाड़ा गया है । जिला स्तर पर समन्वय के अतिरिक्त राज्य तथा केन्द्रीय स्तर पर भी विभिन्न विभागों के साथ प्रभावी समन्वय स्थापित किया जाता है ।

इस कार्यक्रम के लिए आयोजनों तथा प्रशिशण के संदर्भ में सूखा अवरोधक बीजों की उन्नत प्रजातियों, उपकरणों और तकनीकों को विशाल पैमाने पर संभव बनाने के लिए विस्तार सेवा, पूर्ति और सोपने की पर्याप्त व्यवस्था को क्रियान्वित किया जायेगा । फसलों के लिए पर्याप्त लाभकारी मूल्यों की पूर्व घोषणा, और उनके क्रय किये जाने की तथा ऋण वसूली संबंधी प्रबंधन को भी कार्यान्वित किया जायेगा । सूखाग्रस्त क्षेत्रों में रोजगार और आय बढ़ाने की दृष्टि से कुटीर और लघु उद्योगों को बढ़ावा दिया जायेगा । फलदार वृक्ष, पुष्पों के बगीचे, चरागाह आदि के वृहद कार्यक्रमों के द्वारा रोजगार प्रदान करने तथा पर्यावरण को सुधारो के कार्यक्रमों को भी प्राथमिकता दी जायेगी । सातवीं पंचवर्षीय योजना में सूक्ष्म जल शेड्स की नीति को पहले से ही क्रियान्वित किया जा चुका है ।

31.2.5 कार्यक्रम की प्रगति

वर्तमान में यह कार्यक्रम 13 राज्यों के 96 जिलों के अन्तर्गत आने वाले 627 ब्लाकों में चलाया जा रहा है तथा इसके अन्तर्गत कुल क्षेत्र 553 लख हेक्टेयर है जिसकी जनसंख्या (1981 की जनगणना के अनुसार) 707.5 लाख है। अब इस कार्यक्रम का विस्तार करके इसे 147 जिलों के 943 ब्लाकों में कार्यान्वित किया जायेगा। वर्ष 1993–94 के लिए इस कार्यक्रम हेतु 153.34 करोड़ रु0 की राशि का आवंटन किया गया। 1973–74 से लेकर मार्च 1993 तक इस कार्यक्रम के तहत कुल 1429 करोड़ रु0 व्यय किये जा चुके है। यह कार्यक्रम ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा चलाया जा रहा है। वर्ष 1992–93 में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राविधिक आकड़ो के अनुसार निमांकित प्रगति दर्शायी गयी है–

तालिका 31.2

		00 हेक्टेयर्स में
1.	भूमि विकास	978.02
2.	जल संसाधन	157.81
3.	वनारोपण	648.10

(आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, हरियाणा, जम्मू एवं काश्मीर, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, महाराष्टू, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, एवं पश्चिमी बंगाल नामक 13 राज्यों में यह कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है।)

31.2.6 कार्यक्रम का मूल्यांकन

अब इस कार्यक्रम का मूल्यांकन लोकसभा की सार्वजनिक लेखा समिति करने लगी है। इस कार्यक्रम के मूल्यांकन में निमांकित तथ्यों पर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है:–

(1) इस कार्यक्रम कों आवंटित कोषों का लगभग 72 प्रतिशत का ही उपयोग हो पाया है।

(2) कुछ राज्यों में सूखाग्रस्त ऐजेन्सियों की स्थापना अवश्य की गई है किन्तु इन्हें समुचित अधिकार नहीं दिये गये है।

(3) कार्यक्रम तैयार करते समय क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं तथा साधनों की उपलब्धता पर ध्यान नहीं दिया गया है।

(4) कार्यक्रम को सम्पन्न करने में अनावश्यक देरी हुई है जिससे वांछित लाभ लक्ष्य समूह तक नही पहुंच पाये हैं।

(5) कुछ आगतो (inputs) के अभाव तथा वित्तीय सस्थाओं से पर्याप्त नहीं मिलने से कार्यक्रम की गति धीमी हुई है।

बोध प्रश्न– 1

(अ) सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम किस वर्ष मे प्रारंभ किया गया था?

(ब) इस कार्यक्रम के उद्देश्य बताइये

(स) इस कार्यक्रम को समझाइए

(द) इस कार्यक्रम की प्रगति बताते हुये इसको मूल्यांकित कीजिए

31.3 मरूस्थल विकास कार्यक्रम

Desert Development programme

31.3.1 भूमिका

भारत में मरूस्थलीय क्षेत्रफल काफी विस्तृत है एवं यह मरूस्थल धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है । इसे 'महान भारतीयमरूंस्थलं (The Great Indian Desert) के नाम से पुकारा जाता है । तथा राजस्थान के पश्चिमी भाग तथा गुजरात एवं हरियाणा में यह फैला हुआ है जिसका अनुमानित क्षेत्रफल 2,34,895 कि.मी. है। इसकी अवस्थिति को निम्नांकित तालिका में प्रस्तुत किया गया है :–

तालिका 31.3

प्रदेश	जिले	जिलों के नाम
राजस्थान	11	बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, नागौर, चुरू, पाली– जालौर, (8 प्रमुख जिले) तथा गंगानगर, झुनझुनू एवं सीकर।
गुजरात	2	मेहसाना एवं बानसकंठ
हरियाणा	3	भिवानी, हिसार एवं रोहतक।

विगत 50 वर्षो में यह मरूस्थल आधा मील (0.8 किमी.) प्रति वर्ष की गति सें बढ़ रहा है तथा 13000 हेक्टेयर उपजाऊ भूमि प्रति वर्ष इसकी चपेट में आ जाती है। अत: हमारे सामने मरुस्थलीय क्षेत्रफल के पुनर्स्थापना की समस्या बहुत विकट है।

कृषि राष्ट्रीय आयोग (The National Commission on Agriculture) की अनुशंसाओं कें अनुरूप वर्ष 1977–78 से एक मरूस्थल विकास कार्यक्रम को क्रियान्वित किया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य मरूभूमि को बढ़ने से रोकने, मरूभूमि में सूखे के प्रभावों को समाप्त करना, प्रभावित क्षेत्रों में परिस्थितिकीय (ecological) संतुलन बहाल करना व इन क्षेत्रों मे भूमि की उत्पादकता तथा जल–संसाधनों को बढ़ाना है। यह कार्यक्रम शत–प्रतिशत केन्द्रीय सहायता के आधार पर क्रियान्वित किया जा रहा है।

यह कार्यक्रम गर्म मरूक्षेत्र के अन्तर्गत राजस्थान के 11 जिलों, हरियाणा के 4 जिलों तथा गुजरात के तीन जिलों तथा ठंडे मरू–क्षेत्र के अन्तर्गत जम्मू एवं कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों कों सम्मिलित किया गया है।

31.3.2 कार्यक्रम का शुभारम्भ एवं इसके उद्देश्य

प्रारंभिक चरण में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नांकित प्रमुख क्रियाएं प्रारंभ की गई:–

1 संरक्षित–पट्टी वृक्षारोपण (Shelter–belt plantation) पर विशेष बल प्रदान करते हुये वनारोपण (Afforestation), घास भूमि विकास (Grass land development), एवं रेतीले टीलों का स्थिरीकरण (Sand dune stabilization)

2 भू–जल (ground water) विकास एवं उसका प्रयुक्तीकरण

3 जल फसलीकरण संरचनाओं (Water hervesting structures) का निर्माण।

4 ट्यूब वैलस एवं पम्प सेटों को ऊर्जा प्रदान करने हेतु विद्युतीकरण एवं

5 कृषि, बागवानी एवं पशुपालन विकास।

सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम एवं मरूस्थल विकास कार्यक्रम के टास्कफोर्स (Task Force on D.P.A.P. & D.D.P) ने सन 1982 में इस कार्यक्रम का पुनरावलोकन करते हुये बताया था कि मरूस्थल विकास कार्यक्रम (D.D.P.) का उद्देश्य सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम (D.P.A.P) के समान होना चाहिए एवं तदोपरांत कुछ परिवर्तन (modification) भी सुझाये गये । इस समय इस कार्यक्रम में मरूस्थल एवं ईंधन हेतु प्रयुक्त लकड़ियों के उगाने पर विशेष बल दिया गया है । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 126 विकास खन्ड़ो को छठी पंचवर्षीय योजना मे सम्मिलित किया गया था तथा सातवीं पंचवर्षीय योजना में 5 विकास खन्डों को और जोड़ा गया । सातवीं योजना में सीमावर्ती क्षेत्रों के विकास का एक नया कार्यक्रम इसमें और जोडा गया है । आठवीं पंचवर्षीय योजना में भी कार्यक्रम को चालू रखा गया है ।

31.3.3 कार्यक्रम का क्रियान्वयन

कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिये किये जाने वाले वित्तीय आवंटन में 1993–94 में पर्याप्त वृद्धि भी की गई है । 1993–94 में गर्म मरूस्थलीय क्षेत्रों में प्रति एक हजार वर्ग कि. मी. क्षेत्र के लिए 36 लाख रूपये का आवंटन किया गया है । किन्तु किसी भी जिले के लिये अधिकतम आवंटन. 7 .5 करोड़ रू. का हो सकता था । इसी प्रकार ठंडे मरूस्थलीय क्षेत्रों में

हिमाचल प्रदेश को 1.50 करोड़ रू. प्रति जिले तथा जम्मू एवं कश्मीर को 2.25 करोड़ रू. प्रति जिले के आधार पर आवंटन किया गया था ।

यह कार्यक्रम देश के पांच राज्यों के 21 जिलों के 131 विकास खन्डो में चलाया जा रहा था । दिसम्बर 94 को सरकार ने इसका विस्तार करके इसे 36 जिलों के 224 विकास खन्डों में कार्यान्वित करने का अनुमोदन कर दिया है ।

यह कार्यक्रम ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा चलाया जा रहा है । 1993–94 में राज्यों को 74. 25 करोड़ रू. देने का प्रावधान था । 1977–78 से मार्च 93 तक 447.65 करोड़ रू. इस कार्यक्रम के तहत व्यय किये जा चुके है । वर्तमान में इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य मरूभूमि विस्तार प्रक्रिया नियंत्रण एवं पर्यावरणीय संतुलन बनाये रखना है ।

31.3.4 कार्यक्रम की उपलब्धियाँ

मरूस्थल विकास कार्यक्रम का राज्यवार प्रावधिक व्यय एवं भौतिक उपलब्धियाँ निमांकित तालिका में दर्शायी गयी है :–

तालिका 31.4

क्र.	राज्य	प्रावधिक व्यय 1992–93 (लाख रू. में)	1992–93 की भौर्तिक उपलब्धियाँ (00 हैक्टेयर्स में)		
			भूमि विकास	जल संसाधन	वनारोपण
1	गुजरात	208.82	5.48	4.55	13.55
2	हरियाणा	469.30	0.00	21.01	17.85
3	हिमाचल प्रदेश	228.91	5.62	1.91	14.49
4	जम्मू एवं कश्मीर	294.45	2.02	3.03	3.26
5	राजस्थान	3650.47	54.26	18.80	66.07
	योग	4851.95	67.38	49.30	115.22

31.3.5 कार्यक्रम का मूल्यांकन

इस प्रकार स्पष्ट हैं कि सन 92–93 में इस कार्यक्रम में राज्यों पर केन्द्र सरकार द्वारा 48.52 करोड़ रु. प्रावधिक रूप मे व्यय किये गयें तथा राज्य वार भूमि विकास, जल संसाधन एवं वनारोपण की भौतिक उपलब्धियाँ उपर्युक्त तालिका में दर्शायी गयी है । यह कार्यक्रम अभी सीमित सफलता ही प्राप्त कर सका है ।

इस कार्यक्रम का प्रमुख भाग मृदा एवं भूमि विकास, जल एवं नमी संरक्षण, वनारोपण एवं चारागाह विकास रहा है । तथा कम से कम वार्षिक आंवटन का 75 प्रतिशत भाग इस प्रमुख भाग परिव्यय करने का प्रावधान हैं ।

स्वाध्यायी प्रश्न -

(अ) मरुस्थल विकास कार्यक्रम किस वर्ष में प्रारंभ किया गया था?

(ब) इस कार्यक्रम के उदेश्य बताइए?

(स) इस कार्यक्रम को देश में किस प्रकार कार्यान्वित किया गया है?

(द) कार्यक्रम की प्रगति बताते हुए इसको मूल्यांकित कीजिए?

31.4 पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाएं (The Hill Areas Development Plans)

31.4.1 भूमिका

भारत में पर्वतीय क्षेत्रों का विस्तार 20 प्रतिशत क्षेत्रफल में है एवं इन क्षेत्रों में लगभग 9 प्रतिशत जनसंख्या निवास करनी है । इन पर्वतीय क्षेत्रों के द्वारा मानव को जीवन–दायनी संसाधनों की आपूर्ति की जाती है । तटोपरांत भी ये क्षेत्र अत्यन्त पिछड़ी अवस्था में है । इन क्षेत्रों की प्रमुख समस्या सर्वागीर्ण, निरन्तर एवं स्वचलित विकास (Sustainable Development) की है । इन क्षेत्रों की सामान्य समस्याओं में पर्यावरणीय विषमताएं, वनों का विनाश एवं परिवहन तथा संचार साधनों की अपर्याप्तता हैं । इन क्षेत्रों के संतुलित सामाजिक आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व राज सरकारो का है ।

पर्वतीय क्षेत्रों का विकास हमारी प्रारंभिक पंचवर्षीय योजनाओं में विशेष विकास परियोजनाओं के माध्यम से सदैव ही जुड़ा रहा है । पर्वतीय क्षेत्र विकास की ये विशेष विकास परियोजनाएं सर्वप्रथम भारत–जर्मन सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत क्रियान्वित की गई थी । ये परियोजनाएं विशेषत: हिमाचल प्रदेश के मण्डी एवं कांगड़ा जिलों, उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जिले तथा तमिलनाडू के नीलगिरि जिले में अवस्थित थी । इन परियोजनाओं की सफलता से प्रभावित होकर पर्वतीय क्षेत्रों में समन्वित कृषि विकास के लिए चौथी पंचवर्षीय योजना में पूर्णत : घरेलु स्त्रोतों से दो केन्द्रीय क्षेत्र परियोजनाएं स्वीकृत की गई । इन योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य कृषि, बागवानी, पशुपालन, प्रोसेसिंग एवं विपणन सुविधाओं संबंधी आधारभूत संरचनाओं का समन्वित विकास करना था ।

31.4.2 कार्यक्रम की रूपरेखा

उपर्युक्त योजनाओं की सफलता से, पांचवीं पंचवर्षीय योजना में प्रारंभ से ही एक विशेष कार्यक्रम जो वर्ष 1974–75 में क्रियान्वित किया गया था उसे पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (The Hill Area Development)के नाम से समाहित किया गया । पांचवी योजना में कार्यक्रम को पृथक से सम्मिलित करने का प्रमुख कारण यह था कि पर्वतीय क्षेत्र देश में सामाजिक आर्थिक पुनर्निर्माण में विशेष समस्याएं उपस्थित करते थे। अत: पांचवी योजना में इस कार्यक्रम को हितग्राही लाभान्वित कार्यक्रम के रूप में सम्मिलित किया गया।

पर्वतीय क्षेत्रों का वर्गीकरण

इन पर्वतीय क्षेत्रों को प्रमुखत: दो श्रेणियों में बाँटा गया है –

1 पर्वतीय राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश

2 निर्दिष्टित पर्वतीय क्षेत्र

पर्वतीय राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश एवं मिजोरम आते है।

निर्दिष्ट पर्वतीय क्षेत्रों (Designated Hill Areas)में निम्नांकित क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया है :–

1 आसाम के दो पर्वतीय जिले–उत्तरी कचार एवं कर्वी आगलोंग

2 उत्तर प्रदेश के आठ जिले–देहरादून, पौरी गढ़वाल, तेहरी गढ़वाल, चमौली, उत्तरकाशी, नैनीताल, अल्मोड़ा एवं पिथोरागढ।

3 पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले के प्रमुख भाग।

4 तमिलनाडु का नीलगिरी जिला एवं

5 पश्चिमी घाट के 163 ताल्लुकाज (महाराष्ट्रके 62, कर्नाटक के 40, तमिलनाडु के 29, केरल के 29 एवं गोआ के 3 ताल्लुकाज)

इन पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाओं का प्रमुख जोर राज्यों में पिछड़े हुये पर्वतीय क्षेत्रों की पहचान तथा उनके विकास के लिये पृथक से उपयोजना का निर्माण था। इस हेतु प्रारंभिकचरण में हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश एव तमिलनाडु में पाइलट प्रोजेक्टस चलाये गये थे। इनके अन्तर्गत कृषि, पशुपालन, बागवानी, भूमि विकास एव मृदा संरक्षण, लघु सिंचाई के साधन तथा आधार भूत संरचना का समेकित विकास था। इस क्षेत्र के लिये खाद्य, ईंधन., चारा, ऊर्जा, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं पीने के पानी की व्यवस्था भी किए जाने का निर्णय लिया गया था।

31.4.3 कार्यक्रम के उद्देश्य

सातवीं एवं आठवीं पंचवर्षीय योजना में सामाजिक–आर्थिक संवृद्धि, आधारभूत संरचना का विकास एवं परिस्थितिकीय (ecology) को प्रोन्नत करने के तीन मानदंडों को समाहित कर पर्वतीय क्षेत्र विकास की योजनाओं को क्रियान्वित किया गया है :–

1 सामाजिक–आर्थिक विकास

2 आधारभूत–संरचना का विकास एवं

3 परिस्थितिकी (Ecology) की प्रोन्नति ।

समाजार्थिक परिवर्तन (Socio–economic transformation) से संबंधित अनेक विशेष समस्यायें पर्वतीय क्षेत्रों में पाई जाती है। समेकित क्षेत्रीय विकास दृष्टिकोण को कुछ पर्वतीय क्षेत्रों में क्रियान्वित किया गया है। इस कार्यक्रम का प्रमुख जोर राज्यों में पिछड़े क्षेत्रों की पहचान रहा है जहाँ वे पर्याप्त मात्रा में उपस्थित है तथा इन क्षेत्रों के विकास के लिए पृथक से उपयोजना का निर्माण करना है । हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं तमिलनाडु में पाइलट परियोजनाओं (Pilot Projects) को प्रारंभ किया गया। इन परियोजनाओं की प्रधान ब्यूह रचना कृषि का समेकित विकास रहा है जिसमें कृषि, पशुपालन, बागवानी, भूमि विकास एवं मृदा–संरक्षण, लघु सिंचाई एवं बुनियादी आधार–भूत संरचनात्मक सुविधाएं प्रदान करना रहा है ।

31.4.4 कार्यक्रम की व्यूह रचना

पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाओं की व्यूह–रचना नियमानुसार है –

1 **वैकल्पिक ऊर्जा नीति –** वनों की कटाई रोकने के लिये यह आवश्यक है कि इस हेतु इन क्षेत्रों में वैकल्पिक ऊर्जा साधनों जैसे विददुत, कैरोसिन, गैस आदि की आपूर्ति की जायेगी।

2 **चारागाह भूमि विकास –** जलाने की लकड़ी एवं चारे की नियमित आपूर्ति हेतु चारागाह भूमि का विकास किया जायेगा ।

3 **स्वास्थ्य एवं शिक्षा–** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वास्थ्य, चिकित्सा एवं शिक्षा के प्राथमिक स्तर की व्यवस्था की जायेगी ।

4 भू–प्रयुक्तिकरण, झूम खेती (परिवर्तनशील खेती) के नियंत्रण एवं वनारोपण के विभिन्न कार्यक्रम इन क्षेत्रों में आयोजित किये जायेंगे ।

5 बागवानी, पैकिंग सामग्री एवं पशुपालन संबंधी विभिन्न कार्यक्रम इन क्षेत्रों में आयोजित किये जायेंगे ।

6 औद्योगिक, यातायात एवं – संवाद–वाहन का यथोचित विकास इन क्षेत्रों में किया जायेगा।

7 **उपयुक्त प्रौद्योगिकी–** इन क्षेत्रों के लिये उपयुक्त प्रौद्योगिकी निर्मित की जाकर इसको क्रियान्वित किया जायेगा ।

सन 1974–75 से जो पश्चिमी घाट विकास कार्यक्रम प्रारंभ किया गया था उसके अन्तर्गत पारिस्थितिकीय संतुलन, जीव–संबंधी विविधता, मानव द्वारा पर्यावरणीय प्रदूषण का नियंत्रण तथा इसके प्रति जन जागरण एवं शिक्षा संबंधी विभिन्न कार्यक्रम निर्धारित किये गये थे ।

31.4.5 कार्यक्रम की उपलब्धियां

उपर्युक्त कार्यक्रमों पर विशेष केन्द्रीय सहायता में से जो वर्ष 1991–92 में जो व्यय किया गया तथा तत्संबंधी वर्ष 1992–93 हेतु आवंटन तथा वर्ष 1993–94 हेतु प्रस्तावित आवंटन निम्नानुसार हैं–

तालिका 31.5

कार्यक्रम	व्यय (1991–92)	आवंटन (1992–93)	प्रस्तावित आवंटन (1993–94) (करोड़ रू. में)
1 पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम	231.45	251.79	277.78
2 पश्चिमी घाट विकास कार्यक्रम	27.35	38.20	42.22
योग	258.80	290.00	320.00

31.4.6 कार्यक्रम का मूल्यांकन

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पर्वतीय विकास योजनाएं पर्याप्त रूप से सफल रही है।

स्वाध्यायी प्रश्न :–

(अ) पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाएँ किस वर्ष से प्रारंभ की गई थी?

(ब) इस कार्यक्रम के उद्देश्य बताइए।

(स) इस कार्यक्रम की ब्यूह रचना बताइए।

(द) इस कार्यक्रम की उपलब्धियाँ बताइए। ।

31.5 जनजाति क्षेत्रीय विकास योजनाएं (TRIABAL AREA DEVELOPMENT PLANS)

31.5.1 भूमिका

इसमें लेश मात्र भी संदेह नहीं हो सकता है कि भारत में जनजाति जनसंख्या देश की प्राचीनतम जनसंख्या है। देश में जनजाति जनसंख्या 38 करोड़ है जो कि देश की कुल जनसंख्या का 6.94 प्रतिशत है। यहाँ पर यह उल्लेख करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि कुल जनजाति जनसंख्या में से 3.67 करोड़ जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है अर्थात 96 प्रतिशत जनजातियाँ ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती हैं तथा केवल 13 लाख जनजाति जनसंख्या नगरों में रहती है (अर्थात केवल 4 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती है)। ये जनजातियाँ सदियों से जंगलों एवं पहाड़ी क्षेत्रों में प्रमुखत: निवास करती है तथा इनको आदिम–जाति के नाम से भी जाना जाता है जो डस तथ्य का बोध कराता है कि इनके विकास एवं कल्याण का कार्य अत्यन्त कठिन है। मुख्यत: ये जनजातियाँ बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र तथा पश्चिमी बंगाल में भारी मात्रा में संकेन्द्रित है। देश की कुल जनजाति जनसंख्या का 87.8 प्रतिशत भाग इन राज्यों में निवास करता है। असम, मणीपुर, त्रिपुरा, मेघालय, नागालैन्ड, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, लक्षद्वीप, दादरा व नगर हवेली ऐसे आदिवासी क्षेत्र है जो कि सुदूर फैले हुये है तथा इनके लक्षण एवं समस्याएँ अत्यन्त जटिल है। सघन क्षेत्र में रहने वाली जनजातियों के तथा उनके सन्निकट क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या के जीवन–स्तर में अनेक असमानतायें परिलक्षित होती है। कृषि के तरीकों एवं उत्पादकता तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाने, कृषि–जोतों का आकार,– प्रति व्यक्ति आय, बेरोजगारी का स्तर तथा सहायक धन्धों की उपलब्धता में यह अन्तर अत्यन्त ही स्पष्ट–रूप से दृष्टिगोचर होता है। यहाँ पर वर्ष में मानव शक्ति का प्रभावी प्रयोग बहुत कम हो पाता है।

देश के विभिन्न भागों में जनजातियाँ अनेक समस्याओं से ग्रसित है। इनमें से प्रमुख झूम खेती, लघु वन उपज की प्राप्ति तथा आवश्यक वस्तुओं के विक्रय में मध्यस्थों तथा व्यापारियों द्वारा शोषण, भू–हस्तांतरण, ऊंची व्याज की दरें, भयंकर ऋणग्रस्तता, त्रुटिपूर्ण वन–नीतियां आदि है। इन जनजातियों का जीवन–निर्वाह एक समस्या का स्वरूप धारण कर लेता है।

इन समस्याओं के साथ ही जनसंख्या वृद्धि की ऊंची दर, कृषि जोतों का छोटा आकार, साक्षरता की कमी, वन–संपदा का तीव्र ह्रास, आधार–भूत संरचना का अभाव एवं सामाजिक सेवाओं के निम्न स्तर की अनेक समस्याएं जनजाति क्षेत्रों में सदैव विद्यमान रहती है। जनजातियों की एक ऐसी श्रेणी भी है जो बलपूर्वक बेदखली तथा औद्योगिक एवं सिंचाई परियोजनाओं के कारण अपने निवास स्थानों से पृथक हो गई है । इन अनेकानेक भांति की समस्याओं के कारण जनजाति के क्षेत्रीय विकास का कार्य अत्यन्त गंभीर तथा कठिन रूप धारण कर लेता है ।

अत: एक ऐसी प्रभावशाली नीति की इन क्षेत्रों के लिए आवश्यकता है जो उनके प्राकृतिक संसाधनों को विकसित करे और उनके उत्पादक आर्थिक जीवन में सहायक सिद्ध हो । जन जातियों का आर्थिक जीवन शोषण मुक्त रहे तथा उनके धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं करे । अत : विकासीय कार्यक्रमों को निमांकित भागों में बांटकर तैयार करना चाहिए :

1. यातायात एवं संवाद–वाहन
2. शिक्षा एवं संस्कृति
3. जन–जातीय अर्थव्यवस्था का विकास एवं
4. स्वास्थ्य, आवास एवं जल आपूर्ति ।

31.5.2 योजना की व्यूहरचना :

उपर्युक्त समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए भारत में जो जनजाति क्षेत्रीय योजनाएं बनाई गई है उनमें व्यूहरचना के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये है :

1. गरीबी तथा बेरोजगारी में प्रभावी कमी लाना,
2. न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के माध्यम से जीवन–स्तर को सुधारना
3. आय तथा धन की असमानताओं में कमी करना,
4. जनजाति क्षेत्र के लिए सम्भाव्य का पूर्ण रूप से विदोहन करना,
5. जनजाति क्षेत्रों में आधारभूत आर्थिक संरचना को विकसित करना,
6. व्यक्तिगत परिवारों को लक्ष्य बनाकर जनजाति का विकास करना
7. शिक्षा एवं प्रशिक्षण के माध्यम से मानवीय साधनों का विकास करना
8. सहकारिताओं के माध्यम से साख एवं विपणन केन्द्रों का विस्तार करना, तथा
9. जनजातियों को शोषण से मुक्ति दिलाना ।

31.5.3 योजना का शुभारम्भ:

जनजाति विकास योजनाओं का प्रारम्भ भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भिक वर्ष 1950–51 से ही कर दिया गया था । प्रारम्भिक योजनाओं में जनजातीय क्षेत्रों में सड़कों के विकास, शिक्षा हेतु पाठशालाओं व छात्रवृतियों, पुस्तकों एवं छात्रावासों की व्यवस्था, सामुदायिक केन्द्रों का निर्माण, झूम खेती को समाप्त करने के लिए जनजातियों को उर्वरा भूमि, बैलो, खेती के औजारों, बीज, वित्त आदि की सहायता, जंगलों की कटाई पर रोक एवं वन–श्रम

सहकारी समितियों की व्यवस्था, ऋणग्रस्तता को कम कर बहु–उद्देशीय सहकारी समितियों का निर्माण, कुटीर एवं सहायक उद्योगों (मधु–मक्खी पालक, डलिया निर्माण, रेशम उद्योग, कताई व बुनाई, खजूर गुड़ का निर्माण आदि) की स्थापना, शुद्ध जल, पोषक भोजन एवं चिकित्सा सुविधाएं, जनजाति शोध संस्थाओं का विकास, सामुदायिक विकास एवं विकास खण्डों का इन क्षेत्रों में प्रसार आदि के कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया है ।

31.5.4 योजना का क्रियान्वयन :

उपर्युक्त कार्यक्रमों की समीक्षाओं में यह परिलक्षित हुआ कि ये कार्यक्रम तदर्थ आधार पर बनाये जाने थे तथा इनमें दीर्घकालीन पीरिप्रेक्ष्य का सर्वथा अभाव रहता था एवं सम्पूरक योजनाओं के माध्यम से इन जनजातियों के लिए आवंटित धन राशि का प्रयोग सामान विकास धनराशि के रूप में स्थानापन्न कर लिया जाता था । यही कारण है कि इन योजनाओं में पर्याप्त धनराशि व्यय करने के उपरांत भी जनजातियों की स्थिति पूर्ववत बनी रही ।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में उपर्युक्त कारणों से एक नई व्यूहरचना का प्रस्फुटन हुआ । इस व्यूहरचना के अन्तर्गत सामान्य क्षेत्रों से लाभों के प्रवाह को पिछड़े एवं जनजातीय क्षेत्रों की ओर सुनिश्चित किया गया । राज्य सरकारों से यह अनुरोध किया गया कि वे धनराशियों को जन–जातियों की जनसंख्या के अनुपात मे पहचाने हुए कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध करायें एवं यथा सम्भव पिछड़े एवं जनजाति क्षेत्रों की आवश्यकतानुसार कार्यक्रमों को रूपांतरित करें । इस ब्यूहरचना के अनुसार 16 राज्यों एवं 2 संघ शासित प्रदेशों में पृथक – उप योजनाओं के माध्यम से कार्यक्रमों का क्रियान्वयन प्रारम्भ विशेषत : उन क्षेत्रों में किया गया जहां जनजातियां प्रमुखत : संकेन्द्रित है ।

यद्यपि पृथक जन जाति उपयोजना से जन जाति के क्षेत्रों में विकास की एक लहर का सूत्रपात हुआ फिर भी हमारी सातवीं योजना में जनजाति की क्षेत्रीय विकास की समस्याओं को प्रभावी रूप से हल करने के लिए निम्नांकित लक्ष्य निर्धारित किये गये :

1. आधारभूत संरचना के अंतरालों को दूर करना,
2. परिवारोन्मुख योजनाओं पर ध्यान केन्द्रित करते हुए गरीबी को दूर करना,
3. शोधन के विरुद्ध संरक्षण,
4. अधिक मूल्य वाली फसलें उगाना (चाहे उत्पादन कम ही हो), रेशम के कीड़े पालना, सोयाबीन तथा कैसहार जैसी नमी फसलें उगाना, फलों की सघन खेती, तकनीक हस्तांतरण हेतु सामाजिक चेतना का प्रयोग तथा विशाल स्तर पर बेर लगाना,
5. परत भूमि पर वृक्षारोपण करना,
6. पशु प्रजनन में सुधार एवं
7. गाइनस कीड़ों का उन्मूलन

इस प्रकार सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत तमाम जनजाति परिवारों को विभिन्न लाभ भोगी योजनाओं द्वारा लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया । इस योजनावधि में पूर्व की

योजनाओं से काफी अधिक धनराशि जनजाति उपयोजना क्षेत्र में विभिन्न विकासीय योजनाओं के लिए आवंटित की गई ।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत जनजाति क्षेत्रीय उप–योजना के निम्नांकित पहलुओं पर विशेष बल दिया गया –

1. जनजाति विकास क्षेत्र विभाग में योजनाओं के उत्तम क्रियान्वयन के लिए अधिकारियों का विशिष्ट रूप से चयन करना,
2. राज्य योजना कोषों की बचतों के माध्यम से जनजाति विकास योजनाओं की पूरकता की अनुपालना को सुनिश्चित करना।
3. जनजाति क्षेत्र में आश्रम विद्यालयों तथा छात्रावासों को चलाने के लिए उच्च विनियोग की व्यवस्था करना,
4. जनजाति जनसंख्या के आर्थिक उत्थान हेतु नव प्रवर्तन योजनाओं को चालू करना,
5. खण्ड स्तर पर अधारभूत संरचना का समानीकरण करना,
6. व्यावसायिक प्रशिक्षण, पूर्व सेवा प्रशिक्षण, प्रतिकारी प्रशिक्षण, ग्रीष्म कालीन प्रशिक्षण तथा अन्य प्रशिक्षणों के माध्यम से मानव संसाधनों का समुचित विकास करना,
7. चेतना कैम्प, पद–यात्राओं तथा दूसरे माध्यमों से जन–जाति के लोगों में सामाजिक तथा आर्थिक चेतना उत्पन्न करना,
8. लिफ्ट सिंचाई, कुओं के गहरीकरण, डीजल पम्पों के वितरण आदि के द्वारा सिंचाई सुविधाएं प्रदान करना,
9. कृषि में अधिक उत्पादन के स्थान पर अधिक मूल्य वाली फसल तकनीक को अपनाना,
10. पशुओं की नस्ल सुधारना,
11. जनजातीय लोगों को स्थानीय व्यापारियों तथा साहूकारों के शोषण से बचाना तथा
12. जन–जातीय परिवारों के आकार मानदण्डों को कम करना ।

31.5.5 योजना की उपलब्धियां :

यह योजना वर्तमान में 20 राज्यों एवं समस्त संघीय क्षेत्रों में 193 समन्वित आदिवासी योजना प्रयोजनाओं (Integrated Tribal Development programmes), 249 परिवर्धित क्षेत्रीय योजना एप्रोच पाकेटस (Modified Area Development Approach pockets), 77 आदिवासीय सघन समूहों (Clusters of Tribal Concentration) एवं 74 परम्परागत आदिवासी समूह प्रयोजनाओं (Primitive Tribal Groups Projects) के माध्यम से क्रियान्वित की जा रही हैं सन 1992 –93 में राज्य योजनाओं में से 2261 करोड़ रु0 की राशि को इन योजनाओं की ओर मोड़ना प्रत्याशित था तथा इस हेतु वर्ष 1993 –94 में 2898 करोड़ रु० का प्रावधान किया गया । सन 1992 –93 में 8.5 लाख आदिवासी परिवारों को आर्थिक सहायता प्रदान की गई थी जबकि लक्ष्य 8.96 लाख आदिवासी परिवारों को आर्थिक

सहायता देने का था । सन 1993 –94 के लिए 9 लाख आदिवासी परिवारों को आर्थिक सहायता प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया ।

31.5.6 योजना का मूल्यांकन

निश्चय ही जनजाति क्षेत्रीय विकास योजनाएं जनजातियों के विकास की दृष्टि से क्षेत्र आधारित कार्यक्रमों का प्रतिनिधित्व करती है फिर भी कमजोर वर्गों पर इनका प्रभाव पर्याप्त रूप से दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है । अत: आवश्यकता इस बात की है कि इन कमजोर समूहों को अभिचिन्हित किया जाये तथा उनके विकास पर अधिक ध्यान देया जाये । जनजाति क्षेत्रीय विकास उप योजना के लिए इन क्षेत्रों को विकासार्थ अभिचिन्हित उसी भांति किया जाना चाहिए जैसे कि स्थानीय कार्यो के लिए समेकित जनजाति विकास कार्यक्रम स्तर पर इनका क्रियान्वयन होता है ।

जनजाति क्षेत्रों के परम्परागत शिल्पी प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुए है । वे वृहद उद्योगों की असमान प्रतिस्पर्द्धा का सामना नहीं कर पा रहे है । अत: इन समूहों को अभिचिन्हित करके इनके विकास पर पर्याप्त ध्यान देना परमावश्यक है । ये क्षेत्र मुख्यत: वन क्षेत्र है तथा वन एवं सहायक क्रियाओं (खनन आदि) पर आधारित क्रियाओ को सुनियोजित करना आवश्यक है । उद्योगों एवं खानों के समीप से जनजातियों को पीछे धकेल दिया गया है तथा इन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है । इन पर विशेष ध्यान देना अपरिहार है ।

जनजातियों की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा पर पर्याप्त बल दिया जाना चाहिए तथा जनजाति की रोजगार–ग्राह्यता को सुधारने हेतु' शिक्षा में विनियोग करना परमावश्यक है । इस समय आवश्यकता इस बात की है कि जनजातियों की बसावट को दृष्टिगोचर रखते हुए पाठशालाओं की अवस्थिति, पाठशालाओ का समय, अवकाश एवं दीर्घावकाश के समय की उपयुक्तता, स्थानीय व्यक्तियों को आकर्षित करने हेतु शैक्षणिक न्यूनतम योग्यताओं में छूट, स्थानीय समुदायों को ध्यान मे रखते हुए एवं पाठयक्रम व अध्ययन सामग्री के निर्माण पर समुचित स्थान दिया जाये । जनजाति के निम्न साक्षरता वाले क्षेत्रो को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए । पाठशालाओं को बीच में छोड़ने वाले छात्रों की संख्या में कमी लाना आवश्यक है। इसी भांति स्वास्थ्य सेवाओं में समान भौगोलिक दशाओं वाले क्षेत्रों को वितरित कर विशिष्ट योजनाएं बनाना परमावश्यक है ताकि इन क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली बीमारियों तथा महामारियों की समुचित रोकथाम की जा सके । इन जनजाति क्षेत्रीय विकास की योजनाओं की सफलता के लिए अधिक मनोबल प्रशासनिक एवं अन्य समस्त स्तरों पर जुटाना अत्यन्त आवश्यक है ।

बोध प्रश्न 2

(अ) जनजाति क्षेत्रीय योजनाएं किस वर्ष से प्रारम्भ की गई थी?

(ब) इन योजनाओं की व्यूह रचना बताइए

(स) इन योजनाओं को भारत में किस प्रकार क्रियान्वित किया गया है?

(द) इन योजनाओं की उपलब्धियों को मूल्यांकित कीजिए

31.6 सारांश

भारत में प्रत्येक क्षेत्र का संतुलित विकास हो सके, इस लक्ष्य कें अनुसार जो क्षैत्र विशेष के लिए विशिष्टि योजनाएं प्रारम्भ की गई है उनमें सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम, मरूस्थल विकास कार्यक्रम, पर्वतीय क्षेत्र विकास योजनाएं एवं जनजाति क्षेत्रीय विकास योजनाएं प्रमुख है ।

भारत का लगभग 20 प्रतिशत क्षेत्रफल एवं 12 प्रतिशत जनसंख्या सामान्यत: सूखे की चपेट में रहती है । इस क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या को सूखे से सुरक्षा प्रदान करने हेतु वर्ष 1973 से सूखा आशंकित कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है । सूखे की सम्भावना वाले चुनिंदा क्षेत्रों में यह कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था । इस कार्यक्रम का प्राथमिक लक्ष्य इन क्षेत्रों में भूमि, जल एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित विकास करके पर्यावरण संतुलन को बहाल करना है । वर्तमान में यह कार्यक्रम 13 राज्यों के 96 जिलो के अंतर्गत आने वाले 627 ब्लाकों में चलाया जा रहा है । इसके अंतर्गत आने वाला कुल क्षेत्रफल 553 लाख हैक्टेयर है तथा इस कार्यक्रम का लाभ 707.5 लाख जनसंख्या को मिल रहा है । अब इस कार्यक्रम का विस्तार करके इसे 147 जिलों के 943 ब्लाको में कार्यान्वित किया जायेगा ।

भारत मे मरूस्थलीय क्षेत्रफल काफी विस्तृत है तथा यह निरंतर बढ़ता जा रहा है । इसका उानुमानित क्षेत्रफल राजस्थान, गुजरात एवं हरियाणा में 2,34,895 कि. मी. है । हमारे सामने मरूस्थलीय क्षेत्र की पुर्नस्थापना की समस्या बहुत ही विकट है । इस हेतु मरूस्थल विकास कार्यक्रम को वर्ष 1977–78 से क्रियान्वित किया गया । इस कार्यक्रम के अंतर्गत ठंडे मरूक्षेत्र के अंतर्गत जम्मू एवं कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों को सम्मिलित किया गया है । इस कार्यक्रम का प्रमुख उदेश्य मरूभूमि विस्तार प्रक्रिया नियंत्रण एवं पर्यावरणीय संतुलन बनाये रखना है । यह कार्यक्रम अब तक देश के पांच राज्यों के 21 जिलो के अंतर्गत आने वाले 131 विकास खंडों में चलाया जा रहा है तथा दिसम्बर 94 में सरकार ने इसका विस्तार करके इसे 36 जिलों के 274 विकास खंडों में कार्यान्वित करने का अनुमोदन कर दिया है ।

पर्वतीय क्षेत्रों का विकास हमारी प्रारम्भिक योजनाओं में विशेष विकास परियोजना के माध्यम से सदैव ही जुड़ा रहा है । योजनाओं की सफलता से प्रभावित होकर पांचवी पंचवर्षीय योजना में प्रारम्भ से ही एक विशेष कार्यक्रम जो वर्ष 1974–75 से क्रियान्वित किया गया है जिसे पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है । पर्वतीय क्षेत्रों का वर्गीकरण प्रमुखत: दो श्रेणियों में बांटा गया है – (1) पर्वतीय राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश एवं (2) निर्दिष्टित पर्वतीय क्षेत्र। इस कार्यक्रम को तीन मानदंडों को समाहित कर क्रियान्वित किया गया है – (1) समाजार्थिक विकास (2) आधारभूत संरचना का विकास एवं (3) पारिस्थितिकी की प्रोन्नति । इन योजनाओं की प्रधान व्यूहरचना कृषि का समेकित विकास, मृदा संरक्षण, लघु सिंचाई एवं बुनियादी आधार–भूत संरचनात्मक सुविधाएं प्रदान करना रहा है । इस कार्यक्रम पर

विशेष केन्द्रीय सहायता में से जहां वर्ष 1992–93 के लिए 290 करोड़ रु० की राशि आवंटित की गई तथा वर्ष 1993–94 के लिए प्रस्तावित आवंटन 320 करोड़ रु० था ।

भारत में जनजाति जनसंख्या 3.8 करोड़ है जो कि देश की कुल जनसंख्या का 6.94 प्रतिशत है । कुल जनजाति की 96 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है । इस जनसंख्या को विकास के पथ पर अग्रसर करने के लिए जनजाति क्षेत्रीय विकास की योजनाओं का प्रारम्भ भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भिक वर्ष 1950–51 से ही कर दिया गया था । प्रारम्भिक योजनाओं में जनजातीय क्षेत्रों में सड्कों के विकास, शिक्षा हेतु पाठशालाओं, छात्रवृत्तियों, पुस्तकों एवं छात्रावासों की व्यवस्था, सामुदायिक केन्द्रों का निर्माण, झूम खेती को समाप्त करने के लिए जन–जातियों को उर्बरा भूमि, बैलों, खेती के औजारों, बीज, वित्त आदि की सहायता, जंगलों की कटाई पर रोक एवं वन–श्रम–सहकारी समितियों की व्यवस्था, ऋण ग्रस्तता को कम कर बहुउद्देशीय सहकरी समितियों का निर्माण, कुटीर एवं सहायक उद्योगों की स्थापना, शुद्ध जल, पोषक भोजन एवं चिकित्सा सुविधाए, जनजाति शोध संस्थाओं का विकास, सामुदायिक विकास एवं विकास खण्डों का इन क्षेत्रों में प्रसार आदि कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया था। यह योजना 20 राज्यों एवं समस्त संघीय क्षेत्रों में सफलता–पूर्वक क्रियान्वित की जा रही है । वर्ष 1992–93 में राज्य को योजनाओं में से 2261 करोड़ रु० की राशि को इन योजनाओ की ओर मोड़ना प्रत्याशित था तथा वर्ष 1993 – 94 हेतु 2898 करोड़ रू. का प्रावधान किया गया ।

31.7 शब्दावली

सूखा आशंकित क्षेत्र	:	वे सूखाग्रस्त क्षेत्र जिसमें वर्षा की सदैव कमी या अभाव रहता है ।
मरूस्थल विकास	:	मरूस्थल से तात्पर्य रेगिस्तानी या ठंडे मरू क्षेत्र से है जहां वर्षा के अभाव में विशेष पैदावार नहीं होती है ।
पर्वतीय क्षेत्र	:	पर्वतीय क्षेत्र वे क्षेत्र है जहां की भूमि पहाड़ी होती है ।
जन–जातीय क्षेत्र	:	जिस क्षेत्र में आदिम जातियां निवास करती है वे जन–जातीय क्षेत्र कहलाते है ।
झूम खेती	:	झूम खेती से तात्पर्य परिवर्तनीय खेती से है । आदिवासी लोग इस खेती के अन्तर्गत एक बार जिस भूमि को साफ कर खेती करते है उसको बाद में वैसा ही छोड्कर आगे बढ़ जाते है।

31.1 कुछ उपयोगी पुस्तकें

(1) भारतीय अर्थव्यवस्था	ए. एन. अग्रवाल
(2) भारतीय अर्थव्यवस्था	हरिशचन्द्र शर्मा
(3) भारतीय अर्थव्यवस्था	सीबी मामोरिया,

(4) भारतीय अर्थव्यवस्था	नाथूरामका
(5) भारतीय अर्थव्यवस्था	रूद्र दल एवं सुन्दरम

परिशिष्ट इकाई 31

भारत में ad hoc कार्यक्रम स्वतन्त्रता के बाद शुरू से ही बहुत रहे है।ऐसे भी कार्यक्रम रहे है जो बदलती हुई राज्य सरकारों ने साधारण कार्यो के लिए शुरू किये उनके बाद की सरकारों ने उनके नाम बदल दिए या बन्द कर दिया।

	कार्यक्रम	वर्ष	लक्षित क्षेत्र/व्यक्ति	उद्देश्य
1.	कम्यूनिटी डेवेलप्मेंट	1952	सभी ब्लॉक	गांवों के विकास के लिए कृषि, पशुपालन,लघु सिंचाई , ग्रामीण सड़कें, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास का प्रबन्ध, श्रम दान पर भी जोर
2.	नेशनल ऐक्सटेंशन सर्विस (NES)	1952	ब्लॉकस्तर	उपरोक्त के लिए तकनीक प्रदान करना
3.	पंचायत राज्य	1959	सभी गांव	जनतंत्र से उपरोक्त कार्य
4.	एप्लाइड़ न्यूट्रीशन (पोषक) कार्यक्रम (ANP)	1960	राज्य/माताएं व छोटे बच्चे	गर्भवती महिलाओं, हाल की माताओं व शिशुओं को पोषक चीजें देना
5.	इन्टेन्सिव एग्रीकल्चरल डिस्ट्रिक्ट प्रोग्राम (IADP)	1960–61	13 चुने जिले	सभी कृषि आदान व साज के प्रबन्ध उन्नत कृषि
6.	रुरल इन्हस्ट्रीज प्रोजेक्ट (RIP)	1962–63	3 से 5 ब्लॉक का क्षेत्र	ग्रामीण आर्टीजन हुनरमंदों को आदान के रूप में सहायता देना
7.	इन्टेन्सिव (गहन) कृषि क्षेत्र विकास (IAAP)	1964–65	सभी राज्यों के उन्नत चुने हुए जिले व किसान	तकनीक के माध्यम से भू–प्रयोग, गहनता बढ़ाना तथा उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाना
8.	विपुल उत्पादन कार्यक्रम हाई ईल्डिंग वेराइटी प्रोग्राम (HYVP)	1965	सभी राज्य सभी किसान	विपुल उत्पादन के बीज प्रयोग करके तथा उनके साथ सिंचाई व अन्य आदान प्रयोग से विपुल उत्पादन व उत्पादकता
9.	मल्टी क्रांपिग प्रोग्राम (MCP)	1965	चुनिन्दा जिले	विशिष्ट फसलों के विकास का कार्यक्रम
10.	लीड बैक स्कीम	1969	सभी ग्रामीण	एक बैंक साख योजना जिले की

(LBS)		जिले	बनाता है व उसके अनुसार साख प्रबन्धन होता है
11. स्माल फार्मर डेवेलपमेंट ऐजेन्सी	1969–70	सभी राज्यों के चुनिन्दा जिलों के छोटे किसान	उन्हें आदान सहायता तथा तकनीकी सलाह देना ताकि वे भू–गहनता से अधिक उत्पादन पायें(2–5एकड़)
12. मार्जिनल फार्मर तथा एगरीकल्चरल लेबरर्स प्रोग्राम (MFAL)	1969–70	सभी राज्यों के किसान	–उपरोक्त– परन्तु सीमान्त कृषकों को अलग से (2 एकड़ से कम भूमि वाले)
13. क्रेश रुरल ऐम्पलायमेंट प्रोग्राम	1964–70	सभी राज्यों में	सार्वजनिक निर्माण कार्य जिनमें ज्यादा हुनर की जरूरत नहीं, उन्हें चलाना ताकि फालतू पड़ी भूमि पर खेती करवाना
14. एक्सपोर्ट औरियन्टेड प्रोग्राम (EOP)	1970	मुख्य फसलें	इन्हें अच्छी किस्म का उगाकर, पैक करके निर्यात करना
15. ड्राउट–प्रोन एरिया प्रोग्राम (DPAP)	1970–71	554ब्लॉक 73 जिले 13 राज्य	मुख्य रूप से पानी इकट्ठा करने तथा अन्य निर्माण कार्यों से जो स्थायी बने रहें, रोजगार व आय सृजन
16. बेकवार्ड ऐरिया प्रोग्राम (BAD)	1971	पिछड़े जिले	यहां उद्योगों की स्थापना करने वाले उद्योगपतियों को जमीन , पानी, बिजली , साख, आसान सस्ती दरों पर देना
17. रुरल आर्टीजन प्रोग्राम (RAP)	1971–72	41 जिले जहाँ शिल्प कार्य ज्यादा है	इन्हें आधुनिक औजार, तकनीक व डिजाइन देना
18. डिफ्रेन्शियल इन्ट्रेस्ट रेट स्कीम	1972	कमजोर वर्ग (वार्षिक आय) शहरी आय 7200 रु0 से कम ग्रामीण 6400 रु0 से कम	इन्हें मात्र 4 प्रतिशत पर धन्धा चलाने के लिए ऋण देना
19. एम्पलायमेंट गारंटी स्कीम (EGS)	1972	ग्रामीण बेरोजगारों तथा भूमिहीन	100 दिन के लिए कार्य देने की गारंटी बशर्ते कि वे मेहनत का

		व्यक्ति करें	कार्य मजदूरी = रु0+ अनाज
20. ट्राइबल डेवेलप–प्रोजेक्ट	1972–73	मध्यप्रदेश आन्ध्र प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा व सभी राज्यों के आदिवासी अंचल	अंचल क्षेत्र के संसाधनों का प्रयोग करके विकास कार्य चलाना
21. पायलाट इन्टेन्सिव रुरल एम्पलायमेंट जेक्ट PIREP	1972–73	समस्त राज्यों के ग्रामीण रोजगार बेरोजगारों के लिए	सार्वजनिक निर्माण कार्यों में देना (एक और नया नाम)
22. आधा मिलियन प्रोग्राम जाब्ज	1973–74	शिक्षित बेरोजगारों के लिए	उनको स्वरोजगार स्थापित करने में सहायता
23. हिल एरिया डेवेलपमेंट प्रोजेक्ट	1973–74	हिमाचल–कागंडा तमिलनाडु–नीलगिरी ट्रायवल क्षेत्र	यहां पर कृषि विकास,उन्नत बीज प्रयोग फलदायक वृक्ष उगाना
24. कमान्ड ऐरिया डेवेलपमेंट ऐजेन्सी (CADA)	1974–75	कुछ सिंचाई का क्षेत्र जिसमें सिंचाई हो	सभी नालियां बनें वारावन्दी हो प्रयोग की अनुकूलतमता
25. स्पेशल लाइव स्टॉक कार्यक्रम	1974–75	21 राज्य 4 केन्द्रीय टेरोटेरीज	कमजोर तबके के लोगों को पशुधन बढ़ाने में सहायता
26. इन्टेग्रेटेड रुरल डेवेलप प्रोग्राम IRDP	1976–77	चुनिन्दा ब्लाक बड़ा प्रसिद्ध हुआ कार्यक्रम	SFDA+MFAL को मिला दिया हर ब्लाक में 600 परिवारों को ऋण, चल परिसंम्पति देकर (जैसे रिक्शा बाजा, गाय, भैस, सिलाई मशीन) या उनके कार्य के लिए ऋण देकर उन्हें गरीबी की रेखा से ऊपर लाना
27. मिनिमम नीड्स प्रोग्राम MNP	1978–77	सभी राज्य सभी गांवों के गरीब	पीने का पानी, गांव की सड़क, ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा सुलभता
28. फुड फार वर्क प्रोग्राम FFWP	1977	सभी राज्य	राहत कार्यो में गरीबों को लगाकर अनाज मजदूरी के रूप

				में देना
29.	विलेज एडापशन स्कीम VAS	1977	कतिपय चुनिन्दा गांव	बैक, सार्वजनिक प्रतिष्ठान, कम्पनी गांव को 'गोद" लेकर विकास कराये
30.	अन्तोदय	1977	जयपुर, जोधपुर कोटा, चित्तौड़ जिले राजस्थान	आदिवासी, अनुसूचित जातियों में से गरीबों में से सबसे गरीब को रोजगार व आय सृजन में मदद
31.	रुरल हेल्प	1977	सभी ब्लॉक	दाइयों व कम्यूनिटी हेल्थ के लिए प्रशिक्षण देना
32.	ग्रामीण हेल्थ स्कीम	1977	समस्त राज्य ग्रामीण गरीब	उपरोक्त में परिवार नियोजन जोड़ना
33.	डेजर्ट डेवेलप– मेट प्रोग्राम	1977–78	राजस्थान, गुजरात, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश	आगे रेगिस्तान का बढ़ना रोकना, वेस्टलैड का बढ़ना रोकना
34.	फिश फार्मर डेवेलपमेंट FFDA	1977–78	समस्त राज्य	आन्तरिक पानी में मछली पालन बढ़ाना
35.	PVHOP प्राइवेट वालन्ट्री हेल्थ आर्गेनाइजेशन प्रोग्राम	1979–78	समस्त राज्य	निजी डाक्टर स्वेच्छा से आदिवासियों को तथा अन्य ग्रामीणों को स्वास्थ्य व परिवार नियोजन सुनाrवेधाएं दें
36.	स्लम्स एन विरनामेंट स्कीम	1977–78	समस्त राज्य	गंदी बस्तियों के हालात सुधारे जायें, विशेष रूप से जल–मल निकासी, स्वच्छ पानी व कूड़ा करकट हटाना
37.	इन्टेग्रेटेड चाइल्ड डेवेलपमेंट ICDS प्रोग्राम	1977–78	समस्त केन्द्रीय शासित प्रदेश	बच्चों के स्वास्थ्य का व पोषण का विकास
38.	(बंधुआ मजदूर) बान्डेड लेवर रीहे बिलिटेशन प्रोग्राम	1977–78	कर्नाटक, मध्यप्रदेश उड़ीसा, तमिल– नाडु , उत्तर प्रदेश	इन्हें खदान मालिकों जमीदारों से मुक्ति दिलाकर स्वतन्त्र मजदूरी करने देना सम्भव बनाना
39.	नेशनल एडल्ट ऐजूकेशन प्रोग्राम	1978	सभी राज्य सभी अशिक्षित प्रोढ़	इन्हें साक्षर बनाना तथा आधारभूत ज्ञान देना

40. डिस्ट्रिक्ट इंडस्ट्रीज सेन्टर प्रोग्राम DIC	1978	सभी राज्य	ग्रामीण क्षेत्रों में औदोंगिक विकास बढ़ाना
41. ट्रेनिंग फार रुरल यूथ फार सेल्फ एम्पलायमेंट TRYSEM	1979	ग्रामीण युवक	इन्हें स्वरोजगार योग्य बनाना
42. सेल्फ एफीसियेन्सी स्कीम SSS	1979–80	तमिलनाडु	ग्रामीण गरीबों को सिरोपरी सुविधाएं देना
43. नेशनल रुरल ऐम्प्लायमेंट प्रोग्राम NREP	1980	ग्रामीण तथा अर्ध शहरी क्षेत्र	रोजगार का कार्यक्रम अशिक्षितों के लिए अल्पकालिक राहत के लिए
44. स्पेशल एनीमल हस्बेन्ड्री प्रोग्राम SAHP	1980	चुनिन्दा ब्लॉक	दूध के उत्पादन से ग्रामीणों की आय बढ़ाना
45. रुरल लेबर ऐम्प्लायमेंट गारंटी प्रोग्राम RLEGP	1980	ग्रामीण भूमिहीन मजदूर	इस तरह के परिवारों में से एक को रोजगार देने की गारन्टी देना
46. डेवेलप्मेंट ऑफ वीमेन एंड चिल्ड्रेन इन रुरल एरियाज DWCRA	1982–83	सभी जगह	ग्रामीण स्त्रियों व बच्चों का व विकास
47. सेल्फ ऐम्प्लायमेंट फार ऐजूकेटेड अनऐम्प्लायड यूथ SEEUY	1983	अन ऐम्प्लायमेंट से पीड़ित सभी युवक उन जगह जहां आबादी 10 लाख से कम हो	स्वरोजगार की “योजना”
48. मासिव असिस्टेन्स फार इक्रीजिंग एग्रीकल्चरल प्रोडक्शन प्रोग्राम MAPP	1983–84	छोटे व सीमान्त कृषक	छोटी सिंचाई परियोजनाएं शुरू करना
49. सेल्फ ऐम्प्लायमेंट फार अरवन पुअर(SEPUP)	1986	शहरी गरीब	वही स्वरोजगार योजना -नये नाम से

50. सर्विस ऐरिया एपरोच SAA	1989	सभी ग्राम	गांव के लिए बैक द्वारा साख योजना बनाकर उधार देना
51. नेहरु रोजगार योजना NRY	1989	शहरी गरीब	रोजगार योजना
52. जवाहर रोजगार योजना JRY	1989	ग्रामीण गरीब	मजदूरी -रोजगार देना
53. स्कीम फार अरबन माइक्रो ऐंटरप्राइजेज़ SUME	1990	शहरी गरीब	स्वरोजगार के धन्धे स्थापित करें
54. प्राइमिनिस्टर रोजगार योजना	1993	शिक्षित बेरोजगार युवक	स्वरोजगार की एक और योजना
55. 56 बीस सूत्रीय कार्यक्रम (दो बार)	1975–77	यह एक बिन्दु के कार्यक्रम नहीं थे, जैसा कि नाम से जाहिर है इनमें अनेक कार्यक्रम शामिल थे पूरा भारत	उस समय चल रहे सभी कार्यक्रमों व विभागों के कार्यो की सूची प्रशासन ने पंचवर्षीय योजना से ज्यादा महत्व दिया

यह सूची के कार्यक्रम याद नहीं रखे जा सकते परन्तु यह इसलिए दी गयी है कि कोई चाहे तो इनके क्रियान्वयन पर शोध कर सकता है, शर्त यह है कि सतह पर इनके चिन्ह मिल जायें। मुख्यबात इन कार्यक्रमों के बारे में यह है कि विभाग के जो सामान्य काम है, पंचवर्षीय योजना में जो होना था या हो रहा है वह क्या था? यह कार्यक्रम ही धन खाने के प्रमुख साधन बनें । इन राहत कार्यो के चिन्ह बहुत कम जुटे । इनका सामजिक मूल्यांकन व आडिट शिथिल रहा अगर शिक्षा विभाग ने व आदिवासी (अनुसूचित जनजाति) विभाग ने गरीब स्कूली लड़कियों को यूनीफार्म, पाठय पुस्तक निगम की पुस्तकें, या कुछ और दिया तो उसे "सुकन्या" नाम दे दिया, रोजगार के अनेक कार्यक्रम नये नाम पाते रहे । इन्हीं कार्यक्रमों से राजनीतिबाज अपने लिए नाम कमाते रहे, व राजीव गांधी मजबूर हुए कि वे सार्वजनिक रूप से यह माने कि 85 प्रतिशत धन हितग्राहियों को नहीं पहुंचता था ।

कार्य अवश्य हुए है, परन्तु इन कार्यो ने पंचवर्षीय योजनाओं से भी ज्यादा नाम कमाया यह आंकना मुश्किल हो गया कि कौन से कार्य योजना/सालाना बजट विशेष कार्यक्रमों में हुए । इनके लिए धन आवंटन से कहां हुआ । बीस सूत्रीय कार्यक्रम तो इतने प्रसिद्ध हुए कि प्रशासन ने पंचवर्षीय योजना को कम महत्व देना शुरू कर दिया यह सही है कि ये सारे कार्यक्रम गरीबी

निवारण के थे, ग्रामीण विकास के थे परन्तु इनके लिए एक सच्चा समन्वित कार्यक्रम होना था जो उत्पादन की सक्षमता व वितरण का न्याय सुनिश्चित करता ।

NOTES